॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२८९

श्रीरूपगोस्वामिविरचितं

विदग्धमाधवम्

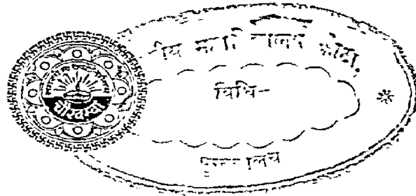
'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

श्री पं० रमाकान्त झा एम० ए०, आचार्य

अध्यक्ष : संस्कृत विभाग

राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९७०

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२७

मूल्य : १०-००

गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-१ (भारतवर्ष)

फोन : ६३१४५

प्रधान शाखा

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१

फोन : ६३०७६

THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

289

THE

VIDAGDHA-MĀDHAVA

OF

SRĪ RŪPA GOSVĀMĪ

Edited with

The 'Prakāśa' Hindi Commentary

By

PT. RAMĀKĀNTA JHĀ, M. A.,

Vyākaraṇa-Vedānta-Sāhityāchārya

Head of the Sanskrit Department,
Raja Harpal Singh Degree College
Singramau, Jaunpur.

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1

1970

Gopal Mandir Lane,
P. O. Chowkhamba, Post Box 8,
Varanasi-1 (India)
1970
Phone : 63145

First Edition
1970
Price Rs. 10-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 63076

समर्पणम्

यत्सान्निध्यमवाप्य शंकरपुरे साहित्यविद्या मया-
धीता प्रेरणया च यस्य निपुणं काव्यामृतं पीयते ।
यस्याशीर्वितनोति मङ्गलयुतं ज्ञानाभिलाषं मयि
तस्मै श्रीबलदेवनामगुरवे सेव्याय सेवार्प्यते ॥

विनीत—
रमाकान्त



आत्म-निवेदन

श्री रूपगोस्वामि-प्रणीत 'विदग्धमाधव' नाटक का यह नूतन संस्करण गुणीजन की सेवा में प्रस्तुत करते हुये अपार हर्ष हो रहा है। मूल संस्कृत ग्रन्थों को राष्ट्रभाषा के माध्यम से जनमानस के समक्ष उपस्थित करना टीकाकार की हार्दिक भावना है। इसी पवित्र उद्देश्य से प्रेरित होकर यथाशक्ति सुरभारती-सेवा का प्रयास चल रहा है। इस कार्य में चौखम्बा संस्कृत संस्थान का योगदान सराहनीय है।

संस्कृत टीका के अभाव में वर्तमान लोकरुचि को ध्यान में रखकर हिन्दी टीका के लिए यह आवश्यक था कि उसका स्वरूप व्याख्यात्मक हो, परन्तु अनुवाद में व्याख्या का सन्निवेश प्रवाह में कहीं बाधक न हो जाय अतः मूल ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद करके अपेक्षित व्याख्या के लिए 'विमर्श' शीर्षक की पृथक् योजना के माध्यम से ग्रन्थ के अभिप्राय को व्यक्त किया गया है। भूमिका के लिए अपेक्षित सामग्री की यथासाध्य उपलब्धि के कारण उसका कलेवर पल्लवित होकर पाठकों के लिए अधिक उपादेय सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है।

इस प्रसंग में जिन विद्वानों की विचार-सम्पत्तियों का आश्रय ले सका, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना पुनीत कर्तव्य है।

सर्वप्रथम मैं अपने पूज्यपाद गुरुवर्य आचार्य पं० श्री बलदेव उपाध्याय जी (भूतपूर्व सञ्चालक, अनुसंधान संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) के चरणों में नतमस्तक हूँ, जिनके अमूल्य निर्देशों से वैष्णव-सम्प्रदाय की कृष्ण-भक्ति प्रक्रिया का बोध हुआ है और जिनकी महनीय पुस्तकों से प्रस्तुत संस्करण के सम्पादन में पर्याप्त सहायता मिली है अतः उन्हीं की कृपावृष्टि का यह मूर्त रूप उन्हीं की सेवा में समर्पित है। टीका की पाण्डुलिपि तैयार करने में सहायक मित्रवत्स पं० श्री लक्ष्मी-प्रपन्न शर्मा एम० ए० आचार्य प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, डिग्री कालेज, प्रतापगढ़ को तथा अनुजवत्स श्री बृजिनाथ मिश्र एम० ए० को हार्दिक

धन्यवाद देता हूँ। भूमिका-लेखन-प्रसंग में अपने सहयोगी अध्यापक श्री जगदीश नारायण श्रीवास्तव, इतिहास विभाग एवं श्री त्रिलोकी नाथ सिंह, अंग्रेजी विभाग, का विशेष आभार मानता हूँ, जिनके ऐतिहासिक तथा साहित्यिक विचारों के आदान-प्रदान ने विवेचन की उपादेयता में पर्याप्त सहायता पहुँचायी है। चौखम्बा संस्कृत सीरीज के प्रधान संपादक श्री पं० रामचन्द्र झा जी के चरणों में तो नतमस्तक हूँ ही। चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन के व्यवस्थापक महोदय के प्रति भी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए परम हर्ष का अनुभव करता हूँ, जिन्होंने इससे पूर्व मेरे द्वारा सम्पादित 'कादम्बरी शुकनासोपदेश', 'अभिलेखमाला', 'उत्कीर्णलेखपञ्चकम्' और 'आश्चर्यचूडामणि' को प्रकाशित कर प्रस्तुत नाटक के प्रकाशनकार्य की सम्पन्नता के द्वारा हमारा उत्साह वर्धन किया है।

अन्त में मेरी लेखनी के सजग प्रहरी मित्रवर डाक्टर गंगासागर राय एम० ए० पी-एच० डी० का हार्दिक अभिनन्दन कर अपने वक्तव्य को समाप्त कर रहा हूँ। आशा है, विज्ञजन नीरक्षीर विवेकन्याय से नाटक के प्रस्तुत विवेचन की निष्पक्ष परीक्षा से अनुगृहीत करेंगे।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
वि० सं० २०२७

निवेदक—
रमाकान्त झा

भूमिका

श्री रूप गोस्वामी

गौडीय वैष्णव समाज में श्री रूप गोस्वामी अपनी भक्ति और विद्वत्ता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। वृन्दावन के षट् स्वामियों में श्रीरूप का नाम आदर से लिया जाता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के शिष्यों में श्रीरूप अन्यतम हैं। इन्होंने महाप्रभु के भक्ति-रस को शास्त्रीय रूप प्रदान करने का महनीय प्रयास किया। श्रीरूप गोस्वामी के जीवन-वृत्तान्त से परिचय प्राप्त करने के अनेक स्रोतों का आधार मानकर उनका जीवनवृत्त प्रस्तुत करना विषयान्तर नहीं होगा।

श्रीरूपगोस्वामी के जीवनवृत्त को प्रकाश में लाने का श्रेय सर्वप्रथम उनके भतीजे जीवगोस्वामी को है, जिन्होंने सनातन गोस्वामी द्वारा लिखित 'वैष्णवतोषणी' (श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की टीका) का संक्षिप्त रूप 'लघुतोषणी' स्वयं शक संवत् १५०४ में तैयार किया और उसके अन्त में अपने परिवार की पीढ़ी तथा पितृव्य सनातन और रूप के मुख्य कार्यों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। श्रीजीवगोस्वामी के इसी विवरण को उपजीव्य मानकर परवर्ती विद्वानों ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में रूप तथा उनके पारिवारिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। श्रीजीव द्वारा लिखित विवरण की प्रामाणिकता अन्य साधनों से भी सिद्ध की जा सकती है। 'भक्तिरत्नाकर' के साक्ष्य के आधार पर भी वृन्दावन के तीन गोस्वामियों सनातन, रूप एवं जीव के सम्बन्ध में सूचनायें मिलती हैं।[1]

श्रीजीव गोस्वामी ने अपने पितृव्य रूप और सनातन के परिवार की पूर्व-कथा का विवरण इस प्रकार दिया है—

श्री रूपगोस्वामी के पूर्वज

रूप गोस्वामी के पूर्वज भारद्वाज-गोत्रीय ब्राह्मण थे, जो कर्नाटक देश के रहने वाले थे। इनके मूलपुरुष का नाम 'जगद्गुरु सर्वज्ञ' था। ये कर्नाटक

---

१. द्रष्टव्य—The Early History of the Vaisnava Faith and Movement in Bengal, S. K. De. p. 146.

प्रदेश के राजकुमार थे। 'सर्वज्ञ' कर्नाटक प्रदेश के सफल शासक होने के साथ ही तीनों वेदों के निष्णात विद्वान् भी थे। 'सर्वज्ञ' के उत्तराधिकारी पुत्र का नाम अनिरुद्ध था, जो यजुर्वेद के पारङ्गत विद्वान् हुए। अनिरुद्ध की दो धर्म-पत्नियों से दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई जिनमें प्रथम का नाम रूपेश्वर और द्वितीय का नाम हरिहर था। इनमें प्रथम रूपेश्वर अपनी वंशानुगत विद्या प्राप्त कर उद्भट विद्वान् हुए किन्तु हरिहर दुराचरण में प्रवृत्त होकर पथभ्रष्ट हो गया। उसने षड्यन्त्र रचकर अपने ज्येष्ठ भ्राता रूपेश्वर से राज्य का शासनसूत्र छीनकर उन्हें राज्य से निकल जाने के लिए विवश किया। राज्यच्युत विद्वान् रूपेश्वर को पूर्वीय प्रदेशों में भ्रमण करते 'पद्मनाभ' नामक एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पद्मनाभ यजुर्वेद और उपनिषदों का मर्मज्ञ था। उसने भागीरथी के तटपर स्थित नवहट्ट[1] ग्राम को अपना आवास बनाया। पद्मनाभ ने वहाँ एक यज्ञ किया था। पद्मनाभ के पाँच पुत्र और अठारह कन्यायें हुईं। सबसे छोटे पुत्र का नाम मुकुन्द था। अपने सम्बन्धियों से कलह हो जाने के कारण मुकुन्द नवहट्ट छोड़कर पूर्वीबंगाल के जेसोर के पास फतेयाबाद[2] में आकर बस गये।

मुकुन्द को एक पुत्र हुआ जिसका नाम कुमार था। कुमार के कई पुत्र हुए जिनमें तीन पुत्रों से हम परिचित हैं वे तीनों ही परम भागवत एवं वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तकों में अग्रणी थे। माता-पिता ने इनके नाम संतोष, अमर और वल्लभ रखे। पीछे से ये ही श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा वैष्णव धर्म में दीक्षित होने के बाद क्रमशः सनातन, रूप और अनुपम नाम से प्रसिद्ध हुए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रूपगोस्वामी के पूर्वज कर्नाटक ब्राह्मण[3] थे, जो कर्नाटक देश से चौदहवीं शताब्दी के अन्त में ही निष्क्रमण कर बंगाल में आकर बस गये थे। जीवलिखित वंशपरिचय के अनुसार रूपगोस्वामी के वंशवृक्ष का स्वरूप इस प्रकार है—

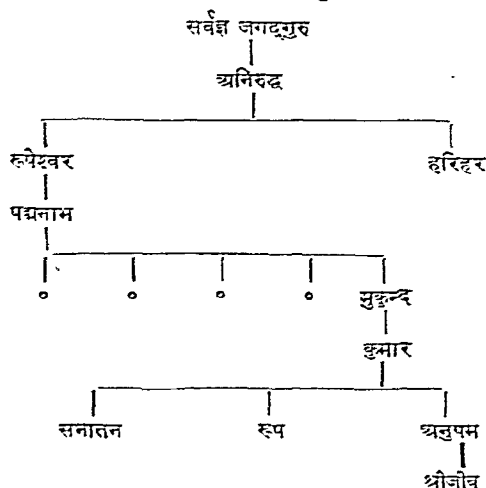
---

१. भक्तिरत्नाकर के अनुसार आधुनिक 'नइहटि'।

२. भक्तिरत्नाकर के अनुसार फतेयाबाद उस समय बाक्ला चन्द्रद्वीप परगना के अन्तर्गत था।

३. श्रीरूप तथा उनके वंशजों के कर्नाटक ब्राह्मण होने का विशेष विवरण डॉ० मजुमदार की तत्सम्बन्धित पुस्तक में द्रष्टव्य।

रूपगोस्वामि-वंशवृक्ष



जीवनवृत्त

श्रीरूपगोस्वामी के जीवनवृत्त की मनोरम झाँकी हमें अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। जीव गोस्वामी के समकालीन कृष्णदास कविराज के 'चैतन्यचरितामृत' की अन्त्यलीला में, महाप्रभु चैतन्य के तीर्थराज प्रयाग में रूप द्वारा दर्शन करने की घटना का उल्लेख है। सुशील कुमार दे, डॉ० सी० सेन, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी तथा आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में रूपगोस्वामी की जीवनी पर प्रकाश डाला है। उपर्युक्त विद्वानों की कृतियों को उपजीव्य मानकर श्रीरूपगोस्वामी की एक जीवनरेखा को अंकित करने का प्रयास किया जा रहा है।

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा लिखित चैतन्यचरितावली[1] के अनुसार श्रीरूप के पिता श्रीकुमार ने अपने तीनों पुत्रों को सुयोग्य विद्वान बनाने के उद्देश्य से नवद्वीप के

---

१. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी—'चैतन्य चरितावली' चतुर्थ खण्ड, पृ० ३८

तत्कालीन प्रसिद्ध पण्डित श्री सर्वानन्द सिद्धान्तवाच्रस्पति[1] से इन लोगों को संस्कृत की शिक्षा दिलाई। उन दिनों फारसी राजभापा थी। राजकीय कार्यों में फारसी का ही व्यवहार होता था। फारसी के ज्ञाता ही राजकीय सेवाओं के अधिकारी होते थे। अस्तु, रूप के पिता ने अपने पुत्रों को संस्कृत के साथ ही फारसी की शिक्षा भी दिलाने का संकल्प किया। अपने संकल्प को मूर्तरूप देने के लिए उन्होंने सप्तग्राम के भूमि अधिकारी सैयद फखरुद्दीन से इन्हें अरवी-फारसी का ज्ञान कराया। वाल्यकाल से ही मेधावी होने के कारण संस्कृत के ही समान ये अरवी-फारसी के भी अच्छे विद्वान् वन गये। उन दिनों मालाधर वसु (गुणराज खाँ) गौड के वादशाह हुसेन शाह के राजमन्त्री थे। वे गुणग्राही थे। उनसे श्रीरूप और सनातन का परिचय हो गया।

श्रीमालाधर वसु ने रूप और सनातन की कुशाग्र वुद्धि एवं प्रत्युत्पन्नमति से प्रभावित होकर इन्हें राजदरवार में नौकरी दिला दी। ये अपनी कार्यदक्षता से शीघ्र ही हुसेनशाह के विश्वासी कृपा-पात्र बन गये और वादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें अपना राजमंत्री वना लिया। राजकीय सम्मान-वृद्धि के साथ ही इनका वैभव-विलास भी वढ़ा। वे गौड के समीप ही रामकेलि नामक एक नगर वसाकर उसमें राजसी ठाट-वाट से रहने लगे। मुसलमानी दरवार में रहने के कारण इन लोगों का रहन-सहन भी मुसलमान रईसों जैसा ही हो गया। वादशाह ने इन दोनों भाइयों के नाम भी मुसलमानों जैसा ही रख दिया। हुसेनशाह सनातन को 'दविरखास' और रूप को 'शाकिर मल्लिक' के नाम से पुकारता था। राज्य में ये दोनों इन्हीं मुसल्मानी नामों से प्रसिद्ध थे। इनके रहन-सहन का प्रकार जो भी रहा हो, किन्तु ये संस्कृत के विद्वानों और विष्णुभक्तों का सम्मान करते थे। रामकेलि से कुछ दूर पर 'कन्हाई नाटशाला' नाम से प्रसिद्ध एक मूर्तिशाला थी, जिसका निर्माण इन्होंने ही कराया था, इनकी कृष्णभक्ति का ज्वलंत प्रमाण है। उस नाटशाला की कृष्णमूर्तियों में से कुछ तो अभी भी विद्यमान हैं।

राजकार्य के साथ ही निरंतर साधु-संग तथा शास्त्र-चिन्तन में दत्तचित्त रहने के

---

१. संभवतः ये 'रत्नाकर वाचस्पति' होंगे जिन्होंने पक्षधर मिश्र के 'तत्त्व चिन्तामण्यालोक' पर टीका लिखी है। —गोपीनाथ कविराज।

कारण इनको अपने राजपद और असीम वैभव से धीरे-धीरे वैराग्य होने लगा। इनका मन किसी को आत्मसमर्पण करने के लिए आकुल हो उठा। उसी समय इन्होंने महाप्रभु की प्रशंसा सुनी और गौड़ेश्वर से छिपकर इन्होंने उनका दर्शन किया। महाप्रभु के दर्शन और उनकी निश्छल भगवद्-भक्ति से प्रभावित होकर इन्होंने उनका हृदय से शिष्यत्व स्वीकार किया। उसी दिन प्रभु ने उन दोनों भाइयों का मुसलिम नाम बदलकर उन्हें रूप और सनातन नाम से विभूषित किया। अब प्रश्न उठता है कि चैतन्य महाप्रभु से साक्षात्कार होने से पूर्व श्रीरूप ने इस्लाम धर्म को ग्रहण किया था या नहीं? 'भक्तिरत्नाकर' में प्राप्त विवरण के आधार पर श्रीरूप और सनातन के मुस्लिम धर्म में दीक्षित होने की बात सिद्ध नहीं होती है क्योंकि रामकेलि के आसपास कर्नाटक ब्राह्मणों का आवास था। इन्होंने ही वहाँ पर बसने के लिए कर्नाटक ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया था। श्रीरूप उन्हीं ब्राह्मणों से सम्बद्ध होकर अपने परम्परागत सामाजिक और धार्मिक कृत्यों का निर्विघ्न सम्पादन करते थे। म्लेच्छजन के सम्पर्क में रहने के कारण भले ही इन पर धर्मपरिवर्तन का आरोप लगाया जाता हो किन्तु इनका सम्पर्क नवद्वीप के वैष्णव धर्म से था और प्रारंभ से ही विष्णुभक्ति की ओर इनका झुकाव बना हुआ था। अतः यह स्पष्ट है कि श्रीरूप वैष्णव धर्म के ही अनुयायी थे, मुस्लिम धर्म में दीक्षित नहीं।

सुशील कुमार दे ने रूप की जीवनयात्रा का उल्लेख करते हुए कहा है कि श्रीरूप गोस्वामी ने 'दानकेलि कौमुदी' का (जिसका रचनाकाल १४९८ ई० है) महाप्रभु के साक्षात्कार से पूर्व ही निर्माण किया था।[1] साथ ही उनके दो प्रारंभिक दूतकाव्य—'हंसदूत' तथा 'उद्धव संदेश' भी चैतन्यदेव के साक्षात्कार से पूर्व ही लिखे गये थे।

उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ न केवल यह प्रमाणित करते हैं कि श्रीरूप अपनी वंशानुगत परम्पराओं का ही पोषण करते थे, अपितु इस तथ्य के भी साक्षी हैं कि वे प्रारंभ से ही कृष्णलीला के प्रति आकृष्ट थे।

---

१. द्रष्टव्य—The Early History of Vaisnava Faith and Movement in Bengal, S. K. De, p. 148.

जो कुछ भी हो, उनकी म्लेच्छ-सेवा से आकुल आन्तरिक वैष्णव प्रवृत्ति ने उन्हें मुक्त होने के लिए प्रेरित किया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने रामकेलि में चैतन्यदेव की उपस्थिति का स्वागत कर उनसे दीक्षा ग्रहण की। विष्णु में पूर्णनिष्ठा के कारण ही जब इन्होंने चैतन्यदेव का दर्शन किया तो उनके नूतन, सरल और भाव-प्रधान भक्तिसिद्धान्त को सुनकर नतमस्तक हो गये और इन्हें वैष्णव मान्यता का एक महत्त्वपूर्ण समाधान मिल गया। श्रीरूप को रामकेलि में चैतन्यदेव के साक्षात्कार के बाद वैष्णवभक्ति में प्रगाढ़ अनुराग उत्पन्न हुआ।

चैतन्यदेव के उपदेशामृत का पानकर श्रीरूप की जीवनदिशा बदल गयी। महाप्रभु के दर्शनमात्र से ही इन्हें राजकीय पदप्रतिष्ठा और सांसारिक भोग-विलासों से घृणा उत्पन्न हो गयी। इनका मानस चञ्चरीक वृन्दावन के कुंजों में विहार करने के लिए मचल उठा। राजमन्त्री का पद उन्हें घोर बन्धन के रूप में प्रतीत होने लगा। फलस्वरूप श्रीरूप रामकेलि से गौड़ देश लौटकर गये ही नहीं। वे अपनी सम्पत्ति को नाव पर लाद कर अनुचरों के साथ अपनी जन्मभूमि फतेयाबाद को चले गये। वहाँ उन्होंने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग ब्राह्मणों को दान कर दिया और शेष को परिवार के लिए सुरक्षित रखकर भगवद्-भक्ति में तल्लीन हो गये।[1]

चैतन्यदेव से रूपगोस्वामी का प्रयाग में साक्षात्कार

अपने विश्वस्त अनुचरों द्वारा चैतन्यदेव के वृन्दावन-गमन का समाचार पाकर रूप अपने छोटे भाई अनुपम को साथ लेकर महाप्रभु की खोज में वृन्दावन की ओर चल पड़े। उन्होंने अपनी इस यात्रा की सूचना कारावास में बन्द सनातन को गुप्तरीति से दे दी। श्रीरूप चैतन्यदेव की खोज करते हुए काशी होकर प्रयाग पहुँचे। प्रयाग में प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूसी) के घाट से पार होकर वर्तमान दारागंज के समीप पहुँचे। वहीं पर उन्हें महाप्रभु का दर्शन हुआ। महाप्रभु का दर्शन पाकर श्रीरूप ने उनके चरणों में अपना मस्तक झुकाया। रूप को अपने पैरों में प्रणत देखकर चैतन्यदेव ने अपने आसन से उठ उन्हें छाती से

---

१. श्री नित्यानन्ददास कृत 'प्रेम विलास' में श्रीरूप और सनातन के वैराग्य की कथा बड़ी ही अद्भुत शैली में लिखी गयी है।

लगा लिया और कुछ दिनों तक अपने पास रहने का आदेश दिया। चैतन्यदेव की सेवा में श्रीरूप अनुपम के साथ सानन्द रहने लगे।

प्रयाग में अपने भाई अनुपम के साथ श्रीरूप दश दिनों तक महाप्रभु की संगति में रहे। वे विद्वान् होने के साथ ही भावुक और मेधावी थे। उनमें आस्तिकता कूट-कूटकर भरी थी। अतः वे प्रेमावतार चैतन्यदेव के विशेष कृपापात्र थे। इन दश दिनों में ही मेधावी श्रीरूप ने महाप्रभु से भक्ति के अत्यन्त गूढ़ रहस्यों को समझ लिया। महाप्रभु को श्रीरूप की सच्ची लगन और भक्ति भावना की जानकारी थी। अतः उन्होंने उन्हें वैराग्य का भी उपदेश दिया। इस उपदेशक्रम में महाप्रभु ने श्रीरूप को कामिनी, कांचन और काया के वास्तविक स्वरूप और उनकी नश्वरता का दिग्दर्शन कराया। महाप्रभु के उपदेशामृत से श्रीरूप को जीवन में भक्ति की नवीन चेतना मिली। भक्तितत्त्व का रहस्य जानकर भक्तों में उसके विस्तार का संकल्प लिया और महाप्रभु के चरणों में झुककर कृतज्ञता प्रकट की। महाप्रभु ने प्रसन्न होकर कहा—'रूप, तुम समर्थ हो, मेरी संगति की तुम्हें अब विशेष आवश्यकता नहीं है। सम्प्रति तुम वृन्दावन जाओ और वहाँ के सभी तीर्थों में यात्रा करके लुप्त तीर्थों को प्रकट करने का प्रयास करो। कुछ दिनों के बाद 'गौड़' होकर पुरी में मुझसे भेंट करना'। महाप्रभु का आदेश शिरोधार्य कर श्रीरूप अनुज सहित मथुरा पहुँचे। वहाँ पर उन्हें गौड़ के भूतपूर्व महाराजा सुबुद्धिराय से विश्रान्त घाट पर साक्षात्कार हुआ। सुबुद्धि राय ने श्रीरूप का पूर्ण स्वागत-सत्कार किया और इन दोनों भाइयों के साथ व्रज के वनों तथा उपवनों में पैदल यात्रा की। विधि की विडम्बना भी विचित्र है—कलतक जो एक महाराज और एक मंत्री थे, वे दोनों ही आज व्रज की गलियों में साधुवेष में घर-घर से रोटियों के टुकड़े माँगते हुए फिर रहे थे। कुछ दिनों तक वृन्दावन में रहकर महाप्रभु के आदेशानुसार श्रीरूप ने उनके दर्शन की लालसा से अनुपम के साथ पुरी की यात्रा की। दुर्भाग्यवश अनुपम ने मार्ग में ही ज्वरग्रस्त होकर नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया। भाई की आकस्मिक मृत्यु से अत्यन्त खिन्न श्रीरूप संसार की क्षणभंगुरता का विचार करते हुए पुरी में आए। वहाँ पर उन्होंने महाप्रभु का तीसरी बार दर्शन किया। श्रीरूप ने श्रीकृष्णलीला पर आधारित दो नाटकों की रचना की थी। महाप्रभु ने अन्य

भक्तों से श्रीरूप का परिचय कराते हुए उन्हें अपने नाटकों को सुनाने का आदेश दिया। श्रीरूप ने चैतन्यदेव के आदेश से सभी गौड़ीय तथा पुरी के भक्तों को अपने नाटकों को पढ़कर सुनाया। सभी भक्तों ने श्रीरूप की भक्ति-प्रवणता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। उन दोनों नाटकों का नाम था—'विदग्धमाधवम्' और 'ललितमाधवम्'। अपनी रचना से भक्तों को आनन्दित करते हुए श्रीरूप कुछ दिनों तक महाप्रभु के पास रहे किन्तु अन्त में महाप्रभु ने उन्हें वृन्दावन में ही जाकर निवास करने का आदेश दिया। महाप्रभु के आज्ञानुसार श्रीरूप गौड़ होते हुए वृन्दावन जाने के लिए उद्यत हो गये। जाते समय महाप्रभु ने इनका प्रेमपूर्वक आलिंगन किया और भक्तिविषयक ग्रन्थों के प्रणयन का आदेश दिया। यही महाप्रभु से इनकी अन्तिम भेंट थी। गौड़ में इनकी कुछ सम्पत्ति थी, जिनका परिवार वालों में समुचित वितरण करने के लिए श्रीरूप गौड़ आए और वहाँ पर कुछ दिनों तक ठहर कर परिवार को सुव्यवस्थित किया।

वृन्दावन में निवास

गौड़ में परिवार वालों के बीच अपने धन को यथारीति विभाजित करके श्रीरूप पुनः वृन्दावन आ गये और निश्चिन्त होकर श्रीकृष्ण के गुणगान में अपना जीवन सार्थक करने लगे। वृन्दावन की पवित्र भूमि को छोड़कर वे एक रात के लिए भी अन्यत्र नहीं गये।

श्रीरूप वृन्दावन मे ब्रह्मकुण्ड तथा नन्दग्राम के समीप रह कर भगवान् का भजन किया करते थे। कहा जाता है कि एक दिन श्रीरूप निराहार रहकर ही भजन कर रहे थे, भूख लगी थी किन्तु भजन छोड़कर भिक्षाटन करना नहीं चाहते थे। उनकी आराधना से प्रभावित होकर स्वयं भगवान् कृष्ण ने ग्वालबाल के रूप में उनको दूध लाकर दिया।[1]

एक जनश्रुति का आश्रय लेकर पूज्यपाद आचार्य श्रीबलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि श्री गोविन्ददेव जी ने इन्हें स्वप्न दिया कि मैं अमुक स्थान पर जमीन में गड़ा पड़ा हूँ। एक गौ रोज मुझे अपने स्तनों से दूध पिला जाती है। तुम उस गौ को ही लक्ष्य करके मुझे बाहर निकालो और मेरी पूजा करो। श्रीरूप

---

१ गोपाल बालक व्याजाद् ययोः साक्षाद् बभूव ह।
साक्षाच्छ्रीयुतगोपालः क्षीराहरणलीलया ॥ (लघुतोषणी)

गोस्वामी ने भगवान् की मूर्ति निकाली। कालान्तर में जयपुर के महाराज मानसिंह ने गोविन्ददेव जी का लाल पत्थरों का बड़ा ही विशाल तथा भव्य मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर आज भी वृन्दावन की शोभा बढ़ा रहा है।[1]

श्रीरूप यद्यपि सनातन गोस्वामी के छोटे भाई थे, किन्तु महाप्रभु के प्रथम कृपापात्र और उनसे प्रथमतः दीक्षित होने के कारण ये वैष्णव समाज में उनके ज्येष्ठ भ्राता के रूप में स्वीकृत हैं। श्रीरूप उस समय की भक्तमंडली के शिरोमणि थे। वृन्दावन निवासकाल में भक्ति-शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना इनके जीवन का प्रधान कार्य था। अपने ग्रन्थों में इन्होंने भक्ति का रसरूप से शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है। कहा जाता है कि मीराबाई ने इन्हीं से दीक्षा ली थी। श्रीरूप जीवन के अन्तिम क्षण तक भगवान् कृष्ण का यशोगान करते हुए वृन्दावन में ही रहे। वृन्दावन में रहकर उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के भक्ति सिद्धान्त को शास्त्रीय रूप दिया। श्रीरूप के काव्यों में उनकी हार्दिक भक्ति भावना सर्वत्र झलकती है।

इस प्रकार श्रीरूप के जीवन के दो पक्ष हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं—प्रथम तो श्री चैतन्य महाप्रभु के साक्षात्कार से पूर्व और द्वितीय महाप्रभु के साक्षात्कार के अनन्तर।

प्रथम पक्ष में गौड़ाधिपति हुसेनशाह के राजमन्त्री के रूप में कुशल शासक का और दूसरे पक्ष में राजपद का त्याग कर परम कृष्णभक्त विद्वान् कवि का प्रभावकारी स्वरूप उनके सबल व्यक्तित्व का मुग्धकारी उदाहरण है। वृन्दावन की हर गली और प्रत्येक कुंज आज भी श्रीरूप की भक्ति भ्रमरी के मधुर गुञ्जन से गुञ्जरित है। कृष्णभक्तों की टोली उनकी कीर्तिलता का सिंचन अभी भी कर रही है।

स्थितिकाल—

श्रीरूप गोस्वामी के स्थितिकाल का निर्धारण करने के लिए ऐतिहासिक सूचनाओं तथा उनकी कृतियों में अंकित तिथियों का सर्वेक्षण करना आवश्यक है। श्रीरूप के जीवनवृत्त के अध्ययन से उनके व्यक्तित्व के दो प्रमुख पक्षों का हमें स्पष्ट संकेत मिलता है। एक तो यह कि श्रीरूप गौड़ाधिपति हुसेनशाह के

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय। पृष्ठ-५०७

मन्त्री थे। दूसरा यह कि वह श्री चैतन्यमहाप्रभु के शिष्य थे। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर हुसेनशाह का राज्यारोहण १४९३ ई० में हुआ था[1]। अर्थात् हुसेनशाह का शासन काल १५ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग और १६ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध था।

इसी प्रकार चैतन्यमहाप्रभु का आविर्भाव काल भी १४८५ ई० माना जाता है[2]। पूज्य आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी भागवत सम्प्रदाय में चैतन्यदेव का जन्म वि० सम्वत् १५४२ (१४८५ ई०) स्वीकार किया है।[3]

उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्य हुसेनशाह और श्रीचैतन्य देव को मुख्यरूप से १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होने का संकेत देते हैं। हुसेनशाह का राज्य-मंत्रित्व और श्रीचैत्यन्यदेव का शिष्यत्व-ये दोनों बातें श्रीरूप को उन दोनों ऐतिहासिक पुरुषों का समकालीन सिद्ध करती हैं। अतः ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर श्रीचैतन्य और हुसेनशाह के समसामयिक होने के कारण श्रीरूप का स्थितिकाल मुख्यतः १६ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। जहाँ तक श्रीरूप की जन्मतिथि की प्रामाणिकता का प्रश्न है उसमें मतवैभिन्य के कारण निश्चित सन्-सम्वत् का उल्लेख करने में कुछ कठिनाइयाँ हैं, फिर भी अनुमानतः एक निष्कर्ष पर तो पहुँचना ही होगा।

परम पूज्य आचार्य बलदेव उपाध्याय ने श्रीरूप का स्थितिकाल १४९२ ई०-१५९१ ई० माना है[4]। उनके निर्देशानुसार श्रीरूप का जन्म १४९१ ई० में हुआ था।

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने श्रीरूप का जन्म सम्वत् १५४५-१४८८ ई० के आसपास अनुमानतः स्वीकार किया है। दोनों मतों में ४ वर्षों का अन्तर है। कुछ वर्षों का भले ही अन्तर पड़ता हो किन्तु दोनों मनीषियों के अनुसार श्रीरूप

1. The Cambridge History of India Vol. III p. 270 edited by L. T. Colonel wolseley Haig

2. The Cultural Heritage of India Vol. IV. p. 186 edited by H. D. Bhattacharyya.

३. आचार्य बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय पृ० ५००

४. आचार्य बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय पृ० ५०६

का जन्मकाल १५ वीं शताब्दी का अन्त मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है।

जहाँ तक उनकी कृतियों के अन्त में दिए गये समय के विवरण के आधार पर उनके रचनाकाल के निर्धारण की समस्या है, उसका प्रामाणिक समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है। श्रीरूप की कृतियों में कुछ ऐसी भी हैं, जिनमें श्रीचैतन्यदेव की वन्दना नहीं की गयी है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये रचनायें चैतन्यदेव के साक्षात्कार और उनके शिष्यत्व ग्रहण से पूर्व ही हो चुकी थीं।

ऐसी कृतियों में 'दानकेलिकौमुदी' और 'हंसदूत' तथा 'उद्धवसन्देश' ये दो दूतकाव्य हैं, जिनमें चैतन्यदेव के प्रति नमस्क्रिया नहीं होने के कारण इनकी रचना चैतन्यदेव से दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व ही हो चुकी थी। 'दानकेलि-कौमुदी (भाणिका) जिसमें चैतन्यदेव की साक्षात् वन्दना नहीं है, की रचना शाके १४२७ (१५०५ ई०) में हुई थी जो उनके मित्र के लिए लिखी गयी थी[1]। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीरूप ने चैतन्यदेव के साक्षात्कार से पूर्व ही ग्रन्थ रचना का कार्य प्रारम्भ कर दिया था और वह समय अनुमानतः १६ वीं शताब्दी का आरम्भ था। हाँ, चैतन्यदेव के साक्षात्कार के बाद उन्होंने भक्ति-रस को शास्त्रीय रूप देने के लिए नाटकों और लक्षणग्रन्थों का निर्माण किया। लक्षण-ग्रंथों में 'नाटक-चन्द्रिका' का रचनाकाल विचारणीय है। इस ग्रंथ में भी चैतन्यदेव की वन्दना नहीं है। इसमें ग्रंथ-प्रतिज्ञा के बाद विषय का प्रतिपादन प्रारम्भ हो जाता है। चैतन्यदेव की वन्दना नहीं होने के कारण श्रीबाबूलाल शुक्ल 'नाटक-चन्द्रिका' को श्रीरूप की आरम्भिक रचना होने का संकेत देते हैं[2]। किन्तु इस विषय में मेरा विचार भिन्न है। मैं 'नाटक-चन्द्रिका' को श्रीचैतन्यदेव

---

१. प्रथिता सुमनः सुखदा यस्य निदेशेन भणिका सगिरम्।
तस्य मम प्रिय सुहृदः कण्ठतटीं सम्मलंकुरताम्॥
गते मनुशते शाके चन्द्रस्वर समन्विते।
नन्दीश्वरे निवसता भाणिकेयं विनिर्मिता॥ (दानकेलिकौमुदी-पुष्पिका)

२. द्रष्टव्य—नाटक-चन्द्रिका भूमिका पृ० २२ श्री बाबूलाल शुक्ल द्वारा सम्पादित एवं चौखम्बा संस्कृत सीरीज द्वारा प्रकाशित।

के साक्षात्कार के बाद की रचना मानता हूँ क्योंकि इस ग्रन्थ में जितने उदाहरण दिये गये हैं, वे प्रायः 'विदग्धमाधव' और 'ललितमाधव' के ही हैं। इन दोनों की रचना निश्चितरूप से चैतन्यदेव से दीक्षित होने के बाद ही हुई है क्योंकि इन दोनों ग्रंथों की नान्दी और प्रस्तावना में इष्टदेव के रूप में चैतन्यदेव की वन्दना की गयी है।[1] उदाहरण के रूप में 'विदग्धमाधव और ललितमाधव' से दिये गये उद्धरण इस बात को सिद्ध करते हैं कि नाटक-चन्द्रिका की रचना इन दोनों नाटकों के बाद ही हुई होगी। जहाँ तक इष्टदेव या गुरु की वन्दना को ग्रन्थ में उपनिबद्ध करने की बात है, वह तो रचनाकार की इच्छा पर निर्भर करती है। मेरी समझ में श्रीरूप ने 'नाटक-चन्द्रिका' की ग्रन्थप्रतिज्ञा में नाट्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि का स्मरण करके उनके प्रति अपनी भक्ति-भावना व्यंजित की है। अतः नाट्यशास्त्र के प्रथम प्रवर्तक का नामस्मरण ही इस ग्रंथ का मंगलसूचक कार्य माना जा सकता है।

ध्यान देने योग्य है कि 'नाटक-चन्द्रिका' में 'भक्तिरसामृतसिन्धु' से उदाहरण नहीं लिए गये हैं। सर्वाधिक उदाहरण 'ललितमाधव' से ही लिए गये हैं अतः 'नाटक-चन्द्रिका' का रचनाकाल ललितमाधव के पश्चात् और भक्तिरसामृत-सिन्धु के पूर्व ही मानना युक्तियुक्त है।

जिन ग्रन्थों में इष्टदेव के रूप में चैतन्यदेव की वन्दना की गयी है, उनमें 'विदग्धमाधव', 'ललितमाधव' और 'भक्तिरसामृतसिन्धु' प्रमुख हैं। भक्तिरसामृत-सिन्धु में तो श्रीरूप ने 'चैतन्यदेव' इस नाम का स्पष्ट निर्देश करके वन्दना की है[2]। फलतः इन ग्रंथों की रचना श्रीचैतन्यदेव के साक्षात्कार के बाद ही हुई है।

---

१. अनर्पित चरीं चिरात्करुणयावतीर्णः कलौ समर्पयतुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्ति श्रियम्।

हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसंदीपितः सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥
विद० मा० २

निजप्रणयितासुधामुदयमाप्नुवन् यः क्षितौ किरत्यलमुरीकृतद्विज कुलाधि-राजस्थितिः। स लुचिततमस्ततिर्मम शचीसुताख्यः शशी वशीकृतजगन्मनाः किमपि शर्म विन्यस्यतु (ललि० मा० प्र० अंक ३)

२. हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्तितोऽहं वराकरूपोऽपि।

तस्य हरेः पदकमलं वन्दे चैतन्यदेवस्य॥ भ० र० सिन्धु श्लो० सं० २

और जिन ग्रन्थों की पुष्पिका में उनके रचनाकाल का स्पष्ट निर्देश मिलता है उनमें विदग्धमाधव, ललितमाधव, भक्तिरसामृतसिन्धु, उत्कलिकामंजरी और राधाकृष्ण-गणोद्देशदीपिका प्रमुख हैं। इन ग्रंथों में दो प्रकार के सम्वतों का मुख्यरूप से उल्लेख किया गया है—विक्रम सम्वत् और शाके सम्वत्। 'विदग्धमाधव' में विक्रम सम्वत् का उल्लेख है। इस नाटक की रचना विक्रम सम्वत् १५८९ (१५३२ ई०) में हुई थी[1]। 'ललितमाधव' की रचना शाके १४५९ (१५३७ ई०) में हुई थी[2]। इस प्रकार विदग्धमाधव और ललितमाधव के रचनाकाल में पाँच वर्षों का अन्तर है। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' का रचनाकाल शाके १४६३ (१५४१ ई०) है[3]। 'उज्ज्वल नीलमणि' 'भक्तिरसामृतसिन्धु' का पूरक ग्रन्थ है, जिसकी रचना निश्चितरूप से भ० र० सि० के बाद ही हुई होगी। उपर्युक्त प्रमुख ग्रन्थों के रचनाकाल के निर्देशानन्तर 'उत्कलिकामंजरी' और 'राधाकृष्ण-गणोद्देशदीपिका' हैं, जिनकी रचना १४७२ (१५५० ई०) में हुई थी[4]। इस प्रकार विदग्धमाधव के रचनाकाल १५३२ ई० से लेकर उत्कलिकावल्लरी के रचनाकाल १५५० ई० के बीच श्रीरूप की साहित्यसेवा का मुख्य काल मानना चाहिए। ग्रंथरचना-काल के साक्ष्य के आधार पर श्रीरूप की साहित्यिक जीवन सीमा १५०५ ई० से लेकर १५५० ई० के मध्य मानने में कोई विवाद नहीं है। उपर्युक्त विवरण के अनुसार श्रीरूप ने ४५ वर्षों तक विभिन्न प्रकार की साहित्यिक सेवाओं के द्वारा भगवद्भक्ति के प्रचार-प्रसार का भगीरथ प्रयास किया। हुसेनशाह का राजमन्त्रित्व, चैतन्यदेव का शिष्यत्व और साहित्यिक रचनाओं की तिथि

---

१. नवसिन्धुरबाणेन्दुगंण्ये संवत्सरे गते।
विदग्धमाधवं नाम नाटकं गोकुले कृतम् ॥ (विदग्धमाधव-पुष्पिका)

२. नवेन्दुवेदेन्दुमिते शकाब्दे शक्रस्यमासस्य तिथौ चतुर्थ्याम्।
दिने दिनेशस्य हरिं प्रणम्य समापयं भद्रवने प्रबन्धम् ॥
(ललि० मा० ना० पुष्पिका)

३. रामाङ्क शक्रगणिते शाके गोकुलमधिष्ठितेन।
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुर्विटङ्कितः क्षुद्ररूपेण ॥ (भ० र० सि० पुष्पिका)

४. चन्द्राश्व भुवने शाके पौषे गोकुल वासिना।
इयमुत्कलिकापूर्ववल्लरीनिर्मिता मया ॥ उत्क० वल्ल० पुष्पिका

सूचनाओं के आधार पर श्रीरूप के जीवनकाल की एक रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है। चैतन्य चरितावली में निर्दिष्ट सम्वत् को आधार मानकर यदि श्रीरूप का जन्मकाल १४८८ ई० मान लिया जाय तो उनके स्थितिकाल की पूर्वसीमा स्पष्ट हो जाती है। दानकेलिकौमुदी का रचनाकाल १५०५ ई० माना गया है अतः इस पुस्तक के प्रणयन के समय श्रीरूप की अवस्था लगभग १७ वर्ष की रही होगी। श्रीचैतन्यदेव से उनका प्रथम साक्षात्कार १५१५ ई० में गौड़ में हुआ था। वे उस समय हुसेनशाह के मंत्री थे[1]। हुसेनशाह का शासनकाल १४९३ ई० से १५१९ ई० माना गया है[2]। चैतन्यदेव से प्रथम साक्षात्कार के कुछ दिनों बाद ही श्रीरूप ने मन्त्रिपद का परित्याग कर प्रयाग में चैतन्यदेव से दीक्षा ग्रहण की थी। यह कार्य १५१५ के बाद और १५१९ के पूर्व ही सम्पन्न हुआ होगा क्योंकि हुसेनशाह का शासनकाल १५१९ में समाप्त हो गया था। श्रीरूप मन्त्रिपद के त्याग से लगभग १० वर्ष पूर्व तो अवश्य ही उस पद पर नियुक्त हुए होंगे। अतः अनुमानतः १५०७ ई० के आसपास वे हुसेनशाह के मन्त्री बने होंगे क्योंकि अपने मन्त्रित्वकाल में उन्होंने पर्याप्त ख्याति और सम्पत्ति अर्जित की थी। इस प्रसिद्धि में एक दशक तो अवश्य ही लग गया होगा।

चैतन्यदेव से साक्षात्कार के समय श्रीरूप की अवस्था लगभग २७ वर्ष की रही होगी और यदि दीक्षाग्रहण का समय १५१७ ई० मान लिया जाय तो उनकी अवस्था उस समय अनुमानतः ३० वर्ष की मानी जा सकती है।

ऐतिहासिक साक्ष्य चैतन्यदेव का अन्तकाल १५३३ ई० मानता है[3]। श्रीचैतन्यदेव के जीवनकाल में ही विदग्धमाधव की रचना हो चुकी थी क्योंकि उसका रचनाकाल १५३२ ई० है। चैतन्यदेव की प्रेरणा से ही श्रीरूप ने वृन्दावन में निवास करते हुए भक्तिपरक ग्रन्थों की रचना आरम्भ कर दी थी। चैतन्यदेव

---

1. The History and Culture of the Indian People. The Delhi Sultanate p. 567. Published from Bharatiya Vidya Bhavan.

२. वही पृ० ८२८

३. The History and Culture of the Indian People p. 567. Published from Bharatiya Vidya Bhavan.

के स्वर्गारोहण के बाद भी १५५० ई० तक उनके ग्रन्थप्रणयन का संकेत पीछे दिया जा चुका है। १५५० ई० में उनकी अनुमानित आयु ६२ वर्ष की होनी चाहिए।

उनके अन्तकाल के सम्बन्ध में मतभेद प्रतीत होता है। 'वृन्दावन की यात्रा' नामक पुस्तक में श्रीरूप के गोलोकवास की तिथि विक्रम सम्वत् १६२० (१५६३ ई०) की श्रावण शुक्ला द्वादशी लिखी है[1]। बंगाली वैष्णव ग्रंथों में श्रीरूप का मृत्युकाल १५६५ ई० तथा सनातन का १५५९ ई० बतलाया गया है। इन दोनों सूचनाओं के आधार पर श्रीरूप का अवसान ७५ या ७७ वर्ष की अवस्था में हुआ था।

इस मत के विपरीत एक अन्य ऐतिहासिक उपलब्ध तथ्य के आधार पर उनका अवसानकाल १५९१ ई० माना जाता है। इस मत के समर्थन में मानसिंह के द्वारा निर्मित गोविन्दजी के मन्दिर के शिलालेख को प्रमाण में रखा जाता है। प्राप्त शिलालेख से यह प्रतीत होता है कि इसका निर्माण श्रीरूप के आदेश से उनके शिष्य मानसिंह ने १५९० में कराया था[2]।

१५९२ ई० में भक्तप्रवर श्रीनिवासाचार्य जब वृन्दावन की यात्रा किये थे तो इस मन्दिर का निर्माण हो चुका था। किन्तु गोस्वामी बन्धु—श्रीरूप और सनातन से उनकी भेंट न हो सकी थी क्योंकि सनातन के गोलोकवास हुए चार महीने पहले और श्रीरूप के केवल चार दिन पहले ही हुए थे।

श्रीरूप के भतीजे श्रीजीव ने लघुतोषणी की रचना १५८३ ई० में की थी। उस समय बन्धुद्वय जीवित थे। इस प्रकार श्रीरूप का अवसानकाल १५९१ ई० सिद्ध होता है। इस प्रमाण के आधार पर श्रीरूप ने सौ वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त की थी[3]। उपर्युक्त विवरणों के आधार पर श्रीरूप का जीवन काल १४८८ ई० से लेकर १५९१ ई० तक चला जाता है। यह एक लम्बी अवधि है और दोनों मतों में लगभग २८ वर्षों का अन्तर पड़ रहा है। इस सम्बन्ध में थोड़ा

---

१. श्रीचैतन्य चरितावली पंचम खण्ड पृ० २४३ लेखक—प्रभुदत्त ब्रह्मचारी।
२. आचार्य श्रीबलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय पृ० ५०९–५१०
३. विशेषद्रष्टव्य डा० सी० डी० सेन—The Vaishvawa Literature Medieval Bengal. PP 39–40.

विचार करना आवश्यक है। १५५० के बाद श्रीरूप की साहित्यिक गतिविधियों का विशेष उल्लेख नहीं मिलता। उनकी प्रमुख साहित्यिक रचनायें वृन्दावन निवासकाल में ही हुई थीं और वे निरन्तर लेखन तथा कीर्तन-भजन कार्य में ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। यदि वे १५९१ ई० तक जीवित थे और १५५० तक प्रमुख साहित्यिक रचनायें हो चुकी थीं, तो क्या बीच के ४० वर्षों की लम्बी अवधि में ग्रन्थों की रचना नहीं की? इस अवधि में उनकी साहित्यिक गतिविधियां का मौनभाव वैष्णव साहित्य के अवसानकाल का समर्थन करता नजर आता है। जहाँ तक शिलालेख की बात है, उसमें कालांकन की प्रामाणिकता अन्वेषण सापेक्ष है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीरूप का अवसानकाल वैष्णव साहित्य के अनुसार १५६२ या ६५ ही रहा होगा।

यदि शिलालेख को भी प्रमाणकोटि में रख लिया जाय तो श्रीरूप की समय-सीमा १५९१ तक चली जाती है। उपर्युक्त प्रमाणों के साक्ष्य पर श्रीरूप का जीवनकाल १५ वीं शताब्दी के अन्त से प्रारम्भ होकर १६ वीं शताब्दी के अन्त तक माना जा सकता है। भारतवर्ष के ऐतिहासिक तथा साहित्यिक प्रमाण उन्हें शुद्धरूप से १६ वीं शताब्दी की अमूल्य निधि प्रमाणित करते हैं।

इस प्रकार श्रीरूप का जीवनकाल (१४८८–१५६५ ई० अथवा १५९१ ई०) भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली के तत्कालीन प्रमुख शासकों–सिकन्दर लोदी (१४८८ ई०) से लेकर मुगल सम्राट अकबर (१५५६–१६०५ ई०) तक माना जा सकता है। मानसिंह के गुरु होने का संकेत श्रीरूप को अकबर के शासनकाल तक विद्यमान रहने का प्रमाण है क्योंकि तत्कालीन मानसिंह नामक वही राजा था, जिसने अकबर के कृपापात्र बनने का अवसर प्राप्त किया था। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने १५ वीं शताब्दी का अन्त तथा सोलहवीं का पूर्वार्ध ही माना है।[1]

कृतियाँ—

श्री जीव गोस्वामी ने अपने पितृव्य सनातन गोस्वामी प्रणीत लघुभागवतामृत की लघुतोषणी व्याख्या में सनातन तथा रूप की कृतियों की एक सूची दी

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय—संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, पृ० २५७

हैं[1]। इस सूची के आधार पर श्रीरूप की १३ कृतियों का उल्लेख मिलता है—(१) हंसदूत (२) उद्धव संदेश (३) अष्टादश छन्दस् (४) उत्कलिकावल्लरी (५) विदग्धमाधवम् (६) ललितमाधवम् (७) दानकेलिकौमुदी (८) भक्तिरसामृतसिन्धु (९) उज्ज्वल नीलमणि (१०) मथुरामहिमा (११) पद्यावली (१२) नाटक-चन्द्रिका (१३) संक्षेप भागवतामृतम्।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी भक्तिरत्नाकर में रूप गोस्वामी द्वारा प्रणीत कुछ पद्यों की सूची है, जिन्हें जोड़ देने से उनके १७ साहित्यिक ग्रन्थ हो जाते हैं[2]।

हंसदूत और उद्धवसंदेश—ये दोनों श्रीरूप के आरम्भिक काव्यग्रन्थ हैं। समय-समय पर भारत में इनका प्रकाशन होता रहा है। हैबरलिन, काव्य-संग्रह pp, ३२३ f तथा जीवानन्द विद्यासागर, काव्य संग्रह कलकत्ता 1888, pts. ii, pp. 441-507 और iii, pp-215-275 में भी इन दोनों काव्य-ग्रन्थों का प्रकाशन देवनागरी लिपि में हुआ है।

अष्टादश छन्दस्—अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि यह क्या था। चैतन्यचरितामृत (मध्य i ३९) इसे 'अष्टादशलीलाछन्दस्' बतलाता है। रूप के नन्दोत्सवादि चरित (स्तवमाला में संग्रहीत) के द्वितीय श्लोक—

नन्दोत्सवाद्यास्ताः कंसवधान्ता हरेर्महालीलाः।
छन्दोभिर्ललिताङ्गैरष्टादशभिनिरूप्यन्ते' ॥

से विदित होता है कि नन्दोत्सवादि चरित से लेकर रंगस्थल क्रीड़ा या

---

१. तयोरनुजश्रेष्ठेषु काव्यं श्रीहंसदूतकम्।
श्रीमदुद्धवसन्देशश्छन्दोऽष्टादशकं तथा ॥
स्तवश्चोत्कलिकावल्ली गोविन्दविरुदावली।
प्रेमेन्दुसागराद्याश्च बहवः सुप्रतिष्ठताः ॥
विदग्धललिता माधवं नाटकद्वयम्।
भाणिका दानकेलाख्या रसामृतयुगं पुनः ॥
मथुरामहिमा पद्यावली नाटक चन्द्रिका।
संक्षिप्तं च भागवतामृतञ्चैते च संग्रहाः ॥

२. The Earey History of the Vaisnava Faith And Movement in Bengal. P. 154, by S. K. De.

कंसवध पर्यन्त स्तवमाला में संग्रहीत २३ खण्डों का ही जीव ने 'अष्टादशछन्दस्' के रूप में उल्लेख किया है। 'स्तवमाला' में संग्रहीत 'गीतावली' भी सनातन की न होकर रूप द्वारा ही लिखी गयी है।

उत्कलिकावल्लरी—इसमें उत्कलिकावल्लरी, गोविन्दविरुदावली, प्रेमेन्दुसागर आदि अनेक स्तोत्र हैं। ये स्तोत्र तथा 'अष्टादशछन्दस्'—इनका संग्रह बाद में चलकर स्वयं जीव ने 'स्तवमाला' के नाम से किया, जिसमें कुल मिलाकर ६४ खण्ड हैं।

विदग्धमाधव—कृष्णचरित पर आश्रित सात अंकों का यह नाटक है। इसका विवेचन आगे स्वतंत्ररूप से किया जायेगा।

ललितमाधव—यह भी कृष्णचरित पर ही अवलंबित दश अंकों का नाटक ग्रन्थ है। इसमें नाटककार ने श्रीकृष्ण द्वारा वृन्दावन और द्वारका में की गयी लीलाओं के माध्यम से समृद्धिमत शृङ्गार का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत किया है। नाटकीय कथा की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है—प्रथम अंक में देवर्षि नारद की शिष्या और सान्दीपनि मुनि की माता भगवती पौर्णमासी अपनी शिष्या गार्गी को चन्द्रावली और राधिका के रहस्यपूर्ण जन्म वृतान्त का वर्णन करती हुई यह बताती है कि इन दोनों के पिता विन्ध्यगिरि हैं और इस रहस्य से चन्द्रावली और राधिका दोनों ही सर्वथा अपरिचित हैं। चन्द्रावली का गोवर्धनमल्ल और राधिका का अभिमन्यु से पाणिग्रहण होने की घटना को योगमाया का विवर्त बतलाया गया है, किन्तु इनका वास्तविक परिणय तो श्रीकृष्ण से ही हुआ है।

इस अंक का प्रधान प्रयोजन चन्द्रावली और राधिका का कृष्ण में पूर्वराग की वृद्धि करना है। इसीलिए इस अंक का नाम 'सायमुत्सव' है क्योंकि दिनभर गाय चराने के बाद सायंकाल श्रीकृष्ण अपने घर लौटते हैं और अनुरागवश चन्द्रावली और राधा से एकान्त में मिलने का प्रयास करते हैं किन्तु उन दोनों की सास—भारुण्डा तथा जटिला द्वारा निरन्तर विघ्न उपस्थित किए जाने के कारण उनके साथ कृष्ण का समागम नहीं हो पाता है। अतः इस अंक का 'सायमुत्सव' यह नाम सार्थक प्रतीत होता है।

दूसरे अङ्क में रात्रि के शेष में जब गोपियाँ विविध प्रकार की लीलाएँ

कर रही हैं, तब चन्द्रावली की दो सखियाँ—पद्मा और श्यामला आती हैं। उसी सुन्दर अवसर पर कंस के द्वारा प्रेषित शंखचूड नाम का दैत्य आता है और वह राधिका के अपहरण की योजना बनाकर लता में छिपकर बैठ जाता है। उसी समय कृष्ण ब्राह्मण कुमार का रूप बनाकर राधिका की सूर्य पूजा को सम्पन्न कराने वहाँ आ जाते हैं। श्रीकृष्ण शंखचूड का मन्तव्य समझ कर गोपियों से जिस समय इसका रहस्योद्घाटन करते हैं, उसी समय गोपियों के घबड़ा जाने पर अवसर पाकर शंखचूड़ राधिका का अपहरण कर लेता है। अन्त में श्रीकृष्ण उस दैत्य का संहार कर राधिका की रक्षा करते हैं अतः इस अंक का नाम 'शंखचूडवध' यह रखा गया है।

तृतीय अंक में कंसराज के आदेश से श्रीकृष्ण और बलराम को लेने के लिए अक्रूर गोकुल आता है। श्रीकृष्ण मथुरा प्रस्थान करते हैं। उस समय सभी गोपियाँ कृष्ण विरह में व्याकुल होकर रोने लगती हैं। कृष्ण को आँखों से ओझल होते देखकर राधा विशाखा के साथ विलाप करती हुई यमुना में कूद कर सूर्यलोक चली जाती हैं। राधा का यह हाल जान कर अति खिन्न ललिता भी पर्वत शिखर से कूद पड़ती है।

चतुर्थ अङ्क में कंसवध के अनन्तर श्रीकृष्ण के द्वारका गमन तथा वहाँ पर उनके द्वारा गोपियों के स्मरण से उत्पन्न अनुताप का वर्णन किया गया है। इधर गोकुल में चन्द्रावली की स्थिति का समाचार जानकर उसका भाई रुक्मी उसे अपनी राजधानी कुण्डिन ले जाता है और वह चेदिनरेश शिशुपाल के साथ उसका विवाह करने का निश्चय करता है। इसी बीच श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल सोलह हजार गोपियों का नरकासुर ने अपहरण कर लिया और उसने इन्हें कामरूप देश के कारागार में डाल दिया। इस कारण से समस्त गोकुल गोपियों से शून्य हो गया।

उधर द्वारिका में पौर्णमासी दुःखी श्रीकृष्ण के मनोविनोदार्थ एक नाटक का आयोजन करती है जिसमें श्रीकृष्ण के वृन्दावन चरित का ही उपन्यास किया गया था। इस नाटक को देखने के लिए उद्धव आदि के साथ श्रीकृष्ण उपस्थित होते हैं और नाटकीय कथा से प्रभावित होकर चन्द्रावली का पता लगाने के लिए उत्सुक होते हैं।

पंचम अंक में पौर्णमासी श्रीकृष्ण को कुण्डिननगर से चन्द्रावली का अपहरण करने के लिए प्रेरित करती है। और स्वयं कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान कर देती है। उधर श्रीकृष्ण भी रुक्मिणी (चन्द्रावली) के हरण का निश्चय करके नटवेष में गरुड़ के साथ कुण्डिन नगर में प्रवेश करते हैं और जब रुक्मिणी देवी चन्द्रभागा की आराधना के लिए नगर से बाहर निकलती है तो उसका अपहरण करते हैं और राजा भीष्मक (रुक्मिणी के पिता) के समक्ष विवाह करके उनकी अनुमति से द्वारका चले आते हैं।

षष्ठ अङ्क में प्रधान रूप से स्यमन्तक मणि का वृत्तान्त उपनिबद्ध है। प्रसन्न भगवान् सूर्य ने सत्राजित् राजा को स्यमन्तकमणि और राधिका को 'सत्यभामा' इस नाम से अभिहित कर समर्पित किया। सूर्य के श्वसुर विश्वकर्मा ने श्रीकृष्ण के आदेश से द्वारका में नववृन्दावन का निर्माण किया। द्वारका में रुक्मिणी श्रीकृण की पटरानी थी। सत्राजित् की माता ने नारद के आदेश से सत्यभामा को रुक्मिणी के हाथों में सौंप दिया। राधिका ने रुक्मिणी से अपने लिए एकान्तवास का निवेदन किया क्योंकि सूर्य ने राधिका को स्यमंतकं-मणि की प्राप्ति तक राधिका रूप प्रकट नहीं होने का निर्देश दिया था।

सप्तम अंक में कवि ने सत्यभामा नाम से प्रसिद्ध राधा के साथ समागम के लिए श्रीकृष्ण के उद्योग का विशेप रूप से वर्णन किया है। विश्वकर्मा नववृन्दावन में राधिका की ऐसी प्रतिमा को बनाता है जो सजीव-सी लगती है। उस प्रतिमा को देखकर जब श्रीकृष्ण वृन्दावन में आते हैं तो रुक्मिणी सत्यभामा में कृष्ण को आसक्त जानकर राधिका के साथ प्रस्तावित कृष्ण के समागमोद्योग में विघ्न डालती है।

अष्टम अङ्क में भी राधा और कृष्ण के निरन्तर बढ़ते हुए प्रेम की कथा उपन्यस्त है। इसमें सत्यभामा के प्रति रुक्मिणी की स्वाभाविक सौतभावयुक्त ईर्ष्या का सुन्दर चित्रण हुआ है। साथ ही सत्यभामा और रुक्मिणी द्वारा परस्पर एक दूसरे का वेषग्रहण वृत्तान्त हास्यरस का उदाहरण प्रस्तुत करता है। यहीं पर नववृन्दा के रूप में विशाखा के पुनर्जन्म की बात भी बतलायी गयी है।

नवम अङ्क में पद्मा, भद्रा और श्यामला आदि सोलह हजार एक सौ गोपियों

की नरकासुर कारागार से मुक्ति और उनके द्वारका में आगमन की कथा चित्रित है। साथ ही भवभूतिकृत 'उत्तररामचरित' के 'चित्रदर्शन' प्रसंग की भाँति यहाँ विश्वकर्मा द्वारा गिरिकन्दरा में निर्मित श्रीकृष्ण की पूर्वलीलाओं का चित्र सत्यभामा को दिखाया गया है।

दशम अङ्क में सत्राजित् राजा विद्रुल के द्वारा स्यमंतकमणि को श्रीकृष्ण के अन्तःपुर में भेजते हैं, जिसको कि श्रीकृष्ण जाम्बवन्त को जीतकर जाम्बवती के साथ लाए थे। श्रीकृष्ण उस मणि को लेकर सत्यभामा को देखने के लिए श्रीवेश में अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं किन्तु सत्राजित् की परिचारिका की असावधानी से उनका भेद खुल जाता है। रुक्मिणी इस रहस्योद्घाटन से सारी बातें समझ जाती हैं और सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण के विवाह के औचित्य का विचार करके उनसे सत्यभामा के साथ विवाह करने की प्रार्थना करते हैं। अन्त में स्यमंतक मणि को जानकर जब सत्यभामा अपने को राधिका और रुक्मिणी को अपनी बहिन बताती है तो चन्द्रावली प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण के साथ राधा का विवाह रचाती है।

उसी समय नन्द, यशोदा एवं सभी देवताओं का शुभागमन भी होता है और इस प्रकार गुरुजन एवं देवगण के आशीर्वादों से उस महोत्सव की शोभा द्विगुणित हो जाती है। यही इस नाटक का संक्षिप्त इतिवृत्त है। सम्प्रति इस नाटक का नवीन संस्करण चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है। इसकी चार पाण्डुलिपियाँ देवनागरी एवं बंगला लिपियों में भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर पूना एवं कलकत्ता स्थित विक्रमज्योति प्रकाशन संस्थान में उपलब्ध हैं। चौखम्बा से प्रकाशित ललितमाधव नाटक नारायणकृत संस्कृतटीका से युक्त है।

भक्तिरसामृतसिन्धु—यह श्रीरूप की महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें भक्तिरस का शास्त्रीय रूप उपस्थित किया गया है। इसका प्रकाशन श्रीदामोदर गोस्वामी ने सं. १९३२ ई० में अच्युत ग्रन्थमाला सीरीज, वाराणसी में किया था।

सम्प्रति 'हिन्दी भक्तिरसामृत सिन्धु' (हिन्दी टीका के साथ) 'हिन्दी अनुसंधान परिषद्-ग्रन्थमाला' का ३१ वाँ ग्रन्थ है। १९६३ ई० में डॉ नगेन्द्र के प्रधान सम्पादकत्व में आचार्य विश्वेश्वर कृत हिन्दी टीका के साथ भक्तिरसामृत-सिन्धु का प्रकाशन हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली से हुआ है।

इस ग्रन्थरत्न का प्रतिपाद्य विषय है—भक्तिरस के स्वरूप की विवेचना। इसके चार विभाग हैं—(१) पूर्व, (२) दक्षिण, (३) पश्चिम और (४) उत्तर। प्रत्येक विभाग में अनेक लहरियाँ हैं।

पूर्व विभाग की प्रथम लहरी में भक्ति का सामान्य लक्षण दिया गया है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ लहरी में क्रमशः भक्ति के तीनों भेदों—साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमाभक्ति का विशेष विवरण दिया गया है। दक्षिण विभाग की पाँच लहरियों में क्रमशः विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव, व्यभिचारिभाव और स्थायिभाव का वर्णन है और अन्त में मुख्य तथा गौणभक्ति रसों के सामान्य स्वरूप का निरूपण किया गया है।

पश्चिम विभाग में भक्तिरस के विशिष्ट रूप का विवेचन है। इसमें क्रमशः शान्तभक्ति, प्रीतिभक्ति, प्रेयोभक्ति, वत्सलभक्ति तथा मधुरभक्ति का विस्तृत वर्णन है।

उत्तर विभाग में हास्य, अद्भुद, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स तथा भयानक रसों का विवेचन करके इन रसों के पारस्परिक विरोध और अविरोध की भी मीमांसा की गयी है। श्रीरूप के अनुसार भक्तिरस ही मूलरस है। अन्य अद्भुदादि रस उसी प्रकृतरस के विकार और प्रभेद हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ भक्तिरस का अनुपम आकर है।

उज्ज्वल नीलमणि—यह भक्तिरसामृतसिन्धु का पूरक ग्रन्थ माना जाता है क्योंकि भक्तिरसामृतसिन्धु में मधुर शृङ्गार तथा नायक-नायिकाओं का निरूपण नहीं किया गया अतः उस प्रसंग की पूर्ति के लिए उज्ज्वल नीलमणि की रचना की गयी। उज्ज्वल का अर्थ है—शृङ्गार।

अतः मधुर शृङ्गार रस की सांगोपाङ्ग विवेचना इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। इसमें क्रमशः नायक, नायक के सहायक, हरिप्रिया राधा, नायिका, यूथेश्वरी भेद, दूती के प्रकार तथा सखी के वर्णन के बाद कृष्ण के सखा का वर्णन है। तदनन्तर मधुररस के उद्दीपन, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी तथा स्थायी भाव का विस्तृत विवेचन कर संभोग तथा विप्रलंभ शृङ्गार के दोनों भेदों की नाना दशाओं का रहस्य समझाया गया है। उज्ज्वल नीलमणि में नायक के प्रसिद्ध चार भेदों को पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है—पति तथा

भक्ति तथा साहित्य दोनों प्रकार के शास्त्रों पर विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों के सम्मानित लेखक माने जाते हैं।[1]

मथुरा महिमा—इस ग्रन्थ का पृथक् प्रकाशन नहीं हुआ है। सम्प्रति यह वराहपुराण में ही अन्तर्भूत माना जाता है। इस कृति की हस्तलिपि, का वर्णन जिसका विवरण वंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता क Descriptive Catalogue, No. p. 1152, 230 में है, कृष्ण से सम्बद्ध वृन्दावन लीला करती है। परन्तु यह हस्तलिपि अपूर्ण है। इस हस्तलिपि का विवरण हरप्रसाद शास्त्री ने (Notiecs, 2nd Series, p 264 No. 265) में दिया है।

पद्यावली—(पद्य संग्रह) इसका सम्पादन श्रीसुशील कुमार दे ने भूमिका तथा टिप्पणियों के साथ ढाका विश्वविद्यालय ओरियन्टल पब्लिकेशन सीरीज, ढाका में १९३४ ई० में किया था।

नाटक-चन्द्रिका—नाटकों के शास्त्रीय लक्षण की वैष्णवमतानुकूल व्याख्या करना ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है। ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीरूप ने भरतमुनि के मत का अनुसरण कर संक्षिप्त नाटक लक्षण लिखने की सूचना दी है और साथ ही भरतमुनि के नाटकलक्षणों के प्रतिकूल होने के कारण विश्वनाथ कविराज प्रणीत साहित्यदर्पण की प्रक्रिया को स्वीकार नहीं करने की बात स्पष्ट कर दी है[2]। नाटक-चन्द्रिका में केवल नाटक का लक्षण देकर तत्सम्बन्धी अंगों एवं उपांगों के ही लक्षण दिये गये हैं और रूपक के अन्य प्रभेदों का केवल संकेत कर दिया गया है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि नाटक के अतिरिक्त रूपक के अन्य 'प्रकरण' आदि भेदों तथा उपरूपक के 'नाटिका' आदि प्रभेदों के परम्परा प्राप्त लक्षणों के विषय में श्रीरूप का मतभेद नहीं था। केवल नाटक के लक्षण में जो सिद्धान्तभेद था, उसे ही दूर करने की दृष्टि से इस

---

१. आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय—संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० २५९।

२. वीक्ष्य भरतमुनिशास्त्रं रसपूर्वसुधाकरञ्च रमणीयम्।
लक्षणमतिसंक्षेपाद् विलिख्यते नाटकस्येदम्॥
नातीव सङ्गतत्वाद् भरतमुनेर्मतविरोधाच्च।
साहित्यदर्पणीया न गृहीता प्रक्रिया प्रायः॥ ना० च० ग्रन्थ प्रतिज्ञा।

ग्रन्थ की रचना हुई। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रन्थ का आधार वैष्णव सिद्धान्त की व्याख्या के अतिरिक्त भरतमुनि का नाट्यशास्त्र और सिंहभूपाल का रसार्णवसुधाकर है। इसीलिए इन दोनों आचार्यों के सिद्धान्तों को उपजीव्य मानकर श्रीरूप ने वैष्णव मान्यताओं से उन सिद्धान्तों की एकरूपता सिद्ध की है।

साहित्यदर्पण से नाटकचन्द्रिका की भिन्नता मुख्यरूप से नायिकाभेद के अन्तर्गत गोपियों को परोढ़ा मानने के सिद्धान्त के साथ है। साहित्यदर्पण में गोपियों को परोढ़ा नायिका मानकर उपपति कृष्ण के साथ उनके मिलन को रसाभास की संज्ञा दी गयी है।

श्रीरूप ने इसीलिए साहित्यदर्पण का निषेध कर श्रीराधा-कृष्ण की लीला के दर्शन-श्रवण से परमानन्द की प्राप्ति को साहित्यशास्त्र-सम्मत बतलाया है। इसीलिए श्रीरूप ने इसमें लक्षणों के उदाहरण भी अधिकांश स्वरचित ग्रन्थों से उद्धृत श्रीराधाकृष्ण की लीलाओं के सरस प्रसंगों के ही दिये हैं।

रसध्वनि की स्वतंत्र व्याख्या प्रस्तुत करने के कारण श्रीरूप को 'ध्वनिप्रस्थापन-परमाचार्य' का विरुद मिला है।[1]

इस पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ तथ्यों का विवरण सुशील कुमार दे ने अपनी पुस्तक "संस्कृत पोयटिक्स" द्वितीय संस्करण, पृ॰ २५२, २५६ में दिया है।

संक्षेप भागवतामृत—यह सनातन गोस्वामी के इसी नाम के ग्रन्थ का संक्षिप्त रूप न होकर रूप की एक स्वतंत्र कृति है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त श्रीरूप द्वारा प्रणीत कुछ और पद्यों की सूची है, जिन्हें जोड़ देने से इनकी १७ साहित्यिक रचनायें हो जाती हैं।

श्रीगणोद्देशदीपिका—बृहत् तथा लघु।

इसका प्रचलित नाम "राधाकृष्ण गणोद्देशदीपिका" भी है। इसका प्रकाशन राधारमण प्रेस, मुर्शिदाबाद में हुआ है।

प्रयुक्ताख्यात चन्द्रिका—स्पष्टरूप से यह एक व्याकरण ग्रन्थ है, जिसमें क्रिया की विवेचना की गयी है।

कृष्णजन्म तिथि विधि—इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं

---

१. इति ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य-श्रीमद्रूपगोस्वामिप्रभुपादप्रणीता श्रीनाटक-चन्द्रिका समाप्ता। नाटकचन्द्रिका-पुष्पिका।

है किन्तु संभवतः यह वही ग्रन्थ है, जिसका उल्लेख आफ्रेक्ट (Aufrecht) ने अपने लिपजिग (Leipzig) कैटलॉग न० ८२१ में 'कृष्णजन्म तिथिविधि' के नाम से किया है। इसके मंगलाचरण से यह ज्ञात होता है कि यह श्रीकृष्ण के प्रति ही लिखा गया है।

अष्टकालिक श्लोकावली—इसमें ग्यारह पद्य हैं, जिनके विषय में कहा जाता है कि श्रीरूप ने कृष्णदास कविराज को विस्तृत करने के लिए दिया था[1]। निश्चय ही कृष्णदास विरचित 'गोविन्द लीलामृत' नामक ग्रन्थ के यही आधार रहे होंगे। इसका मुख्य विषय भी श्रीकृष्णलीलास्तवन ही है।

बलदेव विद्याभूषण श्रीरूप की 'गोविन्द विरुदावली' पर टीका करते हुए लिखते हैं कि श्रीरूप ने एक 'विरुद लक्षण' नामक ग्रन्थ भी लिखा था, जिसमें विरुद काव्य के छन्द तथा अन्य विशेषताओं का विवेचन किया गया है। श्रीकृष्णदास कविराज भी रूप के ग्रन्थों में गोविन्द विरुदावली की चर्चा करते हैं[2]। यह ग्रन्थ संभवतः वही है, जिसका नया-नया प्रकाशन "सामान्य विरुदावली लक्षण" इस नाम से नवद्वीप में १९४१ में हरिदास ने कराया था।

उपर्युक्त ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण श्रीरूप की पांडित्यपूर्ण कवित्व प्रतिभा का महनीय निदर्शन है।

मूल्याङ्कन

विदग्ध माधव—विदग्धमाधव में राधा-कृष्ण की केलिक्रिया का नाटकीय रूप बड़े चमत्कार के साथ प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण भारतीय संस्कृति के सर्वाधिक प्रभावशाली ऐतिहासिक महापुरुष हैं, जिनके चरित को उपजीव्य मानकर प्रस्तुत नाटक की रचना की गयी है अतः इतिहास प्रसिद्ध कथानक होने के कारण प्रस्तुत दृश्यकाव्य रूपकों में प्रमुख नाटक है। "नाटकं ख्यात वृत्तं स्यात्"। नवीन उद्देश्य की सिद्धि के लिए नाटककार कथावस्तु की योजना अपनी दृष्टि से

---

१. वैष्णव इच्छाय एकादश श्लोक कैल।
कृष्णदास कविराजे विस्तारिते दिल॥
अष्टकाललीला ताते अति रसायन।
भाग्यवंत जन से करये आस्वादन॥ भक्तिरत्नाकर।

२. गोविन्द विरुदावली आर ताहार लक्षण। वही।

करता है और उस योजना का अर्थ है—प्रसिद्ध घटनाचक्रों और पात्रों का उचित विनियोग। इस दृष्टि से यहाँ विचार करना है कि इस नाटक की कथावस्तु के आधार का स्वरूप क्या है? इसमें कितनी प्रमुख घटनाओं का समावेश किन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए किया गया है? नाटकीय यथावस्तु की स्वरूप विवेचना से पूर्व आधार कथा की एक रूपरेखा प्रस्तुत करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा अतः राधाकृष्णचरित का संक्षिप्त अवगाहन किया जा रहा है।

युगल चरित की पृष्ठभूमि—ऊपर कहा जा चुका है कि 'विदग्धमाधव' की कथावस्तु का आधार है कृष्ण और राधा का लीलामय चरित्र-चित्रण। इस नाटक-रचना से पूर्व कृष्ण एवं राधा के चरित्र का चित्रण किस रूप में उपलब्ध था, जहाँ से प्रेरणा प्राप्त कर श्रीरूप ने इसे नाटकीय रूप दिया, इस ओर दृष्टिपात करने पर हमें ज्ञात होता है कि कृष्ण-चरित का विस्तृत वर्णन श्रीमद्भागवत, महाभारत, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त और पद्मपुराण में मिलता है। साथ ही इन्हीं प्रमुख पौराणिक कथाओं का वर्णन मत्स्य, वायु, अग्नि, लिंग और देवी भागवत में संक्षिप्त रूप में मिलता है। इतिहास-पुराणों में वर्णित कृष्ण-चरित अनेक विलक्षणताओं से आपूर्ण है। उनमें उनके तीन प्रमुख स्वरूपों का संकेत मिलता है—(१) गोपीवल्लभ कृष्ण, (२) गीता के वक्ता कृष्ण और (३) पाण्डवों के पथप्रदर्शक कृष्ण। यद्यपि महाभारत का वर्ण्य-विषय पाण्डवों तथा कौरवों का संघर्ष है, कृष्ण-चरित का उल्लेख तो पाण्डवों के पथ-प्रदर्शक रूप में हुआ है, तथापि पुराणों में उनका चरित, कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से बाल्यकाल से लेकर अवसान काल तक उपलब्ध होता है। हरिवंश महाभारत का परिशिष्ट माना जाता है। महाभारत में प्रसङ्गप्राप्त कृष्ण-चरित की पूर्ति के उद्देश्य से ही हरिवंश में केवल कृष्ण कथा का ही वर्णन है। श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण की कृष्ण-कथा प्रायः एक-सी ही है। ब्रह्मवैवर्त और पद्मपुराण में जाकर कृष्ण-कथा राधा प्रसङ्ग से जुड़ गई है। इन विभिन्न पुराणों में वर्णित कृष्ण-कथा का विवेचन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमें कुछ अंशों में वैलक्षण्य भले ही हो, किन्तु मुख्य कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सर्वत्र बाल्यकाल में गोकुल में गोप-गोपियों के मनमोहन, युवावस्था में मथुरा में कंस-निषूदक और प्रौढ़ावस्था में द्वारका में सफल राज्य-सञ्चालक के रूप में चित्रित किये गये हैं।

महाभारत में कृष्ण के राजनैतिक स्वरूप का चित्रण किया गया है। भागवत और विष्णुपुराण में कृष्ण को गोपीवल्लभ के रूप में चित्रित किया गया है क्योंकि उन दोनों पुराणों में कृष्ण के साथ रास रचाने वाले किसी गोपी-विशेष का नाम-निर्देश नहीं किया गया है। ब्रह्म और पद्मपुराण में राधा के जन्म और कृष्ण के साथ उनकी लीलाओं का भव्य और विस्तृत वर्णन किया गया है। इन्हीं को आधार मानकर वैष्णव ग्रन्थों में कृष्ण की तीन—व्रजलीला, माथुरलीला और द्वारकालीलाओं का वर्णन मिलता है। एक ही महापुरुष ने इन तीनों लीलाओं का प्रदर्शन अपने जीवन के विभिन्न भागों में किया है। बाल्यकाल या किशोरावस्था में कृष्ण ने व्रज में गोपियों के साथ अनेक लीलायें की थीं, जिनका संकेत 'भागवत' से ही मिलता है। अन्य पुराणों में तो गोपियों का स्पष्ट नाम-निर्देश कर दिया गया है। कृष्ण की गोपी-लीला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह श्रीकृष्ण के प्रति भक्तों की माधुर्यमयी भक्ति का मनोरम प्रतीक है अतः वैष्णव साहित्य में व्रजेश्वरी राधा ने अपना विशेष स्थान प्राप्त किया है। 'विदग्धमाधव' में विशेषरूप से राधा के साथ कृष्ण की व्रज (वृन्दावन) लीला का वर्णन है अतः राधा के इतिहास पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है।

गौड़ीय वैष्णव ग्रन्थों में जिस रासेश्वरी राधा ने कृष्ण की प्रियतमा गोपियों में अन्यतम स्थान प्राप्त किया है। आश्चर्य है कि कृष्ण-कथा के समर्थ उद्बोधक श्रीमद्भागवत में उसकी चर्चा तक नहीं है। उसमें राधा की ही नहीं, यशोदा के अतिरिक्त किसी भी गोपी का नाम-निर्देश नहीं है। उसमें केवल गोपियों के साथ कृष्णलीला का वर्णन मिलता है। विष्णुपुराण में भी यही स्थिति है। वहाँ भी भागवत की ही भाँति एक गोपी के सौभाग्य का वर्णन मिलता है जिसने अन्य गोपियों की अपेक्षा कृष्ण को अधिक आकृष्ट किया था और जिसके साथ कृष्ण ने अन्य गोपियों से अलग होकर एकान्त सङ्गति की थी।[1] यद्यपि भागवत और विष्णुपुराण की, इस भूमिका की टिप्पणी में उद्धृत दोनों श्लोकों के 'अनया

---

१. (क) अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः॥ भागवत, १०।३०।२८

(ख) अत्रोपविश्य वै तेन काचित् पुष्पैरलंकृता।
अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितस्तया॥ विष्णुपुराण, ५।१३।३५

राधितः' और 'अभ्यर्चितस्तया' इन पदों की टीका करने वाले गौड़ीय वैष्णवों ने स्पष्ट रूप से राधा का गूढ़ संकेत निकाल लिया है, फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इन दोनों पुराणों में 'राधा' नाम का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। गोपियों की चर्चा करके भी राधा-नाम-गोपन में व्यास का क्या रहस्य है? यह विचारणीय विषय है और वैष्णव आचार्यों ने इसका संकेत भी दिया है। विस्तारभय से इस प्रसङ्ग को हम यहीं छोड़ रहे हैं। ब्रह्मवैवर्त में राधा जन्म और कृष्ण के साथ उनकी विहार-लीला का भव्य वर्णन है। इस पुराण के अनुसार राधा की उत्पत्ति दैवी मानी गई है। वह परमात्मारूप श्रीकृष्ण के वामार्ध से प्रकट हुई थी। प्राचीनकाल में गोलोकस्थित परम सुन्दर वृन्दावन के रासमण्डल में एक शोभन रत्नमय सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण को रमण की इच्छा हुई। उनकी रिरंसा ने ही रासेश्वरी राधा का मूर्तरूप धारण किया। जगदीश्वर दो रूपों में विभक्त हो गये। उनका दक्षिण अङ्ग श्रीकृष्ण रूप में और वाम अङ्ग श्रीराधा रूप में स्थित हुआ।[1]

इसी पुराण के अन्तिम खण्ड (कृष्णजन्म खण्ड) के १५ वें अध्याय में राधा के स्वरूप का तथा कृष्ण के साथ उनके विधिवत् विवाह का चमत्कारी वर्णन है। २७ वें अध्याय में राधा-कृष्ण संवाद और २८ वें एवं २९ वें अध्यायों में रासक्रीडा का विस्तृत वर्णन है।

इसी प्रकार पद्मपुराण में भी राधा का स्पष्ट उल्लेख है। यह मुख्य रूप से वैष्णव पुराण माना जाता है। राधातत्त्व के उन्मीलन में यह प्रमुख स्थान रखता है। 'राधा' के विकसित रूप का दिग्दर्शन हमें इस पुराण में होता है। पद्मपुराण के ब्रह्मखण्ड के सप्तम अध्याय में 'राधाष्टमी व्रत' का पूर्ण विधान है। राधा जन्म के सम्बन्ध में वर्णन है कि भाद्रमास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को वृषभानु की यज्ञभूमि में राधा का आविर्भाव हुआ। (श्लो० ३९-४०)। इसी

---

१. रमणं कर्तुमिच्छा च तद् बभूव सुरेश्वरी।
इच्छया च भवेत्सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः।
दक्षिणाङ्गं च श्रीकृष्णो वामार्धाङ्गं च राधिका॥
ब्र० वै० पुराण अ० ४८, २७।२८

पुराण के पातालखण्ड के अनेक अध्यायों में वृन्दावन की महिमा का विस्तृत वर्णन मिलता है। यहीं पर राधा का भी प्रसङ्गवश उल्लेख आया है, जिसमें राधा को आद्या प्रकृति और कृष्ण की वल्लभा बताया गया है।[१]

इस पुराण की मान्यता है कि राधा के समान न कोई नारी है और कृष्ण के समान न कोई पुरुष है।

'न राधिकासमा नारी न कृष्णसदृशः पुमान्'।

पद्मपुराण की इसी उक्ति ने साहित्य जगत् में राधा-कृष्ण को आदर्श दम्पति के रूप में चित्रित करने की प्रेरणा दी होगी। पूज्य आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है।[२]

इसके अतिरिक्त 'देवी भागवत' में भी राधा की उपासना और पूजाविधि का वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण की चिन्मयी शक्तिस्वरूपा राधा की सत्ता, उनकी पूजा-आराधना तथा राधातन्त्र की महिमा इस तथ्य का द्योतक है कि उस समय तक राधा की पूर्ण प्रतिष्ठा धार्मिक जगत् में हो चुकी थी।

श्रीरूप के 'उज्ज्वल नीलमणि' के अनुसार गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् में राधा 'गान्धर्वी' नाम से विश्रुत तथा 'ऋक् परिशिष्ट' में राधा माधव के साथ कथित है।[३]

पुराणों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में भी अन्वेषण करने पर राधा का यत्र-तत्र उल्लेख बहुतायत में मिलता है। सर्वप्रथम हाल की प्राकृत रचना 'गाहा सत्तसई' (गाथा सप्तशती) की अनेक गाथाओं में श्रीकृष्ण की व्रजलीला का वर्णन तथा एक गाथा में श्रीराधा का नाम भी अङ्कित है।[४] साहित्य-संसार

---

१. तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा।

पद्मपुराण, पा० खण्ड, अध्याय ६९, श्लो० ११८

२. द्रष्टव्य—'भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा-तत्त्व' पृ० १७

—आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय

३. गोपालोत्तरतापिन्यां गान्धर्वीति विश्रुता।
राधेत्यृक् परिशिष्टे च माधवेन सहोदिता॥ उज्ज्व० मणि०

४. मुहमारुएण तं कह्न गोरअं राहिआए अवणेन्तो।
एताणँ बलवीणं अण्णाणापि गोरअं हरसि॥ गा० स०, ११८९

में हाल की इसी गाथा में 'राधा' का प्रथम उल्लेख माना जाता है। हाल का संस्कृत नाम 'शालिवाहन' था, जो ईसा की प्रथम शताब्दी में प्रतिष्ठानपुर में शासन करता था।

महाकवि भास द्वारा प्रणीत 'बालचरित' कृष्णविषयक नाटकों में प्रसिद्ध है। इसमें बालकृष्ण की विख्यात लीलाओं का सुन्दर वर्णन है। इस नाटक के तृतीय अङ्क में हल्लीसक नृत्य का मनोहारी वर्णन है, जिसमें कृष्ण के गोपियों के साथ नर्तन और ग्वाल-मण्डली द्वारा वाद्य-वादन का चित्रण है। यद्यपि इस नृत्य में भाग लेने वाली गोपियों का नाम-निर्देश नहीं है, फिर भी गोपियों की स्थिति में राधा का प्राधान्य व्यञ्जित है। अधिकतर विद्वान भास को गुप्त से पूर्ववर्ती मानने के पक्षपाती हैं अतः तृतीय शती में कृष्ण की गोपियों के साथ नृत्यलीला लोकप्रिय हो चुकी थी।

पञ्चम शती की रचना 'पञ्चतन्त्र' में राधा का स्पष्ट उल्लेख है। एक-कथा-प्रसङ्ग में तन्तुवाय पुत्र कृष्ण राजकन्या पर आसक्त हो उसके अन्तःपुर में प्रवेश करके राजकन्या से कहता है कि 'राधा' नाम की मेरी भार्या पहले गोपकुल में उत्पन्न थी। वही तुम्हारे रूप में अवतीर्ण हुई है अतः मेरा अनुराग तुम्हारे प्रति सहज है और इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ।[1] इस निर्देश से यह स्पष्ट है कि राधा का गोपकुल में उत्पन्न होना तथा श्रीकृष्ण की भार्या होना लोकप्रसिद्ध घटना थी।

सप्तम शती के नाटककार भट्टनारायण ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'वेणीसंहार' की नान्दी में 'राधा' के साथ कृष्ण की रासलीला का उल्लेख किया है।[2] इससे यह प्रतीत होता है कि अष्टम शती से पूर्व ही राधा तथा रासलीला का वृत्तान्त काव्यजगत् में प्रख्यात था।

---

१. राधा नाम मे भार्या गोपकुलप्रसूता प्रथमासीत्। सा त्वमत्र अवतीर्णा। तेनाहमत्रागतः। पञ्चतंत्र, प्रथमकथा, मित्रभेद।

२. कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः॥

दशम शती के अनेक कवियों ने राधा तथा कृष्ण के प्रसङ्गों को लेकर अनेक कमनीय रचनाएँ की हैं।

इस शती के पूर्वार्ध में विद्यमान काश्मीर निवासी वल्लभदेव संस्कृत के कतिपय महाकाव्यों के समर्थ टीकाकार थे। उन्होंने 'शिशुपालवध' की टीका में, चतुर्थ सर्ग के २५वें श्लोक की व्याख्या में 'लोचक' शब्द के उदाहरण के लिए एक प्राचीन पद्य को उद्धृत किया है, जिसमें राधा का स्पष्ट उल्लेख है।[1]

काव्य-जगत में राधा चरित के क्रमिक विकास का पर्यवेक्षण करते समय हमारी दृष्टि हठात् पीयूषवर्षी जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' नामक ग्रन्थरत्न पर टिक जाती है। जयदेव के आश्रयदाता बङ्गाल के अन्तिम हिन्दू नरेश राजा लक्ष्मण सेन थे, जिनका समय १२वीं शती का आरम्भ माना जाता है क्योंकि इनके गया-शिलालेख का समय ११९६ ई० है।

'गीतगोविन्द' में श्रीकृष्ण नायक तथा राधा नायिका हैं और समस्त काव्य राधा-कृष्ण की ललित लीलाओं के विलासमय वर्णन से आपूर्ण है। परिणामतः १२ वीं शती में राधा का आविर्भाव साहित्य-जगत् में पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका था।

इसी शती में लीलाशुक बिल्वमङ्गल के 'कृष्णकर्णामृत' में तथा श्रीधर दास द्वारा सङ्कलित 'सदुक्तिकर्णामृत' नामक सूक्ति ग्रन्थ में राधा-कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं का सुन्दर वर्णन मिलता है। इस तथ्य के आधार पर बारहवीं शती को राधातत्त्व के साहित्यिक उन्मीलन का मुख्य काल मानना चाहिये। उसके बाद १६वीं शती में राधा-तत्त्व के पूर्ण विकास का कार्य चैतन्यदेव के शिष्यों द्वारा सम्पन्न होता है। १६वीं शती से पूर्व राधाचरित का पृथुल किन्तु विशृङ्खल रूप सामने आता है, उसी को श्रीरूप ने सँवार कर नाटकीय रूप देने का प्रयास किया है।

राधा-तत्त्व के विकास के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर इस विकास को

---

१. यो गोपीजनवल्लभः कुचतटव्याभोगलब्धास्पदं
छाया वात्र विरक्तको बहुगुणश्चारुश्चतुर्हस्तकः।
कृष्णः सोऽपि हताशयाप्यपहृतः सत्यं कयाऽप्यद्य मे
किं राधे, मधुसूदनो नहि नहि प्राणप्रियो लोचकः॥

तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम स्तर राधा के नाम से अपरिचित है। वह इतना ही जानता है कि श्रीकृष्ण की विशेष प्रेमपात्री कोई सुन्दरी गोपी थी, जिसके वश में होकर उन्होंने अन्य गोपियों का ममत्त्व छोड़ दिया था। इसी भाग्यशालिनी कृष्णाराधिका अनामिका गोपी को प्रच्छन्न राधा के रूप में परवर्ती वैष्णव भक्तों ने स्वीकार किया है। इस स्तर का परिचय पाठकों को भागवत और विष्णुपुराण से मिलता है, जिसका संकेत ऊपर किया जा चुका है। प्रच्छन्न राधातत्त्व का निर्देशक यह काल विक्रम से लगभग २०० वर्ष पूर्व माना जाता है क्योंकि 'विष्णु-पुराण' का समय विक्रम पूर्व तृतीय शती है।

द्वितीय स्तर राधा के नाम से परिचित है। इसमें रासेश्वरी राधा कृष्ण की प्रिया के रूप में संस्कृत साहित्य-संसार में प्रतिष्ठित होती है। ब्रह्मवैवर्त, पद्म, मत्स्य और देवी भागवत पुराणों से, जिनका संकेत पीछे किया जा चुका है, इस स्तर का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत काव्य-जगत् में गाथा सप्तशती से लेकर जयदेव के 'गीतगोविन्द' तक राधातत्त्व के क्रमिक विकास का परिचय द्वितीय स्तर देता है। इस युग का आरम्भ विक्रम की प्रथम शती से लेकर १४वीं शती तक क्रमशः विकसित होता है। इस लम्बी अवधि में संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य राधा की ललित शृंगारी लीलाओं से भलीभाँति परिचय रखता है, किन्तु इस स्तर में राधा कृष्ण की केवल प्रियतमा के रूप में—कृष्ण के प्रेम के आधार रूप में ही चित्रित नजर आती है, कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के रूप में नहीं। राधातत्त्व का विशेष पल्लवन तो चैतन्यदेव के पार्षद श्रीरूप और जीव गोस्वामी के ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होता है।

तृतीय स्तर षोडश शती से सम्बद्ध है, जब महाप्रभु चैतन्य ने अपनी अलौकिक चमत्कारपूर्ण लीलाओं से राधा की प्रेम-माधुरी का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया और गौड़ीय वैष्णव गोस्वामियों ने दर्शन की मजबूत दीवाल पर राधातत्त्व की दार्शनिक चित्रणा अपनी भक्ति-तूलिका से की थी। उनके अनुसार राधाकृष्ण की महाभावस्वरूपा ह्लादिनी शक्ति है, जो भगवान् कृष्ण को आह्लादित करती है और जिसके द्वारा भगवान् अपने प्रिय-भक्तों को आनन्दित करते हैं। राधातत्त्व की यह व्याख्या गौड़ीय गोस्वामियों की, विशेषरूप से श्रीरूप की दार्शनिक विवेचना की दिव्य विभूति है। फलतः यह स्वीकार करने में कोई

आपत्ति नहीं कि राधातत्त्व का पूर्ण विकास चैतन्यदेव के भक्तकवियों—गोस्वामी आचार्यों का प्रखर पाण्डित्य-परिणाम है।

संक्षेप में विश्वजनक भगवान कृष्ण और जगज्जननी भगवती राधा के चरित का यही इतिवृत्त है, जो श्रीरूप के नाटकों का उपजीव्य है।

श्रीरूप ने समस्त राधा-कृष्ण-चरित को दो नाटकों में चित्रित किया है, जिनमें—'विदग्धमाधव' में राधा-कृष्ण की वृन्दावन सम्बन्धी लीलाओं का तथा 'ललितमाधव' में वृन्दावन, मथुरा तथा द्वारका लीलाओं का नाटकीय रूप प्रस्तुत किया है। राधा-कृष्ण-चरित की इसी पृष्ठभूमि के आधार पर हम 'विदग्धमाधव' नाटक की कथावस्तु का विवेचन करेंगे।

कथावस्तु—'विदग्धमाधव' नाटक के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसका आधार राधा-कृष्ण की वृन्दावन की ललित लीलाएँ हैं, जिनका वर्णन पुराणों और काव्यों में बिखरा हुआ है। नाटकीय कथावस्तु को विशेष उभार देने का श्रेय 'गीतगोविन्द' और 'कृष्णकर्णामृत' काव्य को है अतः 'विदग्धमाधव' की कथावस्तु के मुख्य आधार ब्रह्मवैवर्त, पद्मपुराण, गीतगोविन्द और कृष्णकर्णामृत की राधा-कृष्ण-लीलायें हैं।

घटनाचक्रों की दृष्टि से विचार करने पर इस नाटक की सात प्रमुख घटनायें हैं, जिसका संकेत नाटककार ने स्वयं सातों अङ्कों के नामकरण द्वारा दे दिया है। घटनाओं की प्रमुखता के कारण ही प्रत्येक अंक की संज्ञा उस घटना के आधार पर दे दी गयी है। सात अंकों में विभाजित इस नाटक की प्रमुख सात घटनायें हैं—

(१) वेणुनादविलास, (२) मन्मथ लेख, (३) राधासङ्ग, (४) वेणु-हरण, (५) राधाप्रसादन, (६) शरदविहार और (७) गौरीविहार।

नाटकीय कथावस्तु के प्रमुख घटनाचक्रों की ओर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि नाटककार ने राधा और कृष्ण की वृन्दावन की विलासमयी कमनीय लीलाओं तक ही अपने को सीमित रखने का योजनाबद्ध प्रयास किया है क्योंकि उसने उन्हीं लीलाओं के विविध पहलुओं का विलासमय चित्रण किया है और कृष्णचरित की तत्कालीन अन्य प्रसिद्ध—लीलाओं के वर्णन के लोभ का धैर्यपूर्वक संवरण किया है। राधा-कृष्ण का परस्पर मिलन कराना ही नाटककार

का प्रमुख उद्देश्य है अतः उसी उद्देश्यसिद्धि के लिए उसने अन्य असम्बन्धित कथाओं का सन्निवेश नहीं करके संयोगविषयक घटनाओं के विविध रूपों को कल्पना के सहारे सँजो कर राधा-कृष्ण प्रेम की भव्य झाँकी प्रस्तुत की है। अब हम अङ्कक्रम से प्रमुख घटनाओं का विवेचन और उनकी योजना के उद्देश्य का परीक्षण करेंगे।

प्रथम अङ्क की कथावस्तु की रूपरेखा—मुख्य घटना–वेणुनाद विलास।

(१) विष्कम्भक द्वारा राधा-कृष्ण के भावी प्रेम की सूचना।

(२) पौर्णमासी द्वारा राधा-कृष्ण संयोग में सहायक बनने का संकल्प लेना।

(३) कंस के भय से राधा का अभिमन्यु नामक गोप के साथ योगमाया द्वारा पाणिग्रहण का कृत्रिम अभिनय।

(४) अभिमन्यु द्वारा राधा को मथुरा ले जाने के प्रयास से पौर्णमासी का चिन्तित होना।

(५) कृष्ण और राधा के परस्पर साक्षात्कार नहीं होने पर भी एक दूसरे के गुण-श्रवण से दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण।

(६) कृष्ण का वेणुवादन द्वारा गोपियों को आकृष्ट करने का प्रयास।

(७) वंशीध्वनि से मुग्ध राधिका की कृष्णदर्शन की लालसा।

(८) पौर्णमासी की प्रेरणा से राधा की प्रेमवृद्धि में नान्दी, ललिता आदि सखियों का प्रोत्साहन और—

(९) विशाखा द्वारा राधा को कृष्ण का चित्रफलक देना।

प्रथम अंक की इन मुख्य घटनाओं का मुख्य उद्देश्य है—राधा-कृष्ण के पूर्वराग का निर्देश। इस पूर्वराग को प्रकट करने के लिए नाटककार ने विशेष रूप से तीन घटनाओं की योजना की है—(१) राधा-कृष्ण का परस्पर गुण-कीर्तन श्रवण, (२) कृष्ण का वेणुनाद और विशाखा का चित्रपट दान।

ये तीनों घटनायें राधा-कृष्ण के पूर्वराग की पृष्ठभूमि में सहायक होती हैं। वेणुगीत का संकेत तो भागवत में भी मिलता है जिसका उपयोग यहाँ उचित ढंग से किया गया है। नाटक के प्रारंभ में पूर्वराग में अपेक्षित गुणकीर्तन, सखी-उद्दीपन और चित्रपट-प्रदर्शन का आयोजन करके नाटककार ने शृङ्गार के शास्त्रीय पक्ष का भी समावेश कर लिया है। योगमाया द्वारा राधा के पाणिग्रहण का प्रसंग

कृष्णसंयोग के औचित्य की दृष्टि से किया गया है क्योंकि भारतीय साहित्य शास्त्र राधा-कृष्ण संयोग को वैधानिक रूप देने में राधा के परकीयात्व को बाधक मान सकता था। इसी प्रसंग से बचने के लिए नाटककार ने पौर्णमासी को इस कार्य में विशेष सहायता प्रदान करने के लिए नियुक्त किया है, जो समय-समय पर अपने प्रभाव का उपयोग करके राधा-कृष्ण मिलन का मार्ग प्रशस्त करती है और इस प्रकार नाटककार अपने उद्देश्य के अनुसार सफलतापूर्वक राधा-कृष्ण मिलन का सहज वातावरण तैयार कर लेता है।

कृष्ण के वेणुनाद से आकृष्ट होने के कारण ही राधा के हृदय में कृष्णदर्शन की लालसा उत्पन्न होती है अतः इस अंक का वेणुनाद-विलास यह नामकरण सार्थक है।

द्वितीय अंक की कथावस्तु की रूपरेखा—मुख्य घटना-मन्मथ लेख।

(१) श्रीकृष्ण के चित्रदर्शन से राधा की विरहाकुलता।

(२) पौर्णमासी द्वारा राधा में ग्रीग्रह का आवेश और शत्रुनाशक कृष्ण की दृष्टि से ग्रहमुक्ति का संकेत और राधा की सास जटिला के शंकानिवारणार्थ योगविद्या द्वारा उत्पन्न कृष्ण का राधा के समीप पहुँचाने का मुखरा को आश्वासन।

(३) पौर्णमासी द्वारा राधा की भावपरीक्षा और कृष्ण के पास मन्मथ लेख (प्रेमपत्र) लिखने का राधा से आग्रह।

(४) कृष्ण द्वारा राधा-सखियों की भावपरीक्षा, ललिता द्वारा कृष्ण को राधा का प्रेमपत्र देना, विशाखा द्वारा कृष्ण के गले में गुञ्जावलि माला का पहनाया जाना, कृष्ण द्वारा भूल से अपनी रत्नमाला दे देना और विशाखा द्वारा उसे छिपा लेना।

(५) कृष्ण के मित्र मधुमंगल द्वारा कृष्ण से राधा को मन्मथलेख लिखने का आग्रह।

(६) कृष्ण द्वारा छिपकर राधा की प्रेमदशा का अवलोकन और दोनों का परस्पर प्रथम साक्षात्कार।

(७) जटिला का आगमन और योगमाया द्वारा प्रकट कृष्णदृष्टि से स्वस्थ राधा के साथ प्रस्थान।

द्वितीय अंक के घटनाचक्रों का मुख्य उद्देश्य है—राधा-कृष्ण का प्रथम साक्षात्कार। प्रथम अंक में जिस प्रेम ने उभय पक्ष के हृदय में अपना स्थान जमाया था, उसका परिणाम प्रथम दर्शन होना चाहिए। अतः नाटककार तदनुकूल कथायोजना में सक्रिय दिखायी पड़ता है।

राधा और कृष्ण में अङ्कुरित उभय प्रार्थना को मूर्तरूप देने के लिए कवि सचेष्ट है और उसके अनुकूल वातावरण का आयोजन भी कर लेता है। चित्रदर्शन से राधा के हृदय में कृष्ण का अनुराग बद्धमूल हो जाता है। कृष्ण-दर्शन की लालसा बलवती हो उठती है। अपनी इस दयनीय अवस्था का निर्देश वह अपनी सखी तक को भी देना नहीं चाहती है। किन्तु अवस्था विषम होती जा रही है अतः सखियों का चिन्तित होना और राधा की सास जटिला का भी दुःखी होना स्वाभाविक है। किन्तु एक बाधा स्पष्ट है कि विवाहिता होने के कारण खुलकर कृष्ण का दर्शन तो संभव नहीं था अतः कवि ने पौर्णमासी के द्वारा राधा में स्त्रीग्रह के आवेश की कल्पना की और उस ग्रह से मुक्ति का उपाय श्रीकृष्णदर्शन बतलाया। इसमें भी एक आपत्ति यह थी कि जटिला इससे सहमत नहीं होती अतः योगमाया द्वारा उत्पन्न कृष्ण से राधा-मिलन की योजना बनायी गयी। इस उपन्यास से गुरुजन की बाधा की आशंका दूर हुई और प्रथम मिलन का मार्ग प्रशस्त हुआ। इतना होने के बाद भी उभय पक्ष का भावपरीक्षण आवश्यक था। विशेषकर राधा के प्रति श्रीकृष्ण का अनुराग कैसा था? इसको बिना जाने इस ओर अग्रसर होना अस्वाभाविक होता अतः नाटककार ने राधा की ओर से मन्मथलेख का आयोजन कराया और ललिता के माध्यम से उस पत्र को पहुँचा भी दिया गया। नायक के पास नायिका का हृदय खुलकर स्पष्ट हो गया। एक ओर का प्रयास गतिशील हो चला। अब नाटककार ने इस अनुराग को और स्वाभाविक बनाने के लिए नायक पक्ष से भी मन्मथलेख का आयोजन कराया और इसका प्रस्ताव किया कृष्ण के मित्र मधुमङ्गल ने। उभय पक्ष की गतिविधियों को यथासमय सक्रिय रखने के लिए दोनों ओर निपुण सखी-सखाओं की योजना की गई। इसी प्रवाह में विशाखा की निपुणता से श्रीकृष्ण की रत्नमाला, जिसे श्रीकृष्ण ने भूल से दे दी थी, छिपा ली गयी और घटना की इस चातुरी ने कथानक को आगे बढ़ने का

द्वार खोल दिया। माल्यविपर्यय ने कथानक में चमत्कार उत्पन्न किया। और फलतः नायक-नायिका का प्रथम दर्शन सम्पन्न हुआ किन्तु कथानक में गतिशीलता लाने के लिए उसी समय जटिला के आगमन का सन्निवेश किया गया, जिससे उभय पक्ष की उत्कण्ठा और प्रबल हुई, किन्तु पूर्वयोजना के अनुसार राधा-कृष्ण का यह प्रथम मिलन जटिला के लिए रहस्य ही बना रहा क्योंकि पौर्णमासी के आश्वासन के आधार पर उसने कृष्ण को योगमायिक कृष्ण समझ लिया और राधा के स्वास्थ्यलाभ से परम प्रसन्न हुई। पौर्णमासी की कूटनीति से वह छली गई। राधा के दुःख से आकुल मूढ़-हृदया जटिला धोखा खा गई। नाटककार ने अन्तिम दृश्य-विधान द्वारा अपनी घटना-विन्यास चातुरी का परिचय दे दिया। इस अंक में मुख्य घटना मन्मथ लेख होने के कारण इसका 'मन्मथ' लेख नामकरण सर्वथा उपयुक्त हुआ।

तृतीय अङ्क की कथावस्तु की रूपरेखा—मुख्य घटना राधा संग।

(१) पौर्णमासी द्वारा राधा के पास कृष्ण को ले जाने का संकेत।

(२) कृष्ण द्वारा राधा की प्रतीक्षा।

(३) कृष्ण की प्रेम-परीक्षा के लिये विशाखा का मजाक में अभिमन्यु द्वारा राधा को मथुरा ले जाने की झूठी सूचना देना।

(४) राधा-वियोग की आशङ्का से कृष्ण का मूर्च्छित होना और विशाखा द्वारा आश्वासन प्रदान।

(५) राधा-कृष्ण का द्वितीय साक्षात्कार और दोनों ओर से उलाहनापूर्ण प्रेम भरी वार्ता।

(६) मुखरा का प्रवेश, किन्तु सखियों द्वारा भुलावा देकर उसे घर भेज देना।

(७) राधा-कृष्ण का एकान्त संग।

द्वितीय अङ्क में नायिका का नायक के साथ प्रथम साक्षात्कार हो चुका है। दोनों ही पुनः एक दूसरे से मिलने के लिए उत्कण्ठित हैं अतः इस अङ्क में उन दोनों के प्रेम को अधिक प्रगाढ़ करने के लिए पुनर्मिलन के अनुकूल घटनाचक्रों का विन्यास आवश्यक हो गया। पौर्णमासी तो नाटकीय उद्देश्यपूर्ति का प्रधान पात्र है अतः उसके माध्यम से नाटककार घटना-पट का ताना-बाना बुनता रहता है।

अङ्क के आरम्भ में पौर्णमासी कृष्ण की भावभंगिमा से राधा-विषयक प्रेम का अनुमान करके कृष्ण को राधा-मिलन का संकेत देती है। साथ ही विशाखा को कृष्ण को राधा के पास ले जाने का आदेश देकर स्वयं ललिता के साथ राधा की प्रेम-परीक्षा लेती है। इस उपक्रम से पौर्णमासी को उभय पक्ष के प्रगाढ़ प्रेम का पता लग जाता है। नाटककार इसी उद्देश्य से उभयपक्षीय प्रेम का विशेषकर राधा के प्रति कृष्ण के प्रेमाधिक्य का सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है और भावुकतावश समस्त वृन्दावन को कृष्ण की दृष्टि में राधामय बना देता है। मिलन का संकेत पाकर कृष्ण का प्रतीक्षा करना स्वाभाविक है और राधा के समय पर नहीं आने के कारण आकुल होना भी प्रेमी की यथार्थ मनोदशा का प्रतीक है। इसी समय नाटककार कल्पना का पुट देकर घटना-चक्र में नवीनता ला देता है। प्रेम की लजीली मनःस्थिति अपना घूंघट उठाकर झाँकने लगती है। राधा की सखी विशाखा ही कृष्ण को राधा के पास ले जाने के लिए नियुक्त हुई हैं अतः वह प्रतीक्षा करते हुये कृष्ण के पास पहुँचती है और कृष्ण की प्रेम-परीक्षा के लिए एक उपहास कर बैठती है। राधा और कृष्ण का अनुराग प्रतिदिन बढ़ रहा था। सम्भवतः इसकी गन्ध राधा के तथाकथित पति अभिमन्यु को भी लग गयी हो और वह राधा को गोकुल से हटा कर मथुरा भी ले जाने का उपक्रम कर सकता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी स्त्री की परपुरुषासक्ति सहन नहीं कर सकता। विशाखा ने इसी सम्भावना का उपयोग कृष्ण की भाव-परीक्षा के लिए किया और इस परीक्षा की अनुकूल प्रतिक्रिया भी हुई। राधा-वियोग की आशंका से कृष्ण मूर्च्छित से हो गये और अन्त में विशाखा को उपहास का भेद बता कर कृष्ण को आश्वस्त करना पड़ा। यह योजना नायक-पक्ष के प्रेम-भाव-परीक्षण का सुन्दर उपाय सिद्ध हुई। फलस्वरूप राधा-कृष्ण का द्वितीय मिलन आसानी से हो गया, किन्तु नाटककार बीच में कुन्दलता का प्रवेश करा कर इस मिलन-सुख को कुछ देर के लिए शंकित करके भी सखियों की व्याजोक्ति द्वारा उसे रंगमञ्च से अविलम्ब हटा देता है। सखियाँ भी बहाना बना कर हट जाती हैं और पुनः राधा-कृष्ण का एकान्त संग निर्बाध होता है अतः अङ्क का 'राधा-संग' नामकरण भी उपयुक्त ही है।

चतुर्थ अङ्क की कथावस्तु की रूपरेखा—मुख्य घटना—वेणुहरण।

१—चन्द्रावली-कृष्ण मिलन।

२—बातचीत के सिलसिले में श्रीकृष्ण का गोत्रस्खलन और चन्द्रावली का मान।

३—अनुनय द्वारा चन्द्रावली का मान-भंग।

४—राधा का कृष्ण के समीप आगमन और चन्द्रावली के प्रति कृष्ण की आसक्ति का आभास पाकर राधा का कोप-प्रकाशन।

५—कृष्ण द्वारा राधा का अनुनय और भूल से पुष्पों के साथ राधा के आँचल में मुरली को भी दे देना।

६—राधा द्वारा वेणुगोपन।

७—कृष्ण-राधा का पुनर्मिलन किन्तु मुखरा के आगमन से रंग में भंग।

कृष्ण की प्रियतमाओं में चन्द्रावली का भी प्रमुख स्थान है। कृष्ण-चरित में इसका वर्णन भी मिलता है अतः नाटककार ने उचित स्थान पर इस प्रसंग का भी विनियोग किया है। नाटक के मध्यभाग में प्रतिनायिका चन्द्रावली के प्रेम-प्रसंग का उपन्यास नाटकीय कला-चातुरी का सुन्दर उदाहरण है। नायक कृष्ण का अनुराग राधा के अतिरिक्त अन्य गोपियों पर भी है और वह सबसे अपना मनोरञ्जन करता है। प्रधान नायिका राधा का स्नेह इस स्तर तक पहुँच गया है कि कृष्ण के ऊपर उसके एकाधिकार में दूसरे का हस्तक्षेप असह्य हो सकता है। यह स्थिति नायिका और प्रतिनायिका दोनों ओर समान ही है। अपने प्रियतम की अन्य में आसक्ति उभयपक्ष के लिए असह्य होने के कारण दोनों में मान का प्रसंग स्वभावतः आ ही सकता है। प्रेम-जगत् के इसी तथ्य को लक्ष्य करके नायक-नायिका-स्नेह की मध्यस्थिति में प्रतिनायिका-स्नेह के प्रसंग द्वारा नाटककार ने कथावस्तु में एक नया मोड़ ला दिया है। प्रेम के इस कमनीय प्रसंग में अनेक नायिकावल्लभ नायक का एक दूसरी नायिका के समक्ष गोत्रस्खलन, नायिका-प्रतिनायिका मान और पुनः नायकानुनय से उनके मान-भंग की ललित लीलाएँ सहज ही विलास करने लगती हैं। प्रणय-पथ की इन विविध भाव-भंगियों का प्रदर्शन और नायक-नायिका प्रेम की प्रगाढ़ता का प्रतिपादन ही इस अङ्क की कथावस्तु का वैशिष्ट्य है। नायक-नायिकाओं और उनकी सखियों के पारस्परिक उपालंभ-वचनों का आदान-प्रदान प्रसंग की रमणीयता को और ही चटकीला बना

देता है। इसीलिए नाटककार ने कृष्ण द्वारा राधा के समक्ष चन्द्रावली के तथा चन्द्रावली के समक्ष राधा के नाम का उच्चारण करा कर उभय पक्ष को मान-प्रसंग का अवसर दे दिया है, किन्तु नाटककार इस बात के लिए सावधान है कि दर्शक यह शंका को भूल न कर बैठे कि कृष्ण का स्नेहाधिक्य वस्तुतः किस ओर है? कृष्ण के क्रियाकलापों से वह दर्शकों को यह विश्वास दिला देता है कि उसका झुकाव राधा की ओर अधिक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटककार कृष्ण से एक असावधानी करा लेता है। अनुनय-कार्य में व्यस्त कृष्ण फूलों के साथ राधा के आँचल में वंशी डाल देते हैं, जिसका उन्हें आभास नहीं होता। राधा-कृष्ण की इस असावधानी का लाभ उठा लेती है और वह कृष्ण की मुरली छिपा लेती है। नाटककार वेणुहरण के इस प्रसंग से राधा-कृष्ण के प्रेम को पुनः अग्रसर करने का उपाय ढूंढ लेता है। इस अङ्क में प्रधानरूप से राधा द्वारा कृष्ण के वेणुहरण की घटना घटित हुई है अतः इसका नामकरण भी अन्वर्थ ही है।

अङ्क के अन्त में मुखरा का प्रवेश नायक-नायिका-मिलन में पुनः बाधक सिद्ध होता है, किन्तु इस प्रकार की बाधा उभयपक्ष के प्रेम को और अधिक उद्दीप्त करने के उद्देश्य से ही उपस्थित की जाती है।

पंचम अङ्क की कथावस्तु की रूपरेखा—मुख्यघटना—राधाप्रसादन।

१—राधा को मथुरा ले जाने के अभिमन्यु के निश्चय से पौर्णमासी की चिन्ता।

२—कृष्ण की मुरली के अपहृत होने की सूचना और राधा का मुरली-वादन।

३—वेणुनाद को सुनकर जटिला का आगमन, उसका राधा के हाथ से मुरली छीनना और सुबल की चातुरी से पुनः मुरली की प्राप्ति।

४—मुखरा का चण्डीपूजन के व्याज से राधा को अन्यत्र ले जाना।

५—राधा के वियोग में कृष्ण के मनोविनोद के लिए वृन्दा और सुबल द्वारा ललिता और राधा का वेशधारण।

६—राधा का मान और पुनः कृष्ण का प्रसादन और प्रसंगवश राधा और वृन्दावन का शोभावर्णन।

७—राधा का चन्द्रोपालम्भ और अन्त में कृष्ण-मिलन ।

८—अंक के अन्त में जटिला के आगमन से पुनः रंग में भंग ।

इस अङ्क के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि राधा और कृष्ण के प्रेम की चर्चा व्रज में बढ़ रही थी । बहुत संभव इसकी भनक राधा के तथाकथित पति अभिमन्यु के कानों में भी पड़ी हो अतः सशंकित होकर राधा को कृष्ण के चंगुल से छुड़ाने के लिए उसका प्रयत्नशील होना स्वाभाविक था । फलतः उसने राधा को मथुरा ले जाने का निश्चय कर लिया । इस परिस्थिति ने पौर्णमासी को जिसका प्रधान कार्य राधा-कृष्ण का मिलन कराना है, आन्दोलित कर दिया । वह चिन्तित होकर इस परिस्थिति से राधा को मुक्त करने का उपाय सोचने लगी । राधा की आसक्ति तो कृष्ण के प्रति बढ़ती ही जा रही थी, किन्तु कृष्ण के गोत्रस्खलन से वह भामिनी बन गयी थी । उसको अनुकूल करने का मार्ग प्रशस्त करना नाटककार को अभीष्ट था अतः इस अंक में मुख्यरूप से कृष्ण द्वारा राधाप्रसादन के अनुकूल घटनाओं का उपन्यास किया गया है ।

कृष्ण की मुरली हर ली गयी थी और इसकी सूचना कृष्ण को भी मिल गयी । कथानक में गतिशीलता लाने के उद्देश्य से नाटककार ने राधा द्वारा मुरली-वादन कराया । इसका उद्देश्य था—कृष्ण को भावविह्वल करना, किन्तु घटना ने मोड़ लिया । मुरली की आवाज सुनकर जटिला को श्रीकृष्ण की आशंका हुई और जब वह तथ्यनिर्णय के लिये निकली, तो बात दूसरी ही नजर आयी । मुरली तो राधा के हाथ में थी । उसने मुरली छीन ली, किन्तु श्रीकृष्ण सखा सुबल की चातुरी ने मुरली लौटा ली । इसी समय मुखरा ने चण्डीपूजा के व्याज से राधा को कृष्ण से अलग कर दिया । कृष्ण के लिए स्थिति विषम हो गयी । एक तो राधा मानिनी थी ही । अब उसके सान्निध्य की भी आशा नहीं रही । कृष्ण खिन्न हो उठे ।

अब कृष्ण का मनोविनोद और जटिला का प्रतारण भी आवश्यक था । इसके लिए नाटककार ने सुबल और वृन्दा का सहारा लिया । वेश-परिवर्तन द्वारा दोनों कार्यों की सिद्धि का उपाय सोचा गया । फलतः वृन्दा ने ललिता का और सुबल ने राधा का रूप धारण किया । इस घटना-चातुरी ने नाटककार के दोनों उद्देश्यों की पूर्ति की । कृष्ण का मनोविनोद हुआ और जटिला को धोखा दिया

गया। जटिला की आशंका से मुक्त होकर पुनः राधा-कृष्ण मिलन का सुअवसर आया। इस प्रकार नाटककार बीच-बीच में वियोग की झीनी चादर डालकर उभयानुराग को तीव्र करने में सतत सचेष्ट था।

सखियों के प्रयास से राधा-कृष्ण का मिलन तो होता है, किन्तु राधा किसी बात पर नाराज होकर मान कर बैठती है। पुनः कृष्ण का अनुनय-विनय, सखियों का माध्यम और राधा-प्रसन्नता का क्रम बंध जाता है। आपस में प्रणय-परीक्षा के व्याज से लुका-छिपी भी होती है और अन्त में चतुर नायक कृष्ण अपनी रूठी प्रिया को मनाने में सफल भी होते हैं। चतुर्थ अंक के गोत्र-स्खलन की घटना से कुपित नायिका का पञ्चम अंक में प्रसादन उचित ही था अतः इस अंक का नामकरण 'राधा-प्रसादन' समुचित ही है।

षष्ठ अंक की कथावस्तु की रूपरेखा—मुख्य घटना—शरद् विहार।

१—राधा के शरीर पर कृष्ण का पीताम्बर देखकर जटिला का क्रुद्ध होना, किन्तु विशाखा की वचन चातुरी से उसके भ्रम का निवारण।

२—चन्द्रावली की सखी पद्मा द्वारा ललिता को कृष्ण का एक पत्र समर्पित करना।

३—कृष्ण का वंशीवादन और राधा का विह्वल होकर वंशी को उपालंभ देना।

४—राधा-कृष्ण का पुनः मिलन और कृष्ण के प्रस्ताव पर राधा का कृष्ण के साथ केलिक्रीडा के लिए सप्तपर्ण कुञ्ज में प्रवेश।

५—जटिला के पदार्पण से पुनः राधा-कृष्ण का एक दूसरे से अलग होकर अपने-अपने गन्तव्य स्थान पर जाना।

इस अंक की कथावस्तु घटना-वैचित्र्य की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखती है, क्योंकि इसमें कोई ऐसी घटना नहीं घटी है, जिससे कथा-प्रवाह में कोई चमत्कार आ गया हो। पंचम अंक में राधा-कृष्ण का एकान्तवास हुआ था और केलि-प्रसंग में वस्त्र विपर्यय के फलस्वरूप राधा को जटिला का कोपभाजन बनना पड़ा। कृष्ण के पीताम्बर को राधा के शरीर पर देखने के कारण ही जटिला को आशंका हुई थी, किन्तु नाटककार ने विशाखा का आश्रय लेकर जटिला के संदेह को दूर करने का उपक्रम कर लिया है।

वस्त्र-विपर्यय की घटना से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि नाटककार प्रणय-प्रसंग के एक-एक पहलू को दर्शकों के समक्ष रखने के प्रयास में पूर्ण सफल हुआ है। केलिक्रीडा की विभिन्न चेष्टाओं और उनके परिणामों से दर्शकों को परिचित कराना मानो नाटककार का उद्देश्य रहा हो। यह अंक घटनात्मकता की अपेक्षा वर्णनात्मकता की ओर अधिक झुका-सा दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रावली और राधा की सखियों की पारस्परिक व्यंजनाशैली में प्रयुक्त उक्तियाँ अपने-अपने पक्ष के समर्थन में पर्याप्त सुन्दर प्रतीत होती हैं। कृष्ण और राधा के बीच परस्पर पत्रव्यवहार के माध्यम से दोनों का मिलन, परस्पर उपालंभ और अन्त में कुञ्जकेलि के मनोरम प्रसंग से दर्शकों का पर्याप्त मनोरंजन कराया गया है। अन्त में जटिला का पुनः प्रवेश कथानक को आगे बढ़ाने में सहायता के उद्देश्य से कराया गया है, जो अग्रिम अंक की भूमिका का काम करता है। राधा-कृष्ण का यह विहार शरदृतु की शुभ्र छाया में सम्पन्न हुआ है अतः इसका 'शरद्-विहार' यह नाम उपयुक्त है।

सप्तम अंक की कथावस्तु की रूपरेखा—मुख्य घटना गौरी विहार।

१—अभिमन्यु का पौर्णमासी से राधा को मथुरा ले जाने का आदेश माँगना, किन्तु पौर्णमासी के समझाने पर संतुष्ट होकर अभिमन्यु का प्रस्थान।

२—पद्मा द्वारा चन्द्रावली को कृष्ण-मिलन के उद्देश्य से गौरीतीर्थ ले जाने के उपक्रम से ललिता का चिन्तित होना, किन्तु राधा को गौरीतीर्थ ले जाने का आयोजन करना।

३—चन्द्रावली-कृष्ण मिलन। राधा के अभाव में चन्द्रावली से ही मनोविनोद करने का कृष्ण का निश्चय।

४—कराला का आगमन और गोपियों को बहकाने का कृष्ण पर आरोप, किन्तु ललिता की चातुरी से पद्मा के सिर ही सारे दोषों को मढ़ा जाना फलतः चन्द्रावली को लेकर कराला का प्रस्थान। राधा-कृष्ण मिलन का मार्ग प्रशस्त।

५—राधा का लवङ्गलता कुञ्ज में मिलन और केलिक्रीडा तथा कृष्ण द्वारा राधा का प्रसाधन।

६—राधा-प्रतारण के उद्देश्य से कृष्ण का 'चन्द्रा' यह कहना और राधा का मान करके प्रस्थान।

७—राधा को मनाने के उद्देश्य से स्त्रीवेश में कृष्ण द्वारा राधा के शृङ्गार करने का आयोजन और इस कार्य में वृन्दा से सहायता की प्रार्थना। कृष्ण का निकुञ्ज विद्या का वेश धारण करना और राधा का उस पर आकृष्ट होना।

८—अभिमन्यु का प्रवेश और गौरी से प्रार्थना करती हुई राधा को देखना।

९—निकुञ्ज-विद्या-वेश में विद्यमान कृष्ण को अभिमन्यु द्वारा साक्षात् गौरी देवी समझना, किन्तु राधा को रहस्य का भान हो जाना।

१०—अपने बचाव के लिए राधा द्वारा गौरी-पूजन का बहाना बनाना।

११—अभिमन्यु की भ्रांति का लाभ उठाकर अभिमन्यु के अनिष्ट की बात कह कर कृष्ण द्वारा राधा को वृन्दावन में ही रहकर गौरी-पूजन करने का उपाय बताना।

१२—अभिमन्यु द्वारा अपनी भूल को स्वीकार करना।

१३—पौर्णमासी का आगमन और भरतवाक्य के रूप में कृष्ण से सदा गोकुल में राधा के साथ विहार करने की प्रार्थना।

यह अन्तिम अंक घटना-चातुरी की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। नाटक के इस अन्तिम अंक के अन्तिमांश में अद्‌भुद दृश्य का विधान नाट्यशास्त्रीय-व्यवस्था का निर्वाह कर रहा है। अंक के प्रारम्भ में नायिका राधा को मथुरा ले जाने के उपक्रम की समस्या है, तो अन्त में राधा के गोकुल में ही रहने का समाधान है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटककार ने पुनः वेश-परिवर्तन का आयोजन किया है। यद्यपि यह वेशपरिवर्तन कृष्ण द्वारा हुआ है और उसका उद्देश्य है, भामिनी राधा के शृंगार द्वारा उसका प्रसादन। अपने स्वरूप को प्रच्छन्न रखकर राधा को मनाने का कृष्ण का यह कमनीय उपाय है।

वृन्दा के परामर्श से कृष्ण गौरी का वेश बनाकर गौरीतीर्थ जाते हैं, जहाँ पर राधा द्वारा गौरीपूजन का आयोजन किया गया था। राधा गौरी-वेश में विद्यमान कृष्ण पर आकृष्ट होकर उससे प्रार्थना करती है, उसी समय अभिमन्यु आ जाता है। वह कृष्ण को साक्षात् गौरी समझ लेता है। कृष्ण अभिमन्यु की इस भ्रान्ति का अनुकूल लाभ उठाते हैं। राधा को कृष्ण के इस वेश-विधान का रहस्य ज्ञात हो जाता है, किन्तु वह भी उस समय अपनी चातुरी दिखाती है

और अपने बचाव का सुन्दर उपाय गौरीपूजन का बहाना सोच लेती है। यहाँ पर घटना ने एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। राधा गौरी देवी से प्रार्थना कर रही है। प्रार्थना के विषय में जिज्ञासा कर कृष्ण राधा के प्रति अभिमन्यु की अनिष्ट निवृत्ति ही प्रार्थना का उद्देश्य बताते हैं। इस परिस्थिति से राधा भी फायदा उठाती है और वह गौरी से अभिमन्यु की रक्षा की भीख माँगती है। अभिमन्यु के साथ उसकी माँ जटिला भी है। दोनों अनिष्ट की आशंका से भयभीत होकर बचने का उपाय पूछते हैं। कृष्ण मुस्करा कर राधा को गोकुल में रह कर गौरीपूजन करने का एकमात्र उपाय बतलाते हैं। भीरु अभिमन्यु प्राणभय से मुक्ति का उपाय सुनकर राधा को मथुरा न ले जाने का प्रसन्नतापूर्वक निश्चय करता है। इस प्रकार इस गूढ़ घटना द्वारा राधा के मथुरा जाने का विघ्न दूर होकर गोकुल में कृष्ण के साथ स्थायी मिलन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसी दृश्य ने नाटककार के प्रतिनिधि पात्र पौर्णमासी के राधा-कृष्ण-मिलन कार्य का समापन भी कर दिया है। गौरीवेश में विद्यमान कृष्ण के साथ राधा का विहार सम्पन्न हुआ है अतः इसका 'गौरी विहार' यह नामकरण सर्वथा सार्थक है। अंक-क्रम से समस्त नाटकीय कथावस्तु के पर्यालोचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं, जिनका दिग्दर्शन कराना नाटककार को इष्ट था।

राधा कृष्ण की परकीया है या स्वकीया, इस समस्या का अनुकूल समाधान प्रस्तुत करना नाटककार का प्रमुख लक्ष्य था अतः उसने नाटक के प्रारम्भ में इस समस्या के समाधान के लिए कृष्ण के साथ राधा का नित्य सम्बन्ध बता कर अभिमन्यु के साथ राधा के औपचारिक विवाह का कारण कंसभय का संकेत दिया है। बीच-बीच में वह राधा के मथुरागमन की संभवनाओं का संकेत देता हुआ अन्त मे गौरी वेश द्वारा कृष्ण के साथ वृन्दावन में राधा के रहने का शाश्वत समाधान उपस्थित कर अपना उद्देश्य पूर्ण करता है और इस प्रकार राधा के परकीयात्व का निराकरण कर लेता है, वेणुनाद द्वारा उभयपक्ष का आह्लादन श्रीमद्भागवत की देन है, जिसका उचित विनियोग नाटक में हुआ है। संस्कृत साहित्य मे चित्रदर्शन और मन्मथ लेख प्रणयमार्ग के कमनीय प्रसंग हैं, जिनका उपयोग नाटककार ने भी किया है। संस्कृत साहित्य में मन्मथलेख का

अधिकतर उपयोग नायिका की ओर से ही किया गया है, किन्तु प्रस्तुत नाटक में इसका उपयोग दोनों ओर से किया गया है। वेश-परिवर्तन का उपयोग दो बार किया गया है। गोपी-कृष्ण कथा की दन्तकथाओं में कृष्ण द्वारा स्त्रीवेश में राधा प्रसाधन की घटना का संकेत मिलता है जिसका विनियोग नाटककार ने भी कर लिया है।

अंकों का नामकरण दृश्यविधान की प्रधानता का संकेत देता है। संस्कृत दृश्यकाव्यों में 'मुद्राराक्षस' नाटक में अंकों का नामकरण मिलता है। साथ ही गीतगोविन्द में सर्गों का नामकरण घटनाओं की प्रधानता के आधार पर किया गया है अतः नाटककार ने भी अपने नाटक में घटना-प्राधान्य के आधार पर अंकों का नामकरण किया है।

कथावस्तु का मुख्य केन्द्र वृन्दावन लीला है अतः कृष्ण के सौन्दर्य पक्ष का तथा तदुपयोगी घटनाओं एवं पात्रों का ही ग्रहण किया गया है। अनपेक्षित कथा एवं पात्रों का समावेश नहीं हुआ है। दूती के माध्यम से राधा-कृष्ण प्रणय-लीलाओं के विकास का स्रोत गीतगोविन्द ही प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का प्रधान लक्ष्य राधा-कृष्ण की वृन्दावन लीला का पुष्ट वर्णन करना ही है।

पात्रयोजना भी कथावस्तु के अनुकूल ही हुई है। इस नाटक में एक विलक्षणता यह है कि इसमें पुरुषपात्र की अपेक्षा स्त्रीपात्र की अधिकता है। पुरुषपात्र नौ हैं, किन्तु स्त्रीपात्र १४ हैं। पुरुषपात्रों में मुख्य भूमिका कृष्ण की है और उसके बाद उन्हीं के मित्र मधुमंगल और सुबल की है। प्रतिनायक अभिमन्यु भी यदा-कदा दृष्टिगोचर होता रहता है। शेष पात्रों का नामनिर्देश मात्र ही है। घटनाचक्रों में उनका कोई विशेष महत्व नहीं है।

स्त्रीपात्रों में नायिका राधा प्रतिनायिका चन्द्रावली और कृष्णभक्त गोपी पौर्णमासी प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त राधा और चन्द्रावली की सखियों में ललिता विशाखा, वृन्दा, पद्मा और शैव्या भी विशेष सक्रिय पात्र हैं, जिन्होंने घटनाचक्रों की गतिशीलता में पर्याप्त सहायता दी है। जटिला और मुखरा जैसे स्त्रीपात्रों का उपयोग तो नाटककार ने जानबूझ कर किया है, जिसकी प्रतारणा ही उसका

मुख्य उद्देश्य था। ये सभी पात्र केवल राधा-कृष्ण-मिलन में सहायक घटनाओं के अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिए गये हैं। कथावस्तु से असम्बद्ध एक भी पात्र नहीं है। कृष्णचरित की वृन्दावन लीला के सहायक पात्रों का ही समावेश नाटककार की संयत पात्रयोजना का उदाहरण है।

चरित्रचित्रण—

कृष्ण—'विदग्धमाधव' नाटक के नायक श्रीकृष्ण हैं। ये धीर ललित प्रकृति के दिव्य नायक हैं। इनका सर्वप्रथम दर्शन नाटक के प्रथम अङ्क में विष्कम्भक के बाद ही हो जाता है। श्रीकृष्ण नन्द और यशोदा के लाड़ले हैं। शृंगारात्मक मधुर रस के एकमात्र आलम्बन हैं, वृन्दावनविहारी हैं और सफल वेणुवादक हैं। इनकी वंशीध्वनि से समस्त प्रकृति प्रभावित है—

जातस्तम्भतया पयांसि सरितां काठिन्यमापेदिरे
ग्रावाणो द्रवभावसंवलनतः साक्षादमी मार्दवम्।
स्थैर्यं वेपथुना जहुर्मुहुरगाज्जाडयाद् गतिं जङ्गमां
वंशीं चुम्बति हन्त यामुनतटीक्रीडाकुटुम्बे हरौ॥ १।२५॥

अर्थात् कृष्ण के वंशी बजाने पर सरिताओं के जल कठोर होकर जम गए। प्रस्तर गलकर बहने लगे, कम्पन स्थिर और जंगम पदार्थ गतिहीन हो गये। उस ध्वनि की विलक्षणता ने न केवल परस्पर विपरीत स्वभाव वाले पदार्थों में प्रतिकूल धर्म को ग्रहण कराया, अपितु देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा और शंकर के धैर्य को भी विचलित कर दिया—

अष्टाभिः श्रुतिपुटकैर्नववैणवकाकलीं कलयन्।
शतधृतिरपि धृतिमुक्तो मरालपृष्ठे मुहुर्लुठति॥ १।२८॥

अर्थात् आठ श्रवणपुटों से वंशीध्वनि को सुनकर ब्रह्मा भी धैर्य छोड़ कर हंस की पीठ पर बार-बार लोटने लगे।

इसी प्रकार—उदिते हरिवक्त्रेन्दौ वेणुनादसुधामुचि।
हन्त रुद्र समुद्रेण स्वमर्यादा विलङ्घिता॥ १।२९॥

अर्थात् मुरली ध्वनि के अमृत को बरसाने वाले कृष्ण के मुखचन्द्र के उदित होने पर रुद्र-समुद्र ने अपनी मर्यादा को छोड़ दिया। यह है श्रीकृष्ण

के बाँसुरी-वादन की अनुपम कला जिसकी समता दुर्लभ है। कृष्ण प्रकृतिप्रेमी हैं। वृन्दावन की अनुपम छटा उनके मन को बरवश खींच रही है। वे सौंदर्य के पारखी हैं। राधा के नाम श्रवणमात्र से कृष्ण उत्कंठित हो जाते हैं। राधा के सौन्दर्य के समक्ष उनकी दृष्टि में समस्त संसार का सौन्दर्य मिथ्या है। राधा के प्रति उनका प्रेम स्वाभाविक है। मधुमंगल के पूछने पर राधा के प्रति अपने स्वाभाविक स्नेह का वर्णन करते हुए कृष्ण ने स्वयं कहा है—

यत्र प्रकृत्या रतिरुत्तमानां तत्रानुमेयः परमोऽनुभावः।
नैसर्गिकी कृष्णमृगानुवर्तिदेशस्य हि ज्ञापयति प्रशस्तिम्॥ २।२२॥

अर्थात् जहाँ उत्तम पुरुषों का स्वभावतः अनुराग होता है, वहाँ पर विशेष प्रभाव का अनुमान करना चाहिये, क्योंकि कृष्णमृग का स्वाभाविक संचार स्थान की महत्ता को सूचित करता है। कृष्ण चतुर नागर हैं साथ ही वाक्पटु भी। राधा में आसक्त होकर भी अपनी वाक्चातुरी से सदा राधा की सखियों के समक्ष भावगोपन में सफल दृष्टिगोचर होते हैं। प्रणयक्षेत्र के सूक्ष्म पारखी हैं अतः प्रियतमा की भावपरीक्षा में भी सदा प्रयत्नशील रहते हैं, क्योंकि प्रेमजगत् में उभयप्रार्थना में ही रति की सार्थकता के रहस्य से अवगत हैं। इसीलिए कभी-कभी छिपकर भी राधा की प्रेम-परीक्षा लेते हैं।

यथा—'सखे, साधु विज्ञातम्। तदत्र वृक्षान्तरितौ शृणुवःकिमसौ प्रस्तौति'।

कृष्ण राधा के प्रेम मे इतने पगे हैं कि उसके वियोग में व्याकुल हो उठते हैं। प्रतीक्षा असह्य हो उठती है। राधा के बिना एक क्षण भी बिताना उनके लिए कठिन हो गया है—'त्रुटिरपि विना राधां नेतुं मया न हि शक्यते'। राधा के प्रेम में कृष्ण इतने आतुर हो जाते हैं कि उसकी परिचर्या करने पर भी उतारू हो जाते हैं—'संवाहयाम्यतनुखेदकरम्बितानि'। माल्यार्पण के व्याज से राधा का आँचल-स्पर्श कृष्ण की कर्मचातुरी का सुन्दर उदाहरण है। कृष्ण की विशेष आसक्ति यद्यपि राधा में ही है, किन्तु अपने मनोविनोद के लिए चन्द्रावली में भी अनुरक्त हैं। प्रतिनायिका चन्द्रावली में कृष्ण की आसक्ति राधा की अनुपस्थिति में ही नजर आती है, किन्तु चन्द्रावली के प्रति भी उनका आदर-भाव कम नहीं है। भाव-विह्वलता के कारण 'धारा' के स्थान पर 'राधा' इस गोत्रस्खलन के

जाती है। वह सङ्गीतमर्मज्ञा भी है अतएव कृष्ण के वेणुनाद से आकृष्ट हो जाती है। प्रथम बार सखी द्वारा प्रदत्त कृष्ण के चित्रदर्शन से ही उसके हृदय में उनके साक्षात्कार की लालसा जाग उठती है। भावविह्वला राधा स्नेह और धर्म दोनों के प्रति समान पक्षपात करती दृष्टिगोचर होती है। एक ओर यदि कृष्ण के प्रति अपने नैसर्गिक अनुराग से विवश है, तो दूसरी ओर पतिव्रता धर्म की रक्षा के लिए भी चिन्तित है—

सा कल्याणी कुलयुवतिभिः शीलिता धर्मशैली
द्रागस्माभिः कथनचिनयोत्फुल्लमुल्लङ्घनीया।
हा दृग्भङ्गीपरिमलकेलाकर्मठोऽयं कथं वा
हातुं शक्यः पशुपनगरीनागरीनागरेन्द्रः ॥ २।१४॥

कृष्ण के प्रथम साक्षात्कार से ही वह आनन्दविभोर हो जाती है। निरन्तर कृष्ण-सामीप्य की अभिलाषिणी बन जाती है और सखियों के परामर्श पर कृष्ण-को प्रेमपत्र लिखकर प्रथम प्रणय-याचिका बन जाती है। कृष्ण के अभाव में चिन्ता से आतुर हो उठती है। वह बार-बार मुरली को तथा कृष्ण को उपालम्भ देने लगती है। राधा के कृष्णविषयक अनुराग की अतिशयता का एक सुन्दर उदाहरण है—कृष्ण को उपालंभ देती हुई राधा विशाखा को अपने गले से एकावली उतार कर जब दे देती है, तो विशाखा रोने लगती है। उस समय विशाखा को सान्त्वना देती हुई राधा कह रही है—

अकारुण्यः कृष्णो यदि मयि तवागः कथमिदं
मुधा मा रोदीर्मे कुरु परमिमामुत्तरकृतिम्।
तमालस्य स्कन्धे विनिहित भुजावल्लरिरियं
यथा वृन्दारण्ये चिरमविचला तिष्ठति तनुः ॥ २।४७ ॥

अर्थात् यदि कृष्ण मेरे प्रति निर्दय हैं, तो इसमें तुम्हारा दोष क्या। रोना छोड़कर मेरी अन्तिम क्रिया करो। तमालवृक्ष की शाखा में लटकी भुजलता वाला मेरा शरीर जिस प्रकार वृंदावन में अचल रहे, वैसा करो। कृष्ण के वियोग में प्राणों का उत्सर्ग कर देने पर भी कृष्ण के समान वर्ण वाले तमालवृक्ष से संयोग प्राप्त करने की राधा की अन्तिम इच्छा है। यह राधा के प्रेमाधिक्य का उदाहरण है।

कारण मानिनी चन्द्रावली को प्रसन्न करने के लिए कृष्ण चन्द्रावली की चापलूसी भी करने में नहीं चूकते हैं। वे उक्तिवैचित्र्य से चन्द्रावली को मना भी लेते हैं—

एकं प्रयाति परिचर्य चकोरराजी,
चन्द्रं प्रिये निजमनोरथपूरपूर्तिम्।
चन्द्रावली किमु ममाक्षि चकोरयोस्त्वं,
प्रीतिं द्वयोरपि न वास्यसि सेव्यमाना ॥४।२०।

अर्थात्—चकोरसमूह केवल एक चन्द्रमा की सेवा करके ही सकल मनोरथ होता है। तुम चन्द्रसमूह होकर भी सेवारत मेरे दो नेत्र चकोरों की मनःकामना पूर्ण नहीं करोगी? उक्ति की यह विलक्षणता मन को मुग्ध कर लेती है। कृष्ण जानबूझ कर भी राधा के समक्ष चन्द्रावली का नाम लेकर राधा की प्रतारणा कर बैठते हैं। इसमें उनका स्वारस्य नायिका को मानवती बनाकर प्रेम की उत्कण्ठा उत्पन्न करना ही है। कृष्ण राधा के प्रेम में इतने रंगे हैं कि समस्त त्रिभुवन उन्हें राधामय ही दृष्टिगोचर होता है—

राधा पुरः स्फुरति पश्चिमतश्च राधा……।
राधामयी मम बभूव कुतस्त्रिलोकी ॥ ५।१८॥

प्रेम की यही अलौकिक अवस्था है, जिसकी प्रशंसा प्रेमजगत् में की जाती है। कृष्ण परम चतुर भी हैं। वे वेश-परिवर्तन द्वारा प्रियाप्रसादन का उपाय ढूँढते हैं और परिस्थिति का सुन्दर उपयोग भी करते हैं। गौरीवेश में अभिमन्यु और जटिला की एक साथ प्रतारणा और राधा की निन्यसन्नति उनके प्रत्युत्पन्न-मतित्व का सुन्दर उदाहरण है। वे गोपियों के, विशेषकर राधा के सर्वस्व हैं। उनके सभी प्रकार के सम्बन्धों के मूर्तरूप हैं। प्रस्तुत नाटक में कृष्ण के ईषत् किशोर ललित चरित्र का चित्रण किया गया है।

राधा—'विदग्धमाधव' की नायिका राधा है। षोडश वर्ष देशीया राधा सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति और आनन्द की कौमुदी है। वह कृष्ण की नित्यप्रिया है, साथ ही उनकी ह्लादिनी शक्ति भी। यद्यपि औपचारिक दृष्टि से वह अभिमन्यु की परिणीता है, किन्तु कृष्ण को ही इसने सदा अपना प्रियतम माना है। कृष्ण के प्रति इसका स्वाभाविक आकर्षण है अतः उनकी नामचर्चा से ही उत्कण्ठित हो

कृष्ण-प्रेम में पगी राधा कभी-कभी कृष्ण पर रोष भी प्रकट करती है। कृष्ण के आँचल पकड़ लेने पर उन्हें फटकारती हुई कहती है—

"मुञ्च मुञ्चाञ्चलम्। इतो गत्वा आर्यां विज्ञापयिष्यामि"।

वह कृष्ण की अनन्य प्रणयिनी है। प्रेम की असफलता में कृष्ण को दोषी न मानकर अपने भाग्य को ही कोसती है—

संकोचं त्यज देव दैवहतया न त्वं मया दूष्यते ॥ ४।४० ॥

राधा अपने मान के कारण जब कृष्ण-संयोग का अवसर खो देती है, तो उसके लिए पश्चाताप भी करती है—

धिग्वामं विधिमस्तु येन गरलं मानाभिधं निर्ममे ॥ ५।७ ॥

कृष्ण के गोत्रस्खलन से रुष्ट राधा में चन्द्रावली के प्रति सौतभाव का भी दर्शन होता है। वह इसके लिए कृष्ण की प्रतारणा कर मान कर बैठती है। अपने प्रेम में मुरली को भी बाधक मानकर उससे ईर्ष्या करके उसे उपालम्भ दे देती है। राधा लज्जावती और भयभीता भी है। जटिला के भय से आक्रान्त राधा अपनी रक्षा के लिए विशाखा से प्रार्थना करती है—'हला त्वमेव शरणम्'। विशाखा के शब्दों में राधा लज्जा की साक्षात् अवतारणा है।

राधा परम चतुरा है। अन्तिम अंक के अन्त में गौरीवेश में कृष्ण को पहचान कर भी अभिमन्यु और जटिला के समक्ष अपनी अनभिज्ञता का तथा अपने पति अभिमन्यु की रक्षा के लिए गौरी प्रार्थना का सुन्दर अभिनय करती है। यह दृश्य उसकी चतुरता का सुन्दर उदाहरण है।

राधा कृष्ण की सहचरी और नित्य आनन्ददायिनी मूर्ति है। वह भगवान् के रास की रासेश्वरी है। वह कृष्ण के प्रेमरस की कादम्बिनी है। वह तारुण्य, कारुण्य, सारल्य और लावण्य की पराकाष्ठा है। वह कृष्णानुरक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है। उज्ज्वल रस की दिव्यज्योति है। स्नेह-सरोवर में विकसित होने वाली सर्वश्रेष्ठ कनककंजकलिका है। प्रेम की प्रतिमा है। धार्मिक जगत की रासेश्वरी और कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है। यही गौड़ीय वैष्णवों की महाभावस्वरूपा है। भारतीय भक्त समाज इस नारीरत्न की छायाव्यतिकरसौन्दर्यवृष्टि से अनुप्राणित है। राधा काव्यजगत् की अनुभूति, कल्पना और माधुरी है।

पौर्णमासी—राधा के बाद स्त्रीपात्रों में चारित्रिक दृष्टि से पौर्णमासी का महत्वपूर्ण स्थान है। यह उज्जयिनी निवासी सान्दीपनि मुनि की माता और देवर्षि नारद की शिष्या है। यह कापायवस्त्र को धारण करने वाली तपस्विनी है। इसका प्रधान कार्य है—राधा-कृष्ण का संयोग कराना। अपने गुरु नारद से गोकुल में राधा-कृष्ण के अवतार की बात जानकर वह परब्रह्म स्वरूप कृष्ण और आद्याशक्ति राधा के पारस्परिक संयोग के उद्देश्य से ही उज्जयिनी छोड़ कर गोकुल चली आयी है। कृष्ण में इसकी प्रगाढ़ भक्ति है। वह कृष्ण को पुरुषोत्तम और राधा को नारी-रत्न मान कर उन दोनों की सेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता मानती है। नाटक के प्रारम्भ में ही वह कृष्णभक्ति की पृष्ठभूमि तैयार कर अपना कार्यक्रम निश्चित करती है। कृष्ण का राधा से सर्वप्रथम परिचय पौर्णमासी ही कराती है। वह निरन्तर दोनों के मिलन कार्य का मार्ग प्रशस्त करती रहती है। इन दोनों के संयोगपथ में आने वाली बाधाओं का निवारण भी यथासंभव करती रहती है। अपने उद्देश्य की सफलता के लिए यह कृष्ण के सखाओं तथा राधा की सखियों से निरन्तर सहायता लेती रहती है। राधा के ऊपर ग्रहग्रह का आरोप लगाकर कृष्णदृष्टि से ही उसकी मुक्ति का उपाय राधा के गुरुजनों को बताकर राधा-कृष्ण मिलन करा देती है। राधापति अभिमन्यु को विश्वास दिला कर राधा को मथुरा ले जाने से, उसे व्याज से रोकने में सफल होती है और अपनी योगविद्या के प्रभाव के माध्यम से राधा की सास जटिला को धोखा भी देती है। राधा-कृष्ण मिलन का समस्त घटनाचक्र और समस्त सक्रिय पात्र इसी को केन्द्र मानकर गतिशील दृष्टिगोचर होते हैं। समय-समय पर कृष्ण में ईश्वरत्व का आरोप करके प्रेक्षकों के हृदय में भक्ति की धारा भी प्रवाहित करती है। यह राधा और कृष्ण के मनोभावों की सफल परीक्षा लेकर दोनों को प्रेमपथ में अग्रसर कराती है। यह गोपियों के विश्वास की आधारशिला है। स्वाभाविक स्नेह की पोषिका है और नायक-नायिका दोनों पक्षों को मिलाने वाली क्रियाओं की आयोजिका भी है। मेरी दृष्टि में पौर्णमासी ही नाटककार का प्रतिनिधि पात्र है जिसके माध्यम से उसने नाटक का परम प्रयोजन राधा-कृष्ण-मिलन का कार्य सम्पन्न कराया है।

चन्द्रावली—प्रस्तुत नाटक की प्रतिनायिका चन्द्रावली है। यह रूपसी गोपी यद्यपि गोवर्धन मल्ल की परिणीता है तथापि कृष्ण में इसकी प्रगाढ़ आसक्ति-

है। इसका दर्शन प्रेक्षकों को नाटक के मध्य और अन्त में होता है। कृष्णदर्शन के लिए उत्कंठित चन्द्रावली मुरली की तान सुनकर उसे उपालंभ देने से नहीं चूकती है। साथ ही कृष्ण के साक्षात्कार होने पर अपने प्रति कृष्ण की उदासीनता का अनुमान कर उनको भी उपालंभ कर बैठती है—

"सुन्दर भ्रमरस्येव नवनवानुसारिणी ते प्रकृतिः।
कथं चिरासंगिनीरसात् पद्मिनीस्वभिरन्ताम्" ॥

कृष्ण के गोत्रस्खलन से राधा में उनकी आसक्ति की आशंका से वह रुष्ट भी हो जाती है, किन्तु स्वभावतः वह धीरा है अतः अपने मनोभावों को संयत रखने में समर्थ है। स्वयं कृष्ण उसके संयत भाव की प्रशंसा करते हैं—

न्यविशत नयनान्ते क्वापि सारल्यनिष्ठा
वचसि च विनयेन स्तोत्रभंगी न्यवात्सीत्।
अजनि च मयि भूयान् संभ्रमस्तेन तस्या
व्यवृणुत हृदि मन्युं सुष्ठु दाक्षिण्यमेव ॥ ४।१२ ॥

चन्द्रावली अपनी सखियों के माध्यम से कृष्ण से मिलने का उपक्रम करती है और कृष्ण के मनोविनोद का सहारा भी बन जाती है। राधा की आशंका उसके सौतभाव को जगा देती है। कृष्ण के मार्ग रोकने पर वह कृत्रिम क्रोध का भी सहारा लेती है, किन्तु श्रीकृष्ण की चाटुकारिता के आगे उसकी एक भी नहीं चलती है। वह प्रकृतिप्रेमी भी है अतः वृन्दावन की शोभा का भी वर्णन कर लेती है। चन्द्रावली अपनी सास कराला की उपस्थिति से भयाक्रान्त भी हो जाती है। वह कृष्ण-मिलन की सिद्धि के लिए चण्डिका को उपासना भी करती है। संक्षेप में उसके चरित के लघु कलेवर से हम इतना ही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्रति-नायिका होकर भी उसमें प्रतिनायिका के लिए अपेक्षित गुणों का अभाव है। वह कृष्ण की भोली-भाली प्रिया है, जिसका उपयोग राधा के अभाव में अपने मनो-विनोद के लिए कृष्ण कर लिया करते हैं। उसमें न विरह की तीव्र अनुभूति है और न मिलन की पूर्ण ललक ही। वह राधा की तरह कृष्ण के लिए तड़पती भी नहीं है। वह तो सीधे-सीधे ढंग से अपने को कृष्ण के हाथों सौंप देती है। प्रणयजगत के दाव-पेंच से अनभिज्ञ है अतः प्रस्तुत नाटक के परिप्रेक्ष्य में

चन्द्रावली का चरित उतना अधिक नहीं उभर सका है, जितने की आशा प्रेक्षकों को थी।

कृष्ण के गुरुजनों में नन्द और यशोदा का बड़ा ही संक्षिप्त परिचय हमें नाटक के प्रारम्भ में प्राप्त होता है।

कृष्ण को विवाह योग्य समझ कर वे दोनों आपस में कृष्ण के लिए किसी अनुकूल बालिका की खोज की चर्चा भर कर लेते हैं। अन्त में दोनों ही अपने आँखों के तारे श्रीकृष्ण पर अमित वात्सल्य रस का गागर उड़ेलकर सदा के लिए रंगमंच से विदा ले लेते हैं। इस स्वल्प प्रसंग में भी दोनों का स्नेहिल अभिभावकत्व पूर्णतया आलोकित हो उठा है।

मधुमंगल तथा सुबल—नायक श्रीकृष्ण के मित्रों में मधुमंगल और सुबल का स्थान प्रमुख है। मधुमंगल श्रीकृष्ण का विदूषक सखा है, जो कृष्ण के प्रेम-प्रसंग में सहायता देकर उनका मनोरंजन भी करता है। यह सान्दीपनि मुनि का पुत्र है और जाति का ब्राह्मण है। इसका दर्शन प्रेक्षकों को नाटक के प्रारंभ से लेकर अन्त तक होता है।

यह कृष्ण का केवल मनोरञ्जन ही नहीं करता, अपितु उन्हें समय-समय पर सत्परामर्श भी देता है। वह कृष्ण के हार्दिक भावों को उनकी चेष्टाओं से जान लिया करता है। वह प्रथम कोटि का डरपोक और मोदकप्रिय पेटू भी है। वेणुध्वनि से प्रभावित आकाशचारी देवताओं को राक्षस समझ कर भागने का भी उपक्रम करता है और यशोदा से लड्डू पाने के लिये लालायित भी हो उठता है। मधुमंगल कृष्ण का अन्तरंग मित्र है अतः उन्हें प्रणयपत्र लिखने का परामर्श देता है और राधिका से प्राप्त प्रेमपत्र को पढ़ने का काम भी वही करता है। वह कृष्ण के राधा-संयोग में सर्वत्र सहायक सिद्ध हुआ है। नायिका तथा उनकी सखियों से आवश्यकता पड़ने पर कृष्ण की ओर से वाग्युद्ध भी करने में नहीं चूकता। वह अपनी वाचालता के कारण कभी-कभी कृष्ण की डाँट-फटकार भी सुनता है। सखियों के साथ वाक्छल का तथा जटिला के ऊपर अपने सहज ब्राह्मणधर्मशाप का भी अविलम्ब सहारा लेता है। नायक के विदूषक मित्र के सभी गुणों से युक्त मधुमंगल का चरित्र अवश्य सराहनीय है।

सुबल भी कृष्ण का अन्तरङ्ग सखा है। यह कृष्ण का नर्मसचिव है। इसका दर्शन सर्वप्रथम चतुर्थ अङ्क में होता है। यह कृष्ण की चन्द्रावली केलि-क्रीडा के प्रसंग में विशेष सहायता करता है। कृष्ण का मनोविनोद करना इसका मुख्य उद्देश्य है। राधा-विरह से आकुल कृष्ण के मनोरंजन के लिए यह राधा का वेश भी धारण करता है। इस प्रकार सुबल कृष्ण का सच्चा नर्मसचिव सिद्ध होता है। प्रणय-प्रसंग में मित्रद्वय का प्रयत्न स्तुत्य है।

ललिता तथा विशाखा—नायिका राधा की सखियों में ललिता और विशाखा अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। इनमें ललिता राधा की सचेतिका सखी है, जो उसको कृष्ण-प्रेम के मार्ग में समझ-सोच कर कदम उठाने का परामर्श देती रहती है। यही राधा को सर्वप्रथम कृष्ण नाम से परिचित कराती है। यह राधा की हार्दिक भावनाओं को शीघ्र समझ कर उसे कृष्ण से मिलाने का सफल उपक्रम करती है। यह राधा की सजगता से रखवाली भी करती है और कृष्ण की दृष्टि में उसके महत्त्व को बढ़ाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहती है। ललिता राधा के पक्ष का प्रबलता से समर्थन करने वाली सखी है, जो समय-समय पर राधा के प्रति कृष्ण की प्रेम-परीक्षा भी लेती रहती है। यह राधा के मान की पोषिका है। राधा को मानवती बनाने में इसका विशेष हाथ रहता है साथ ही अपनी सखी की मनोगत भावनाओं को कृष्ण के समक्ष सफलता तथा चतुरतापूर्वक व्यक्त करने में सफल है। प्रतिनायिका चन्द्रावली के प्रेम-जाल से कृष्ण को उन्मुक्त करने में सफल होती है और अन्त में राधा का कृष्ण से नित्य संयोग का निर्बाध मार्ग प्रशस्त करने में कृतकार्य होती है। यह नितान्त वाक्पटु, चतुर और तीक्ष्ण बुद्धि की राधासखी है, जिस पर राधा को गर्व है। ललिता राधा के लिए केलि-कुञ्ज की भी रचना करती है। विशाखा भी राधा की अन्तरङ्ग सखी है। यह चित्रकर्म में परम प्रवीण है और इसी ने सर्वप्रथम राधा को कृष्ण का चित्र बनाकर समर्पित किया है। यह राधा की सच्ची हितैषिणी सखी है। यह राधा के विरह दुःख से सदा दुःखी रहती है और कृष्ण के प्रति निश्छल अनुराग करने की राधा को सदा परामर्श देती है। यह कृष्ण में राधा की आसक्ति बढ़ाने में तत्पर रहती है। यह राधा की परिहासपरायणा दूती भी है, जो कृष्ण का

परिहास करने में नहीं चूकती। यह राधा को व्यावहारिक ज्ञान का भी उपदेश देती है। राधा-कृष्ण मिलन में सखी द्वय का भगीरथ प्रयास प्रशंसनीय है।

पद्मा तथा शैव्या—प्रतिनायिका चन्द्रावली की प्रिय सखियों में पद्मा और शैव्या विशेष सक्रिय पात्र हैं, जो चन्द्रावली को कृष्ण से मिलाने के कार्य में सतत प्रयत्नशील नजर आती हैं। पद्मा चन्द्रावली को कृष्णविषयक प्रेम के प्रति सान्त्वना वचनों से आश्वस्त किया करती है और साथ ही कृष्ण-मिलन के उपायों की चिन्तना करती रहती है। पद्मा चन्द्रावली की चतुर सखी है इसीलिए वह राधा पक्ष का प्रबल समर्थक कृष्णसखा मधुमङ्गल को भी फोड़कर अपने मन्तव्य सिद्ध करने में सफल हो जाती है। यह नितान्त वाक्पटु है और प्रसंगवश राधा सखी से चन्द्रावली के प्रेम-समर्थन में व्यंजनापूर्ण उक्तियों का प्रयोग करती है।

इसका प्रथम दर्शन चतुर्थ अङ्क में होता है। शैव्या भी कृष्ण-मिलन में चन्द्रावली की पर्याप्त सहायता करती है किन्तु वह कभी-कभी चन्द्रावली की विरहवेदना से आकुल होकर उपाय-शून्य-सी नजर आती है। वस्तुतः शैव्या में पद्मा जैसी तत्परता नहीं है, फिर भी सखीद्वय का उद्योग चन्द्रावली के लिए उपयोगी है।

नान्दीमुखी-वृन्दा—राधा की सहायिकाओं में इन दोनों का भी स्मरण प्रसङ्ग प्राप्त हो है। नान्दीमुखी पौर्णमासी का परिजन है और उसकी आज्ञा से कृष्ण-राधा मिलन कार्य में उसकी सहायिका नियुक्त हुई है। यह पौर्णमासी के निर्देशानुसार राधा-कृष्ण मिलन कार्य में पर्याप्त सहायता पहुँचाती है।

वृन्दा वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी है। यह राधा-कृष्ण-मिलन-कार्य में वृन्दावन के वातावरण को अपनी प्रेरणा से अनुकूल बनाकर उद्दीपन का मार्ग प्रशस्त करती है। साथ ही कृष्ण विनोद के लिए सुबल के साथ ललिता का वेश भी धारण करती है और कृष्ण के वेश परिवर्तन में सहायता देकर राधा-प्रसादन का कार्य सरल कर देती है। इन दोनों का कार्यकलाप भी राधा-कृष्ण-संयोग को लक्ष्य कर ही प्रवृत्त है।

जटिला-कराला तथा मुखरा—नायिका राधा और प्रतिनायिका चन्द्रावली के गुरुजनों में जटिला, मुखरा और कराला ये तीन वृद्धा गोपियाँ हैं, जिनका प्रधान कार्य राधा और चन्द्रावली को कृष्णसम्पर्क से दूर रखना है।

जटिला राधापति अभिमन्यु की माँ और राधा की सास है। मुखरा राधा की नानी है। मुखरा ने ही राधा का विवाह अभिमन्यु के साथ कराया है। यह यशोदा की धायी भी है। इसका दर्शन सर्वप्रथम नाटक के प्रारंभिक अंक में राधा की अस्वस्थता का वर्णन करते समय होता है। जटिला को कृष्ण पर गोपियों को वहकाने का सन्देह है अतः वह उसे धूर्तराज की उपाधि से विभूपित करती है। यह क्रोधी स्वभाव की मूढा गोपी है। यह प्रायः राधा-कृष्ण के मिलन समय में ही अकस्मात उपस्थित होकर विघ्न पहुँचाया करती है। यह अपनी जड़ता के कारण कृष्ण, पौर्णमासी, ललिता और मधुमंगल प्रभृति के द्वारा वरावर प्रतारित होती रहती है। नाटक के अन्त में कृष्ण ने इसे खूव मूर्ख वनाया है। कराला चन्द्रावली की सास है। इसे भी कृष्ण पर गोपियों को वहकाने का संदेह है और यह भी कृष्ण को फटकारती है। इस प्रकार नाटक में इन तीनों गोपियों का कार्यव्यापार कृष्ण विरोधी दिखाया गया है।

अभिमन्यु—इस नाटक का प्रतिनायक अभिमन्यु है। नाटक के प्रारंभ में इसकी चर्चा मौर्णमासी के द्वारा हुई है। यह राधा का पति है। कंस के चंगुल से राधा को वचाने के लिए ही इसके साथ राधा के पाणिग्रहण का स्वांग रचाया गया है। यह राधा का पति होकर भी उसके संगसुख से प्रायः वंचित ही रहता है। राधा और कृष्ण के पारस्परिक अनुराग की गंध भी इसे लग जाती है फलस्वरूप यह राधा को मथुरा ले जाने का निश्चय करता है, किन्तु पौर्णमासी के वचनों पर विश्वास कर अपने निश्चय से विरत हो जाता है। यह डरपोक और बुद्धू भी है। नाटक के अन्त में छद्मवेश में कृष्ण द्वारा राधा को आलिंगित देखकर भी वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ ही रह जाता है और वहाँ पर अपने मृत्युभय से आतंकित होकर राधा को मथुरा न ले जाने की स्वीकृति दे देता है। वह सीधा सादा गोप युवक है, जो कृष्ण और पौर्णमासी के वाग्जाल में फंस जाता है और उसकी सरलता और बुद्धिहीनता का लाभ नायक कृष्ण उठा लेते हैं।

इस प्रकार प्रतिनायक की दृष्टि से सर्वथा कमजोर अभिमन्यु अपनी परिणीता को कृष्ण के प्रेमपाश से नहीं वचा पाता है। इस नाटक में अभिमन्यु प्रतिनायक का विडम्वनामात्र ही वन कर रह गया है।

पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य पर विहंगम दृष्टि डालने पर यह प्रतीत होता है कि जितना सुगठित चरित्र अपेक्षित था, उतना प्रेक्षकों के समक्ष उपस्थित नहीं हो सका। विचार करने पर उसका मुख्य कारण घटनाचक्रों की सीमित भूमि ही प्रतीत होता है। नाटकीय कथावस्तु का क्षेत्र सीमित होने के कारण प्रधान तथा गौण पात्रों के जीवन के केवल ललित पक्ष का ही उद्घाटन हो सका है। सौंदर्यपक्ष का सुन्दर चित्रण अवश्य हुआ है किन्तु शील और शौर्य पक्ष तो प्रायः अछूता ही रह गया है। चरित्र-विकास का यह संकोच भी सोद्देश्य ही किया गया है। संक्षेप में नायक श्रीकृष्ण का चरित्र विदग्धतापूर्ण है। नायिका राधा का चरित्र स्वाभाविक अनुरागमंडित समर्पणपरायण है। सखाओं और सखियों का चरित्र उत्साहपूर्ण है, पौर्णमासी का उपायपरायण और जटिला प्रभृति विरोधी पक्षों का चरित्र विघ्नपरायण है। प्रतिनायक अभिमन्यु का चरित्र क्रियाशून्य उदासीनतापरायण है। इस प्रकार चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह नाटक विशेष उपादेय नहीं सिद्ध हो सका है। हाँ, भगवान कृष्ण और भगवती राधा की विलासमयी शृङ्गारिक चेष्टाओं के विभिन्न पहलुओं का सांगोपांग वर्णन भक्तों का हृदयावर्जक अवश्य सिद्ध हुआ है।

काव्य-प्रतिभा—'विदग्ध माधव' श्रीरूप गोस्वामी की काव्य-प्रतिभा का सुन्दर उदाहरण है। इसमें नाटककार ने भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर निर्वाह किया है। भावपक्ष में अनुभूति का और कलापक्ष में अभिव्यक्ति का प्राधान्य होता है। भावपक्ष का मूल्याङ्कन रससंचार की दृष्टि से तथा कलापक्ष का सर्वीक्षण शैली विन्यास की दृष्टि से किया जाता है। प्रसंगानुसार श्रीरूपने अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों का उपयुक्त समावेश किया है।

रसनिष्पत्ति की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाटककार ने रसपक्ष के अन्तर्गत आने वाले रस, भाव, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता आदि का यथास्थान अनुकूल उपन्यास किया है।

विदग्ध माधव नाटक है अतः साहित्यशास्त्र के नियमानुसार नाटक का प्रधान रस वीर या शृंगार होता है[1]। साथ ही रसविचार का प्रधान केन्द्र

---

१. एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः शृंगार एव वा। (दशरूपक)

नाटक का अन्तिम फल होता है। नायक द्वारा अन्तिम फल के रूप में जिस रस का आस्वादन होता है, वही उस नाटक का मुख्य रस माना जाता है।

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु के सूक्ष्म विवेचन से शृङ्गाररस की सामग्री का प्राधान्य प्रतीत होता है।

प्रस्तुत नाटक का मुख्यफल राधा-कृष्ण का नित्यसंयोग है। इसी मुख्यफल के उद्देश्य से समस्त घटनाओं का विन्यास किया गया है। इसमें श्रीकृष्ण नायक हैं और अभिमन्यु प्रतिनायक है। राधा नायिका है और चन्द्रावली प्रतिनायिका। शृंगाररस का आलंबन विभाव श्रीकृष्ण हैं और आश्रय राधा। राधा के हृदय में कृष्ण विषयक रति स्थायी भाव है। वृन्दावन का मनोहर दृश्य, यमुना तटवर्ती एकान्त कुञ्ज, वसन्त का सरस वातावरण, और मलयानिल का सुखद स्पर्श तथा कृष्ण के गुण, चेष्टा एवं प्रसाधन उद्दीपन विभाव हैं। परस्पर अनुराग की स्थिति में श्रीकृष्ण आश्रय और राधा आलम्बन के रूप में ग्रहण किये गये हैं। सात्त्विक भावों में स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग और वेपथु के उदाहरण हैं। शृङ्गार रस में भी विप्रलंभ और संभोग—इन दोनों भेदों का समावेश किया गया है। अन्तिम परिणति संभोग शृंगार की ही हुई है किन्तु विप्रलंभ के विना संभोग की पुष्टि संभव नहीं है अतः विप्रलंभ के अन्तर्गत पूर्वराग के प्रायः सभी अंगों का समावेश किया गया है। पूर्वराग के चित्रदर्शन से लेकर कृष्णदर्शन से पूर्व श्रवण से स्मृति तक की प्रत्येक अवस्था का सुन्दर चित्रण राधा में किया गया है।

संभोग शृङ्गार में भी समृद्धि, वर्त्मरोधन तथा कुञ्जादि लीनता का वर्णन मिलता है।

इस प्रकार विदग्ध माधव नाट्यशास्त्र की दृष्टि से शृङ्गाररसप्रधान नाटक माना जा सकता है।

यहाँ पर एक विषय विचारणीय है। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में शृङ्गार रस को ही मधुर या उज्ज्वलरस के नाम से अभिहित किया जाता है, किन्तु शृङ्गार रस से मधुर रस में वैलक्षण्य यह है कि जब शृङ्गार रस में रजोगुण और तमोगुण का अवशेष मिट जाता है और उसमें केवल सत्वगुण की ही सत्ता अवशिष्ट रह जाती है, तो वही दिव्यरस मधुर या उज्ज्वल रस कहलाता है।

इस रस का स्थायी भाव है—मधुरा रति या प्रियता, जो कृष्ण और राधा के संभोग का आदि कारण है। श्रीकृष्ण की कान्तभाव से उपासना करना ही माधुर्यरस है। यह भक्ति की भी अन्तिम उदात्ततम दशा मानी जाती है। यहाँ भगवान् कृष्ण के साथ किसी प्रकार मर्यादा निर्वाह का कोई प्रसंग नहीं उठता। यह लौकिक दाम्पत्य से सर्वथा भिन्न होता है। लौकिक दाम्पत्य कामवासना पर आश्रित होनेवाला भाव है, जिसमें स्वार्थ की तीखी गन्ध रहती है, किन्तु माधुर्य रस दिव्य वस्तु है, जिसमें निःस्वार्थ प्रेम का प्रशस्त आलोक रहता है। सत्त्वगुण के उद्रेक में ही इसका पर्यवसान होता है। इस रसदशा में राधा और कृष्ण का क्षणिक वियोग भी नहीं होता है। ये दोनों परस्पर प्रेम के उत्कर्ष का स्वयं आस्वादन लेते हैं और दूसरे को भी उसकी मधुरता का पान कराते हैं। प्रेमी के लिए सर्वस्व समर्पण की भव्यभावना का उन्मेष इस दशाविशेष का स्पष्ट चिह्न है। यहाँ पर रागानुगा भक्ति का चरम उत्कर्ष होता है अतः भक्त कवि श्रीरूप ने इस आनन्दमयी दशा की अभिव्यञ्जना इस रूपक में बड़ी ही सरसता से की है। इस रसदशा में नायक कृष्ण में लौकिक उपपतित्व तथा नायिका राधा में परकीयात्व जन्य हेयत्व का आरोप नहीं किया जा सकता है। इसका स्पष्ट निर्देश श्रीरूप ने 'नाटकचन्द्रिका' और 'उज्ज्वलनीलमणि' में किया है[1] इस प्रकार रसदृष्टि से इस नाटक की दोहरी स्थिति दृष्टिगोचर होती है। कृष्ण और राधा का परस्परानुराग यदि उन दोनों में दिव्य मधुर रस का परिपोषण करता है तो वही परस्परानुराग भक्तों के हृदय में भक्ति रस का उन्मेष भी करता है अतः नायक-नायिका की दृष्टि से पुष्ट मधुर रस ही भक्तों की दृष्टि से भक्ति रस में परिणत हो जाता है। रस संचार के इन्हीं द्विविध पहलुओं का समावेश भक्त नाटककार का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है।

भावों की अनुभूति में नाटककार अपने को नाटकीय पात्रों के मनोभावों के साथ एकाकार कर देता है। किसी भाव की जितनी भी गहराई हो सकती है,

---

१—यत्तद्दोषोपपत्त्योरत्र गौणत्वं कथितं बुधैः
तत्तु कृष्णञ्च गोपीञ्च विनेति प्रतिपादितम्। (नाटक० च०)
लघुत्वमत्र यत्प्रोक्तं तत्तु प्राकृतनायके
न कृष्णे रसनिर्यासस्वादार्थमवतारिणि॥ (उज्ज्वलनीलमणिः)

वहाँ तक पहुँचने का प्रयास करता है। राधा की विरहावस्था का वर्णन करती हुई विशाखा कृष्ण से कह रही है—

दूरादप्यनुपागतः श्रुतिमिते त्वन्नामवेयाक्षरे
सोन्मादं मदिरेक्षणा विदधती धत्ते मुहुर्वेपथुम्।
आः किं वा कथनीयमन्यदपि ते दैवाद्घनाम्भोधरे
दृष्टे तं परिरब्धुमुत्सुकमतिः पक्षद्वयीमिच्छति ॥ २।२३ ॥

अर्थात् दूर से तुम्हारे नामाक्षर को सुन कर वह राधा उन्मादवश काँपने लगती है। यदि संयोगवश सुन्दर मेघ को देख लेती है तो उसका आलिंगन करने की उत्कंठा से दो पाँखों को चाहती है। इस उक्ति में आकाश में उड़ कर कृष्ण-शरीर कान्ति सदृश मेघालिंगन की राधा की याचना की व्यञ्जना ने विरह का मूर्त रूप धारण कर लिया है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी अपनी विरह-वेदना का वर्णन तृतीय अंक के २२वें श्लोक में बड़ी ही मार्मिक भाषा में करते हैं। राधा की स्नेह और क्रोध भरी दशा का एक साथ वर्णन निम्न श्लोक में अत्यन्त हृदय-ग्राही है—

मुग्धां वैवर्ण्यर्या क्षणं विवृणुते तारल्यलक्ष्मीं क्षणं
सोत्कण्ठाः कम्पमातनोति भणितीरौत्सुक्यभाजः क्षणम्।
शुद्धां दृष्टिमितः क्षणं प्रणयते प्रेङ्खत्कटाक्षां क्षणं
रोषेण प्रणयेन चाकुलितधीः राधा द्विधा भिद्यते।

उपर्युक्त पद्य में राधा के रोष और स्नेह इन दो विरुद्ध मनोभावों के द्वैधीभाव का कितना सुन्दर वर्णन है। भावशबलता का एक उदाहरण लीजिए—

वन्यास्ताः हरिणीदृशः स रमते याभिर्नवीनो युवा
स्वैरं चापल्यमाकलय्य ललिता मां हन्त निन्दिष्यति।
गोविन्दं परिरब्धुमिन्दुवदनं हा चित्तमुत्कण्ठते
विस्वालं विविनस्तु येन गरलं मानाभिधं निर्मिते ॥ ५।७ ॥

— उपर्युक्त पद्य में क्रमशः राधा की चपलता, शंका, उत्सुकता और अमर्षता का सुन्दर शाबल्य प्रस्तुत किया गया है। भावशबलता के अतिरिक्त व्यभिचारी भावों में निर्वेद, विषाद, शंका, मोह जाड्य, वितर्क, चिन्ता, उग्रता और अमर्ष का पृथक्-पृथक् उदाहरण भी मिलता है। उन सबों का उदाहरण-प्रदर्शन यहाँ संभव नहीं है। केवल मोह का एक उदाहरण अवश्य द्रष्टव्य है—

दरोन्मीलन्नीलोत्पलदलरुचस्तस्य निविडाद्-
विरूढानां सद्यः करसरसिजस्पर्शकुतुकात् ।
वहन्ती क्षोभाणां निवहमिह नाज्ञासिपमिदं
क्व वाहं का वाहं चकर किमहं वा सखि तदा ॥ २१६ ॥

श्रीकृष्ण के करकमल के स्पर्श कुतूहल से उत्पन्न राधा की मुग्धावस्था का इतना मर्मस्पर्शी वर्णन अन्यत्र दुर्लभ नहीं तो कठिन अवश्य ही है ।

काव्य के भावपक्ष में व्यञ्जना का महत्त्वपूर्ण स्थान है । नाटककार ने नाटक में यथा स्थान व्यञ्जना का सुन्दर उदाहरण उपस्थित कर अपनी भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है । एक उदाहरण देखिए—

नवीनाग्रे नप्त्री चटुल ! नहि धर्मात् तव भयं
न मे दृष्टिर्मध्ये दिनमपि जरत्याः पटुरियम् ।
अलिन्दात्त्वं नन्दात्मज न यदि रे यासि तरसा
ततोऽहं निर्दोषा पथि कियति हंहो मधुपुरी ॥ ५।५०

उक्ति मुखरा की है । कृष्ण की भर्त्सना करती हुई मुखरा की अन्तिम उक्ति में-"यदि तुम यहाँ से नहीं जाते हो तो मेरा दोष नहीं है क्योंकि मथुरा यहाँ से दूर नहीं है" । तुम्हारी धृष्टता की शिकायत मधुराधीश कंस से करके तुम्हें दण्डित कराऊँगी, यह ध्वनि निकल रही है । उक्ति की सरलता में व्यञ्जना का इतना सुन्दर पुट बड़ा ही चमत्कारी है । इसी प्रकार सप्तम अंक में पद्मा और ललिता की उक्तियों में मार्मिक व्यञ्जना का उदाहरण द्रष्टव्य है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नाटककार कथावस्तु की अधिकतम अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में पात्रों की विभिन्न मनोदशाओं के साथ अपनी हार्दिकता का मञ्जुल तादात्म्य स्थापित कर नाटक के हृदयपक्ष के पूर्ण विकास में पर्याप्त सफल हुआ है ।

स्थान-स्थान पर अनुभवसिद्ध नीतिवाक्यों और सूक्तियों का संपुट लोक-कल्याण की दृष्टि से नाटक की उपादेयता में चार चाँद लगा देता है । इस प्रसंग में एक उदाहरण विषयबोध के लिए पर्याप्त होगा—

अप्रेक्ष्य क्लममात्मनो विदधति प्रीत्या परेषां प्रियं
लज्जन्ते दुरितोदयमादिव निजस्तोत्रानुबन्धादपि ।

विद्यावित्तकुलादिभिश्च यदमी यान्ति क्रमान्नम्रतां
रम्या कापि सतामियं विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया ॥ ११५

अर्थात् सज्जन भक्त अपने कष्ट की चिन्ता न कर दूसरों का प्रिय करते हैं। अपनी प्रशंसा से लज्जित होते हैं। ये लोग विद्या, धन और कुल से क्रमशः विनम्रता को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सज्जनों की यह स्वाभाविक परिपाटी अत्यन्त उत्कृष्ट है। उपर्युक्त पद्य में सज्जनों के स्वभाव का कितना अनूठा वर्णन है? इसी प्रकार कतिपय सूक्तियों का समावेश भी बड़ा ही हृदयग्राही है।

कलापक्ष के अन्तर्गत मुख्य रूप से नाटक की रचना शैली (रीति) अलंकार योजना, छन्दोविधान और अभिनेयता का विश्लेषण किया जाता है। रचना शैली की दृष्टि से 'विदग्धमाधव' में न तो कालिदास की वैदर्भी रीति प्रधान सुकुमार शैली की एकान्त छाया मिलती है और न भवभूति की गौड़ीप्रधान शब्दप्रौढि का नितान्त प्रभाव ही पाया जाता है। नाटक की भाषा शैली तो वैदर्भी और गौड़ी के छोर को छुने वाली पाञ्चाली रीति से अनुप्राणित है। नाटककार ने गद्य और पद्य भाग में दो प्रकार की रीतियों का सहारा लिया है। गद्य भाग में प्रवाह, सरलता और लघुता है। कहीं भी लम्बे स्वगत कथन का उपन्यास नहीं मिलता है। कथोपकथन की स्वाभाविकता गद्यभाग में बनी रहती है। विकट बन्ध या समासबहुल पदों के प्रयोग से नाटककार ने अपने को बचाने का सावधानी से प्रयास किया है। किन्तु पद्यभाग की स्थिति भिन्न है। उसमें प्रसंगानुसार सरल, सरस और भावपूर्ण रचनायें भी मिलती हैं और दीर्घ, समस्त एवं विकट बन्धों से युक्त भी। पद्यभाग में पाण्डित्य और वैदग्ध्य का मञ्जुल सामञ्जस्य दृष्टिगोचर होता है। भाषा भाव के अनुसार नाचती रहती है। कवि के हृदय में जिस प्रकार का भाव उठता है, उसी प्रकार की भाषा हाथ जोड़कर उपस्थित हो जाती है। चाहे अन्तःप्रकृति का चित्रण करना हो या बाह्य प्रकृति का, दोनों ही दशाओं में कवि की भाषा भाव की अनुगामिनी बन जाती है। वृन्दावन की वासन्ती माधुरी का निम्न पद्य में प्रवाहपूर्ण सरस वर्णन किस सहृदय को मुग्ध नहीं करता—

क्वचिद्भृङ्गी-गीतं क्वचिदनिलभंगी-शिशिरता
क्वचिद् वल्ली-लास्यं क्वचिदमलमल्ली-परिमलः ।

क्वचिद् धाराशाली कनकफलपाली रसभरो
हृषीकानां वृन्दं प्रमदयति वृन्दावनमिदम् ॥ १।३१ ॥

उसी वृन्दावनवर्णनपरक भिन्नपद्य दीर्घसमासबहुलबन्धता का उदाहरण है—

तव स्तवकवल्लरी-चटुलगन्धवन्दीकृत-
भ्रमद्-भ्रमर-झंकृतिप्लुतमुदग्रगुञ्जार्बुदम् ।
शरत्कुश-कलिन्दजापुलिनवृन्द-संवर्धितं
परिस्फुरति चन्द्रकस्थगितमद्य वृन्दावनम् ॥ ६।२ ॥

नाटककार की पद्यशैली की एक अनुपम विशेषता निःसंकोच स्वीकार करनी पड़ती है और वह है, प्रवाह की अविच्छिन्नता। चाहे असमस्त पदों का सरस विन्यास हो अथवा समस्त पदों का विकटबन्ध हो, किन्तु प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा नहीं दिखायी देती है। हाँ, श्लेषबहुलपदों की योजना में अर्थबोध में यत्र-तत्र विलम्ब अवश्य हो जाता है। भावों की गहराई में खोया हुआ भी कवि भाषा की स्वच्छ प्रवाहशीलता बनाए रखने में सक्षम सिद्ध हुआ है। श्रीरूप की वर्णन-शैली में सादगी और सरलता के साथ ही विस्तृतता और क्लिष्टता की झलक भी कहीं-कहीं मिल ही जाती है। व्रज की माधुरी की छटा दिखाकर भी गौड़ देशीय होने के संस्कारवश ओजःप्रधान गौडीबन्ध की छाप छोड़ ही जाते हैं। समस्त नाटक की भाषा शैली पर दृष्टिपात करने से इतना कहना ही पड़ेगा कि प्रवाहपूर्ण गद्य-पद्य रचना सहृदयों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र बन गयी है।

श्रीरूप ने कहीं-कहीं पर प्रहेलिका तथा कूट पद्यों का भी प्रयोग कर भारवि की अलंकृत शैली की स्मृति दिलायी है प्रहेलिका पद्य का एक उदाहरण है—

मम व्याहर वृन्दे प्रहेलिकां दीप्रहेलिविज्ञाने ।
प्रियसखि किमभिख्यया लक्ष्यते माधवो भुवने ॥ ७।२३

इसी प्रकार कूट पद्य का एक सुन्दर उदाहरण देखिए—

त्वया मुक्तगिरिः पाणौ समातुच्चपदस्थितिः ।
निधीयतामधीराक्षि रागिधातुपरिच्छदः ॥ ६।२ ॥

इस कूट पद्य द्वारा कृष्ण 'राधा' को समीप लाने का प्रस्ताव पत्र द्वारा करते हैं। कहीं-कहीं तुकान्त पद्य की रचना में भी कवि की कविताकामिनी अपना

विलास दिखाती है। इस प्रकार का रचना विधान पदशय्या की दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। यथा—

अयं पुरस्मेर-मुखारविन्दः प्रयाणलीलाकृतकुम्भिनिन्दः।
कलेवरद्योतिहताक्षिचन्द्रश्चन्द्रावलीं विन्दति कृष्णचन्द्रः।

ऐसे तुकान्त पद्य को आलंकारिक अन्त्यानुप्रासकी संज्ञा भी देते हैं। पदशय्या का एक दूसरा उदाहरण लीजिए—

वदनदीप्ति-विधूत-विधूदया, कुमुद-धामधुरामधुरस्मिता।
नखजितोडुरियं हरिणेक्षणा, तृणयति क्षणदामुखमाधुरीम् ॥ ३।२६

इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो कवि ने मुहावरा का भी प्रयोग बड़ी ही सुन्दरता के साथ किया है—

"सखि विशाखे, चातुराक्षिकं प्रेक्षणमपि नास्ति। कुतः तावत् परितो रोधनम्"। अर्थात् अभी आँखें चार भी नहीं हुई हैं। प्रथम दर्शन के लिए आँखें चार होना इस मुहावरा का प्रयोग किया जाता है। कवि की मुहावरेदार भाषा का यह नमूना सर्वथा प्रासंगिक ही है।

श्रीरूप शाब्दीध्वनि के भी सफल प्रयोक्ता हैं। अर्थ के अनुसार ध्वनिविन्यास इस शैली की विशेषता है। निम्न पद्य में शाब्दी ध्वनि की छटा द्रष्टव्य है—

कर्णोत्तंसितरक्तपङ्कजजुषो भृंगीपतेर्झंक्रिया-
भ्रान्तेनाथ दृगञ्चलेन दधती भृंगावली विभ्रमम्।
भीसान्दोलितदोर्लतान्तविचलच्चूडाझणत्कारिणी
राधे व्याकुलतां गतापि भवती मोदं ममाधास्यति ॥ ५।४४॥

उपर्युक्त पद्य में ध्वनि के द्वारा भ्रमर तथा चूडा के झंकृति रूप अर्थ की द्योतना करायी गयी है।

नाटककार ने यत्र-तत्र कालिदास और भवभूति का भाव साम्य भी ग्रहण किया है। निम्न पद्य में कालिदास के शाकुन्तल के एक स्थल की भावसमता मिलती है—

छिन्नः प्रियो मणिसरः सखि मौक्तिकानि
वृत्तान्यहं विचिनुयामिति कैतवेन।
मुग्धं विवृत्य मति हन्त दृगन्तभंगीं
राधा गुरोरपि पुनः प्रणयाद् व्यतानीत् ॥ ३।३ ॥

उपर्युक्त पद्य में शाकुन्तल के "दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे'''शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्" । इस पद्य का भाव झलक रहा है । दोनों ही उक्तियाँ नायक की हैं और दोनों में ही नायिका की प्रेम चेष्टा का वर्णन किया गया है । अन्तर केवल लौटकर नायक को देखने के बहाने में ही है । शकुन्तला ने यदि पैर में कुशा गड़ने और वृक्ष की शाखा में आँचिल उलझने का बहाना बनाया है, तो राधा ने मणिमाला के टूटने से गिरे हुए मोती के दाने को चुनने का बहाना लिया है । इस भाव साम्य में भी उभयत्र अनुठापन सुरक्षित ही है ।

इसी प्रकार निम्न पद्य में भवभूति की भाव छाया दिखायी पड़ती है—

जगति किल विचित्रे कुत्रचिन्निश्चलात्मा
भवति निरभिसन्धिः कस्यचित्प्रेमबन्धः ।
विलसति समुदीर्णे कुम्भजे खञ्जनाली
कलितवति तथास्तं हन्त नाशं प्रयाति ॥ ५।३ ॥

उपर्युक्त पद्य में भवभूति के 'उत्तररामचरित' के "व्यतिषजति पदार्थान्तरः कोऽपि हेतुः" इस पद्य का भाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है । स्वाभाविक प्रेम बाह्य उपकरण की अपेक्षा नहीं करता, यह दोनों की मान्यता है । केवल उदाहरण में अन्तर है । यद्यपि दोनों में प्रकृति से ही उदाहरण लिये गये हैं, फिर भी भवभूति ने कमल और सूर्य के स्वाभाविक स्नेह का तथा श्रीरूप ने अगस्त्य और खञ्जन के निरुपाधिक प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

जहाँ तक भाषाशुद्धता का प्रश्न है, नाटक में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिन पर व्याकरण की दृष्टि से आपत्ति उठायी जा सकती है । तीन स्थलों पर आत्मने पद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग मिलता है । पृष्ठ ८३ पर विशाखा की उक्ति में 'रेहदि' इस प्राकृत का संस्कृत रूप 'राजति' अंकित है । 'राज्' धातु आत्मनेपदी है अतः यहाँ पर 'राजते' प्रयोग ही होना चाहिए ।

इस प्रकार प्रथम अंक की श्लोक संख्या ६ के तृतीय चरण में 'अभ्यर्थयन्' में भी परस्मैपद का प्रयोग किया गया है । अर्थ याचने धातु आत्मनेपदी है अतः यहाँ पर 'अभ्यर्थयमानः' ऐसा प्रयोग होना चाहिए था । पंचम अंक की श्लोक सं० २९ में भी 'राजसि' पाठ मिलता है । तीन स्थानों पर 'यतिः', 'यतयसि' और 'नन्दसि' पाठ भी खटकता है । प्रसंग पर विचार करने से इन

तीनों के स्थान में क्रमशः 'पतिः', 'वरीयसी', और 'नन्दति' पाठ का ही औचित्य सिद्ध होता है। पुस्तकान्तर के अभाव में इन पाठों की औचित्य परीक्षा भी नहीं हो सकी, जिसके आधार पर निर्णायक मत का उल्लेख होता।

अलंकार योजना की दृष्टि से यह नाटक अति समृद्ध माना जा सकता है। अलंकार प्रतिष्ठा में नाटककार ने पर्याप्त चातुरी का परिचय दिया है। प्रस्तुत नाटक पद्यबहुल है अतः अलंकारों का विस्तृत समावेश स्वाभाविक ही है। श्रीरूप ने शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का स्वच्छन्द प्रयोग किया है। शब्दालंकार में अनुप्रास, यमक और श्लेष का तथा अर्थालंकार में प्रायः सभी प्रयुक्त अलंकारों का प्रयोग किया है। अर्थालंकारों में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास के अधिक उदाहरण मिलते हैं। इनमें भी 'सर्वाधिक उदाहरण रूपक के ही पाये जाते हैं। इस अलंकार के प्रयोग में नाटककार इतना सिद्धहस्त नजर आता है कि समस्त नाटक मानो रूपक की छाया में ही साँस ले रहा है। नान्दीपाठ से आरंभ होकर नाटक के अन्तिम पद्य तक में इस अलंकार का निर्वाह किया गया है। चाहे पद्य भाग हो या गद्यभाग-दोनों में समानरूप से रूपक का भव्य विलास सहृदयों के मानस को आनन्दित करता है। गद्य भाग के छोटे से छोटे वाक्यों में भी इस अलंकार की छटा दिखाई देती है। इस दृष्टि से श्रीरूप रूपक अलंकार के सम्राट् माने जा सकते हैं। नान्दी में हरिलीला पर शिखरिणी का आरोप अत्यन्त कमनीय है। इसी प्रकार प्रथम अङ्क की श्लोक संख्या २७ में स्थिरता पर भुजंग का, व्रीडा पर व्याधि का और पतिव्रता के अभिमान पर समुद्र का आरोप करके मुरली ध्वनि पर क्रमशः विहंगेश्वर, (गरुड), धन्वन्तरि और कुम्भोद्भव (अगस्त्य) का आरोप करके परम्परित रूपक का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। सप्तम अंक के एक छोटे से गद्य भाग 'वत्स येन लावण्यगन्धलुब्धेन कंस शार्दूलेन स्वयमेव राधामृगी मृग्यते' में रूपक का सफलतापूर्वक समावेश कवि की रूपकप्रियता का सुन्दर उदाहरण है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि नाटक का उपक्रम और उपसंहार दोनों ही रूपक अलंकार में ही हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास के उदाहरण भी यथा स्थान पर्याप्त मात्रा में मिलते ही हैं, किन्तु एकावली का एक उदाहरण अत्यन्त रमणीय है—

वृन्दावनं दिव्यलतापरीतं लताश्च पुष्पस्फुरिताग्रभाजः
पुष्पाण्यपि स्फीतमधुव्रतानि मधुव्रताश्च श्रुतिहारिगीताः १।२४

शब्दालंकारों में अनुप्रास और श्लेष का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। श्लेष के अनेक सुन्दर उदाहरणों में से चतुर्थ अंक का १२ वाँ श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है।

इन सभी अलंकारों का उपयोग कवि ने स्वाभाविक रूप से ही किया है। ये अलंकार रसबोध में सहायक ही सिद्ध हुए हैं। कहीं भी किसी अलंकार को बलात् ठूँसने का प्रयास नहीं किया गया है। कवि की स्वाभाविक अलंकारप्रियता उनकी काव्यकलाभिज्ञता का सुन्दर उदाहरण है। छन्दोविधान की दृष्टि से भी इस नाटक का कम महत्व नहीं है। श्रीरूप ने अपने नाटक में छन्दःशास्त्र के प्रायः सभी प्रसिद्ध छन्दों का उपयोग किया है। सम, अर्धसम और विषम छन्दों में प्रायः २१ प्रमुख छन्दों के उदाहरण मिलते हैं। जिस प्रकार श्रीरूप ने अलंकारों में रूपक का सर्वाधिक उपयोग किया है, उसी प्रकार छन्दों में शार्दूलविक्रीडित का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इस छन्द का उपयोग कवि ने ७५ श्लोकों मे किया है। शार्दूल विक्रीडित के बाद क्रमशः शिखरिणी, आर्या, वसन्ततिलका, मालिनी, अनुष्टुप्, मन्दाक्रान्ता, सुन्दरी और पृथ्वी का अधिकाधिक उपयोग किया गया है। आश्चर्य की बात है कि स्रग्धरा जैसे प्रसिद्ध छन्द का प्रयोग केवल एक बार ही हुआ है।

इस प्रकार अलंकार और छन्दोयोजना की विविधता ने नाटककार को उन्नत कोटि का नाट्यकला विधायक कवि सिद्ध कर दिया है।

अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक उतना सफल नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इसका आकार लघु नहीं है। अतः अल्पकाल में इसका अभिनय संभव नहीं है। पात्रों की अधिकता और वर्णन की प्रचुरता भी इसकी अभिनेयता में बाधक है।

पद्यों की बहुलता कथाप्रवाह में नितान्त बाधा उपस्थित करती है और उसके कारण प्रेक्षकों के लिए घटना का तारतम्य टूट सा जाता है। वर्णनप्रधान नाटक होने के कारण घटनावैविध्य का अभाव सा है इसीलिए प्रेक्षकों की कुतूहलवृत्ति सजग नहीं हो पाती। गद्यभाग का प्रवाहपूर्ण कथोपकथन यदि नाटकीयता की परंपरा का निर्वाह करता है, तो पद्यभाग का अनावश्यक विस्तार दर्शकों के मानस को उबाने वाला ही सिद्ध होता है। अतः श्रीरूप की यह नाट्यकृति जितना

कवि हृदय पाठकों के लिए हृदयावर्जक हो सकता है, उतना कुतुहलप्रधान दर्शकों के लिए नहीं।

श्रीरूप अन्ततः भक्त नाटककार हैं अतः उन्होंने लीलापुरुष श्रीकृष्ण और रासेश्वरी राधा की भक्ति में अपनी वाणी को सार्थक करने का भगीरथ प्रयास किया है।

श्रीरूप की भक्तिभावना ने ही राधाकृष्णलीला को नाटक का रूप दे दिया है। इसीलिए श्रीरूप ने विभिन्न पात्रों के द्वारा—विशेषकर अपने प्रतिनिधि पात्र पौर्णमासी के माध्यम से श्रीकृष्ण में यथा स्थान ईश्वरत्व का स्पष्ट आरोप कराया है। संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि राधा-कृष्ण केलि वर्णन प्रसंग में श्रीरूप इस नाटक के माध्यम से शृंगार रस का कोना-कोना झाँक गये और भक्ति भावना की अतल गहराई में उतरकर अनुभूति का अनुपम मुक्ताकण बिखेर कर अपनी भावुकता और पांडित्यपूर्ण विदग्धता की अमिट छाप सहृदय मानस पर छोड़ गये हैं।

'विदग्धमाधव' युगलमूर्ति के चरणों में श्रीरूप की वह काव्यपुष्पाञ्जलि है, जिसकी पवित्रता आज भी भक्तजनमानस की कल्मषता को सर्वथा दूर करती है।

अन्तमें हम भी राधाकृष्णचरितपरक इस नाट्यरत्न की अर्चना के कुछ शब्द-पुष्प लीलापुरुषोतम श्रीकृष्ण और लीलामयी श्रीराधा की सेवा में समर्पित कर अपने जीवन की सार्थकता के अभिलाषी हैं। अस्तु—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पितम्।

—रमाकान्त झा

कथासार

प्रथम अंक—नान्दीपाठ के अनन्तर सूत्रधार रङ्गमञ्च पर उपस्थित होकर सूचित करता है कि विभिन्न दिशाओं से वृन्दावन-दर्शनार्थ आगत कृष्णभक्त रसिक-सम्प्रदाय केशितीर्थ में ठहरे हुए हैं; वे कृष्ण के विरह में सन्तप्त हैं अतः उनके मनोरञ्जन के लिए कृष्ण की मनोहर लीला को रूपक के माध्यम से प्रस्तुत करने का आदेश स्वप्न में उसे भगवान शङ्कर ने दिया है।

प्रारम्भिक प्रस्तावना के बाद परिजनों के साथ पौर्णमासी रङ्गमञ्च पर उपस्थित होती है। वह अनुमोदित करती है कि उसका कार्य राधा और कृष्ण का संयोग कराना है, जो स्वतः भी एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हैं। वह रहस्य खोलती है कि कंस के भय से योगमाया द्वारा राधा का विवाह अभिमन्यु नामक गोप से करा दिया गया है। वस्तुतः राधा का अनुराग कृष्ण से है और यह विवाह का स्वांग केवल कंस को फुसलाने के लिए किया गया है। परन्तु इधर आकर अभिमन्यु दुष्टबुद्धि होकर राधा को कृष्ण से दूर हटाने के लिए उसे मथुरा ले जाना चाहता है। उसको आश्वस्त रखने के लिए पौर्णमासी प्रयत्नशील है। वह नान्दीमुखी को कृष्ण-राधा के बीच प्रेमभाव बढ़ाने के लिए नियुक्त करती है। नान्दीमुखी के द्वारा उसे ज्ञात होता है कि राधा सूर्य और चन्द्रावली चण्डी की पूजा के व्याज से कृष्ण में अनुरक्ता हैं। पौर्णमासी विशाखा को श्रीकृष्ण का चित्र बनाकर राधा को आनन्दित करने का संदेश नान्दीमुखी द्वारा भेजवाती है और मञ्च पर कृष्ण के आगमन की सूचना देकर चली जाती है।

इसके बाद नन्द और यशोदा के साथ कृष्ण प्रविष्ट होते हैं। यशोदा से वार्तालाप करते हुए नन्द कृष्ण के लिए वधू खोजने का आग्रह करते हैं, परन्तु यशोदा उन्हें आयु में छोटा कह कर टाल देती है। कृष्ण के आग्रह पर वे दोनों पीछे लौट जाते हैं और वृन्दावन के मनमोहक वातावरण से भावाभिभूत होकर कृष्ण वंशी बजाने लगते हैं। बलराम और मधुमंगल इस अलौकिक वेणुवादन की प्रशंसा करते हैं। देवतागण भी उससे आकृष्ट होकर भूमि पर उतर आते हैं। श्रेष्ठजनों के बीच विहार करने में संकोच का अनुभव कर कृष्ण वृक्ष की ओट में मधुमंगल के साथ चले जाते हैं और वृन्दावन की वसन्तश्री का वर्णन करते हैं। परन्तु मधुमंगल मिठाई के लोभ का संवरण न कर लताओं से लड्डू माँगता

है। उसी समय लड्डू लेकर पौर्णमासी प्रवेश करती है। वह सूचित करती है कि यह लड्डू राधा-अभिमन्यु के विवाहोत्सव का है। राधा का नाम सुन संकुचित होकर प्रसंग बदलते हुए कृष्ण उसे वृंदावन के फूलों को तोड़ने से मना करने को कहते हैं। पौर्णमासी अपनी असमर्थता प्रकट करती है। कृष्ण और मधुमंगल की परस्पर गूढोक्ति से पौर्णमासी राधा के प्रति कृष्ण के गहरे प्रेम को भाँप लेती है। कृष्ण के आग्रह से बलराम अपने मित्रों के साथ चले जाते हैं और कृष्ण मित्रों से राधा की बात करते दूसरी ओर प्रस्थान कर जाते हैं।

उसके बाद ललिता के साथ राधा आती है। वार्तालाप के क्रम में वह वृन्दावन का संकेत करती है। ललिता वृन्दावन का सम्बन्ध कृष्ण से बताती है। कृष्ण का नाम सुन राधा लजा जाती है। इसी समय नेपथ्य से वंशी की धुन सुनाई पड़ती है। राधा भाव-विह्वल होकर मन ही मन उस टेरने वाले को देखना चाहती है। तत्क्षण कृष्ण का चित्रपट लेकर विशाखा प्रविष्ट होती है और वेदनाग्रस्त राधा को औषधि स्वरूप वह चित्रपट थमाती है। राधा उसे अच्छी तरह देखने के लिए सखियों के साथ समीपवर्ती वृक्ष की छाया में चली जाती है।

द्वितीय अङ्क—सर्वप्रथम नान्दीमुखी आकर राधा के अस्वस्थ होने की सूचना देती है और मुखरा के घर जाकर राधा का समाचार जानने का निश्चय करती है। इसी समय मुखरा रोती हुई आती है। कारण पूछने पर वह राधा की अस्वस्थता और प्रलापों का वर्णन करती है। इसके बाद मुखरा पौर्णमासी के पास एवं नान्दीमुखी राधा के पास जाने के लिए प्रस्थान करती है।

ललिता और विशाखा के साथ विरहाकुल राधा आती है। यद्यपि कृष्ण के प्रति अपने अनुराग को छिपाने का वह भरसक प्रयास करती है, परन्तु उसकी स्वाभाविक चेष्टाएँ सब रहस्य खोल देती हैं। अस्वस्थता का वास्तविक कारण पूछे जाने पर वह विशाखा द्वारा प्रदत्त कृष्ण-चित्र की चर्चा करती है। कृष्ण, वैणविक तथा श्यामल किशोर—इन तीनों पुरुषों के प्रति एक साथ प्रेम रखने वाले अपने हृदय को राधा अनेक उपालम्भ देती है। लेकिन सखियाँ उसके भ्रम का निवारण करती हुई बताती हैं कि वे तीनों एक ही व्यक्ति—कृष्ण हैं। इसी समय नान्दीमुखी राधा के पास आती है तथा अस्वस्थता का कारण पूछती है। राधा के बहाना करने पर वह उसके काम-रोग से पीड़ित होने का निर्देश करती है।

इसके बाद पौर्णमासी मुखरा के साथ प्रवेश करती है। राधा को स्वस्थ करने के उपाय पूछे जाने पर पौर्णमासी राधा के ऊपर किसी स्त्री-ग्रह के आविष्ट होने का आरोप करती है और एतदर्थ भगवान् कृष्ण का दर्शन कराने के लिए कहती है। मुखरा यह आशङ्का व्यक्त करती है कि राधा की सास यह कार्य करने के लिए उद्यत नहीं होगी। तब पौर्णमासी मुखरा के द्वारा यह संदेश राधा की सास के पास भेजती है कि वह योगविद्या से निर्मित कृष्ण से राधा को मिलायेगी। मुखरा के चले जाने पर पौर्णमासी राधा को मनोरथ पूर्ति का आशीष देती है। वह अनेक परीक्षाएँ लेती है और सबमें खरा उतरने पर राधा के अद्भुत प्रेम से प्रसन्न होकर वह उससे कृष्ण के नाम एक प्रेमपत्र लिखने को कहती है।

इन लोगों के चले जाने के बाद श्रीकृष्ण रङ्गमञ्च पर आते हैं और राधा विषयक अपनी आकुलता व्यक्त करते हैं। इसी समय माला लेकर मधुमङ्गल आता है और दोनों मित्र राधा की चर्चा छेड़ देते हैं। कुछ क्षणों के बाद ललिता और विशाखा प्रवेश कर कृष्ण को राधा का प्रेमपत्र देती हैं। मधुमंगल वह प्रेमपत्र पढ़ता है, जिसको सुनकर कृष्ण-राधा के गहन प्रेम का अनुमान कर आनन्दित होते हैं, परन्तु ऊपर से अपनी उदासीनता व्यक्त करते हैं। दोनों सखियाँ असन्तुष्ट होकर राधा की दुरवस्था के सारे दोष इन्हीं पर मढ़ती हैं। कृष्ण का आन्तरिक भाव जानने के लिए वे सखियाँ राधा की गुंजावली कृष्ण के गले डाल देती हैं, जिसे अस्वीकार करते हुए भ्रम से वे अपनी माला उतार देते हैं। दोनों सखियाँ कृष्ण की माला आँचल में छिपाकर चली जाती हैं। इसके बाद अपनी उदासीनता व्यक्त करने पर कृष्ण पश्चाताप करते हैं और उत्तर में प्रेमपत्र लिखने के लिए मधुमंगल के साथ पुष्कर तीर्थ की ओर चल देते हैं।

राधा के साथ विशाखा आती है और उसको धीरज बँधाने के उद्देश्य से कृष्ण की माला देती है। तदनन्तर सूर्य की पूजा करने विशाखा के साथ राधा सूर्यतीर्थ चली जाती है। इसी समय मधुमंगल के साथ कृष्ण प्रेमपत्र लिखने का साधन ढूंढते दिखाई देते हैं। परन्तु नूपुर की धुन सुनकर वे दोनों एक वृक्ष की ओट में छिप जाते हैं। इधर राधा कृष्ण की उदासीनता से दुःखी होकर मरने की अभिलाषा अपनी सखी से व्यक्त करती है। उपयुक्त अवसर जानकर कृष्ण प्रकट हो जाते हैं। राधा कृष्ण को देखकर विह्वल हो जाती है। कृष्ण भी समीप आकर

छल से माला बदलने के लिए राधा को उलाहना देते हैं। इन्हीं आलोच्य क्षणों में जटिला प्रविष्ट होती है और कृष्ण को देखकर सशंकित होती है। वह कृष्ण की उपस्थिति को योगमाया का प्रभाव समझकर उन्हें चले जाने के लिए कहती है, जिसका निराकरण वे अपनी व्याजोक्ति से करते हैं। राधा को प्रकृतिस्थ देखकर जटिला प्रसन्न होती है और विशाखा सहित राधा को लेकर चली जाती है। श्रीकृष्ण भी मधुमंगल के साथ पौर्णमासी से मिलने चल देते हैं।

तृतीय अङ्क—ललिता के साथ पौर्णमासी बातें करती हुई आती है और उन्हीं के पीछे मधुमंगल के साथ कृष्ण भी आ पहुँचते हैं। चारों में प्रेमपूर्ण उपालम्भों का आदान-प्रदान होता है। प्रसंगवश पौर्णमासी राधा की कामदशा के निवारणार्थ कृष्ण को सूचित करती है कि सूर्यास्त के बाद उन्हें अभीष्ट स्थानपर लिवा जाने के लिए एक सखी आएगी। कृष्ण यह निर्देश सुनकर अपने मित्र के साथ विदा हो जाते हैं और पौर्णमासी ललिता के साथ राधा से मिलने चली जाती है।

विशाखा से बातें करती हुई राधा आती है। विशाखा कृष्ण मिलन की आशा दिलाकर उसे धीरज बँधाती है। इसी समय ललिता के साथ पौर्णमासी आती है और राधा के अनुराग की प्रगाढ़ता को जाँचने के लिए कृष्ण की उदासीनता की चर्चा करती हुई रोग शमनार्थ कोई दूसरा उपाय ढूँढने के लिए कहती है। राधा अपनी असमर्थता प्रगट करती है और विकल होकर विमूर्च्छित सी हो जाती है। पौर्णमासी उसे छाती से लगाकर सान्त्वना देती है। पौर्णमासी तथा ललिता द्वारा कृष्ण की अपने प्रति प्रीतिका समाचार सुनकर राधा आश्वस्त होती है। ललिता को कृष्ण के आने तक राधा की रक्षा का भार सौंपकर पौर्णमासी चली जाती है। तदनन्तर विशाखा कृष्ण को लिवा आने के लिए माकन्दवृक्ष की ओर जाती है। इसी समय श्रीकृष्ण मंचपर प्रकट होते हैं और किसी सखी को न पाकर व्याकुल से दीखते हैं। विशाखा कृष्ण से उपहास करने तथा उनकी प्रेमपरीक्षा के लिए मौन बनी हुई आती है। कृष्ण के जिज्ञासा करने पर वह अभिमन्यु द्वारा राधा को मथुरा ले जाने की झूठी बात कहती है। कृष्ण बेसुध होने का अभिनय करते हैं, जिससे भीत होकर विशाखा झटपट वस्तु-स्थिति स्पष्ट कर देती है। उनके आग्रह करनेपर वह राधा की प्रणय चेष्टाओं

का वर्णन करती है। कृष्ण को राधा से मिलाने विशाखा उनके साथ प्रस्थान करती है।

इसके बाद मंचपर ललिता से सेव्यमान राधा दृष्टिगत होती है। कुछ देर के बाद विशाखा और कृष्ण राधा के समीप आते हैं। कृष्ण की आकस्मिक उपस्थिति से राधा ठगी-सी खड़ी रह जाती है। ललिता लजीली राधा को कृष्ण के पास लाती है। कुछ देरतक चारों प्रेमपूर्ण रहस-बहस करते हैं। अन्त में ललिता कृष्ण को राधा के आलिंगन का संकेत करती है। कृष्ण राधा का हाथ पकड़ते हैं, जिससे लजाकर राधा वृक्ष की ओट में छिप जाती है। बाद में कृष्ण के अत्यन्त व्यग्र हो जाने पर वह प्रगट हो जाती है। बातचीत के दौरान कृष्ण राधा से अभिसार करने की इच्छा व्यक्त करते हैं और मानभंग के लिए राधा से अनुनय करते हैं। इसी समय मुखरा आती है। पहले तो कृष्ण छिप जाने का प्रयास करते हैं, परन्तु मुखरा को अपनी उपस्थिति का आभास मिल जाने पर सम्मुख आ जाते हैं। मुखरा वंशी ध्वनि से गोपियों को मुग्ध करने का आरोप उनपर लगाती है। कृष्ण आरोप का निराकरण करते हैं और कुछ देर के लिए ओझल हो जाते हैं। विश्वस्त होकर मुखरा सोने के लिए चली जाती है। एकान्त जानकर विशाखा राधा को कृष्ण-संगम के लिए प्रेरित करती है। राधा कृष्ण से अपना गुञ्जाहार लौटाने के लिए कहती है। इसी माल्य परिवर्तन के प्रसंग में कृष्ण राधा का आँचल पकड़ लेते हैं। अब राधा बनावटी क्रोध से लौट पड़ती है, परन्तु दोनों सखियों द्वारा मनाये जाने के बाद अनुकूल हो जाती है। दोनों सखियाँ वहाँ से हट जाती हैं और एकान्त में कृष्ण का राधा के साथ प्रेमालाप होता है। दोनों संयोगसुख के लिए यमुना तटवर्ती एक कुंज की ओर चल देते हैं।

चतुर्थ अङ्क—एक ओर से नान्दीमुखी और दूसरी ओर से चन्द्रावली की सखी पद्मा आती है। नान्दीमुखी को ललिता के द्वारा कृष्ण के गोवर्धन की ओर जाने की सूचना मिली है, जिसे वह सुबलतक पहुँचाने के उद्देश्य से चली है। पद्मा चन्द्रावली की उद्विग्नता का समाचार कहती है और इसका कारण यह उसका कृष्ण के प्रति प्रेम बताती है। नान्दीमुखी उसे सान्त्वना देती है कि कृष्ण राधा के समान ही चन्द्रावली तथा अन्य गोपियों से प्रेम करते हैं। नेपथ्य

में कृष्ण की मुरली वजती है और नान्दीमुखी पद्मा को चन्द्रावली के पास जाने का आदेश देकर स्वयं सुवल के पास चली जाती है। इसके वाद वृन्दा के साथ वात करती हुई चन्दावली आती है। चन्द्रावली को देखकर पद्मा उसके समीप चली आती है। वह उसकी सान्त्वना के हेतु श्रीकृष्ण-के आगमन की सूचना देती है।

सुवल के आग्रह पर कृष्ण मुरली टेरते हैं, जिससे आकुल होकर चन्द्रावली उन्हें उपालम्भ देती है। कृष्ण उसके समीप जाकर 'चन्द्रवली नाम की सार्थकता का वर्णन करते हैं और आलिंगन की अभिलापा व्यक्त करते हैं। सुवली अपनी वचन-चातुरी से चन्द्रावली को विश्वास दिलाता है कि कृष्ण चन्द्रावली के वियोग में चकोर वन गये हैं। वार्ताक्रम में 'धारा' की जगह कृष्ण 'राधा' कह वैठते हैं, जिससे चन्द्रावली अप्रसन्न हो जाती है। कृष्ण अपनी सफाई में वाक्छल की सहायता लेते हैं। चन्द्रावली घर जाने का वहाना करती है और कृष्ण के द्वारा अनेकशः अनुनय-करने के उपरान्त भी पद्मा के साथ भद्रकाली के दर्शन की वात कहकर चली जाती है। इससे कृष्ण आकुल हो उठते हैं। सुवल उनको सान्त्वना देकर उसकी प्रतिकूलता का खण्डन करता है। कृष्ण को सुवल का कथन ठीक ही जँचता है। सुवल को वे केसर कुञ्ज में मिलने का संदेश लेकर राधा के पास भेज देते हैं। उसके अनन्तर पद्मा और मधुमंगल एक साथ आते हैं और कृष्ण को केसर कुंज में अकेले अन्यमनस्क वैठा देखकर इसका कारण चन्द्रावली का विरह समझते हैं। वे चन्द्रावली को लिवाकर कृष्ण के समीप पहुँचते है। राधा के प्रति ध्यानरत रहने के कारण कृष्ण राधा के नाम से सम्बोधित कर वैठते हैं, जिससे ईर्ष्यान्वित हो चन्द्रावली मधुमंगल की ओर देखती है। मधुमंगल वाक्छल से राधा का दूसरा अर्थ वताकर कृष्ण को निर्दोप सिद्ध करता है। चन्द्रावली लज्जित होकर कृष्ण के गले में रत्नमाला डाल देती है। पद्मा और मधुमंगल वहाना वनाकर चले जाते हैं। इधर राधा के आगमन की आशंका से चन्द्रावली को लेकर कृष्ण नागकेसर कुञ्ज की ओर चल देते हैं।

इसके वाद ललिता के साथ राधा आती है और निर्दिष्ट स्थलपर कृष्ण को न पाकर उनके छिप जाने का अनुमान करती है। राधा कृष्ण को खोजने लगती है और ललिता केलिकुञ्ज रचने लगती है। शनैः शनैः राधा व्याकुल हो उठती है और तरह-तरह की आशंकाएँ करने लगती है। इसके वाद वियोगदशा में

राधा की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कृष्ण आकर उसी की सूर्योपासनवेदिका पर बैठ जाते हैं। अनन्तर ललिता के साथ राधा आती है और कृष्ण को देख लेती है। कृष्ण राधा को समय पर न आने की उल्टे उलाहना देते हैं। पहले तो राधा नाराज होकर बिल्कुल बोलती ही नहीं, परन्तु ललिता के मनाने पर वह मुँह खोलती है और चन्द्रावली में आसक्त होने का लाञ्छन लगाती है। कृष्ण चालाकी से बात बदल देते हैं। मुग्ध होकर राधा कटाक्ष करती है और पुष्प-याचना के लिए आँचल फैलाती है। कृष्ण फूलों के साथ अपनी मुरली भी आँचल में डाल देते हैं, जिससे राधा धन्य-धन्य हो जाती है।

इसी समय कृष्ण को ढूंढता हुआ मधुमंगल आता है। उसकी बातों से राधा को कृष्ण के चन्द्रावली-संग का आभास हो जाता है, जिसके लिए वह व्यंग्यपूर्ण उलाहना देती है। कृष्ण अपने सभी अवतारों में राधा के प्रति अपनी अनुरक्ति होने का निर्देश करते हैं। इसी क्षण मुखरा आती है। मधुमंगल कृष्ण को वहाँ से चलने के लिए प्रेरित करता है, परन्तु वे अपनी मुरली लेकर जाना चाहते हैं। राधा अपने पास वंशी के होने से इन्कार करती है। कृष्ण राधा से मजाक कर बैठते हैं, जिससे क्रुद्ध होकर मुखरा उन्हें फटकारती है। बीच-बचाव मधुमंगल करता है। मुखरा कृष्ण को कंस से दंड दिलाने की धमकी देकर राधा आदि के साथ चली जाती है। कृष्ण मधुमंगल के साथ यमुना तट पर गायों को खोजने चले जाते हैं।

पञ्चम अङ्क—राधा से सम्बन्धित विषयों पर चिन्ता करती हुई पौर्णमासी आती है। दूसरी ओर से वृन्दा और सुबल आकर उसे प्रणाम करते हैं। पौर्णमासी यह बताती है कि राधा को कृष्ण में आसक्त जानकर क्रुद्ध अभिमन्यु ने उसे मथुरा ले जाने का निश्चय किया है। इसी से वह चिन्तित है। मधुमंगल के पूछने पर राधा के प्रति अपने प्रेम का स्वाभाविक होना बताती है। उसी समय सुबल आता है और पौर्णमासी को प्रणाम कर वृन्दा को राधा का पता बतलाता है। पौर्णमासी वृन्दा तथा सुबल को कदम्ब कुञ्ज में ठहरने का निर्देशकर स्वयं अभिसार के लिए राधा को मनाने चल देती है। मार्ग में ललिता से भेंट हो जाती है। वह कृष्ण के प्रति राधा के अनुराग का वर्णन करती है। तदनन्तर विरहाकुल राधा प्रविष्ट होती है। ललिता तथा पौर्णमासी ओट में छिप कर राधा की विरहाभिव्यंजनाओं प्रलापों तथा उपालम्भों को सुनती है। पौर्णमासी राधा को अतिशीघ्र कृष्ण के पास

ले जाने के लिए ललिता से कहती है। ललिता राधा के पास जाकर हाल-समाचार पूछती है। इसी समय विशाखा आकर सुवल से प्राप्त एक पत्रिका देती है। ललिता उसे पढ़ती है। कृष्ण की उदासीनता का अनुमान कर-करके बेचैन हुई राधा को विशाखा धीरज बँधाती है। इसके वाद नान्दीमुखी आकर कृष्ण के अनुराग का वर्णन करती है। इसी समय नेपथ्य से कृष्ण की मुरली के चोरी होने की सूचना पाकर राधा आँचल से वह मुरली निकालती है और उसे वजाने का अभिनय भी करती है। मुरली आवाज सुनकर वृन्दा और जटिला वहाँ आ जाती हैं। राधा के हाथ में कृष्ण की मुरली देखकर जटिला अप्रसन्न होती हुई उसे छीनकर चल देती है। सुवल आकर घर में वन्दरी घुसने की वात जटिला से कहता है। जटिला गुसाकर वन्दरी पर मुरली फेंकती है, परन्तु वन्दरी मुरली लेकर कदम्ब पर चढ़ जाती है। ललिता मुरली ढूंढने के वहाने राधा को कृष्ण से मिलाना चाहती है, परन्तु मुखरा आकर चण्डीपूजा की सामग्री के साथ राधा को लेकर चैत्यवृक्ष के नीचे आने का उसे आदेश दे चली जाती है। ये दोनों भी वाद में चली जाती हैं।

इधर पौर्णमासी द्वारा प्रेषित सुवल वृन्दा के साथ कृष्ण का मनोविनोद करने चल पड़ता है। रास्ते में वे वेश वदल लेते हैं। मधुमंगल के साथ वैठे कृष्ण को नेपथ्य में कंगन की झंकार के साथ दो स्त्री-स्वर सुनाई पड़ते हैं। मधुमंगल विशाल नामक गोप की वहन सारंगी को पहचान लेता है, जो प्रविष्ट होकर मुखरा का मुरली विषयक उपालम्भ सुनाती है। कृष्ण मुरली मिल जाने की सूचना देते हैं। नेपथ्य में ललिता राधा से मुरली फेंक देने के लिए कहती है। राधा मुरली फेंक देती है। तत्क्षण गरजती हुई जटिला आती है और राधा के वेश में सुवल को तथा ललिता के वेश में वृन्दा को लेकर चली जाती है। यह भेद कृष्ण को मधुमंगल के द्वारा ज्ञात होता है, और इसीलिए कृष्ण के द्वारा वंशी वजाने पर जब वास्तविक राधा और ललिता आती हैं तो इन्हें भी वे दोनों सुवल तथा वृन्दा ही समझते हैं। इसी समय सहसा वृन्दा के आ जाने से भ्रम दूर हो जाता है। राधा मानवती हो उठती है और कृष्ण उसे मनाने लगते हैं। राधा विह्वल होकर रोने लगती है और कृष्ण उसके आँसू पोंछने लगते हैं। इधर मधुमंगल और ललिता आपस में एक दूसरे के पक्ष में आरोप-प्रत्यारोप करते हैं। नेपथ्य से शुक और

सारिका अपने-अपने समलिंगी का समर्थन करते हैं, जिससे आवेश में आकर मधुमंगल सारिका पर डंडा फेंकता है। दोनों पक्षी उड़ जाते हैं।

कृष्ण वृन्दा के द्वारा प्रदत्त दो कमल-पुष्पों से राधा के कानों को अलंकृत करते हैं, परन्तु उसमें बैठा भँवरा सादृश्य के कारण राधा के मुँहपर मँडराने लगता है। मधुमंगल भ्रमर पर डंडा चलाने की चेष्टा करता है और अवसर पाकर कृष्ण छिप जाते हैं। कृष्ण की अनुपस्थिति से राधा अत्यन्त आकुल हो उठती है, जिससे कृष्ण समीप आकर उसका हाथ पकड़ लेते हैं। दोनों में देरतक प्रतीकात्मक भाषा में प्रेमालाप होता है। उसी समय अपनी छड़ी खोजती जटिला आती है और उससे भयभीत होकर राधा वृन्दा तथा ललिता के साथ चली जाती है। जटिला सुबल को राधा वेश में धोखा देने के लिए उलाहना देती है और कृष्ण को धूर्तराज की उपाधि देती हुई प्रस्थान करती है। कृष्ण भी मधुमंगल के साथ गोकुल की ओर प्रस्थान करते हैं।

षष्ठ अङ्क—अपनी वधू राधा के शरीर पर पीताम्बर मिलने का रहस्य ढूँढने के उद्देश्य से जटिला प्रवेश करती है। सामने उसे विशाखा दीखती है, जिसे वह राधा को बुलाने के लिए कहती है। राधा जब आती है तो सामने जटिला को भी खड़ी देखकर घबड़ा जाती है। वह पीताम्बर के सम्बन्ध में बहाना बनाती है कि उत्सव में गोपियों ने हल्दी का घोल उसके कपड़े पर फेंक दिया था। जटिला गोपियों की गोष्ठी में राधा को ले जाने का आरोप विशाखा पर लगाती है। विशाखा गोपियों के उन्मत होने का कारण दीपमालिका पर्व बताकर स्वयं दोषमुक्त हो जाती है। जटिला के जाते ही पद्मा के साथ ललिता प्रवेश करती है। पद्मा ललिता को कृष्ण का सांकेतिक पत्र देती है। पद्मा राधा के पीताम्बर को देखकर उसका उपहास करती है, जिसका निवारण ललिता करती है। प्रसंगवश चन्द्रावली की चर्चा छिड़ जाती है तथा दोनों पक्षों में काफी तर्क-वितर्क होते हैं। राधा की सखियाँ ललिता और विशाखा एक ओर थीं एवं चन्द्रावली की सहेली पद्मा एक ओर। राधा इस विवाद में मध्यस्थता कर पद्मा को चन्द्रावली के पास भेज देती है। अब ललिता राधा को पत्र के संकेतों के अनुसार कृष्ण के पास ले चलने का उपक्रम करती है।

उसके बाद मधुमंगल के साथ कृष्ण आते हैं और वृन्दावन की अलौकिक

शोभा के बावजूद मन नहीं लगने पर मुरली टेरते हैं। इसी समय दोनों सखियों के साथ राधा पधारती है। वंशी की धुन सुनकर राधा आकुल हो जाती है, जिसका मजाक दोनों सखियाँ खूब उड़ाती हैं। वे मान त्यागकर कृष्ण के पास जाने के लिए उसे कहती हैं। राधा पर कृष्ण की दृष्टि पड़ती है। राधा के पास पहुँचकर कृष्ण उसका अभिनन्दन करते हैं। कटाक्ष से कृष्ण को देखकर राधा कम्पित-सी होकर ललिता से यमुनातटपर चलने के लिए कहती है। लेकिन कृष्ण मार्ग रोक लेते हैं। राधा यशोदा से कह देने की धमकी देती है परन्तु कृष्ण उसकी परवाह नहीं करते। दोनों में खूब उत्तर-प्रत्युत्तर होता है। कृष्ण राधा का मुकुट बनाने के लिए मोर पंख चुनने लगते हैं और अवसर पाकर राधा अशोक कुञ्ज में छिप जाती है। मुकुट लेकर जब कृष्ण आते हैं तो राधा के घर चले जाने की बात ललिता कहती है। कृष्ण इधर-उधर नजर दौड़ाते हैं और अन्ततः राधा को खोज ही लेते हैं। गोपियों की मानसिक दशा का अनुभव करने मधुमंगल सहित वे भी कहीं छिप जाते हैं। उनको ढूँढती हुई राधा उनके समीप पहुँच जाती है। दोनों केलिक्रीडा के लिए सप्तपर्णकुञ्ज में चले जाते हैं। दोनों सखियाँ उन दोनों की प्रतीक्षा करती हैं। बाद में उनसे मजाक करने के लिए कृष्ण छिप जाते हैं और राधा प्रकट होती है। कृष्ण के बारे में पूछे जानेपर वह अपनी अनभिज्ञता प्रकट करती है, परन्तु ललिता उसके शरीर पर पड़े केलिचिह्नों को पकड़ लेती है उसी समय कृष्ण आ जाते हैं। नेपथ्य से जटिला के शब्द सुनायी पड़ते हैं और राधा भयभीत होकर सखियों के साथ चली जाती है। कृष्ण भी जटिला के आगमन का अनुमान कर दूसरी ओर चले जाते हैं।

सप्तम अङ्क—राधा को मथुरा ले जाने की आज्ञा माँगने के लिए आये अभिमन्यु से बात कर रही पौर्णमासी को देखकर वृन्दा कुछ देर ठहर जाती है। पौर्णमासी अभिमन्यु को समझाती हुई कहती है कि कंस के हाथों में पड़कर राधा अपनी सुन्दरता को कभी सुरक्षित नहीं रख सकती। अभिमन्यु पौर्णमासी की बात मानकर चला जाता है। वृन्दा जब समीप आती है तो पौर्णमासी राधा-कृष्ण के विषय में पूछती है। वह उनके शृंगार की सफलता का वर्णन करती है। उसी समय ललिता आती है और सूचित करती है कि राधा के द्वारा प्रदत्त कृष्ण की माला उसने पद्मा के जूड़े में बंधी देखी है। पौर्णमासी बताती है कि किस

तरह . उन लोगों की पूर्णिमा-दिन की योजना को असफल करने के लिए पद्मा ने छलपूर्ण चतुराई से गौरीतीर्थ में चन्द्रावली को पहुँचा दिया है। उसी समय विशाखा आकर सूचित करती है कि कराला ने सौभाग्य पूर्णिमा में चन्द्रावली को उसके स्वामी मल्ल के पास ही रहने का आदेश दिया है। इस समाचार से सब हर्षित होती हैं। ललिता राधा को लेकर गौरीतीर्थ चलने का आयोजन करती है। वृन्दा ललिता के साथ कृष्ण के पास जाने का उपक्रम करती है। कुछ दूरी पर शैव्या से बातें करती हुई पद्मापर ललिता की दृष्टि पड़ती है। इन दोनों के चले जाने के बाद शैव्या और पद्मा प्रवेश करती हैं। नेपथ्य से कराला द्वारा चन्द्रा-वली को गोवर्धन पर्वत के पास ले जाने का आदेश सुनकर पद्मा खुश होती है, क्योंकि वहीं गौरीतीर्थ भी है। आगे चलने पर उन दोनों को सुवल दिखायी पड़ता है।

इसके बाद चन्द्रावली का सौन्दर्य पान करने के उद्देश्य से उसका मार्ग रोके खड़े कृष्ण दीखते हैं। वह कृत्रिम क्रोध प्रदर्शित कर मार्ग से हट जाने को कहती है। कृष्ण अनुनय-विनय करते हैं। कृष्ण के साथ चन्द्रावली और उसकी सखियों का बड़ी देर तक व्यंग्यपूर्ण उपालम्भों का आदान-प्रदान होता है। उसी समय ललिता और वृन्दा आती हैं। चन्द्रावली और राधा की सखियाँ कृष्ण को लेकर आपस में खूब नोंक-झोंक करती हैं। इसी समय कराला प्रवेश करती है तथा एक ओर से सब पर बरसती है। वृन्दा और ललिता के बुद्धि चातुर्य से प्रभावित होकर कराला चन्द्रावली को लेकर चल देती है। वृन्दा राधा की ओर से कृष्ण को एक चम्पकमाला भेंट करती है। उन दोनों को आगे बढ़ने के लिए कहकर कृष्ण गायों की व्यवस्था करने चले जाते हैं। उसके बाद राधा की आँखें पीछे से आकर कृष्ण मूंद देते हैं। दोनों की केलिक्रीडा शुरू हो जाती है। कृष्ण राधा को छलने के लिए उससे कुछ दूर हटकर 'चन्द्रा' कहकर भयभीत होने का अभिनय करते हैं जिससे राधा बिल्कुल नाराज हो जाती है। उसे मनाने के लिए कृष्ण स्त्री-वेश बनाने का उपक्रम करते हैं कि मधुमंगल चला आता है और वृन्दा से गौरीमंदिर में मिलने का संकेत कर कृष्ण चले जाते हैं। इधर सखियों के द्वारा अनेकशः प्रयास करने पर राधा अनुकूल होती है। वृन्दा सबको लेकर गौरी-मण्डप में पहुँचती है। श्रीकृष्ण वहाँ निकुञ्ज विद्या के छद्मवेश में उपस्थित होकर

राधा का आलिंगन करते हैं। उसी समय कृष्ण के साथ राधा के होने की आशंका से जटिला और अभिमन्यु आते हैं। यहाँ गौरी देवी के रूप में कृष्ण द्वारा सफाई देने पर अभिमन्यु मथुरा जाने की बात छोड़ देता है तथा जटिला अपनी सती पुत्रवधू के गले मिलकर अपने पुत्र के साथ चली जाती है। अब पौर्णमासी प्रकट होती है, जिसे कृष्ण प्रणाम करते हैं। राधा-कृष्ण के संयोग से पूर्णकामा पौर्णमासी श्रीकृष्ण से सतत गोकुल में रहकर राधा के साथ विलास करते हुए भक्तों को आनन्दित करने की प्रार्थना करती है। और इस प्रकार नाटक समाप्त हो जाता है।

—रमाकान्त झा

विदग्धमाधवस्थ-सुभाषितानि

(१) अपः शालग्रामाप्लवनगरिमोद्गारसरसाः।
सुधीः को वा कौपीरपि नमितमूर्धा न पिबति ॥ १।४ ॥
(२) रम्या कापि सतामियं विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया ॥ १।५ ॥
(३) लोकोत्तरा गुणश्रीः प्रथयति परितो निगूढमपि वस्तु ॥ १।१३ ॥
(४) न मंगला परिजने संगोपनाङ्गीकृतिः ॥ २।२ ॥
(५) यत्र प्रकृत्या रतिरुत्तमानां तत्रानुमेयः परमोऽनुभावः ॥ २।३२ ॥
(६) कुलस्त्रियो हि धर्मभीरवो भवन्ति ॥ द्वितीय अङ्क ॥
(७) कः खलु जिजीविषुर्जीवातुभूतायां सिद्धौषधिभूतायामुदास्ते ॥ द्वि० अङ्क॥
(८) दुर्बोधं खलु लोकोत्तराणां चित्तं न झटिति विकसति ॥ तृ० अङ्क ॥
(९) लोकोत्तरीभवन्नर्थो न कस्य तर्कणीयो भवति ॥ तृ० अङ्क ॥
(१०) भजन्ते साद्गुण्यादपि पृथुलदोषं हि पुरुषम् ॥ ३।३४ ॥
(११) चपलप्रेमाणो हि बाला रमण्यः ॥ तृ० अङ्क ॥
(१२) शठे कः क्षेमार्थी सुमुखि नहि शाठ्यं घटयति ॥ ३।४३ ॥
(१३) दत्ते चिन्तारत्ने न संपुटे आग्रहो युक्तः ॥ ३।४८ ॥
(१४) नहि लूतया प्रसारितास्तन्तवो गन्धसिन्धुरस्य बन्धाय प्रभवन्ति॥तृ०अङ्क॥
(१५) बाढं दुरूहा महीयसां प्रकृतिः ॥ चतुर्थ अङ्क ॥
(१६) नहि चन्द्रेण चन्द्रिकायाः मोक्षः कदापि संभवति ॥ पं० अङ्क ॥
(१७) योग्येन संगमिह गच्छतु वस्तु योग्यम् ॥ ५।२२ ॥
(१८) अस्ति नान्या चकोरस्य चन्द्रलेखां विना गतिः ॥ ५।३१ ॥
(१९) सरसेषु विनिर्मितो हि संगः परमानन्दभरोन्नतिं तनोति ॥ ५।४२ ॥
(२०) कं वा बलान्नहि हरत्यनुरागलक्ष्मीः ॥ ५।४३ ॥
(२१) जये पाणौ दत्ते रणपटुभिरग्रेसरभटैः।
स्वयं को विक्रान्तिं पुनरिह जिगीषुः प्रणयति ॥ ६।१७ ॥
(२२) विध्वंसयति हि पुंसां साध्वीपरिवादितायूंषि ॥ ७।५३ ॥
(२३) शान्तप्रियः परमभागवताः समन्ताद्।
वैगुण्यपुञ्जमपि सद्गुणतां नयन्ति ॥ (पुष्पिका श्लोक ३)

ग्रन्थाङ्क-सूची



भूमिका-सूची

नोट—भूमिका पृ० ५७ के पीठ पर पृ० ५९ तथा पृ० ५८ के पीठ पर पृ० ६० प्रेस की गल्ती से छप गया है। पाठक सुधार कर पढ़ेंगे।



पात्र परिचय

पुरुष पात्र

सूत्रधार : नाटकीय कथावस्तु का प्रस्तावक प्रधान नट
पारिपार्श्विक : सहायक नट
कृष्ण : चरित नायक
नन्द : कृष्ण के पालक गोपेन्द्र
मधुमंगल : कृष्ण का विदूषक मित्र
राम : कृष्ण का ज्येष्ठ भ्राता बलराम
श्रीदामा : कृष्ण का सखा एक गोप
सुबल : कृष्ण का नर्मसखा एक गोप
अभिमन्यु : राधा का पति तथा जटिला का पुत्र

स्त्री पात्र

पौर्णमासी : सान्दीपनि मुनि की माता, देवर्षि नारद की शिष्या
नान्दीमुखी : पौर्णमासी की सहायिका
यशोदा : नन्द की धर्मपत्नी गोपेश्वरी
राधिका : कृष्ण की प्रियतमा नायिका, अभिमन्यु गोप की स्त्री
ललिता : राधिका की प्रियसखी
विशाखा : राधिका की सहचरी
मुखरा : यशोदा की धाय, राधा की मातामही
जटिला : राधा की सास अभिमन्यु की माता
चन्द्रावली : कृष्ण की प्रेयसी प्रतिनायिका, गोवर्धन की पत्नी
पद्मा : चन्द्रावली की प्रियसखी
शैव्या : चन्द्रावली की सहचरी
वृन्दा : वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी, राधिका की सखी
सारंगी : एक गोपी
कराला : चन्द्रावली की सास, गोवर्धन की माता



विदग्धमाधवम्

टीकाकर्तृमङ्गलानि

तरणिजातटकुञ्जविहारिणं
ललितगोपवधूपटहारिणम् ।
सकलयोगकलासमलङ्कृतं
सुरभिदं प्रणमामि रमाधवम् ॥ १ ॥

उपाध्यायपदं प्राप्तं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
वासुदेवाग्रजं वन्दे बलदेवाभिधं गुरुम् ॥ २ ॥

सूर्यकान्तं विशुद्धान्तं भारतीसंश्रितोदयम् ।
गुरुवर्यमहं वन्दे वेदवेदाङ्गवेदिनम् ॥ ३ ॥

काश्यां निवसतो नित्यं तैलंगोपाधिधारिणः ।
अभिवन्दे गुरोः पादौ कान्तानाथस्य शास्त्रिणः ॥ ४ ॥

काव्य-शास्त्रैकनिष्णातं शुद्धोपाध्युपलक्षितम् ।
न्यायाचार्यमहं वन्दे दिनेशं शिष्यवत्सलम् ॥ ५ ॥

पितामहं द्विजं प्राप्तं काश्यपं लक्ष्मणात्मजम् ।
नमामि शिरसा पूज्यं माधवाख्यं महागुरुम् ॥ ६ ॥

यस्यानुकम्पया प्राप्ता विद्याकृतिर्मतिर्मया ।
नौमि तं यमुनाकान्तं पितरं वेदपारगम् ॥ ७ ॥

वाग्देवतां नमस्कृत्य रमाकान्तेन धीमता ।
नाटकं टीक्यते हिन्द्यां विदग्धाश्राव्यमाधवम् ॥ ८ ॥

॥ श्रीः ॥

विदग्धमाधवम्

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः ।

सुधानां चान्द्रीणामपि मधुरिमोन्माददमनी
दधाना राधादिप्रणयघनसारैः सुरभिताम् ।
समन्तात्संतापोद्गमविषमसंसारसरणि-
प्रणीतां ते तृष्णां हरतु हरिलीलाशिखरिणी ॥ १ ॥

प्रकाश—चन्द्रमा के अमृतसमूह की मधुरिमा के अहंकार को दूर करने वाली और राधा आदि (श्रेष्ठ गोपियों के) प्रेमरूपी कर्पूरों से सुगन्धित, भगवान् श्रीकृष्ण की लीलारूपी शिखरिणी (चीनीमिश्रित दधि से बना हुआ मसालेदार शरबत) सभी ओर से दैहिकादि त्रिविध तापों को उत्पन्न करने वाले विषम संसाररूपी मार्ग (में भटकने) से उत्पन्न तुम्हारी प्यास को दूर करे ॥ १ ॥

विमर्श—उपर्युक्त मंगल श्लोक में नाटककार ने भगवान् की लीला को शिखरिणी का रूपक दिया है। शिखरिणी शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ विशेष प्रकार का पेय पदार्थ भी है, जिसके पान से पथिकों की मार्गभ्रमणजन्य प्यास दूर होती है। नाटककार की दृष्टि में संसार संताप—नाना योनियों में भटकने के कारण जीव को जो तृष्णा उत्पन्न होती है, उसको दूर करने का एकमात्र उपाय भगवान् की अद्भुत लीलाओं का श्रवण, कीर्तन और मनन ही है। 'लीला शिखरिणी' का यही रहस्य है।

अपि च

> अनर्पितचरीं चिरात्करुणयावतीर्णः कलौ
> समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ।
> हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसंदीपितः
> सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥ २ ॥

और भी

किसी के द्वारा पहले कभी अर्पित नहीं की गयी प्रशस्त शृङ्गाररसमय अपनी भक्ति सम्पत्ति को बहुत दिनों के बाद कलियुग में दयाभाव से समर्पित करने के लिए अवतीर्ण, सुवर्ण के समान कान्ति समूह से उद्दीप्त तथा शची को आनन्द प्रदान करने वाले हरि (चैतन्य महाप्रभु) आप लोगों की हृदय रूपी गुफा में प्रकाशित हों ॥ २ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में नाटककार ने हरिलीला को नाटक के रूप में उपनिबद्ध करने के प्रेरक अपने गुरु श्रीकृष्ण चैतन्य की स्तुति का संकेत दिया है। हरि के लिए 'शचीनन्दनः' यह विशेषण इस संकेत का आधार है, क्योंकि चैतन्यमहाप्रभु की माता का नाम शचीदेवी था। चैतन्य महाप्रभु ने ही प्रस्तुत नाटक के रचयिता रूप गोस्वामी को भगवद्भक्ति की दीक्षा दी थी और उन्हीं की प्रेरणा से कवि ने कृष्णलीला को भक्तिरस में सम्पुटित कर कतिपय नाटकों में निबद्ध किया था। महाप्रभु ही कवि के दीक्षागुरु थे। प्रस्तुत पद्य का 'हृदयकन्दरे हरिः स्फुरतु' यह अंश अनेकार्थक होने के कारण सहृदयों को विशेष चमत्कृत करता है। इस पद्यांश के व्यंग्यार्थ इस प्रकार हैं—जिस प्रकार कन्दरा में विद्यमान अन्धकार समूह को हरि (सूर्य) प्रकाशित होकर नष्ट करते हैं उसी प्रकार दर्शकों के हृदय में विद्यमान अज्ञान को महाप्रभु अपने ज्ञान के प्रकाश से दूर करें। अथवा—कन्दराओं में छिप कर रहने वाले हस्ति समूह को जिस प्रकार हरि (सिंह) विनष्ट करता है उसी प्रकार जीवों के हृदय में विद्यमान व्याधिसमूह को हरि (महाप्रभु) दूर करें। प्राणियों का हृदय ही कन्दरा है और उसमें रहने वाला अज्ञानादि ही हस्ति समूह है। ऐसे व्याधि गज के गण्डस्थल को विदीर्ण करने में महाप्रभु जैसे सिंह ही समर्थ हैं।

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण । भो भोः, समाकर्ण्यताम् । अद्याहं स्वप्नान्तरे समादिष्टोऽस्मि भक्तावतारेण भगवता श्रीशंकरदेवेन, यथा—'अये ताण्डवकलापण्डित, इह किल वल्लवीचक्रचेतोवृत्तिमकरीविहारमकरालयस्य निरवद्यवेणुवादनविद्यास्वाध्यायसिद्धीनां प्रथमाध्यापकस्य सुगन्धिपुष्पावलीसौन्दर्यतुन्दिलायामरविन्दबान्धवनन्दिनीतीरान्तकाननलेखायामवलम्बितमत्तपुंस्कोकिललीलस्य परमानन्दवर्धिनि गोवर्धननितम्बे संभृतनव्याम्बुदाडम्बरस्य किशोरशिरोमणेर्नन्दनन्दनस्य प्रेमभराकृष्टहृदयो नानादिग्देशतः सांप्रतं रसिकसंप्रदायो वृन्दावनविलोकनोत्कण्ठया केशितीर्थोपकण्ठे समुपस्थितवान् । स च धन्यः!

कृतं गोपीवृन्दैरिह भगवतो मार्गणमभू-
दिहासीत्कालिन्दीपुलिनवलये रासरभसः ।

(नान्दी के बाद)

सूत्रधार—बस, अब अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं । आप लोग ध्यान से सुनें । आज स्वप्न में भक्त के अवतार भगवान श्री शंकर देव ने मुझे आदेश दिया है । यथा—"हे नृत्यकला के मर्मज्ञ, यहाँ (केशितीर्थ के निकट) गोपीसमुदाय की चित्तवृत्तिरूपी मकरी (मादा घड़ियाल) के विहार के लिए समुद्रस्वरूप, वंशी बजाने की दोषरहित विद्या के स्वाध्यायरूपी सिद्धियों के प्रथम अध्यापक, सुगन्ध युक्त पुष्पों की पंक्ति की सुषमा से परिपुष्ट कमलबन्धु सूर्य की पुत्री यमुना के तट के समीपवर्ती वनश्रेणी में आसक्त नर कोकिल की लीला के समान लीलाधारी, अत्यधिक आनन्द को बढ़ाने वाले गोवर्धन पर्वत के मध्य भाग में परिपूर्ण नूतन मेघ के समान आडम्बर करने वाले, किशोरों में श्रेष्ठ और नन्द को आनन्दित करने वाले श्री कृष्ण के प्रेमपुञ्ज से आकृष्ट हृदय रसिक सम्प्रदाय अनेक दिग्देशों से वृन्दावन को देखने की उत्सुकता से केशितीर्थ के समीप आया हुआ है । और वह (रसिक सम्प्रदाय) धन्य है !

'यहाँ पर गोपियों के समूह ने भगवान् का अन्वेषण किया था । यहाँ यमुना के बालुकामय तट पर रासलीला का आनन्द था', इस प्रकार गोकुलनायक

इति श्रावं श्रावं चरितमसकृद्गोकुलपते-
लुंठन्नुद्बाष्पोऽयं कथमपि दिनानि क्षपयति ॥ ३ ॥

तदिदानीमेतस्य भक्तवृन्दस्य मुकुन्दविश्लेषोद्दीपनेन बहिर्भवन्तः प्राणाः कामपि तस्यैव केलिसुधाकल्लोलिनीमुल्लासयता परिरक्षणीया भवता। मत्कृपैव ते सामग्रीं समग्रयिष्यति' इति। तेनाद्य जगद्गुरोरस्य निदेशमेवानुवर्तिष्ये।

(प्रविश्य)

पारिपार्श्विकः—भाव, भवता निबद्धस्य विदग्धमाधवनाम्नो नवीननाटकस्य प्रयोगानुसारेण गृहीतभूमिकाः कुशीलवा रङ्गप्रवेशाय तत्रभवन्तमनुज्ञापयन्ति।

सूत्रधारः—मारिष, निर्मितः किमिति तन्नाटकपरिपाटीभिर्वर्णिकापरिग्रहः। (क्षणं विमृश्य।) भवतु।

श्रीकृष्ण के अनेक चरित को सुन-सुन कर (उनके विरह में) लोटता हुआ यह रसिक सम्प्रदाय आँसुओं को बहाकर किसी प्रकार दिनों को बिता रहा है ॥ ३ ॥

अतः इस समय इस भक्त समूह के भगवान् के विरह की तीव्रता से बाहर निकलते हुए प्राणों की, उन्हीं (श्रीकृष्ण) की लीला रूपी अमृत की किसी नदी को उल्लसित करने वाले आपको रक्षा करनी चाहिए। (अर्थात् भगवान् के विरह में सन्तप्त भक्त समूह को भगवान् की लीला सुनाकर आश्वस्त कीजिए।) मेरी कृपा ही तुम्हारे लिए सामग्री को पूरी करेगी"। इसलिए आज इस जगत्स्वामी की आज्ञा का ही अनुसरण करूँगा।

(प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक—विद्वन्, आपके द्वारा विरचित 'विदग्धमाधव' नामक नवीन नाटक के अभिनय के अनुसार राधिका आदि के अनुकूल वेषभूषा को धारण करने वाले नट रंगभूमि में प्रवेश के लिए पूजनीय आप को सूचित कर रहे हैं।

सूत्रधार—मारिष, क्या उस नाटक की परंपराओं से समुचित वेष विन्यास का निर्माण हुआ ? (एक क्षण सोचकर) अच्छा।

ममास्मिन्संदर्भे यदपि कविता नातिललिता
मुदं धास्यन्त्यस्यां तदपि हरिगन्धाद्बुधगणाः ।
अपः शालग्रामाप्लवनगरिमोद्गारसरसाः
सुधीः को वा कौपीरपि नमितमूर्धा न पिबति ॥ ४ ॥

पारिपार्श्विकः—भाव, रङ्गलक्ष्मीकौशलस्तुतिभिरेव सभ्यानभ्यर्थयामहे, यदमी विद्यादिभिर्देवानपि तानुपाजघ्नुमुत्सहन्ते, किमुत नटानस्मान् ।

सूत्रधारः—मारिष, कृतमेतया वृथोपचारचर्यया । यतः,

अप्रेक्ष्य क्लममात्मनो विदधति प्रीत्या परेषां प्रियं
लज्जन्ते दुरितोद्यमादिव निजस्तोत्रानुबन्धादपि ।

यद्यपि मेरी इस रचना में अधिक मनोहारी कविता नहीं है, फिर भी भगवान् की गंध से विद्वज्जन इसमें आनन्द को प्राप्त करेंगे । शालग्राम भगवान् के स्नान से उत्पन्न महिमा के प्रकाश से सरस कूपजल को भी कौन बुद्धिमान् नतमस्तक होकर नहीं पीता ? ॥ ४ ॥

विमर्श—नाटक में सुन्दर पदावली का अभाव रहने पर भी भगवान् की लीला से सम्पृक्त होने के कारण भक्त सुधीजन को आनन्द मिलेगा । इसमें भगवान् के सम्बन्ध की महिमा का प्रभाव है । शालग्राम भगवान् के स्पर्श से पवित्र कूप का साधारण जल भी आदरपूर्वक पान किया जाता है । साधारण वस्तु भी भगवत्सम्पर्क से असाधारण गौरव को प्राप्त करता है ।

पारिपार्श्विक—विद्वन्, रंगलक्ष्मी की कुशलतापूर्ण प्रार्थनाओं से ही सभासदों की अभ्यर्थना करते हैं, क्योंकि ये विद्वान् दर्शक विद्या आदि के द्वारा उन देवताओं को भी धिक्कारने का उत्साह रखते हैं, फिर हम नटों की क्या बात ?

सूत्रधार-मारिष, निरर्थक उपचार चर्चा की आवश्यकता नहीं । क्योंकि—

(सज्जन भक्त) अपने कष्ट की चिन्ता न कर प्रेम से दूसरों का प्रिय करते हैं । जिस प्रकार सज्जन पुरुष पाप कर्म के उद्योग से लज्जित होते हैं उसी

विद्यावित्तकुलादिभिश्च यदमी यान्ति क्रमान्नम्रतां
रम्या कापि सतामियं विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया ॥५॥

(समन्तादवलोक्य । सहर्षमुच्चैः ।) हंहो वल्लवसिंहप्रियाः, भगवद्धर्मज्ञगोष्ठीगुरूणामपि युष्माकं समक्षं किमप्येष विवक्षमाणस्ताण्डविको निरपत्रपाणां पदवीमारोढुमुपक्रमते । तदिमां क्षमध्वं चापलारभटीम् । (इति सप्रणामं पश्यन्)

अभिव्यक्ता मत्तः प्रकृतिलघुरूपादपि बुधा
विधात्री सिद्धार्थान्हरिगुणमयी वः कृतिरियम् ।
पुलिन्देनाप्यग्निः किमु समिधमुन्मथ्य जनितो
हिरण्यश्रेणीनामपहरति नान्तःकलुषताम् ॥ ६ ॥

प्रकार भक्तजन भी अपनी प्रशंसा से लज्जा का अनुभव करते हैं। ये लोग विद्या, धन और कुल आदि से क्रमशः विनम्रता को प्राप्त करते हैं। (इस प्रकार) सज्जनों की यह सुन्दर स्वाभाविक कोई प्रक्रिया (परिपाटी) अत्यधिक उत्कृष्ट है ॥ ५ ॥

(चारों ओर देखकर । प्रसन्नतापूर्वक उच्च स्वर से)

हे गोपश्रेष्ठ श्रीकृष्ण के भक्तगण, भगवान् के धर्म (रहस्य अथवा गुण) को जाननेवाली सभा के भी गुरु आपलोगों के समक्ष कुछ कहने का अभिलाषी यह नट निर्लज्जों के मार्ग पर चढ़ने का उपक्रम (प्रयास) कर रहा है। अतः मेरी इस चंचलवृत्ति को क्षमा करें। (प्रणाम पूर्वक देखते हुए)

हे विद्वद्गण, स्वभाव से ही लघु रूपवाले मुझसे अभिव्यक्त (किन्तु) श्रीकृष्ण के गुणों से युक्त यह रचना (विदग्धमाधव नामक नाटक) आपलोगों के मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है। क्या (नीच जाति में उत्पन्न) पुलिन्द (शबर) के द्वारा समिधा के मन्थन से उत्पन्न आग सुवर्णराशि के आन्तरिक कालुष्य को दूर नहीं करती ? ॥ ६ ॥

विमर्श—यद्यपि यह नाटक मुझ जैसे क्षुद्रजन की कृति है, तथापि इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन है अतः महत्त्वपूर्ण है। इसमें भक्तों की मनो-

तदिदानीमभीष्टदेवं भगवन्तमनुस्मृत्य नृत्यमाधुरीमुल्लासयामि। (इत्यञ्जलिं बद्ध्वा ।)

प्रपन्नमधुरोदयः स्फुरदमन्दवृन्दाटवी-
निकुञ्जमयमण्डपप्रकरमध्यबद्धस्थितिः ।
निरङ्कुशकृपाम्बुधिर्व्रजविहाररज्यन्मना:
सनातनतनुः सदा मयि तनोतु तुष्टिं प्रभुः ॥ ७ ॥

पारिपार्श्विकः—भाव, पश्य ।

भक्तानामुदगादनर्गलधियां वर्गो निसर्गोज्ज्वलः
शीलैः पल्लवितः स बल्लववधूबन्धोः प्रबन्धोऽप्यसौ ।
लेभे चत्वरतां च ताण्डवविधेर्वृन्दाटवीगर्भभू-
र्मन्ये मद्विधपुण्यमण्डलपरीपाकोऽयमुन्मीलति ॥ ८ ॥

रथ-सिद्धि का सामर्थ्य है। जिस प्रकार नीच कुलोत्पन्न शबर के अरणिमन्थन से उत्पन्न अनल सुवर्ण की भीतरी मलिनता को दूर करता है, उसी प्रकार क्षुद्रजन से रचित भी यह कृति भक्तों के अन्तःकरण की विरह-वेदना को दूर करने में समर्थ है।

तो अब अभीष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण को पुनः स्मरण करके नृत्य की मधुरता को प्रकट करता हूँ। (इस प्रकार हाथ जोड़ कर)

जिनका आश्रय लेकर शृंगार रस का उदय हुआ है, अथवा शरणागत भक्तों के लिये जिनका करुणामय अवतार हुआ है, प्रकाशमान वृन्दावन के निकुञ्ज में निर्मित मण्डप-समूह के मध्य में जिनका निवास निश्चित है, जो अगाध कृपा के सागर हैं, व्रज में विहार करने से जिनका मानस आनन्दित होता है, वे सनातन शरीर धारण करने वाले प्रभु मुझमें सदा संतोष की वृद्धि करें ॥ ७ ॥

पारिपार्श्विक—भाव, देखिए।

अप्रतिहत बुद्धिवाले भक्तों का स्वभावतः उज्ज्वल समुदाय समुदित हुआ है। गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण का यह प्रबन्ध (विदग्ध माधव) स्वभावोक्ति आदि अलंकारों से विस्तृत किया गया है (अथवा श्रीकृष्ण के चरितों से पल्लवित किया

तत्त्वरस्त्र रसमाधुरीपरिवेषणाय ।

सूत्रधारः—मारिष, नीरसावलीवैमुख्याद्विशङ्कमानो मन्थर इवास्मि ।

पारिपार्श्विकः—भाव, कृतमत्र शङ्कया । यतः ।

उदासतां नाम रसानभिज्ञाः कृतौ तवामी रसिकाः स्फुरन्ति ।
क्रमेलकैः काममुपेक्षितेऽपि पिकाः सुखं यान्ति परं रसाले ॥६॥

तदारभ्यतां सामाजिकचेतश्चमत्काराय गान्धर्वब्रह्मविद्या ।

सूत्रधारः—मारिष, पश्य पश्य ।

सोऽयं वसन्तसमयः समयाय यस्मि-
न्पूर्णं तमीश्वरमुपोढनवानुरागम् ।

गया है) और वृन्दावन की मध्यभूमि नृत्यविधि की रंगभूमि बनी है। मानो मुझे जैसे व्यक्ति के पुण्य पुञ्ज के परिपाक (फल) का यह विकास हो रहा है ॥ ८ ॥

अतः रस की मधुरता को प्रस्तुत करने के लिए शीघ्रता करें ।

सूत्रधार—मारिष, कुछ नीरस दर्शकों की विमुखता से शंकित मैं शिथिल सा हो रहा हूँ ।

पारिपार्श्विक—भाव, यहाँ शंका करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि—

आपकी इस रचना में रस से अपरचित लोग भले ही उदासीन रहें, किन्तु सहृदय रसिकजन तो प्रफुल्लित ही होते हैं। ऊँटों के द्वारा स्वेच्छापूर्वक उपेक्षित भी आम्रवृक्ष पर केवल कोयल ही सुखपूर्वक जाते हैं ॥ ६ ॥

विमर्श—ऊँट की उपेक्षा से आम्र का महत्त्व कम नहीं होता है। रसज्ञ कोकिल आम्र के समीप जाकर उसके रसास्वादन से सुख को प्राप्त करता है। आपकी कृति से उदासीन मूढमति की चिन्ता व्यर्थ है। गुणग्राही भक्तजन तो भक्तिरस का आस्वादन करेंगे ही। इसलिए दर्शकों के मानस को चमत्कृत करने के लिए संगीत-विद्या को प्रारंभ कीजिए ।

सूत्रधार—मारिष, देखो देखो ।

यह वह वसन्तसमय है, जिसमें गूढ नक्षत्र युक्त यह पूर्णिमा तिथि रात्रि में

गूढग्रहा रुचिरया सह राधयासौ
रङ्गाय संगमयिता निशि पौर्णमासी ॥ १० ॥

(नेपथ्ये)

अये नर्तकसामन्तसार्वभौम, कथं भवतः कर्णपूरीभूता वाढं निगूढेयं संदर्भमञ्जरी, यदहं राधया सार्धमीश्वरं तं संगमयिष्यामीति ।

सूत्रधारः—(सविस्मयं नेपथ्याभिमुखमवलोक्य ।) अहो, कथमित एव भगवती पौर्णमासी । पश्य पश्य ।

वहन्ती काषायाम्बरमुरसि सान्दीपनिमुनेः
सवित्री सावित्रीसमरुचिरलं पाण्डुरकचा ।
सुरर्षेः शिष्येयं परिजनवती नन्दभवना-
दितो मन्दं मन्दं स्फुटमुटजवीथीं प्रविशति ॥ ११ ॥

नवीन लालिमा से युक्त निशापति पूर्ण चन्द्रमा को शोभा के लिए सुन्दर विशाखा नक्षत्र से मिलाने वाली है ।

पक्ष में—भगवती पौर्णमासी पूर्ण ईश्वर शृङ्गारमूर्ति श्रीकृष्ण को शोभना राधा से मिलाने वाली हैं ॥ १० ॥

विमर्श—उपर्युक्त द्व्यर्थक पद्य द्वारा पौर्णमासी के रंगमञ्च पर प्रवेश की सूचना दी गयी है और इस नाटक में पौर्णमासी का प्रधान कार्य राधा-कृष्ण का शृङ्गारमय मिलन कराना है ।

(नेपथ्य में)

हे नृत्य करने वाले सेनापतियों में सुप्रसिद्ध, 'मैं राधा के साथ उस ईश्वर रूप श्रीकृष्ण का मिलन कराऊँगा', यह अत्यन्त रहस्य पूर्ण सन्दर्भरूप पुष्पमञ्जरी किस प्रकार आपके कानों का आभूषण बन गयी ?

सूत्रधार—(आश्चर्य से नेपथ्य की ओर देख कर) अहो, भगवती पौर्णमासी इधर कैसे ? देखो देखो ।

सान्दीपनि मुनि की माता, ब्रह्मा की स्त्री के समान कान्तिवाली, श्वेत-केशों-वाली, देवर्षि नारद की शिष्या यह पौर्णमासी वक्षस्थल पर काषाय वस्त्र (गेरुआ-

तदावामप्यग्रतः करणीयं वर्णिकाङ्गीकारमालोचयावः ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

प्रस्तावना ।

--:०:--

(ततः प्रविशति सपरिजना पौर्णमासी ।)

पौर्णमासी—('अये नर्तकसामन्त-' इति पठित्वा ।) हन्त वत्से नान्दीमुखि, किमपि कमनीयं गायता स्फुटमानन्दितास्मि नटेन्द्रेण ।

नन्दी—भअवदि, किं क्खु जहत्थं एदम् ? (भगवति, किं खलु यथार्थमेतत् ?)

पौर्णमासी—

संभाव्यते फलमलम्भितमूलपुष्टे-
स्तत्तादृशं क मम भाग्यतरोर्वरोरु ।
येनानयोः सुभगयोरुचिता भवेयं
शृङ्गारमाङ्गलिकयोर्नवसंगमाय ॥ १२ ॥

वस्त्र) को धारण की हुई परिजनों के साथ नन्द के घर से धीरे धीरे इधर स्पष्टतः पर्णशाला के मार्ग की ओर से प्रवेश कर रही है ॥ ११ ॥

इसलिए हमलोग भी आगे करने योग्य वेषविन्यास को ठीक से देख लें ।

(दोनों जाते हैं ।)

प्रस्तावना समाप्त ।

--:०:--

(उसके बाद परिजनों के साथ पौर्णमासी प्रवेश करती है)

पौर्णमासी—('अये नर्तकसमान्त'—यह पढ़कर) अहा, अरी बेटी नान्दीमुखि, कुछ सुन्दर गीत गाते हुए नटराजने मुझे विशेष आनन्द पहुँचाया है ।

नान्दी—भगवति, क्या यह सच है ?

पौर्णमासी—हे सुन्दर जंघोंवाली, जड़ की पुष्टि विना प्राप्त किए मेरे भाग्यवृक्ष का उस प्रकार का फल कहाँ सम्भव है, जिससे मैं शृङ्गार-रस में मंगल-योग्य उन दोनों सुन्दर (राधा-कृष्ण) के नवीन संगम कराने के योग्य बनूँ ॥१२॥

नान्दी—भअवदि, जइ विसहाणुणन्दिणी राहिआ तुए कण्हेण संगमणिज्जा, तदो संगमाणुऊलवासं गोउलं उज्झिअ सान्तणुवाससए णे भाणुतित्थे किंति एसा संगोविअ रक्खिदा आसी। (भगवति यदि वृषभानुनन्दिनी राधिका त्वया कृष्णेन संगमनीया, तदा संगमानुकूलवासं, गोकुलं त्यक्त्वा शान्तनुवाससंज्ञे भानुतीर्थे किमित्येषा संगोप्य रक्षितासीत् ?)।

पौर्णमासी—वत्से, नृशंसतः कंसभूपतेः शङ्कया।

नान्दी—भअवदि, तहवि कहं रण्णाविण्णादा राहा। (भगवति ! तदपि कथं राज्ञा विज्ञाता राधा)।

पौर्णमासी—राधासौन्दर्यवृन्दमेव विज्ञाने निदानम्। यतः।

लोकोत्तरा गुणश्रीः प्रथयति परितो निगूढमपि वस्तु।
पिहितामपि प्रयत्नाद् व्यनक्ति कस्तूरिकां गन्धः॥१२॥

विमर्श—जिस वृक्ष की जड़ मजबूत होती है उसमें सुन्दर फल लगते हैं। पौर्णमासी का भाग्यरूपी वृक्ष उतना पुष्ट नहीं है कि उसमें राधा और कृष्ण के संगम सम्पादनरूपी फल लग सकें। पौर्णमासी अपने को इतना भाग्यवती नहीं समझ रही है कि वह राधा-कृष्ण के पारस्परिक मिलन कार्य का सम्पादन कर सके। इस दिशा में वह प्रयत्नशील तो है और उसे सफलता की भी आशा है, यदि भाग्यने उसका साथ दिया तो।

नान्दी—भगवति, यदि वृषभानु की पुत्री राधा का कृष्ण के साथ आपको संयोग कराना है तो संगम के उपयुक्त स्थान गोकुल को छोड़कर यह (राधा) शान्तनुवास नामक भानुतीर्थ में क्यों छिपा कर रखी गयी ?

पौर्णमासी—पुत्रि, निर्दयी कंसराज की शंका से।

नान्दी—भगवति, फिर भी राजा ने राधा को कैसे जान लिया ?

पौर्णमासी—राधा का सौन्दर्य समूह ही उसके जानने में मूलकारण है; क्योंकि—

अलौकिक गुणसम्पत्ति सभी ओर से अत्यन्त गुप्त वस्तु को भी प्रकट कर देती है। यत्न पूर्वक ढँकी हुई भी कस्तूरी को उसका गन्ध व्यक्त कर देता है। अर्थात् सुन्दर वस्तु छिपाए नहीं छिपती है॥ १२॥

नान्दी—भअवदि, जसोआधत्ताए मुहराए अत्तणो णत्तिणी राहिआ गोउलमज्झे आणीअ जडिलापुत्तस्स अहिमण्णुणो हत्थे उव्वाहिदा त्ति, तादिसं जेव्व असमञ्जसं आपडिदम्। जं कण्हादो अण्णेण पुरिसेण तादिसीणं करपंसं असज्जम्, ता कहं तुमं णिच्चिन्ता विअ दीससि। (भगवति, यशोदाधात्र्या मुखरया आत्मनो नप्त्री राधिका गोकुलमध्य आनीय जटिलापुत्रस्याभिमन्योर्हस्ते उद्वाहितेति, तादृशमेवासमञ्जसमापतितम्। यस्मात्कृष्णतोऽन्येन पुरुषेण तादृशीनां करस्पर्शनं असह्यम्, तस्मात्कथं त्वं निश्चिन्तेव दृश्यसे)।

पौर्णमासी—तस्यैव हेतोः।

नान्दी—कहं विअ? (कथमिव?)

पौर्णमासी—(विहस्य।) तद्वञ्चनार्थमेव स्वयं योगमायया मिथ्यैव प्रत्यायितं तद्विवानामुद्वाहादिकम्। नित्यप्रेयस्य एव खलु ताः कृष्णस्य।

नान्दी—(सहर्षम्।) ता नूनं तुमं णिच्चिन्तासि संवुत्ता, जं एसा अज्ज गोउलमज्झे आणीदा। (तन्नूनं त्वं निश्चिन्तासि संवृत्ता, यदेषाद्य गोकुलमध्य आनीता।)

नान्दी—देवि, यशोदा की धाय (दाई) मुखरा ने अपनी नतिनी राधा को गोकुल में लाकर जटिला के पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका विवाह कर दिया, इस प्रकार वैसा ही असमञ्जस उपस्थित हो गया है। क्योंकि कृष्ण के अतिरिक्त अन्य पुरुष के साथ उस प्रकार की ललनाओं का पाणिग्रहण असह्य है, तो तुम निश्चिन्त सी क्यों दीख रही हो?

पौर्णमासी—उसके ही कारण से (उसी कारण से)

नान्दी—किस प्रकार?

पौर्णमासी—(हँसकर) स्वयं योगमाया ने उसको धोखा देने के लिए ही वैसे लोगों को विवाह आदि का झूठा ही विश्वास दिलाया है। वे सब तो कृष्ण की सदा की प्रेमिकाएँ हैं।

नान्दी—(हर्षपूर्वक) इसीलिए तुम सचमुच निश्चिन्त हो गयी हो, क्योंकि यह (राधिका) आज गोकुल में लायी गयी है।

पौर्णमासी—वत्से, सत्यं ब्रवीषि। कंसतश्चिन्ता मे शैथिल्यमिवोपलब्धा, किं तु दुष्टाभिमन्युतः स्फुटमन्या सांप्रतमजनिष्ट।

नान्दी—केरिसी सा? (कीदृशी सा?)

पौर्णमासी—

वल्लवीनवलतासु रङ्गिणं कृष्णभृङ्गमधिगत्य मत्सरी।
राधिकापुरटपद्मिनीमयं नेतुमिच्छति पुनर्वनान्तरम्॥ १४॥

नान्दी—तत्थवि जोअमाआ ज्जेव्व समाहाणं करिस्सदि। (तत्रापि योगमायैव समाधानं करिष्यति)।

पौर्णमासी—बेटी, तुम सच कहती हो। कंस से मेरी चिन्ता शिथिल सी हो गयी है, किन्तु दुष्ट अभिमन्यु से इस समय दूसरी चिन्ता स्पष्ट उत्पन्न हो गयी है।

नान्दी—वह कैसी?

पौर्णमासी—गोपी रूपी नवीन लताओं में विहार करने वाले कृष्ण रूपी भ्रमर को जानकर वह मत्सरी (ईर्ष्यालु कीटविशेष) राधिका रूपी सुवर्ण कमलिनी को दूसरे वन में ले जाना चाहता है॥ १४॥

विमर्श—उपर्युक्त पद्य के कमलिनी और राधा पक्ष में दो अर्थ हैं—

कमलिनी पक्ष में—नवीन लताओं में अनुराग रखने वाले भृङ्ग को जानकर मत्सरी सुवर्ण के समान वर्ण वाली कमलिनी को दूसरे जलाशय में ले जाना चाहता है। इस पक्ष में वन शब्द जलवाचक है।

राधा पक्ष में—गोपियों में अनुराग रखने वाले कृष्ण का पता पाकर मत्सरी-राधापति ईर्ष्यालु अभिमन्यु राधिका को वृन्दावन से मधुवन-मथुरा ले जाना चाहता है। इस पक्ष में वनान्तर का अर्थ मधुवन मथुरा है। राधिका अभिमन्यु की पत्नी होकर भी श्री कृष्ण में अनुरक्त हैं, इस बात को जानकर अभिमन्यु उसे गोकुल से हटाकर मथुरा ले जाना चाहता है। पौर्णमासी की चिन्ता का यही कारण है।

नान्दी—वहाँ पर भी योगमाया ही समाधान करेंगी।

पौर्णमासी—पुत्रि, को जानाति स्वतन्त्रायास्तस्याश्चरितम्, यदीदृशेऽर्थे सा तटस्थायते।

नान्दी—अण्णो वा एत्थ कोवि उवाओ त्थि जेण एसो पडिबद्धो भवे। (अन्यो वात्र कोऽप्युपायोऽस्ति येनैष प्रतिबद्धो भवेत्।)

पौर्णमासी—वत्से, तत्र मया प्रतिभुवा भवन्त्या युक्तिमाधुरीमेदुरेण वागर्गलेन निसर्गादगम्भीरोऽयं विष्कम्भितोऽस्ति।

नान्दी—(सहर्षम्) भअवदि, कंसस्स गोमण्डलज्झक्खो गोअद्धणो कण्हाणुसारिणा चन्दाअलीचरित्तेण कुदो न कुप्पइ? (भगवति, कंसस्य गोमण्डलाध्यक्षो गोवर्धनः कृष्णानुसारिणा चन्द्रावलीचरित्रेण कस्मान्न कुप्यति?)

पौर्णमासी—पुत्रि, राजकुलोपलब्धेन गौरवेण गर्वितोऽयं व्यक्तमपि तत्र श्रद्दधाति।

नान्दी—कहं कण्हेण पढमंसे संगमो संवुत्तो? (कथं कृष्णेन प्रथमांशे संगमः संवृत्तः?)

पौर्णमासी—पुत्रि, संगमे खलु गाढानुरागितैव दूती बभूव। मधुघसानां केवलमजनिष्ट पिष्टपेषिता।

पौर्णमासी—पुत्रि, उस स्वतंत्र योगमाया का चरित कौन जानता है, यदि वह इस विषय में उदासीन हो जाती है।

नान्दी—अथवा क्या दूसरा भी कोई उपाय है जिससे (अभिमन्यु का मथुरा जाना) रुक जाय।

पौर्णमासी—बेटी, वहाँ मैं जामिन बन कर युक्तिपूर्ण मधुर वचन की अर्गला (साँकल) से स्वभावतः चंचल अभिमन्यु को रोक रही हूँ।

नान्दी—भगवति, कंस के गोमण्डल का अध्यक्ष गोवर्धन कृष्ण का अनुसरण करने वाले चन्द्रावली के चरित्र से क्यों नहीं क्रुद्ध होता है?

पौर्णमासी—बेटी, राजकुल से प्राप्त गौरव से गर्वित यह चन्द्रावली कृष्ण के स्पष्ट संगम की उपेक्षा करता है।

नान्दी—प्रथम अंश में कृष्ण के साथ किस प्रकार (चन्द्रावली का) संगम सम्पन्न हुआ?

नान्दी—अज्जे, तुह कहं एरिसी भाअविसेसभाविदा गाढाणुराइदा उप्पण्णा, जं अप्पणो अहिट्ठदेअम्हि अणुप्पण्णे कण्हे उज्जइणीं उज्झिअ पढमं ज्जेअ गोउलं लद्धासि। (आर्ये, तव कथमीदृशी भावविशेषभाविता गाढानुरागितोत्पन्ना, यदात्मनोऽभीष्टदेवेऽनुत्पन्ने कृष्णे उज्जयिनीं त्यक्त्वा प्रथममेव गोकुलं लब्धासि।)

पौर्णमासी—पुत्रि, गुरुपादानामुपदेशप्रसादेन।

नान्दी—एत्थ वसन्तीं तुमं महाभाओ संदीवणी किं क्खु जाणादि? (अत्र वसन्तीं त्वां महाभागः सांदीपनिः किं खलु जानाति?)

पौर्णमासी—अथ किम्? यतस्तेन मधुमङ्गलाभिधः स्वपुत्रो ममात्र परिचर्यार्थं प्रेषितः।

नान्दी—महुमङ्गलो तुए सुट्ठु अणुग्गहीदो जं एसो णन्दणअणिन्दीवरचन्दस्स सहअरदा महूसवे णिउत्तो। (मधुमङ्गलस्त्वया सुष्ठु अनुगृहीतो यदेष नन्दनयनेन्दीवरचन्द्रस्य सहचरता महोत्सवे नियुक्तः।)

पौर्णमासी—बेटी, मिलन में तो गाढ़ प्रेम की भावना ही दूनी बनी। मेरे प्रयासों की तो केवल पुनरावृत्ति हुई।

नान्दी—आर्ये, भाव विशेष से प्रभावित, इस प्रकार की तुम्हारी गाढ़ प्रेम भावना कैसे उत्पन्न हुई, जिससे अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण के अवतार से पहले ही उज्जयिनी छोड़कर गोकुल आ गयी?

पौर्णमासी—बेटी, गुरु चरणों के उपदेश की कृपा से।

विमर्श—पौर्णमासी नारद की शिष्या थी। देवर्षि ने उसे भविष्य में श्रीकृष्ण के गोकुल में अवतार लेने का निर्देश किया था। नारद के उपदेश पर विश्वास करके पौर्णमासी उज्जयिनी से गोकुल चली आयी थी।

नान्दी—यहाँ निवास करती हुई आपको क्या पूज्य सान्दीपनि जानते हैं?

पौर्णमासी—और क्या? इसीलिए उन्होंने मधुमंगल नामक अपने पुत्र को यहाँ मेरी परिचर्या के लिये भेजा है।

नान्दी—तुमने मधुमंगल पर विशेष कृपा की है, जिससे यह नन्द के नेत्र कुमुद के चन्द्र (श्री कृष्ण) के साहचर्य महोत्सव में नियुक्त है।

पौर्णमासी—पुत्रि, मम सर्वस्वरूपाया राधायाः कृष्णेऽनुरागवित्ताराय त्वं च नियुज्यसे।

नान्दी—(सानन्दम्।) भअवदि, अदिभूमिं गदो से कण्हे अनुराओ। (भगवति, अतिभूमिं गतोऽस्याः कृष्णेऽनुरागः।)

पौर्णमासी—कथमेतल्लक्षितम्?

नान्दी—जदा कहापसङ्गे एसा कण्हत्ति णामं सुणादि, तदा रोमाञ्चिदा कंपि भाअं विन्दइ। (यदा कथाप्रसङ्गे एषा कृष्णेति नाम शृणोति, तदा रोमाञ्चिता कमपि भावं विन्दति।)

पौर्णमासी—पुत्रि, युक्तमिदम्। तथा हि

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतःप्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी ॥१५॥

पौर्णमासी—बेटी, प्राणों से भी प्यारी मेरी राधा का कृष्ण में स्नेह बढ़ाने के लिए तुम भी नियुक्त की जाती हो।

नान्दी—(आनन्द पूर्वक) भगवति, कृष्ण के प्रति राधा की प्रीति बहुत दूर तक चली गयी है। अर्थात् राधा कृष्ण में पूर्ण अनुरक्त है।

पौर्णमासी—यह कैसे जान लिया?

नान्दी—जब यह कथा प्रसंग में (बातचीत में) 'कृष्ण' यह नाम सुनती है तो रोमाञ्चित होकर किसी भावविशेष को प्राप्त करती है। अर्थात् कृष्ण का नाम सुनकर प्रेमवश भावविह्वल हो जाती है।

पौर्णमासी—बेटी, यह ठीक है, क्योंकि—

दो अक्षरों वाला 'कृष्ण' यह शब्द जब मुख में नृत्य करता है तो अनेक मुखों को प्राप्त करने के लिये प्रेम का विस्तार करता है। कर्ण प्रदेश में अङ्कुरित होकर असंख्य कानों की स्पृहा करता है। चित्त रूपी आँगन में जाकर समस्त इन्द्रियों के व्यापार को पराजित करता है। न जाने कितने सुधा समूह से दो अक्षरों वाला 'कृष्ण' यह नाम उत्पन्न हुआ है ॥ १५ ॥

नान्दी—अज्जे, दोहिं ललिदाविसाहाहिं सहीहिं सद्धं राहा सूरं आराहेदि। चन्दाअली उण पउमासेव्वापहुदीहिं सद्धं चण्डिअम्' ता तक्केमि देअदापसाअणिप्पादिओ इमाणं ईरिसो कण्हे अणुराओ। (आर्ये, द्वाभ्यां ललिताविशाखाभ्यां सखीभ्यां सार्धं राधा सूर्यमाराधयति। चन्द्रावली पुनः पद्माशैव्याप्रभृतिभिः सार्धं चण्डिकाम्। तस्मात्तर्कयामि देवताप्रसादनिष्पादित आसामीदृशः कृष्णेऽनुरागः।)

पौर्णमासी—

देवनसेवा केवलमिह नयत्रानुसारिणी मुद्रा।
व्रजसुभ्रुवां तु कृष्णे सहजः प्रेमा स जागर्ति॥ १६॥

विमर्श—उपर्युक्त पद्य में कर्ता 'वर्ण द्वयी' है। उसका अन्वय 'वितनुते', स्पृहयते और 'विजयते' इस क्रियापदों के साथ है। 'कृष्ण' इस शब्द में दो अक्षर हैं। वे ही दो अक्षर जब मुख प्रदेश में नट की भाँति नृत्य करते हैं तो अनेक मुख को प्राप्त करने के लिए प्रीति बढ़ाते हैं। अर्थात् एक मुख से क्या, यदि अनेक मुख मिल जाँय तो उनसे सुखपूर्वक कृष्ण' नाम का कीर्तन किया जाय। वे ही दो अक्षर जब कानों के विषय बनते हैं तो असंख्य कानों की कामना करते हैं। अर्थात् दो कानों से क्या? करोड़ों कानों से कृष्ण शब्द सुना जाय और वे ही दो अक्षर जब कानों द्वारा मानस प्राङ्गण में प्रवेश करते हैं तो सभी इन्द्रियों का व्यापार शिथिल पड़ जाता है। अर्थात् वर्णद्वय के चित्तभूमि में प्रवेश करते ही सभी इन्द्रियाँ अपने अपने व्यापार को छोड़ कर उसकी माधुरी का ही पान करने लगती हैं। इस प्रकार 'कृष्ण' इतने विद्यमान दो अक्षर कितनी सुधाओं से उत्पन्न किए गये हैं, यह कहना कठिन है। यहाँ पर 'विजयते' में 'जि' धातु पराभव अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण सकर्मक है। उत्कर्ष अर्थ में प्रयुक्त 'जि' धातु अकर्मक होता है।

नान्दी—आर्ये, ललिता और विशाखा इन दोनों सखियों के साथ राधा सूर्य की आराधना करती है। और पद्मा, शैव्या प्रभृति सखियों के साथ चन्द्रावली चण्डिका की उपासना करती है। इससे मैं अनुमान करती हूँ कि कृष्ण के प्रति इन लोगों की ऐसी प्रीति देवताओं की कृपा से ही निष्पन्न हुई है।

नान्दी—सच्चं राहाए साहाविश्रं चेश्र पिम्मं तत्थवि सहीणं कोसलं उद्दीअणम् । (सत्यं राधायाः स्वाभाविकमेव प्रेम तथापि सखीनां कौशलमुद्दीपनम् ।)

पौर्णमासी—पुत्रि, मद्गिरा संदिश्यतामालेख्यविचक्षणा विशाखा यथेयं स्वसखीनेत्रारविन्दयोरानन्दनाय नन्दसूनोः प्रतिच्छन्दं निर्माति ।

नान्दी—जह आणवेदि भअवदी । (यथाज्ञापयति भगवती ।)

पौर्णमासी—मयापि मोदकवृन्ददानापदेशाद्वृन्दाटवीमध्यमासाद्य राधेति मङ्गलाक्षरमाधुर्येण माधवकर्णयोर्द्वन्द्वमानन्दनीयम् ।

नान्दी—अज्जे, पेक्ख एसो राममहुमङ्गलसिरिदामपहुदीहिं सहअरेहिं सद्धं गोउलादो णिक्कमिअ वुन्दावनं गच्छन्तो कण्हो सिणिद्धेहिं पिदरेहिं जसोआनन्देहिं लालिज्जइ (आर्ये, पश्यैष राममधुमङ्गलश्रीदामप्रभृतिभिः सहचरैः सार्धं गोकुलान्निष्क्रम्य वृन्दावनं गच्छन्कृष्णः स्निग्धाभ्यां पितृभ्यां यशोदानन्दाभ्यां लाल्यते ।

पौर्णमासी—यहाँ इन लोगों की देवोपासना तो केवल वन जाने का बहाना है। व्रजललनाओं का कृष्ण के प्रति तो स्वाभाविक अनुराग है, जो जागता रहता है।

नान्दी—सचमुच राधा का प्रेम स्वाभाविक ही है, फिर भी सखियों की कुशलता उस प्रेम को बढ़ाने में सहायक है।

पौर्णमासी—बेटी, चित्र बनाने में निपुण विशाखा को मेरी ओर से संदेश कहो कि वह अपनी सखी (राधा) के नयनकमलों को आनन्दित करने के लिए नन्दनन्दन (श्रीकृष्ण) का चित्र बनावे।

नान्दी—भगवती की जैसी आज्ञा।

पौर्णमासी—मुझे भी मोदक समूह के वितरण करने के व्याज से वृन्दावन पहुँच कर 'राधा' इस मंगलमय अक्षर की मधुरिमा से माधव के कर्ण युगल (कानों की जोड़ी) को आनन्दित करना है।

नान्दी—आर्ये, देखिए, बलराम, मधुमंगल तथा श्रीदाम आदि साथियों के साथ गोकुल से निकल कर वृन्दावन जाते हुए इस कृष्ण को स्नेही माता पिता यशोदा और नन्द प्यार कर रहे हैं।

पौर्णमासी—(विलोक्य । सहर्षम् ।)

अयं नयनदण्डितप्रवरपुण्डरीकप्रभः
प्रभाति नवजागुडव्रजविडम्बिपीताम्बरः ।
अरण्यजपरिष्क्रियादमितदिव्यवेषादरो
हरिन्मणिमनोहरद्युतिभिरुज्ज्वलाङ्गो हरिः ॥१७॥

तदहं मोदकसंपादनाय गच्छेयम् । त्वं विशाखां याहि ।

(इति निष्क्रान्ते ।)

विष्कम्भकः ।

--:o:--

पौर्णमासी—(देखकर । प्रसन्नता से)।

नेत्र प्रताड़ित श्रेष्ठ कमल की कान्ति से युक्त, नवीन कुङ्कुम समूह के समान पीतवस्त्र से शोभित, वनपुष्पों के आभूषणों से अत्यन्त सुशोभित और मरकत मणि की मनोहर कान्तियों से विमल अंग वाले ये श्रीकृष्ण विशेष शोभा को पा रहे हैं ॥ १७ ॥

इसलिए मैं लड्डू बनाने के लिए चलूँ । तुम विशाखा के पास जाओ ।

(दोनों रंगमंच से जाती हैं)।

(विष्कम्भक समाप्त)

--:o:--

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः कृष्णः)

श्रीकृष्णः—(पुरस्तादवलोक्य । सानन्दम् ।)

श्रेणीभूतवपुःश्रियामभिमुखे गोमण्डलीनां क्रमा-
दासां स्फाटिकगण्डशैलपटलीपाण्डुत्विषां व्याजतः ।
शङ्के ज्ञातगुणा पुरंदरपुराचस्कन्द मन्दाकिनी
वृन्दारण्यविहारिधन्ययमुनासेवाप्रमोदार्थिनी ॥१८॥

नन्दः—वत्स, साधु वर्णितम् । किं तु गोष्ठलक्ष्मीरपि पृष्ठतः प्रेक्ष्यतामिति । (परावृत्य ।)

(उसके बाद कृष्ण अपने साथियों के साथ प्रवेश करते हैं ।)

श्रीकृष्ण—(सामने देखकर । आनन्दपूर्वक) ।

क्रमशः शरीर की राशिभूत शोभा से युक्त, आँधी के झोंके से धराशायी स्फटिक की बड़ी चट्टानों के समूह की स्वच्छ कान्ति के समान शोभा वाली गायों के इन समूहों के व्याज से गुणों को जानने वाली, वृन्दावन में विहार करने से सौभाग्यशालिनी यमुना की सेवा से उत्पन्न आनन्द को प्राप्त करने के उद्देश्य से मानो आकाश गंगा ही इन्द्रपुरी से सामने आ गयी है ॥ १८ ॥

विमर्श—यहाँ पर वृन्दावन में विचरण करने वाले धवल कान्ति गोमण्डलों में आकाश गंगा की उत्प्रेक्षा की गयी है । आकाश गंगा स्वर्ग में रहती है किन्तु वह गुणग्राहिणी है, वृन्दावन मे यमुना की सेवा का उसे अवसर मिलेगा अतः इन्द्रपुरी को छोड़ कर वह गोमण्डली के रूप में वृन्दावन आ गयी है । इस उत्प्रेक्षा में इन्द्रपुरी की अपेक्षा वृन्दावन की उत्कृष्टता की व्यञ्जना है । उत्कृष्टता का प्रधान कारण है सूर्यतनया कालिन्दी का कलकल निनाद पूर्ण प्रवाह ।

नन्द—पुत्र, तुमने सुन्दर वर्णन किया । किन्तु पीछे से गोशाला की शोभा

विशालैर्गोशालैर्बहुशिखरशाखाविततिभिः
परीतैः संबाधीकृतजलधिगम्भीरगहनम् ।
समृद्धामागोवर्धनकटकमाकालियह्रदं
श्रियं बिभ्रद्गोष्ठं स्फुरति परितस्तावकमिदम् ॥१६॥

कृष्णः—सखे मधुमङ्गल, दूरमनुयातोऽस्मि तातेन । तदविलम्ब-मम्बया सार्धं गोष्ठं प्रविश्यताम् ।

यशोदा—जाद, किंति अवरण्हे वि गोट्ठं ण सुमरसि, जं परमा-दरेण मए रन्धिदाइं पच्चहं सीअलीहोन्ति मिट्ठण्णाइं । (जात, किमित्य-पराह्णेऽपि गोष्ठं न स्मरसि, यत्परमादरेण मया रन्धितानि प्रत्यहं शीतलीभवन्ति मिष्टान्नानि ।

मधुमङ्गलः—गोउलेस्सरी, सुणाहि । (इति संस्कृतेन । गोकुलेश्वरि, शृणु ।)

गोभ्यः शपे किमपि दूषणमस्य नास्ति

(इति वाग्रुपक्रमे कृष्णः सस्नेहमेनं पश्यति ।)

को भी देखो । (घूमकर) अपने विशाल गृह के अग्रभागों तथा प्रान्तभागों के विस्तार से व्याप्त गोशालाओं द्वारा समुद्र की गहनता को संकीर्ण बनाकर गोवर्धन पर्वत के निचले भाग से लेकर कालिय सरोवर तक विस्तृत तुम्हारा यह गोष्ठ (विशाल गोगृह) सभी ओर से शोभायमान हो रहा है ॥ १६ ॥

कृष्ण—मित्र मधुमङ्गल, पिता जी दूर तक पीछे चले आये हैं । अतः शीघ्र ही माता के साथ गोशाला में प्रवेश करें ।

यशोदा—पुत्र, अपराह्ण (दोपहर के बाद) में भी तुम्हें गोशाला की याद क्यों नहीं आती । क्योंकि बहुत स्नेह से मेरी बनाई हुई मिठाइयाँ प्रतिदिन ठंढी हो जाती है ।

मधुमंगल—गोकुल की स्वामिनि, सुनिए । (संस्कृत में) गायों की शपथ लेकर कहता हूँ, इनका कोई अपराध नहीं है । (इस प्रकार कहने पर कृष्ण उसको प्रेम से देखते हैं)

मधुमङ्गलः—

ताभिर्यदेष रभसादभिकृष्यमाणः ।
कुञ्जं विशत्यधिककेलिकलोत्सुकाभिः

(इति वागसमाप्तौ ।)

कृष्णः—(सापत्रपमात्मगतम् ।) व्यक्तमेष बालिशो बल्लवीभिरिति वक्ष्यति । तदेनं संज्ञया निवारयामि । (इति शिरस्तिरो धूनयति ।)

मधुमङ्गलः—भो वअस्स, किंति मं णिवारेसि जं णिच्चिदं अज्ज अज्जाया अग्गदो एदं विण्णाविस्सम् । भो वयस्य, किमिति मां निवारयसि यन्निश्चितमद्य आर्याया अग्रत इदं विज्ञापयिष्यामि ।

कृष्णः-(स्वगतम् ।) हन्त, लज्जाजाले जाल्मधियाहं पातितोऽस्मि ।

मधुमङ्गलः—

पीताम्बरस्त्वरितमम्ब सुहृद्घटाभिः ॥ २० ॥

कृष्णः—(सानन्दमात्मगतम् ।) कथमन्यदेवास्य हृद्गतम् ।

मधुमंगल—क्योंकि क्रीडा की कला में अधिक उत्कंठित उन लोगों द्वारा खींचे जाने पर प्रसन्नता से ये कुञ्ज से प्रवेश करते हैं ।

(इस वचन की समाप्ति से पहले ही)

कृष्ण—(लज्जा से मन ही मन) स्पष्ट ही यह मूर्ख गोपियों द्वारा' ऐसा कहेगा । इस लिए इसको संकेत (इशारा) से रोकता हूँ । (शिर को तिरछे हिलाते हैं)

मधुमंगल—हे मित्र, मुझे आप मना क्यों करते हैं, आज मैं अवश्य ही आर्या के समक्ष यह कहूँगा ।

कृष्ण—(मन ही मन) दुःख है, आज इस बेवकूफ ने मुझे लाज के जाल में गिरा दिया है ।

मधुमंगल—हे मातः, पीताम्बर श्रीकृष्ण मित्र मण्डली द्वारा शीघ्र (कुञ्ज में प्रविष्ट होते हैं) ॥ २० ॥

कृष्ण—(प्रसन्नता से मन ही मन) कैसे इसके मन में दूसरी ही बात थी ।

यशोदा—वच्छ बहुमङ्गल, सच्चं ललिदापहुदीओ ओववालिआओ अ मह इदं कहेन्ति ता छिम्मिए हदम्हि। (वत्स मधुमङ्गल, सत्यं ललिताप्रभृतयो गोपबालिकाश्च मम इदं कथयन्ति तच्छिम्भैर्हतास्मि।)

नन्दः—कुटुम्बिनि, कच्चिदनुरूपा निरूपितास्ति गोकुले काचिद्बालिका यामुद्वाहयामो वत्सम्।

यशोदा—अज्ज, दुद्धमुहस्स वच्छस्स दाणिं को क्खु उव्वाहाओसरो। (आर्य, दुग्धमुखस्य वत्सस्येदानीं कः खलु उद्वाहावसरः।)

मधुमङ्गलः—(अपवार्य।) वअस्स, सच्चं दुद्धमुहोऽसि जं दुद्धलुद्धाइं गोवकिसोरीसहस्साइं तुज्झ मुहं पिअन्ति। (वयस्य, सत्यं दुग्धमुखोऽसि यद्दुग्धलुब्धानि गोपकिशोरीसहस्राणि तव मुखं पिबन्ति।)

(कृष्णः स्मितं करोति।)

नन्दः—वत्स, पश्य पश्य।

अहह कमलगन्धेरत्र सौन्दर्यवृन्दे
विनिहितनयनेयं त्वन्मुखेन्दोर्मुकुन्द।
कुचकलशमुखाभ्यामम्बरक्नोपमम्ना
तव मुहुरतिहर्षाद्वर्षति क्षीरधाराम्॥२१॥

यशोदा—बेटा मधुमंगल, और ललिता आदि गोपियाँ सच ही मुझको यह कहती हैं कि मैं बच्चों द्वारा ठगी गयी हूँ।

नन्द—प्रिये, क्या गोकुल में किसी अनुरूप कन्या का पता लगाया है जिसके साथ पुत्र का विवाह करूँ?

यशोदा—आर्य—इस समय दुधमुँहे बच्चे के विवाह का क्या प्रसंग?

मधुमंगल—(एकान्त में कृष्ण से) मित्र, आप सचमुच दुधमुँहे हैं इसीलिए दूध से आकृष्ट हजारों गोपियाँ आपके मुख का पान करती हैं।

(कृष्ण मुस्कुराते हैं)

नन्द—बेटा, देखो देखो।

हे मुकुन्द, कमल के समान गन्ध वाले तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा के सौन्दर्य

(इति कृष्णमालिङ्ग्य सानन्दम् ।)

जितचन्द्रपरागचन्द्रिकानलदेन्दीवरचन्दनश्रियम् ।
परितो मयि शैत्यमाधुरीं वहति स्पर्शमहोत्सवस्तव ॥२२॥

कृष्णः—तात, बुभुक्षाक्लिष्टमपि मत्प्रतीक्षया स्वयं तत्तन्मे गोकदम्बकम् । तन्निवर्ततां तत्रभवन्तौ ।

नन्दः—यथाह वत्सः । (इति सस्नेहं कृष्णमवलोकयन्सभार्यो निष्क्रान्तः ।)

कृष्णः—(पुरोऽवलोक्य ।)

सुगन्धौ माकन्दप्रकरमकरन्दस्य मधुरे
विनिस्यन्दे वन्दीकृतमधुपवृन्दं मुहुरिदम् ।
कृतान्दोलं मन्दोन्नतिभिरनिलैश्चन्दनगिरे-
र्ममानन्दं वृन्दाविपिनमतुलं तुन्दिलयति ॥ २३ ॥

समूह में अपने नेत्र को एकटक लगाये तुम्हारी माता स्तन-पट के अग्रभागों से वस्त्र को भिगो कर बार-बार हर्ष से दूध की धारा बरसाती है ॥ २१ ॥

(कृष्ण का आलिंगन कर आनन्द से)

तुम्हारे स्पर्श से उत्पन्न आनन्द कपूर, चाँदनी, खस, कुमुद तथा चन्दन की शोभा को जीतने वाली शीतलता की मधुरिमा को मुझमें धारण कर रहा है । (अर्थात् तुम्हारे स्पर्श से मुझे अपूर्व शीतलता की अनुभूति हो रही है ।) ॥ २२ ॥

कृष्ण—पिताजी, भूख से आकुल भी गोसमूह मेरी प्रतीक्षा से स्वयं रुक गया है । अतः पूजनीय आप दोनों लौट जायँ ।

नन्द—वत्स, तुमने जैसा कहा । (यह कह कर प्रेम से कृष्ण को देखते हुए नन्द स्त्री के साथ चले गये)

कृष्णः—(सामने देखकर)

आम्र-समूह के रस से निकलने वाले मधुर सुगन्ध में बार-बार भ्रमर समूह को बन्दी बनाने वाला यह वृन्दावन मन्द-धीर मलय पवनों से आन्दोलित होकर मेरे असीमित आनन्द को बढ़ा रहा है ॥ २३ ॥

रामः—श्रीदामन्, पश्य पश्य।

वृन्दावनं दिव्यलतापरीतं लतास्तु पुष्पस्फुरिताग्रभाजः।
पुष्पाण्यपि स्फीतमधुव्रतानि मधुव्रताश्च श्रुतिहारिगीताः ॥२४॥

कृष्णः—सखे मधुमङ्गल, भवद्विधानामासत्तिशंसिभिर्वंशीगीतैरानन्दयामि वृन्दाटवीवास्तव्यान्। (इत्यधरे वेणुं विन्यस्यति।)

रामः—(साश्चर्यम्।) हन्त, परस्परविपर्यस्तस्वभावानामपि भावानां धर्मविपर्ययः पश्यत।

जातस्तम्भतया पयांसि सरितां काठिन्यमापेदिरे
ग्रावाणो द्रवभावसंवलनतः सान्द्रमी मार्दवम्।
स्थैर्यं वेपथुना जहुर्मुहुरगाज्जाड्याद्गतिं जङ्गमां
वंशीं चुम्बति हन्त यामुनतटीक्रीडाकुटुम्बे हरौ ॥२५॥

राम—श्रीदामन्, देखो देखो।

वृन्दावन दिव्य लताओं से व्याप्त है। लताएँ विकसित पुष्पों से आपूर्ण हैं। फूल भौंरों से सुशोभित हैं और भौंरे भी श्रवण सुखद मधुर गुञ्जार कर रहे हैं ॥ २४ ॥

कृष्ण—मित्र मधुमङ्गल, आप जैसे लोगों की समीपता की सूचना देने वाले मुरली के गीतों से वृन्दावन में रहने वाले पशुपक्षियों को आनन्दित करता हूँ। (यह कह कर मुरली को ओठ से लगाते हैं)।

राम—(आश्चर्य से) अहा, देखो परस्पर विपरीत स्वभाव वाले पदार्थ भी अपने प्रतिकूल धर्म को ग्रहण कर रहे हैं। यमुना तट पर क्रीडा करने वाले कृष्ण के वंशी बजाने पर उत्पन्न स्तम्भन (रुकावट) से सरिताओं के जल कठोर होकर जम गये।

प्रस्तर द्रवित होकर कोमल हो गये (पत्थर गलकर बहने लगे) कम्पन ने स्थिरता को धारण किया और जंगम पदार्थ जड़ता के कारण गतिहीन हो गये ॥२५॥

मधुमङ्गलः—ही ही अच्चरिअम् । (ही ही आश्चर्यम् ।) ।

पउरदरगलन्दच्छीरकल्लोलिणीहिं
णअकुसुमलदाणं हन्त सेअं कुणन्ती ।
पिविअ महुरवंसीणादपीऊसपूरं
फुरइ गरुअसोक्खत्थम्भिदा धेणुपन्ती ॥ २६ ॥

(इति कृष्णं हस्तेन चालयन् ।) भो पिअवअस्स, कीस णिब्भरं गव्वाएसि । एदाए च्चेअ वेणुजादीय एसा उम्मादिआ पइदी । एत्थ उण णिमित्तमेत्तं क्खु तुमम् ।

प्रचुरतरगलत्क्षीरकल्लोलिनीभिर्नवकुसुमलतानां हन्त सेकं कुर्वती ।
पीत्वा मधुरवंशीनादपीयूषपूरं स्फुरति गुरुसौख्यस्तम्भिता धेनुपङ्क्तिः ॥
भो प्रियवयस्य, कस्मान्निर्भरं गर्वायसे । एतस्या एव वेणुजातेरेषोन्मादिका प्रकृतिः । अत्र पुनर्निमित्तमात्रं खलु त्वम् ।

(अकाशे ।)

रुन्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन्सनन्दनमुखान्विस्मापयन्वेधसम् ।

मधुमंगल—हा, हा, आश्चर्य है ।

पर्याप्त रूप से बहते हुए दूध की नदियों से नवीनपुष्प लताओं को सींचती हुई गोपंक्ति मुरली की मीठी तान रूपी अमृत प्रवाह को पीकर फरक (प्रसन्न हो) रही है ॥ २६ ।

(यह कह कर कृष्ण को हाथ से हिलते हुए) हे मित्र, तुम इतना अहँकार क्यों करते हो उन्मत्त करने वाला स्वभाव तो इसी मुरली का है । तुम तो केवल निमित्त हो । (अर्थात् मुरली की मधुर तान ही लोगों को उन्मत्त करती है तुम तो केवल बजाने वाले हो ।)

(आकाश में)

बादलों को स्तम्भित करता हुआ, नारद की वीणा को चमत्कृत करता हुआ, सनन्दन के मुखों को ध्यान से हटाता हुआ ब्रह्मा को अचरज में डालता

औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन्भोगीन्द्रमाघूर्णय-
न्भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः ॥२७॥

रामः—(सहर्षम् । ऊर्ध्वमवलोक्य स्वगतम् ।) कथं मेघान्तरितोऽयं सुरर्षिः पद्यमुपवीणयामास ।

(पुनराकाशे कलकलः ।)

मधुमङ्गलः—(ऊर्ध्वमवलोक्य । सभयम् ।) अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णम् । भो भो, पलाअम्ह पलाअम्ह । (अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम् । भो भोः पलायामहे पलायामहे ।)

श्रीदामा—वाउल, किंति णिरग्गलं पलवसि । (वातुल, किमिति निरर्गलं प्रलपसि ।)

मधुमङ्गलः—(ऊर्ध्वमवलोक्य । सभयम् ।) अरे मुक्ख गोआलिआ, किं ण पेक्खसि । एसो समारूढहंसो णग्गेण भुअङ्गधारिणा केणवि वेदालेण सद्धं चउम्मुहो को वि जक्खो रक्खसो वा आअच्छदि । (पुनर्वीक्ष्य सोत्कम्पम् ।) ही माणहे, एदे अ अच्छीहिं पूरिदसव्वङ्गं कंपि

हुआ, उत्सुकता की अधिकता से बलि को चंचल करता हुआ, शेष नाग को चक्कर खिलाता हुआ और ब्रह्माण्ड रूपी कटाह (कराही) की भीत का भेदन करता हुआ यह वंशीरव (मुरली की गूँज) चारों ओर घूम (फैल) गया है ॥ २७ ॥

राम—(प्रसन्नता से । ऊपर देखकर मन ही मन) क्या मेघ के बीच में देवर्षि नारद ने इस श्लोक को वीणा पर गाया है ? (फिर आकाश में कलकल शब्द होता है) ।

मधुमंगल—(ऊपर देखकर । भय से) मैं अवध्य हूँ, अवध्य हूँ । अरे-अरे । हम लोग भागें, भागें ।

श्रीदामा—वाचाल-बेकार क्या बकता है ?

मधुमंगल (ऊपर देखकर । डर से) रे मूर्ख गोपाल, क्या देखते नहीं हो । हंस पर आरूढ़ चार मुखों वाला कोई यह राक्षस या यक्ष साँप को धारण करने वाले किसी वेताल के साथ आ रहा है । हा, ऐसा लगता है, कि आँखों से व्याप्त सम्पूर्ण अंगवाले किसी दानव को आगे का दूसरा असुर आकाश में घूम

दाणआं अग्गोकदुअ अवरे असुरा गअणं आक्कमन्दि । ता संकेमि हद-कंसस्स किंकरा हुविस्सन्दि । (इति सत्रासं कृष्णकक्षान्तरे शिरस्तिरयति।) (अरे मूर्ख गोपाल, किं न पश्यसि । एष समारूढहंसो नग्नेन भुजङ्ग-धारिणा केनापि वेतालेन सार्धं चतुर्मुखः कोऽपि यक्षो राक्षसो वागच्छति । ही मन्यामहे, एते चाक्षिभिः पूरितसर्वाङ्गं कमपि दानवमग्रेकृत्य अपरेऽसुरा गगनमाक्रमन्ति । तच्छङ्के हतकंसस्य किंकरा भविष्यन्ति ।

कृष्णः—(स्वगतम् ।) कथमेते वेणुनादमाधुरीभिराकृष्टाः पयोद-वीथीमवगाहन्ते दिशामधीशाः । (इति पुनर्वेणुं क्वणयति ।)

मधुमङ्गलः—(विलोक्य सोच्छ्वासमात्मगतम् ।) एदे दुट्ठदाणवा वअस्सस्स वेणुसद्दमेत्तेण विम्हला भविअ सज्झसेण मुज्झन्ति । ता जीइदो म्हि । (इति साटोप परिक्रम्य प्रकाशम् ।) रे रे दुट्ठा असुरा, चिट्ठध चिट्ठध । एसो हं सावेण चावेण वा तुम्हाणं मुण्डाइं खण्डेमि । (इति दण्डमुद्यम्य मुहुरूर्ध्वं कूर्दति ।) । (एते दुष्टदानवा वयस्यस्य वेणुशब्दमात्रेण विह्वला भूत्वा साध्वसेन मुह्यन्ति । तज्जीवितोऽस्मि । रे रे दुष्टा असुराः, तिष्ठत तिष्ठत । एषोऽहं शापेन चापेन वा युष्माकं मुण्डानि खण्डयामि ।

रामः—(विहस्य ।) वयस्य, मैवं वचोः । एतौ भगवन्तौ हरहिर-ण्यगर्भौ । अन्यतश्चामी पुरंदरादयो वृन्दारकाः ।

रहा है । अतः मुझे संदेह है कि दुष्ट कंस के अनुचर होंगे । (यह कह कर भय से कृष्ण की काँख (बगल) में शिर को छिपाता है) ।

कृष्ण—(स्वगत) वंशी की ध्वनि से आकृष्ट होकर क्या ये दिशाओं के स्वामी देवगण मेघमार्ग का अवगाहन कर रहे हैं ?

(यह कह कर फिर मुरली टेरते हैं) ।

मधुमंगल—(देखकर लम्बी साँस के साथ मन ही मन) ये दुष्ट राक्षस मित्र की वंशी के शब्द मात्र से व्याकुल होकर डर से बेहोश हो रहे हैं । अतः मेरी जान में जान आयी । (यह कहकर अहंकार पूर्वक प्रकट) अरे दुष्ट राक्षसो, ठहरो, ठहरो । यह मैं शाप अथवा धनुष से तुम लोगों के मस्तकों को काटता हूँ । (यह कहकर डंडा उठाकर बार-बार ऊपर कूदता है ।)

मधुमंगलः—सुट्ठु । (समाश्वस्य ।) भो, जाणन्तेण ज्जेव्व मए एदं पडिहसिदम् । तदो तुम्हेहिं क्खु रक्खसवुद्धीए भीलुएहिं पलाइदुं पउत्तम् । सुष्ठु । भोः, जानतैव मयेदं परिहसितम् । ततो युष्माभिः खलु राक्षसबुद्धया भीरुभिः पलायितुं प्रवृत्तम् ।

कृष्ण—(स्मित्वा ।) हंहो देवानांप्रिय, निजामेव जाल्मतां तेषु संक्रामयसि ।

रामः—पश्यत पश्यत ।

अष्टाभिः श्रुतिपुटकैर्नववैणवकाकलीं कलयन् ।
शतधृतिरपि धृतिमुक्तो मरालपृष्ठे मुहुर्लुठति ॥ २८ ॥

(आकाशे पुनर्वीणागीतिः ।)

उदिते हरिवक्त्रेन्दौ वेणुनादसुधामुचि ।
हन्त रुद्रसमुद्रेण स्वमर्यादा विलङ्घिता ॥ २९ ॥

राम—(हँसकर) मित्र, ऐसा मत कहो । ये दोनो भगवान् विष्णु और ब्रह्मा हैं । और इनकी बायीं ओर ये इन्द्र आदि देवता हैं ।

मधुमंगल—अच्छा, अरे, मैंने जानकर ही मजाक किया । इसलिए । तुम लोग राक्षस बुद्धि से डर कर भागने लगे ।

कृष्ण—(मुस्कुरा कर) अरे मूर्ख, अपनी ही बेवकूफी उन लोगों (में दिखाते हो) ।

रामः—देखो, देखो ।

आठ श्रवण पुटों से नवीन वंशीध्वनि को सुनते हुए ब्रह्मा भी धैर्य छोड़ कर हँस की पीठ पर बार-बार लोट रहे हैं ॥ २८ ॥

(आकाश में फिर वीणा का गीत)

मुरली-ध्वनि के अमृत को बरसाने वाले हरि (कृष्ण) के मुख-चन्द्र के उदय होने पर शंकर-समुद्र ने अपनी मर्यादा को छोड़ दिया है ॥ २९ ॥

विमर्श—चन्द्रमा में अमृत है । चन्द्रोदय होने पर समुद्र भी लहरें हिलोरें लेने लगती हैं । भगवान् कृष्ण की वंशीध्वनि अमृत बरसाती है । भगवान् कृष्ण का मुख चन्द्रमा है । उस पीयूषवर्षी मुख को देखकर अत्यन्त गम्भीर शंकर-

रामः—

सोत्कण्ठं मुरलीकलापरिमलानाकर्ण्य घूर्णत्तनो-
रेतस्याक्षिसहस्रतः सुरपतेरश्रूणि सस्रुर्भुवम् ।
चित्रं वारिधरान्विनापि तरसा यैरद्य धारामयै-
र्दूरात्पश्यत देवमातृकमभूद्वृन्दाटवीमण्डलम् ॥ ३० ॥

कृष्णः—(स्वगतम् ।) पुराणानाममीषां पुरस्ताद्विहारे संकुचन्ति मे

की मानस-लहरी भी धीरज खोकर हिलोर ले रही है। अर्थात् कृष्ण के मुरली बजाने पर शंकर आनन्दातिरेक से गद्-गद् हो उठे हैं।

राम—वंशी की अत्यधिक विदग्धता को उत्सुकतापूर्वक सुनकर चक्कर काटते हुए शरीर वाले हजारों आँखों से युक्त इन्द्र की आँसुओं ने पृथिवी को सिक्त किया। आश्चर्य है कि बिना मेघों के ही उन धारामयी आँसुओं से आज वृन्दावन मण्डल देवमातृक (केवल वर्षा के जल पर ही निर्भर करने वाला देश) हो गया ॥ ३० ॥

विमर्श—कृषि की दृष्टि से देवमातृक और नदीमातृक भेद से कृषि-प्रधान देश के दो भेद पा जाते हैं। देवमातृक देश उसे कहते हैं जहाँ वृष्टि के देवता तथा बादल ही प्रतिपालक हों, जहाँ केवल वर्षा का जल ही लभ्य हो अर्थात् सिंचाई के अन्य साधनों का जहाँ अभाव हो। जहाँ की खेती केवल वर्षा के जल पर ही निर्भर हो।

इसके विपरीत नदी मातृक देश उसे कहते हैं जहाँ नदियों और जलाशयों के जल से सिंचाई का प्रबन्ध हो। कृषि के लिए केवल वर्षा के जल पर निर्भर न रहना पड़े। "देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसम्पन्नव्रीहि पालितः, स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम्"। (अमरकोश) यहाँ पर वृन्दावन को देवमातृक कहने का तात्पर्य है—कृष्ण की मुरली ध्वनि को सुनकर इन्द्र की हजारों आँखों से आनन्द की आँसू छलक पड़ी। उस धारामय अश्रुबिन्दुओं से वृन्दावन की भूमि सींची गयी। अतः मेघवर्षण नहीं होने पर भी आनन्दाश्रुवर्षण के कारण वृन्दावन प्रदेश देवमातृक बन गया।

चेतोवृत्तयः । तदग्रे यामि । (इति तरूणामन्तरमासाद्य प्रकाशम् ।) सखे मधुमङ्गल, पश्य माधवीयां वनमाधुरीम् ।

क्वचिद्भृङ्गीगीतं क्वचिदनिलभङ्गीशिशिरता
क्वचिद्वल्लीलास्यं क्वचिदमलमल्लीपरिमलः ।
क्वचिद्धाराशाली कनकफलपालीरसभरो
हृषीकाणां वृन्दं प्रमदयति वृन्दावनमिदम् ॥ ३१ ॥

मधुमङ्गलः—भो वअस्स, एदा पदुट्ठभङ्गभअंकरिए किं मे कोदूहलं तुज्झ वुन्दाअईए । अहं क्खु चउव्विहेहिं अण्णेहिं सव्विन्दिअहारिणीं गोउलेसरीए रसवइं ज्जेव्व दट्ठूण रज्जेमि । (भो वयस्य, एतत्पदुष्टभङ्गभयंकर्या किं मे कौतूहलं तव वृन्दाटव्या । अहं खलु चतुर्विधैरन्नैः सर्वेन्द्रियहारिणीं गोकुलेश्वर्या रसवतीमेव दृष्ट्वा रज्यामि ।)

कृष्णः—वयस्य, वन्दस्व वृन्दाटवीमेव । स्फुटमस्याः पुराणवल्लरीभिरपि तवाभीष्टं फलमुल्लासयितुं समर्थ्यते ।

कृष्ण—(मन ही मन) इन श्रेष्ठजनों के आगे विहार करने में मेरी मनोवृत्तियों (मानसिक व्यापार) लजाती हैं । अतः आगे बढ़ जाता हूँ (यह कह कर वृक्षों की आड़ लेकर प्रकट) मित्र मधुमंगल, वसन्त की वन मधुरिमा को देखो ।

कहीं मधुकरी (भ्रमरी) का मधुर गान है, कहीं मन्द मलयपवन की शीतलता है, कहीं लता की थिरक है कहीं स्वच्छ चमेली का पराग है । और कहीं स्वर्णफल के समूह का प्रवाहमय रस भार है । इस प्रकार यह वृन्दावन नेत्र आदि इन्द्रियों को विशेष आनन्दित कर रहा है । (अर्थात् वृन्दावन अपनी वसन्त सुषमा से इन्द्रियों को उन्मत्त बना रहा है) ॥ ३१ ॥

मधुमंगल—हे मित्र, दुष्ट मधुकर के कारण भयंकर तुम्हारे इस वृन्दावन से मुझे क्या मतलब ? मैं तो चार प्रकार के अन्नों से (निर्मित) सभी प्रकार की इन्द्रियों को आकृष्ट करने वाली, गोकुलेश्वरी की रसवती (विशेष प्रकार का मिष्टान्न) को देख कर ही मस्त हो जाता हूँ ।

कृष्ण—मित्र, वृन्दावन की ही वन्दना करो । इसकी पुरानी लताएँ भी तुम्हारे अभीष्ट फल की सिद्धि का स्पष्ट समर्थन करती है ।

मधुमङ्गल– भो पिअवअस्स, तुमं सच्चवादित्ति सव्वलोएहिं भणिज्जसि। ता इमस्स तुज्झ वअणस्स मए परीच्छा कादव्वा। (इत्यञ्जलिं बध्वा।) भो वल्लरीए, एसोहं वन्दामि। वहुक्खिदो मे वअस्सो। ता देन्तु खण्डलड्डुआइं। (भोः प्रियवयस्य, त्वं सत्यवादीति सर्वलोकैर्भण्यसे। तदेतस्य तव वचनस्य मया परीक्षा कर्तव्या। भो वल्लर्यः, एषोऽहं वन्दे। बुभुक्षितो मे वयस्यः। तद्ददन्तु खण्डलड्डुकानि।

(प्रविश्य मोदकपात्रहस्ता पौर्णमासी।)

पौर्णमासी—चन्द्रानन, गृहाण रसज्ञामोदकानमून्मोदकान्।

रामः—(सस्मितम्।) वयस्य, दृष्टा जरद्वल्लरीवदान्यता।

पौर्णमासी—संकर्षण, जरद्वल्लवीवदान्यतेति भण्यताम्।

कृष्णः—आर्ये, केयं जरद्वल्लवी।

पौर्णमासी—चन्द्रमुख. मुखरा।

कृष्णः—तया किमकाण्डे खण्डलड्डुकानि समर्पितानि।

पौर्णमासी—नप्त्री तावदेतया अभिमन्योः पाणौ परिणायिता। तदुत्सवाभिरूपः समुदाचारोऽयमनुसस्रे।

मधुमंगल—हे सखे तुम सच बोलते हो, ऐसा सब लोग कहते हैं इसलिये तुम्हारे इस वचन की परीक्षा मुझे लेनी चाहिए। (अञ्जलि बाँधकर) अरी लताओ, यह मैं प्रार्थना करता हूँ। मेरा मित्र भूखा है' अतः लड्डुओं को दो।

(हाथ में लड्डू का पात्र लिए प्रवेश करके)

पौर्णमासी—चन्द्रमुख, जिह्वा को आनन्दित करने वाले इन लड्डुओं को ग्रहण करो।

राम—(मुस्कुरा कर) मित्र पुरानी लता की उदारता देखली।

पौर्णमासी—संकर्षण, पुरानी वल्लवी (गोपी) की उदारता, ऐसा कहो!

कृष्ण—आर्ये, यह पुरानी (वृद्धा) गोपी कौन है?

पौर्णमासी—चन्द्रमुख, मुखरा है।

कृष्ण—उसने बिना अवसर के खण्ड लड्डुओं को क्यों दिया?

पौर्णमासी—इसने अपनी नतिनी का विवाह अभिमन्यु के साथ कराया है। इस उत्सव के अनुकूल उसने यह शिष्टाचार किया है।

कृष्णः—केयं नप्त्री ।

पौर्णमासी—राधाभिधाना काचिदानन्दकौमुदी ।

कृष्णः—(सरोमाञ्चम् । स्वगतम् ।) श्रुतं नूनमम्बयोः संवादे शश्वदस्याः सौष्ठवम् । (इति कम्पमानो व्रीडां नाटयति ।)

पौर्णमासी—(स्वगतम् ।) कृष्णं विलक्षमवेक्ष्य नूनं रामः सव्याजमसौ सव्यतः प्रयाति ।

कृष्णः—(पुनरात्मगतम् ।) विक्रियां संगोपयितुं प्रसङ्गान्तरमङ्गीकुर्याम् । (प्रकाशम् ।) आर्ये, अद्य मधुवासरे त्वयापि काचिन्महोत्सवलक्ष्मीरलंक्रियताम् । पश्य जरद्वल्लीश्रेणीरियं फुल्ला पल्लविता च ।

पौर्णमासी—(सस्मितम् ।) नागर, तदैव महोत्सवानामवसरोऽयं संवृत्तः । यदत्र पुष्पाणां पल्लवानां च तृष्णया वल्लवानां विलासिन्यः समेष्यन्ति ।

कृष्णः—(सस्मितं तिर्यगवेक्ष्य ।) आर्ये, ततः किम् ।

कृष्ण—यह नतिनी कौन है ?

पौर्णमासी—राधा नामक की कोई आनन्द की चन्द्रिका है ।

कृष्ण—(रोमाञ्च के साथ । मन ही मन) माताओं की बात चीत में इसकी सुन्दरता की चर्चा सदा ही सुनी है । (काँपते हुए लज्जा का अभिनय करते हैं)

पौर्णमासी—(मन में) कृष्ण को दूसरे रूप में देखकर निश्चय ही राम बहाना बनाकर बायीं ओर से जा रहा है ।

कृष्ण—(फिर मन ही मन) मनोविकार को छिपाने के लिए प्रसंग बदलना चाहिए (प्रकट) आर्ये, आज मधु दिवस मे आप भी किसी महोत्सव की शोभा को स्वीकार करें । देखिए, पुरानी लता की यह पंक्ति पुष्पित और पल्लवित हो गयी है ।

पौर्णमासी—(मुस्कुरा कर) नागर, तुम्हारे भी उत्सवों का यह अवसर आया है । क्योंकि फूलों और किसलयों की लालच से गोपों की गोपियाँ यहाँ आयेंगी ।

कृष्णः—(मुस्कुराहट के साथ तिरछे देखकर) आर्ये, उससे क्या !

पौर्णमासी—(विहस्य ।) विलासिन्, स्ववासनानुसारादन्यथा मा शङ्किष्ठाः । परमेवमभिप्रायोऽस्मि । ततस्तासां शून्येषु सद्मसु सखिभिस्ते सुखमपहर्तव्यानि गव्यानि ।

कृष्णः—धूर्ते, किं परिहस्यते । पश्य कोमलमञ्जरीमवचिन्व-तीनां वल्लवीनां मण्डलेन खण्डितानि मे वृन्दाटवीशाखिविटपानि । तदेतास्ते निवारणीयाः ।

पौर्णमासी—मोहन, नव्यस्तवकोत्तंसिना भवतैव समुल्लासितोऽयं कुसुमेषुरागो वल्लवीनाम् । ताः कथमितो निवार्यताम् ।

कृष्णः—(स्मित्वा ।) अयि बलाकावलक्षकेशि, कथोपक्रमात्क्रमेव पन्थानमधिरूढासि । यदपराधिकास्वपि वल्लवीषु पक्षपातं न मुञ्चसि ।

पौर्णमासी—सुन्दर, संप्रति सराधिकाः खलु वल्लव्यः कथमपरा-धिकाः सन्तु । तेन ते प्रियस्य पुन्नागस्यापि सुमनस्तेयं हठेन करिष्यन्ति ।

पौर्णमासी—(हँसकर) विलासी, अपनी भावना के अनुसार कुछ दूसरी शंका मत करना । किन्तु मेरा तात्पर्य यह है कि उसके बाद उन सूने घरों में तुम्हारे मित्र सुखपूर्वक गोरस (दूध-दही) चुराएँ ।

कृष्णः—चालाक, क्या मजाक करती है देखो, कोमल मँजरियों को चुनती हुई इन गोपियों के समूहने मेरे वृन्दावन के वृक्षों की टहनियों को तोड़ दिया है । अत: तुम्हें इन सबोंको रोकना चाहिए ।

पौर्णमासी—मोहन, पुष्पों के नवीन गुच्छों का आभूषण पहनने वाले आपने ही फूलों के प्रति गोपियों के प्रेम को बढ़ाया है । उन्हें इधर से कैसे रोका जाय ! (तुमने ही गोपियों में काम भाव जगाया है)

कृष्ण—(मुस्कुराकर) हे बगुले के समान श्वेत केशवाली, बातचीत के प्रसंग में भी टेढ़े मार्ग पर ही आरूढ़ हो (अर्थात् व्यंग करती हो) जो कि अपराध करने वाली गोपियों के प्रति पक्षपात को नहीं छोड़ती हो ।

पौर्णमासी—सुन्दर, इस समय गोपियाँ राधा के साथ होने पर कैसे अपराधिका (राधारहित) हों, अत: तुम्हारे पुन्नाग (नामक वृक्ष के फूलों को भी हठपूर्वक चुरायेंगी । (तुम जैसे पुरुष श्रेष्ठ के मन को भी हठ पूर्वक हर लेंगी)

कृष्णः—(स्वगतम् ।) हन्त, कथं मनोहारिणी सैव दैवात्पुनरावर्तते राधिकावार्ता ।

मधुमङ्गलः—(स्वगतम् ।) कहं राहीति णाममेत्तएण उम्मणाएदि एसो । (प्रकाशम् ।) भो वअस्स, मा क्खु इमाए उवरि णिब्भरं सतिण्णो होहि । (कथं राधेति नाममात्रेणोन्मनायत एषः । भो वयस्य, मा खल्वेतस्या उपरि निर्भरं सतृष्णो भव ।)

कृष्णः—(सप्रणयरोषम् ।) धिग्वाचाल, कुत्राहं सतृष्णः ।

मधुमङ्गलः—भो, मा कुप्पह । सरसाए मनोहरालीए उवरि त्ति भणामि । (भोः, मा कुप्यः । सरसाया मनोहरल्या उपरीति भणामि ।)

कृष्णः—सखे, भ्रान्तोऽसि । नेमानि मनोहराख्यानि किंतु मौक्तिकाख्यानि लड्डुकानि ।

मधुमङ्गलः—(विहस्य ।) पिअवअस्स, ण क्खु अहं भमिसीले राहाचक्के वट्टामि । कुदो भमिस्सम् । (प्रियवयस्य, न खल्वहं भ्रमिशीले राधाचक्रे वर्ते । कुतो भ्रमिष्यामि ।

कृष्ण—(मन ही मन) अहा, किस प्रकार मन को हरण करने वाली राधा की बात पुनः संयोगवश आ रही है ।

मधुमङ्गल—(मन ही मन) राधा इस नाम मात्र से यह (श्रीकृष्ण) क्यों उत्सुक हो जाता है (प्रकाश) मित्र, इस (राधा) के ऊपर ही बिल्कुल आसक्त मत हो ।

कृष्ण—(स्नेह मिश्रित क्रोध से) बकवादी, तुम मूर्ख हो । मैं कहाँ (किसपर) आसक्त हूँ ?

मधुमंगल—अरे, क्रोध मत करो । मैं तो 'सरस, मनोहर नामक लड्डू के ऊपर 'ऐसा कहता हूँ । (मनोहरा आली-शोभना राधा । सुन्दरी राधा के ऊपर आसक्त हो) ।

कृष्ण—मित्र, भूलते हो । इनका नाम 'मनोहर' नहीं है । ये तो 'मौक्तिक' नाम से प्रसिद्ध हैं । (इनका नाम मोती चूर लड्डू है) ।

मधुमंगल—(हँसकर) प्रिय सखे, मैं घूमने वाले राधाचक्र पर नहीं हूँ

पौर्णमासी—(स्वगतम् ।) सत्यं परिहस्यते वटुना, यदेष भावोद्वृत्त-चेतोवृत्तितया वैलक्ष्यभागभिलक्ष्यते तदद्य पूर्णकामास्मि । (प्रकाशम् ।) सुन्दर, कृतमत्रोत्कण्ठया । सा विष्णुपदवीथीसंचारिणी राधा नृलोके केन लभ्यताम् ।

कृष्णः—(सस्मितम् । विष्णुपदवीथीमवेक्ष्य राममनुसर्पन् ।) आर्य, व्यतीतेयं मध्याह्नमर्यादा । ततः कालिन्दीतीरेऽवतीर्य समापयन्तु भवन्तः पशूनामापानीयतृष्णाम् । स्वदयन्तु च स्वादूनि लड्डुकानि । मया तु सुहृत्तमाभ्यां श्रीदामसुबलाभ्यां सह मुहूर्तमग्रतो विश्रमितव्यम् ।

(रामः सखिभिः सह निष्क्रान्तः ।)

पौर्णमासी—(स्वगतम् ।) मयापि प्रतिच्छन्दस्य सिद्धिमवधारयितुं गन्तव्यम् । (इति कृष्णमभिनन्द्य परिक्रामति ।)

फिर कहाँ से चक्कर खाऊँगा । (तुम राधा रूपी चक्र पर घूमने वाले हो अतः तुम्हें ही भ्रम (चक्कर) हो सकता है) ।

पौर्णमासी—(अपने आप) वटुक (मधुमंगल) का परिहास सत्य है क्योंकि यह (कृष्ण) भावावेश से चंचल मनोदशा के द्वारा लज्जालु प्रतीत होता है अतः आज मैं सफल मनोरथ हूँ । (प्रकट) यहाँ उत्कण्ठा की आवश्यकता नहीं है (अर्थात् राधा के सम्बन्ध में उत्सुक होने की जरूरत नहीं है वह तुम पर सर्वथा अनुरक्त है) आकाशमार्ग में चलने वाली वह राधा मनुष्य लोक में किसे प्राप्त हो सकती है ? (अभिमन्यु की विवाहिता होकर भी तुम पर आसक्त राधा तेरी ही उपभोग्या है) ।

कृष्ण—(मुस्कुराहट के साथ आकाशमार्ग में (देखकर राम का अनुसरण करते हुए) आर्य, दोपहर की सीमा समाप्त हो गयी (दिन ढल रहा है) अतः यमुनातट पर उतर कर आप लोग पशुओं की प्यास बुझाएँ और स्वयँ लड्डुओं का स्वाद लें । मुझे तो मित्रवर श्रीदामा और सुबल के साथ मुहूर्त भर आगे विश्राम करना है ।

(राम मित्रों के साथ चले गये)

पौर्णमासी—(मन में) मुझे भी चित्रपट की सिद्धि (निर्माण) के निश्चय के लिए जाना चाहिए ।

कृष्णः—(पदान्तरे स्थित्वा ।) सखे श्रीदामन् , किं दृष्टपूर्वा ते जगदपूर्वा राधा ।

(श्रीदामा सलज्जस्मितं मुखमवाञ्चयति ।)

सुबलः—वअस्स, दिट्ठपुव्वेत्ति किं एत्तिअं भणासि । णं इमस्स बहिणी क्खु एसा । (वयस्य, दृष्टपूर्वेति किमेतावद्भणसि । ननु एतस्य भगिनी खल्वेषा ।)

कृष्णः—तदेहि । क्षणमत्र कदम्बसंबाधे रोधसि निविश्य राधानुधावनादुद्वेगि चेतो वंशीवादनविनोदेनान्यतः क्षिपामि ।

(इति निष्क्रान्ताः ।)

पौर्णमासी—(परिक्रम्य पुरः पश्यन्ती सानन्दम् ।) कथमित एव वयस्यया विहस्यमाना विक्रीडति मे वत्सेयं राधिका । (इति लतान्तरे स्थित्वा ।)

बलादक्ष्णोर्लक्ष्मीः कवलयति नव्यं कुवलयं
मुखोल्लासः फुल्लं कमलवनमुल्लङ्घयति च ।

(यह कह कर कृष्ण का अभिनन्दन करके चलती है)

कृष्ण—(दूसरे स्थान पर ठहर कर) श्रीदामन् , क्या तुमने संसार में अपूर्व राधा को पहले देखा है ?

(श्रीदामा लज्जा से मुस्कुराकर मुख झुका लेता है)

सुबलः—'पहले देखा है', यह क्या कहते हो ? वह (राधा) तो इसकी बहिन ही है ।

कृष्ण—तो आओ, क्षण भर कदम्ब से व्याप्त यमुना के किनारे बैठकर राधा के पीछे दौड़ने के कारण उद्विग्न मन को वंशी बजाकर बहलाएँ ।

(चले जाते हैं)

पौर्णमासी—(चलकर सामने देखती हुई प्रसन्नता से) सखियों के साथ हँसती हुई मेरी यह बच्ची राधा किस प्रकार इधर ही खेल रही है ।

(यह कह कर लता की आड़ में छिपकर)

राधा के नेत्रों की शोभा बलपूर्वक नवीन कुवलय को निगल रही है । मुख का उल्लास विकसित कमल वन का अतिक्रमण कर रहा है । शरीर की काँति

दशां कष्टामष्टापदमपि नयत्याङ्गिकरुचि-
र्विचित्रं राधायाः किमपि किल रूपं विलसति ॥२२॥

तदेतयोर्निर्मलनर्मगोष्ठीप्रतिबन्धं परिहरन्ती वीरुन्निरुद्धेनाधुना विशाखां यामि ।

(इति निष्क्रान्ताः ।)

(ततः प्रविशति ललितयानुगम्यमाना राधिका ।)

राधिका—हला ललिदे, किं करेदि अज्जिआ । (हला ललिते, किं करोत्यार्या ।)

ललिता—सहि, तुह सुरदेअस्स पूआकिदे एसा तमालतले वेदिअं णिम्मादि । (सखि, तव सूर्यदेवस्य पूजाकृते एषा तमालतले वेदिकां निर्माति ।)

राधिका—(पुरोऽवलोक्य ।) हला ललिदे, सङ्केमि सा च्चेअ एसा वुन्दाडई जाए माहुरी तुए पुणो पुणो मम वण्णीअदि । (हला ललिते, शङ्के सैवैषा वृन्दाटवी यस्या माधुरी त्वया पुनः पुनर्मम वर्ण्यते ।)

ललिता—हला, सा ज्जेव्व एसा कण्हस्स लीलारुक्खवाडिआ । (हला, सैवैषा कृष्णस्य लीलावृक्षवाटिका ।)

सुवर्ण को भी शोचनीय दशा में पहुँचा रही है । इस प्रकार राधा का रूपसौन्दर्य कुछ विलक्षण ही दीख रहा है ॥ २२ ॥

इसलिए इन दोनों की निर्मल परिहास गोष्ठी में बाधा न पहुँचा कर वृक्षों की आड़ से विशाखा के पास जाती हूँ । (चली गयी)

उसके बाद ललिता से अनुगम्यमान राधा प्रवेश करती है)

राधिका—सखि ललिते, आर्या क्या कर रही है ?

ललिता—सखि, तुम्हारे सूर्यभगवान् की पूजा के लिये तमालवृक्ष के नीचे वेदी बना रही हैं ।

राधिका—(सामने देखकर) सखी ललिते मालूम पड़ता है कि यह वही वृन्दावन है जिसकी मधुरिमा का वर्णन तुम मुझसे बार-बार करती हो ।

ललिता—सखि, कृष्ण के विहारतरु की यही वह वाटिका है ।

राधिका—(सौत्सुक्यमात्मगतम्।) अहो महुरत्तं दोण्णं अच्छराणम्। (प्रकाशम्।) सहि, कस्स त्ति भणासि। (अहो मधुरत्वं द्वयोरक्षयोः। सखि कस्येति भणसि।

ललिता—(साकूतस्मितम्।) हला, भणामि कण्हस्स त्ति। (हला, भणामि कृष्णस्येति।)

राधिका—(पुनः स्वगतम्।) हन्त, जस्स णामावि रामाचित्तं इत्थं मोहेदि सो क्खु कीदिसो वा णामि त्ति। (इति सावहित्थं प्रकाशम्।) हला, इमाइं णिउञ्जोवरि पुञ्जिदाइं गुञ्जाफलाइं विइणिस्सम्। (हन्त, यस्य नामापि रामाचित्तमित्थं मोहयति स खलु कीदृशो वा नामीति। हला, इमानि कुञ्जोपरि पुञ्जितानि गुञ्जाफलानि विचेष्यामि।)

ललिता—(सपरिहासम्। संस्कृतेन।)

देहं ते भुवनान्तरालविरलच्छायाविलासास्पदं
मा कौतूहलचञ्चलाक्षि लतिकाजाले प्रवेशं कृथाः।
नव्यामञ्जनपुञ्जमञ्जुलरुचिः कुञ्जेचरी देवता
कान्तां कान्तिभिरङ्कितामिह वने निःशङ्कमाकर्षति ॥३३॥

राधिका—(उत्कंठा पूर्वक मन ही मन) दोनों अक्षरों का माधुर्य विलक्षण है। (प्रकट) सखि किसका कहती हो?

ललिता—सखि, कृष्ण का' यह कहती हूँ

राधिका—(फिर मन ही मन) अहा, जिसका नाम भी ललनाओं के मन को इस प्रकार मोह लेता है, वह नाम वाला कैसा होगा? (भाव छिपाती हुई प्रकट) सखि, कुञ्ज के ऊपर एकत्रित इन गुञ्जाफलों को चुनूँगी।

ललिता—(उपहास पूर्वक संस्कृत में) तुम्हारा शरीर विश्व के मध्य में दुर्लभ कान्ति के विलास का आश्रय है, हे उत्कंठा से चंचलनेत्रवाली! लता के जाल में प्रवेश नहीं करना। इस वन में कान्तिमती नवीन सुन्दरी को अञ्जन-राशि के समान मनोहर छटा वाला कुञ्ज विहारी देवता (श्यामल कृष्ण) निःशंक भाव से आकृष्ट करता है ॥ ३३ ॥

राधिका—(किंचिद्भीतेव परावृत्य सनर्मस्मितम् ।) सहि ललिदे, ताए देअदाए णूणं तुमं आअड्ढिदासि जं एदं जाणसि । (सखि ललिते, तया देवतया नूनं त्वमाकृष्टासि यदिदं जानासि ।)

ललिता—(विहस्य ।) हला, मं कीस एसा आअड्ढदु । ण क्खु अहं तुमं विअ कन्तीहिं अङ्किदा । (हला, मां कस्मादेषाकर्षतु । न खल्वहं त्वमिव कान्तिभिरङ्किता ।)

(नेपथ्ये वंशीध्वनिः ।)

राधिका—(निशम्य सचमत्कारं स्वगतम् ।) अम्महे, इमस्स मोहणत्तणं शद्दस्स । (इति वैवश्यं नाटयति ।) (आश्चर्यम् , अस्य मोहनत्वं शब्दस्य ।)

ललिता—(विलोक्य स्वगतम् ।) हुं, एसा कोमलाङ्गी कुरङ्गी पढमं जाले णिवडिदा । (हुँ, एषा कोमलाङ्गी कुरङ्गी प्रथमं जाले निपतिता ।)

राधिका—(प्रयत्नेन धैर्यमालम्ब्य । स्वगतम्) अवि णाम एं सद्दामिअपूरं उग्गिरन्तं जणं पेक्खिस्सम् । (अपि नाम एनं शब्दामृतपूरमुद्गिरन्तं जनं प्रेक्षिष्ये ।)

ललिता—(उपसृत्य ।) हला राहे, अत्थि मइुवरी तुह विसुद्धबुद्धी । (हला राधे, अस्ति मदुपरि तव विशुद्धबुद्धिः ।)

राधिका—कुछ भयभीत सी लौटकर नर्मयुक्त मुस्कुराहट के (साथ) सखि उस देवता से तुमही आकृष्ट हुई हो जो यह जानती हो ।

ललिता—(मुस्कुराकर) सखि, मुझे वह क्यों आकृष्ट करे, मैं तुम्हारी तरह कान्तिमती नहीं हूँ ।

(नेपथ्य में मुरली की आवाज)

राधिका—(सुन कर चकित होती हुई मन ही मन) आश्चर्य है इस शब्द की मोहकता । (यह कह कर विवशता दिखलाती है)

ललिता—(देख कर मन ही मन) अच्छा कोमल अँगवाली यह कुरङ्गी (मृगी) पहले जाल में फँसी ।

राधिका—(प्रयास से धैर्य धारण कर । अपने आप) क्या कभी शब्द रूपी अमृत प्रवाह को उढ़ेलने वाले इस व्यक्ति को देखूँगी ?

ललिता—(समीप जाकर) सखि, राधिके, मेरे ऊपर तुम्हारा विश्वास है ?

राधिका—हला, कीस एव्वं भणासि। तुमं जेव्व तत्थ पमाणम्।
(हला, कस्मादेवं भणसि। त्वमेव तत्र प्रमाणम्।)

ललिता—कधेदु पिअसही किंती अकाण्डे विवसा असि तुमम्।
(कथयतु प्रियसखी किमित्यकाण्डे विवशासि त्वम्।)

राधिका—(सलज्जम्। संस्कृतेन।)

नादः कदम्बविटपान्तरतो विसर्प-
न्को नाम कर्णपदवीमविशन्न जाने।
हा हा कुलीनगृहिणीगणगर्हणीयां
येनाद्य कामपि दशां सखि लम्भितास्मि ॥३४॥

ललिता—हला, एसो मुरलीरओ। (हला, एष मुरलीरवः।)

राधिका—(सव्यथम्। संस्कृतेन।)

अजडः कम्पसंपादी शस्त्रादन्यो निकृन्तनः।
तापनोऽनुष्णताधारः कोऽयं वा मुरलीरवः॥

(इत्युद्वेगं नाटयन्ती।) हला, णाहं मुरलीणाअस्स अणहिण्णा। ता

राधिका—सखि, ऐसा क्यों कहती हो? उसमें तुमही प्रमाण हो।

ललिता—कहो प्रिय सखी, बिना अवसर के तुम विवश क्यों हो?

राधिका—(लज्जापूर्वक संस्कृत में)

कदम्बवृक्ष के बीच से फैलता हुआ न जाने कौन सा शब्द कर्ण कुहर में प्रवेश कर गया। हा हा! सखि, जिससे आज कुलीन नारी समाज में किसी निन्दायोग्य अवस्था को प्राप्त हुई हूँ।

ललिता—सखि, यह मुरली की आवाज है॥ ३४॥

राधिका—(व्यथा पूर्वक संस्कृत में)

अथवा मुरली की यह कौन ध्वनि है जो हिम भिन्न होकर भी कम्पन उत्पन्न करती है, शास्त्र न होकर भी काटती है और उष्णता को न धारण करने पर भी तपाता है? ॥ ३५॥

विमर्श—सामान्यतया ठंढक से कम्पन, शस्त्र से कर्तन और उष्णता से

अलं विप्पलम्भेण । फुडं एसो केण वि महाणाअरेण कोवि मोहणमन्तो पढीअदि । (हला, नाहं मुरलीनादस्यानभिज्ञा । तदलं विप्रलम्भेन । स्फुटमेव केनापि महानागरेण कोऽपि मोहनमन्त्रः पठ्यते ।)

(प्रविश्य चित्रपटहस्ता विशाखा ।)

विशाखा—(राधामवधारयन्ती । स्वगतम्) दाणिं अण्णादिसी एसा लक्खीअदि । ता णूणं कण्हस्स वंसिआए डंसिदा । होदु । पुच्छिस्सम् । (इत्युपसृत्य प्रकाशम् । संस्कृतेन ।) (इदानीमन्यादृशी एषा लक्ष्यते । तन्नूनं कृष्णस्य वंशिकया दष्टा । भवतु । प्रक्ष्यामि ।)

क्षोणीं पङ्किलयन्ति पङ्कजरुचोरक्ष्णोः पयोबिन्दवः
श्वासास्ताण्डवयन्ति पाण्डुवदने दूराद्दुरोजांशुकम् ।
मूर्तिं दन्तुरयन्ति संततमसौ रोमाञ्चपुञ्जाश्च ते
मन्ये माधवमाधुरी श्रवणयोरभ्याशमभ्याययौ ॥२६॥

उत्पन्न होता । मुरली की ध्वनि में न तो हिमता है न वह शस्त्र ही है और न उसमें उष्णता ही है फिर भी वह राधिका में कंपन, छेदन और तापन कार्य का सम्पादन कर रहा है अतः मुरली रव की विलक्षणता स्पष्ट ही है । (इस प्रकार उद्विग्नता दिखाती हुई) सखि, मैं मुरली के शब्द से अपरिचित नहीं हूँ । अतः मुझे धोखा मत दो । स्पष्ट ही किसी महा चतुर द्वारा कोई यह मोहन वाला मंत्र पढ़ा जा रहा है ।

(हाथ में चित्र पट लिए विशाखा प्रवेश कर)

विशाखा—(राधा का निश्चय करती हुई अपने आप इस समय यह कुछ दूसरी ही लग रही है । तो निश्चय ही यह कृष्ण की मुरली से डँसी गयी है । अच्छा, पूँछती हूँ । (यह कह कर समीप जाकर प्रकट संस्कृत में)

कमल के समान दोनों नेत्रों से झरते हुए अश्रुबिन्दु धरती को कीचड़मय बना रहे हैं । लम्बी साँसें दूर से पाण्डुवदन के वक्ष को पीलिमा लिए गोरे मुख पर उड़ा रही हैं । और ये रोमाञ्च समूह तुम्हारी मूर्ति को निरन्तर कण्टकयुक्त कर रहे हैं । मानो माधव की मधुरिमा कानों के समीप आ गयी है ॥ २६ ॥

राधिका—(अनाकर्णितकेनैव सोत्कम्पम् ।) ललिदे, पुणो एसो सो ज्जेव्व कोवि सद्दो विक्कमदि । (ललिते, पुनरेष स एव कोऽपि शब्दो विक्रमते ।)

ललिता—(संस्कृतेन ।)

एष स्थैर्यभुजङ्गपुङ्गवदमनासङ्गे विहङ्गेश्वरो
व्रीडाव्याधिधुराविधूननविधौ धन्वन्तरिः ।
साध्वीगर्वमहाम्बुराशिचुलुकारम्भे तु कुम्भोद्भवः
कालिन्दीतटमण्डलीषु मुरलीतुण्डाद्ध्वनिर्धावति ॥३७॥

राधिका—(अनसुनी सी कंप युक्त) ललिते, फिर यह वही कोई शब्द अपना पराक्रम दिखा रहा है ।

ललिता—(संस्कृत में)

हे सुन्दरि, स्थिरता रूपी सर्प समूह को दबाने की आसक्ति में गरुड़, लज्जा रूपी रोग पुञ्ज को दूर करने की विधि धन्वन्तरि, पतिव्रताओं के अभिमान सार रूपी समुद्र को अञ्जलि में लेकर पीजाने में अगस्त्य रूप यह ध्वनि मुरली के मुख से निकल कर यमुना के तट समूहों दौड़ रही है ॥ ३७ ॥

विमर्श—यमुना के तटों पर मुरली की मधुर तान सुन कर गोपियों का मान स्थिर नहीं रहता । लज्जा छोड़ कर गोपियाँ मुरली की तान में अपना सुध-बुध खो देती है । पतिव्रता होने का अभिमान करने वाली स्त्रियाँ भी अपना धैर्य खोने लगती है । इस प्रकार यह मुरली ध्वनि स्थिरता सर्प के दमन के लिए गरुड़, लज्जा व्याधि को दूर करने के लिए धन्वन्तरि और पतिव्रताभिमान समुद्र को पीने के लिए अगस्त्य है । प्रस्तुत पद्य में रूपक अलंकार के द्वारा स्थिरता पर भुजङ्ग का, व्रीडा पर लज्जा का और पतिव्रताभिमान पर समुद्र का आरोप करके मुरलीध्वनि पर क्रमशः विहङ्गेश्वर, धन्वन्तरि और कुम्भोद्भव (अगस्त्य) का आरोप किया है । इस प्रकार मुरली ध्वनि के विलक्षण पराक्रम का वर्णन किया गया है ।

राधिका—सहि, जादा मह हिअए कावि गुरुई वेअणा। ता गदुअ सुपिस्सम्। (सखि, जाता मम हृदये कापि गुर्वी वेदना। तद्गत्वा स्वप्स्यामि।

विशाखा—हला राहे, तुह वेअणाविद्धंसणं किंवि एदं ओसहं मह हत्थे वट्टदि। ता सेवेहि णम्। (सखि राधे तव वेदनाविध्वंसनं किमप्येतदौषधं मम हस्ते वर्तते तत्सेवस्वैतत्।)

राधिका—विशाखे, एहि। अङ्गणोवकण्ठे फुल्लकण्णिआरमण्डलीच्छाअं अज्झासिअ पेक्खम्ह। (विशाखे, एहि। अङ्गणोपकण्ठे फुल्लकर्णिकारमण्डलीच्छायामध्यास्य प्रेक्ष्यावहे।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति वेणुनादविलासो नाम प्रथमोऽङ्कः।

--:o:--

राधिका—सखि, मेरे हृदय को कोई भारी (गहरी) वेदना उत्पन्न हो गयी है। अतः जाकर सोऊँगी।

विशाखा—सखि राधे, तुम्हारी वेदना को नष्ट करने वाली कोई यह ओषधि मेरे हाथ में है, अतः इसका सेवन करो।

राधिका—विशाखे, आओ, आँगन के समीप विकसित कनैल की छाया में बैठकर देखें। (इस प्रकार सभी चली गयी)।

वेणुनाद विलास नामक प्रथम अङ्क समाप्त।

--:o:--

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नान्दीमुखी ।)

नान्दीमुखी—आदिट्ठम्हि तत्तहोदीए पोण्णमासीए, जधा—अइ णान्दीमुहि, सुदं मए णिब्भरं असुत्थसरीरा मे वच्छा राही । ता गदुअ जाणीहि से तत्तं त्ति । तदो मुहराघरं गमिस्सम् । (इति परिक्रम्य पुरः पश्यन्ती ।) कहं इध ज्जेव्व कन्दन्ती मुहरा आअच्छइ । आदिष्टास्मि तत्रभवत्या पौर्णमास्या, यथा—अयि नान्दीमुखि, श्रुतं मया निर्भरं अस्वस्थशरीरा मे वत्सा राधा । तद्गत्वा ज्ञायतामस्यास्तत्त्वमिति । ततो मुखरागृहं गमिष्यामि । कथमिव एव क्रन्दन्ती मुखरा आगच्छति ।

(प्रविश्य ।)

मुहरा—हद्धी हद्धी । हदम्हि मन्दभाइणी । (हा धिक् हा धिक् । हतास्मि मन्दभागिनी ।)

नान्दीमुही—अज्जे मुहरे, कीस रोअसि । (आर्ये मुखरे, कस्माद्रोदिषि ।)

मुहरा—(विलोक्य ।) वच्छे, राहीसंदावेण । (वत्से, राधासंतापेन ।)

(नान्दीमुखी प्रवेश करती है)

नान्दीमुखी—भगवती पौर्णमासी ने मुझे आदेश दिया है कि "अरी नान्दीमुखि, मैंने सुना है कि मेरी बेटी राधा बहुत अधिक अस्वस्थ हो गयी है अतः यथार्थता का पता लगाओ" । इसलिये मुखरा के घर जाऊँगी । (चलकर सामने देखती हुई) चिल्लाती हुई मुखरा इधर ही क्यों आ रही है ?

(प्रवेश करके)

मुखरा—हाय, हाय ! मैं अभागिन मारी गयी ।

नान्दीमुखी—आर्ये मुखरे, रोती क्यों हो ?

मुखरा—मेरी राधा के दुःख से ।

नान्दीमुखी—केरिसं चेट्ठइ राहा। (कीदृशं चेष्टते राधा।)

मुखरा—वच्छे, वाउला भविअ किंवि पलवइ। (इति संस्कृतेन।) (वत्से, वातुला भूत्वा किमपि प्रलपति।)

क्रूराणामलिनां कुलैर्मलिनया कृत्यं न मे मालया
बालाहं किमु नर्मणस्तव पदं दूरीभव प्राङ्गणात्।
इत्यादीनि दुरक्षराणि परितः स्वप्ने तथा जागरे
जल्पन्ती जलजेक्षणा क्षपयति क्लेशेन रात्रिंदिवम् ॥१॥

नान्दीमुखी—(स्वागतम्।) उवसग्गकिदा ण क्खु एरिसी पलावमुद्दा ता दिट्ठिआ विक्कमिदं एत्थ कण्हविलासेण। (उपसर्गकृता न खल्वीदृशी प्रलापमुद्रा। तद्दिष्ट्या विक्रान्तमत्र कृष्णविलासेन।)

मुखरा—वच्छे, अहं गदुअ भअवदीं विण्णविस्सम्। तुमं वेदसी-कुञ्जं उवसप्पिअ रहिअं पेच्छ। (वत्से, अहं गत्वा भगवतीं विज्ञापयिष्यामि त्वं वेतसीकुञ्जमुपसृत्य राधिकां पश्य।

(इति निष्क्रान्ते।)

नान्दीमुखी—राधा की अवस्था कैसी है?

मुखरा—बेटी, पागल होकर कुछ प्रलाप करती है। (संस्कृत में)

"दुष्ट भ्रमर-समूहों से मलिन माला से मुझे प्रयोजन नहीं। मैं बाला क्या तुम्हारी क्रीडा का स्थान (विषय) हूँ? आँगन से दूर हो जाओ" इस प्रकार के दुःशब्दों का सोते-जागते उच्चारण करती हुई कमलनयना (राधा) कष्ट से रात और दिन को बिता रही है॥ १॥

विमर्श—मुखरा के 'दुरक्षराणि' कहने का आशय यह है कि यदि दूसरे लोग राधा के इस प्रलाप को सुनलें तो पर पुरुष के सम्पर्क की कल्पना से उसके कलंकित होने की संभावना है।

नान्दीमुखी—(अपने आप) प्रलाप की ऐसी मुद्रा ग्रहों की प्रतिकूलता के कारण नहीं होती। तो सौभाग्य से यह कृष्ण के विलास से ही प्रभावित हुई।

मुखरा—बेटी, मैं जाकर भगवती (पौर्णमासी) को सूचित करूँगी। तुम बेंत के कुञ्ज में पहुँच कर राधा को देखो। (यह कह कर दोनों चली गयीं)

(ततः प्रविशति सखीभ्यामुपास्यमाना राधा)

राधा—(सोद्वेगं स्वगतम्।) हदहिअअ, जस्स पडिच्छन्ददंसणमेत्तादो ईरिसी दुरूहसंगमा उवत्थिदा दे अवत्था तत्थ वि पुणो राअं वहसि। (हतहृदय, यस्य प्रतिछन्ददर्शनमात्रत ईदृशी दुरूहसंगमा उपस्थिता तेऽवस्था तत्रापि पुना रागं वहसि।)

उभे—हला राहिए, आमयेहिन्तो विलक्खणो दे वेअणाणुबन्धो लक्खी सादि। ता कीस अम्हेसु तत्तं ण कवेसि। (हला राधे, आमयेभ्यो विलक्षणस्ते वेदनानुबन्धो लक्ष्यते। तत्कस्मादस्मासु तत्त्वं न कथयसि।)

(राधिका निःश्वस्य वक्त्रं व्यावर्तयति।)

विशाखा—(पुरोऽभिगम्य। संस्कृतेन।)

चिन्तासंततिरद्य कृन्तति सखि स्वान्तस्य किं ते धृतिं
किं वा सिञ्चसि ताम्रमम्बरमतिस्वेदाम्भसां डम्बरम्।
कम्पश्चम्पकगौरि लुम्पति वपुःस्थैर्यं कथं वा बला-
त्तथ्यं ब्रूहि न मङ्गला परिजने संगोपनाङ्गीकृतिः ॥२॥

(उसके बाद दो सखियों के द्वारा सेवा की जाती हुई राधा प्रवेश करती है)

राधा—अभागे हृदय, जिसके चित्र को देखने से ही तुम्हारी इस प्रकार की दुर्दशा हुई है, उसी में तुम पुनः प्रेम धारण (अनुरक्त हो) करते हो ? (कृष्ण के चित्र दर्शन से ही जब तुम्हारी ऐसी दुरवस्था हो गयी है तो उससे प्रेम करने में तो और भी हालत खराब होगी।)

दोनों सखियाँ—सखि राधे, तुम्हारा कष्ट रोगों से कुछ भिन्न दिखायी देता है। अतः तुम हम लोगों से सच बात क्यों नहीं बताती हो ?

(राधिका साँस लेकर मुँह फेर लेती है)

विशाखा—(सामने आकर। संस्कृत में) हे सखि, चिन्ता की श्रेणी आज तुम्हारे आन्तरिक धैर्य को क्यों विच्छिन्न कर रही है ? अथवा पसीने के बूँद के समूह से रक्त वर्ण के वस्त्र को क्यों सींच रही है ? हे चम्पक पुष्प के समान गोरी, कम्पन तुम्हारे शरीर की स्थिरता को हठात् क्यों लुप्त कर रहा है। (अर्थात् तुम

राधिका—(सासूयम्।) अई णिट्ठुरे विसाहे, तुमं एव्वं पुच्छन्ती वि ण लज्जसि। (अयि निष्ठुरे विशाखे, त्वमेवं पृच्छन्त्यपि न लज्जसे।)

विशाखा—(सशङ्कम्।) हला, कहिं पि अवरद्धम्हि त्ति ण सुमरामि। (हला, कस्मिंश्चिदप्यपराद्धास्मीति न स्मरामि।)

राधिका—अइ णिक्किवे, कीस एव्वं भणासि। सुमरिअ पेक्ख। (अयि निष्कृपे, कस्मादेवं भणसि। स्मृत्वा पश्य।)

विशाखा—हला, गरुएण वि पणिहाणेण ण मे सुमरणं होदि। (हला, गुरुणापि प्रणिधानेन न मे स्मरणं भवति।)

राधिका—उम्मत्ते, गहणे इमस्सिं अच्चाहिदाणलकुण्डे तुमं जेव्व मह पक्खेवणी। (उन्मत्ते, गहने एतस्मिन्नत्याहितानलकुण्डे त्वमेव मम पक्षेपणी।)

विशाखा—कधं विअ। (कथमिव।)

राधिका—(सेर्ष्यम्।) अइ मिच्छासरले, आलेक्खगदभुअङ्गसङ्गिणि, चिट्ठ चिट्ठ। (इति सवैवश्यं संस्कृतेन।) (अयि मिथ्यासरले, आलेख्यगतभुजङ्गसङ्गिनि, तिष्ठ तिष्ठ।

इतना चंचल क्यों हो रही हो) सच्ची बात कहो, परिजनों से किसी बात को छिपाना कल्याण कारक नहीं होता है ॥ २ ॥

राधा—(ईर्ष्या से) अरी कठोर विशाखे, इस प्रकार पूछती हुई भी तुम्हें लाज नहीं लगती ?

विशाखा—सखि, कभी अपराध हुआ है पर स्मरण नहीं हो रहा है।

राधा—अरी निष्ठुर, ऐसा क्यों बोलती है। याद करके देखो।

विशाखा—सखि, बहुत प्रयास करने पर भी याद नहीं आ रही है।

राधा—पगली। इस गम्भीर अनर्थकारी आग के कुण्ड में तुम्हीं ने मुझे फेंका है।

विशाखा—किस प्रकार ?

राधा—(ईर्ष्यापूर्वक) अरी, झूठ भोली बनने वाली, चित्र में विद्यमान कामुक का साथ देने वाली, ठहरो ठहरो।

(लाचारी से संस्कृत में)

वितन्वानस्तन्वा मरकतरुचीनां रुचिरतां
पटान्निष्क्रान्तोऽभूद् धृतशिखिशिखण्डो नवयुवा ।

(इत्यर्धोक्तौ वाक्स्तम्भं नाटयति ।)

(उभे सभ्रूभङ्गमन्योन्यं पश्यतः ।)

राधिका—

भ्रुवं तेन क्षिप्त्वा किमपि हसतोन्मादितमतेः
शशी वृत्तो वह्निः परमहह वह्निर्मम शशी ॥ ३ ॥

ललिता—हला, किं एसो सिविणस्स विलासो (हला, किमेष स्वप्नस्य विलासः ।)

राधिका—(संस्कृतेन ।)

शरीर से मरकत मणि की कान्तियों की छटा को फैलाता हुआ मयूर-पुच्छ धारण करने वाला नवयुवक पर्दा से निकला है । (इतना आधा कहने पर चुप हो जाती है) दोनों सखियाँ भौंहों को नचाकर एक दूसरे को देखती हैं) राधिका—भ्रूविक्षेप करके हँसते हुए उसने (युवाने) मेरी बुद्धि को उन्मत्त बना दिया है (अतः) खेद है कि मेरे लिए चन्द्रमा अग्नि बन गया है और अग्नि चन्द्रमा बन गया है ॥ ३ ॥

विमर्श—कृष्ण के भ्रूविक्षेप से उन्मत्त राधा के लिए चन्द्रमा आग के समान सन्तापकारक प्रतीत होने लगा क्योंकि विरह-दशा में कामोद्दीपक होने के कारण शीतांशु चन्द्रमा भी विरहिणी को अधिक संतप्त करता है । आग चन्द्रमा के समान शीतल हो गया । वह इसलिए कि राधा के हृदय में विरह की आग निरन्तर जल रही थी जो सामान्य आग की अपेक्षा अधिक प्रचण्ड और असह्य थी । अतः सामान्य आग उसके लिए उतनी संतापदायिनी नहीं थी जितनी विरह की आग । अथवा शान्तिप्रद होने के कारण अग्नि ही मेरे लिए चन्द्रमा है अतः मुझे अग्नि-प्रवेश करना चाहिए ।

ललिता—सखि, क्या यह स्वप्न का विलास है ।

राधिका—(संस्कृत में)

किं स्वप्नस्य विलक्षणा गतिरियं किं जागरस्याथवा
किं रात्रेरुपसत्तिरेव रभसादह्नः किमह्नाय वा ।
इत्थं श्यामलचन्द्रिकापरिचयस्पन्देन संदीपितै-
रन्तःक्षोभकुलैरहं परिवृता प्रज्ञातुमज्ञाऽभवम् ॥ ४ ॥

विशाखा—(साकूतम् ।) हला राहे, णूणं एसो दे चित्तविब्भमो जेव्व क्खणिओ । (हला राधे, नूनमेष ते चित्तविभ्रम एव क्षणिकः ।)

राधिका—(साभ्यसूयम् ।) अइ अवीसद्धे, विरमेहि । कीस अप्पणो दोसं झम्पिदुं पउत्तासि । (इति संस्कृतेन) (अयि अविश्वस्ते, विरम । कस्मादात्मनो दोषमाच्छादयितुं प्रवृत्तासि ।)

कृतां भक्तिच्छेदैर्घुसृणघनचर्चामधिवहन्
पुनर्लब्धो लुब्धः प्रियकतरुमूले चटुलधीः ।
लपन्त्याः साक्षेपं नहि नहि नह्रीति स्मितमुखो
हठान्मे दुर्लीलः स किल भुजवल्लीदलमधात् ॥ ५ ॥

क्या यह स्वप्न की विचित्र गति है अथवा जागरण की ? क्या रात्रि आ गयी है अथवा वेग से दिन उपस्थित हो गया है, इस प्रकार कृष्ण-चन्द्रिका के परिचय की स्फूर्ति से अन्तःकरण की बढ़ी हुई व्याकुलता के समूहों से घिरी हुई मैं जान सकने में असमर्थ हो गयी ॥ ४ ॥

(अर्थात् स्वप्न और जागरण की विलक्षण गति के कारण मुझे रात-दिन के आने-जाने का पता ही नहीं लगा ।)

ललिता—(गूढ़ भाव से) सखि राधे, निश्चय ही यह तुम्हारे मन का क्षणिक भ्रम है ।

राधिका—(खीझ के साथ) अरी धोखेबाज, ठहरो, अपने दोष को छिपाने का प्रयास क्यों करती हो ? (संस्कृत में) अंगुलियों से विन्यासपूर्वक चित्र रचनाओं द्वारा बाहु आदि में केसर-कुङ्कुम से सुशोभित यह चञ्चल लोभी फिर कदम्ब वृक्ष के निकट आ गया और विरोधपूर्वक 'नहीं, नहीं' इस प्रकार कहती हुई मेरी भुजलता को उस ढीठ ने मुस्कुराकर जबर्दस्ती पकड़ लिया ॥ ५ ॥

ततश्च ।

दरोन्मीलन्नीलोत्पलदलरुचस्तस्य निविडाद्
विरुढानां सद्यः करसरसिजस्पर्शकुतुकात् ।
वहन्ती क्षोभाणां निवहमिह नाज्ञासिषमिदं
क्व वाऽहं का वाहं चकर किमहं वा सखि तदा ॥ ६ ॥

(इति वैवश्यं वाटयन्ती स्वगतम्) अइ दुट्ठहिअअ मक्कड, कण्हो वेणविओ सामलकिसोरो त्ति तिएसु पुरिसेसु राअं वहन्तो वि तुमं ण लज्जसि । ता दाणिं अप्पाणं वावादिअ पामरं तुमं हदासं करिस्सम् । (अयि दुष्टहृदय मर्कट, कृष्णो वैणविकः श्यामलकिशोर इति त्रिषु पुरुषेषु रागं वहन्नपि त्वं न लज्जसे । तदिदानीमात्मानं व्यापाद्य पामरं त्वां हताशं करिष्ये ।)

ललिता—हन्त, हतमम्महसचिवस्स वसन्तस्स विप्फुज्जिदेण दूसिदा एदे परिसरा दीसन्ति । ता किं एत्थ सरणम् (हन्त, हतमन्मथसचिवस्य वसन्तस्य विस्फूर्जितेन दूषिता एते परिसरा दृश्यन्ते । तत्किमत्र शरणम् ।)

और उसके बाद—

किञ्चित् विकसित नीलकमल-दल की कान्ति के समान सुन्दर उसके हस्त-कमल के सघन स्पर्श कुतूहल से उत्पन्न संवेगों (उत्तेजनाओं) के समूह का वहन करती हुई मैं यहाँ उस समय यह नहीं जान सकी कि मैं कहाँ हूँ, कौन हूँ अथवा मैंने क्या किया है ? ॥ ६ ॥

(अर्थात् उसके स्पर्शसुख की उत्कंठा में मैं इतना आत्म-विभोर हो उठी कि मुझे अपनी गतिविधि का कुछ भी पता न चला) (इस प्रकार विवशता दिखाती हुई अपने आप) अरे दुष्ट हृदय-मर्कट, कृष्ण, वैणविक (मुरलीवादक) और श्यामल किशोर इन तीन पुरुषों में प्रेम करते हुए भी तुम्हें लज्जा नहीं आती ! तो इस समय अपना विनाश करके तुम नीच को निराश करूँगी ।

ललिता—हाय, दुष्ट कामदेव के सहायक वसन्त के पराक्रम से ये प्रदेश दूषित नजर आते हैं । तो अब क्या उपाय है ? (अर्थात् अब कहाँ जायें ?)

राधिका—(संस्कृतेन ।)

विक्रीडन्तु पटीरपर्वततटीसंसर्गिणो मारुताः
खेलन्तः कलयन्तु कोमलतरां पुंस्कोकिलाः काकलीम् ।
संरम्भेण शिलीमुखा ध्वनिभृतो विध्यन्तु मन्मानसं
हास्यन्त्याः सखि मे व्यथांपरममी कुर्वन्ति साहायकम् ॥७॥

उभे—(सास्रम् ।) हला, एदाहिं घोरचिन्ताहिं कीस किलिम्मसि । अम्हेहिं तक्किदं अदिमेत्तदुल्लहो ण क्खु दे हिअअट्ठिदो अत्थो । (हला, एताभिर्घोरचिन्ताभिः कस्मात् क्लाम्यसि । अस्माभिस्तर्कितमतिमात्रदुर्लभो न खलु ते हृदयस्थितोऽर्थः ।)

राधिका—(निःश्वस्य संस्कृतेन ।)

इयं सखि सुदुःसाध्या राधाहृदयवेदना ।
कृता यत्र चिकित्सापि कुत्सायां पर्यवस्यति ॥ ८॥

राधिका—(संस्कृत में) मलय पर्वत की नदियों का सम्पर्क पाने वाले पवन विशेष रूप से क्रीडा करें । खेलते हुए कोकिल अत्यधिक कोमल कल कूजन करते हुए भौंरे मेरे अन्तःकरण को वेग से वेधें (उद्विग्न करें) हे सखि, ये सब कष्ट से मुक्ति पाने की अभिलाषा रखने वाली मेरी सहायता करते हैं ॥ ७ ॥

(अर्थात् मलयानिलादि उद्दीपनों से आकुल होकर मैं शीघ्र ही अपने प्राणों का विसर्जन कर दूँगी अतः बहुत दिनों तक मुझे यातना सहनी नहीं पड़ेगी ।)

दोनों सखियाँ—(आँसू बहाती हुईं) सखि, इन घोर चिन्ताओं से क्यों दुःखी हो रही हो ? हम लोगों ने अनुमान किया है कि तुम्हारे हृदय में विद्यमान पदार्थ अधिक दुर्लभ नहीं है । (अर्थात् जिसे तुम चाहती हो वह आसानी से मिल सकता है ।)

राधिका—(साँस लेकर संस्कृत में)

हे सखि, राधा के हृदय की यह पीड़ा दूर होने वाली नहीं है, जहाँ पर की

ता विण्णवेमि इमस्सिं ओसरे जधा सुदिढं एकं लदापासं लहेमि तधा सिणेहस्स णिक्किदिं करेध। (तर्हि विज्ञापयाम्येतस्मिन्नवसरे यथा सुदृढमेकं लतापाशं लभेय तथा स्नेहस्य निष्कृतिं कुरुत।)

उभे—(सव्यथम्।) हला, एव्वं दारुणं भणन्ती मा क्खु सहीणं जीविदं लुम्पेहि। णं पच्चासण्णा दे अहीट्ठसिद्धी। (हला, एवं दारुणं भणन्ती मा खलु सखीनां जीवितं लुम्प ? नूनं प्रत्यासन्ना तेऽभीष्टसिद्धिः।)

राधिका—सहीओ, ण जाणीध इमाए हदराहीए-हिअअदुद्धत्तणम्, जं एव्वं मन्तेध। (सख्यः, न जानीथ एतस्या हतराधाया हृदयदुष्टत्वम्, यदेवं मन्त्रयथ।)

उभे—कधिदं जेव्वं सव्वं पिअसहीए। (कथितमेव सर्वं प्रियसख्या।)

गयी चिकित्सा भी निन्दा में बदल जायेगी। (अर्थात् रोग के दूर न होने पर वैद्य की ही निन्दा होगी) ॥ ८ ॥

विमर्श—हार्दिक वेदना के असाध्य होने का कारण है राधा की अनुरक्ति का कृष्ण, वैणविक और श्यामलकिशोर इन तीन पुरुषों में होना। अतः एक के आने पर भी पीड़ा दूर नहीं हो सकती। पीड़ा का निराकरण तीनों के आने पर अथवा एक ही में अनुरक्त होने पर हो सकता है अतः अगले वाक्य में राधिका ललिता से एक ही पुरुष में प्रेम प्राप्त करने का उपाय पूछ रही है।

तो इस अवसर पर तुमसे कहती हूँ कि जिस प्रकार मैं एक मजबूत लतापाश को प्राप्त कर सकूँ उस प्रकार प्रेम की निष्कृति (परिशोधन या चिकित्सा) करो।

दोनों (सखियाँ)—सखि, इस प्रकार दुःखद वचन बोलती हुई तुम सखियों के जीवन को खतरे में न डालो। तुम्हारे अभिलषित फल की प्राप्ति समीप ही है।

राधिका—सखियो, इस अभागिन राधा के हृदय की दुष्टता को नहीं जानती हो इसलिए ऐसा कहती हो।

दोनों सखियाँ—प्रिय सखी ने तो सब कह ही दिया है।

राधिका—णहु णहु, गुरुई लज्जा णिवारेदि। (नहि नहि, गुर्वी लज्जा निवारयति।)

सख्यौ—हला, अप्पसआसादो वि गुरुओ अम्हेसु तुह सिणेहो लक्खीअदि। ता बहिरङ्गाए लज्जाए को एत्थ अणुरोहो। (हला, आत्मसकाशादोऽपि गुरुरावयोस्तव स्नेहो लक्ष्यते। तद्बहिरङ्गाया लज्जायाः कोऽत्रानुरोधः।)

राधिका—(संस्कृतेन।)

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं
सान्द्रोन्मादपरम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशीकलः।
एष स्निग्धघनद्युतिर्मनसि मे लग्नः सकृद्वीक्षणात्-
कष्टं धिक्पुरुषत्रये रतिरभून्मन्ये मृतिः श्रेयसी ॥ ६ ॥

उभे - (सहर्षम्।) हला, कधं तुम्हारिसीणं गोउलसुन्दरीणं गोउलिन्दणन्दणं उज्झिअ अपरस्सिं अणुराओ संभवदि। ता सुणाहि।

राधिका—नहीं, नहीं, महती लज्जा रोक रही है।

दोनों सखियाँ—सखि, हम दोनों के प्रति तुम्हारा प्रेम आत्मा से भी बढ़कर प्रतीत होता है तो बाहरी लज्जा का यहाँ कैसा आग्रह ? (अर्थात् लज्जा की अपेक्षा हम दोनों तुम्हारे अन्तरङ्ग हैं अतः बहिरंग लज्जा के अनुरोध से कोई बात मुझसे न छिपाओ।)

राधिका—(संस्कृत में) एक का सुना हुआ 'कृष्ण' यह नाम ही बुद्धि को हर रहा है। दूसरे की मुरली ध्वनि गहन उन्माद की श्रेणी प्राप्त करा रही है। स्निग्ध मेघ की कान्तिवाला यह (तीसरा) एक ही बार के देखने से मेरे मन में समा गया है। दुःख है धिक्कार है कि तीन पुरुषों में मेरी आसक्ति हुई है। मैं तो मृत्यु को ही श्रेष्ठ समझती हूँ। (तीन पुरुषों में अनुरक्त होने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है।) ॥ ६ ॥

दोनों सखियाँ—(प्रसन्नता से) सखि, तुम जैसी गोकुलललनाओं का

एक्को ज्जेव्व एसो महाणाअरो कण्हो। (हला, कथं युगमद्योनां गोकुल-सुन्दरीणां गोकुलेन्द्रनन्दनं त्यक्त्वा अपरस्मिन्ननुरागः संभवति। तच्छृणु। एवैष महानागरः कृष्णः।)

राधिका—(सोच्छ्वासमात्मगतम्।) हिअअ, समास्सस समास्सस। दाणिं जादा तुह जीअलोअणिवासलालसा। (हृदय, समाश्वसिहि। समाश्वसिहि। इदानीं जाता तव जीवलोकनिवासलालसा।)

उभे—(संस्कृतेन।)

सा सौरभोर्मिपरिदिग्धदिगन्तरापि
वन्ध्यं जनुः सुतनु गन्धफली बिभर्ति।
राधे न विभ्रमभरः क्रियते यदङ्के
कामं निपीतमधुना मधुसूदनेन ॥ १० ॥

नान्दीमुखी—(परिक्रम्य।) कहं अग्गदो ज्जेव्व एसा राहा।

गोकुल के स्वामी नन्द के पुत्र को छोड़कर दूसरे में कैसे प्रेम हो सकता है? इस लिए सुनो! यह महा चतुर कृष्ण एक ही हैं (तीन नहीं)

राधिका—(लम्बी सांस लेकर अपने आप) हृदय, धीरज रखो धीरज रखो। अब इस संसार में रहने की लालसा (अभिलाषा) उत्पन्न हुई है।

दोनों सखियाँ—(संस्कृत में)

हे राधे, अपनी सुगन्ध की लहर से समस्त दिशाओं में फैल जाने वाली चम्पा का जन्म व्यर्थ है, जिसकी गोद में पर्याप्त मधुपान से मत्त भ्रमर विलास नहीं करता ॥ १० ॥

विमर्श—जिस प्रकार भौंरा दूसरे पुष्पों के रसपान से मस्त रहता है। वह चम्पा के पास नहीं जाता। इसमें चम्पा की ही हानि होती है भौंरा की नहीं। उसी प्रकार कृष्ण भी अन्य गोपियों के उपयोग से परितृप्त हैं। अगर तुम उनके संसर्ग से वंचित हो तो यह तुम्हारा ही दुर्भाग्य है। कृष्ण के सहवास के बिना तुम्हारा सौन्दर्य व्यर्थ है।

नान्दीमुखी—(चलकर) यह राधा क्या सामने ही है! (समीप जाकर) प्रियसखी की जय हो, जय हो।

(इत्युपसृत्य ।) जअदु जअदु पिअसही । (कथममत एवैषा राधा । जयतु जयतु प्रियसखी ।)

राधिका—(सावहित्थम् ।) सहि, कुसलं भअवदीए। (सखि कुशलं भगवत्याः।)

नान्दीमुखी—तुह उल्लाहत्तणे जादे (इति राधां निभाल्य स्वगतम् ।) अप्पेक्खिअ च्चेअ मए पढमं णिट्टङ्किदम् । तधावि पुच्छिस्सम् । (प्रकाशम् । संस्कृतेन ।) (तव उल्लाघत्वे जाते अप्रेक्ष्यैव मया प्रथमं निष्टङ्कितम् । तथापि प्रक्ष्यामि ।)

न मुग्धे वैदग्धीगरिमपरिदिग्धा तव मति-
र्विरामो नेदानीमपि वपुषि बाल्यस्य वयसः ।
कमप्यन्तःक्षोभं प्रथयसि तथापि त्वमथवा
सखि ज्ञातं वृन्दावनमदनविस्फूर्जितमिदम् ॥ ११ ॥

ललिता—अइ अलिआसङ्किणि, सीदलदक्खिणाणिलहेदुअं कम्पपुलअं पेक्खिअ कीस दूसहं परिवादं देसि । (अयि अलीकाशङ्किनि, शीतलदक्षिणानिलहेतुकं कम्पपुलकं प्रेक्ष्य कस्माद् दुस्सहं परिवादं ददासि ।)

नान्दीमुखी—(सस्मितम् । संस्कृतेन ।)

राधिका—(भाव को छिपाती हुई) सखि, भगवती कुशल से हैं ।

नान्दीमुखी—तुम्हारे निरोग हो जाने पर । (यह कह कर राधा को देख कर अपने आप) बिना देखे ही मैंने पहले ही दूर कर लिया । फिर भी पूछूँगी । (प्रकट संस्कृत में)

हे मुग्धे, तुम्हारी बुद्धि चतुराई की गुरुता से परिचित नहीं है । अभी भी तुम्हारे शरीर में बाल्यावस्था का अन्त नहीं हुआ है । (अभी तुममें बचपन है) फिर भी किसी आन्तरिक पीड़ा को प्रकट कर रही हो । अथवा हे सखि, मैं जान गयी, यह वृन्दावन के कामदेव (श्री कृष्ण) का ही पराक्रम है ॥ ११ ॥

ललिता— अरी झूठी शंका करने वाली, शीतल मन्द-पवन के कारण उत्पन्न रोमाञ्च को देखकर क्यों असह्य कलंक लगा रही हो !

रोमाञ्चः परिचेष्यते कथमयं नास्माभिरुत्कम्पवान्
दुष्कीर्तिं नहि दक्षिणाय मरुते दाक्षिण्यशून्ये वद ।
एतन्मन्मथकोटिसंभ्रमभरैर्बम्भ्रम्यते सुभ्रुवः
स्वान्ते नागरचक्रवर्तिनयनप्रान्तस्य लीलायितम् ॥ १२ ॥

ता सच्चं कहेहि । कदा एदाए पच्चक्खीकिदो गोउलाणन्दो । (तत्सत्यं कथय । कदा एतया प्रत्यक्षीकृतो गोकुलानन्दः ।)

विशाखा—एवं णेदम् । (एवमेतत् ।)

नान्दीमुखी—(संस्कृतेन ।)

दरविचलितबाल्या वल्लभा बान्धवानां
विहरसि भुवने त्वं पत्युरामोदपात्री ।
अहह पशुपरामाकामिनो मोहनत्वं
त्वमपि यदमुनान्तर्गाढमुन्मादितासि ॥ १३ ॥

नान्दीमुखी—(मुस्कुराकर । संस्कृत में)

विशेष प्रकार के कम्पन से युक्त यह रोमाञ्च हमलोगों के द्वारा क्यों नहीं पहचाना जायगा ? अरी भोली, मलयानिल को दोष मत दो । यह तो कामदेव के अनगिनत विलास समूह के कारण सुन्दर भौंहोंवाली (राधा) के अन्तःकरण में चतुरों में सम्राट (कृष्ण) के कटाक्ष की लीला बार-बार चक्कर काट रही है ॥ १२ ॥

इसलिए सच कहो, इसकी भेंट गोकुल को आनन्दित करने वाले (कृष्ण) से कब हुई ?

विशाखा—यह इस प्रकार ।

नान्दीमुखी—(संस्कृत में ।

बाल्यावस्था से कुछ मुक्त (किशोरी), बन्धुओं के स्नेह को पाने वाली, और पति की प्रेयसी तुम संसार में घूम रही हो । गोपाल की मोहकता आश्चर्यजनक है जिससे तुम भी बहुत अधिक पागल बना दी गयी हो । ॥ १३ ॥

वा अहं भअवदीं तुवरेदुं गमिस्सम् । (इति निष्क्रान्ता ।) (तदहं भगवतीं त्वरयितुं गमिष्यामि ।)

राधिका—(विमृश्य । संस्कृतेन ।)

सा कल्याणी कुलयुवतिभिः शीलिता धर्मशैली
द्रागस्माभिः कथमविनयोत्फुल्लमुल्लङ्घनीया ।
(इत्यर्धोक्ते । पुनः सोत्कण्ठम् ।)
हा दृग्भङ्गीपरिमलकलाकर्मठोऽयं कथं वा
हातुं शक्यः पशुपनगरीनागरीनागरेन्द्रः ॥ १४ ॥

(ततः प्रविशति नान्दीमुखीमुखराभ्यामनुगम्यमाना पौर्णमासी ।)

पौर्णमासी—मुखरे, किमदुःसाधबाधा तर्किता त्वया राधा ।

मुखरा—भअवदि, सुणाहि । (संस्कृतेन) (भगवति, शृणु ।)

अग्रे वीक्ष्य शिखण्डखण्डमचिरादुत्कम्पमालम्बते
गुञ्जानां च विलोकनान्मुहुरसौ सास्रं परिक्रोशति ।

इसलिए मैं भगवती को शीघ्रता करने के लिए जाऊँगी ।

(यह कह कर जाती है)

राधिका—(सोचकर । संस्कृत में) कुलीन युवतियों द्वारा आचरण में लाई हुई कल्याणरूपा उस धर्मशैली का अविनयपूर्वक सहसा हम लोग कैसे उल्लंघन करें ? (इतना आधा कहने पर फिर उत्सुकता से ।)

अहा, अथवा नेत्र की भंगिमा के प्रकाश (प्रकट करने) की कला में निपुण, गोकुल की अंगनाओं में चतुर शिरोमणि यह (कृष्ण) कैसे छोड़ा जा सकता है ? (कृष्ण का परित्याग असंभव है) ॥ १४ ॥

(तदनन्तर नान्दीमुखी और मुखरा से अनुगम्यमान पौर्णमासी आती है)

पौर्णमासी—मुखरे, क्या तुमने राधा की पीड़ा को दूर करने का उपाय सोचा ?

मुखरा—देवि, सुनिए । (संस्कृत में)

मयूरपुच्छ (मोरपंख) को सामने देखकर उसी समय विशेष रूप से काँपने

नो जाने जनयन्नपूर्वनटनक्रीडाचमत्कारितां
बालायाः किल चित्तभूमिमविशत्कोऽयं नवीनो ग्रहः ॥१५॥

पौर्णमासी—(स्वगतम्) सोऽयमुद्दण्डस्य नवानुरागराशेः कोऽपि परिष्टमा। (प्रकाशम्।) मुखरे, साधु विज्ञातम्, तदत्र दानवकुलावतंसाः कंसादयो राधामन्विष्यन्ति तेन कोऽप्ययमङ्गनाग्रहो बालमाविवेश।

मुखरा—भअवदि, को एत्थ पडिआरो। (भगवति, कोऽत्र प्रतीकारः।)

पौर्णमासी—अपि दानवारेर्दृष्टिरेव।

मुखरा—भअवदि, कुडिला क्खु जडिला एदं णाहिणन्दिस्सदि। (भगवति, कुटिला खलु जटिला इदं नाभिनन्दिष्यति।)

पौर्णमासी—मुखरे, सा खलु मद्-गिरा संदिश्यताम्—'जटिले, मा शङ्किष्ठाः। कृष्णमात्मविद्ययैव संघटयिष्यामि' इति।

(मुखरा नमस्कृत्य निष्क्रान्ता।)

लगती है। गुञ्जों को देखने से यह-बार आँसू बहा कर रोने लगती है। नृत्यकला के विलक्षण चमत्कार को उत्पन्न करता हुआ न जाने यह कौन सा नवीन ग्रह बाला (राधा) के अन्तःकरण में प्रवेश कर गया है ?॥ १५ ॥

पौर्णमासी—(मन ही मन) उच्छृङ्खल नूतन प्रेमसमूह की यह कोई उग्रता है। (प्रकट) मुखरे, तुमने ठीक समझा है। क्योंकि यहाँ पर राक्षसकुलभूषण कंसादि राधा को खोजेंगे अतः बाला में यह कोई स्त्रीग्रह आविष्ट हो गया है।

(पक्ष में—अङ्गनाओं में आग्रह रखने वाला कृष्ण ही राधा के हृदय में विराजमान हो गया है।)

मुखरा—भगवति, यहाँ इसका क्या निराकरण है ?

पौर्णमासी—केवल दैत्यों के शत्रु (कृष्ण) की दृष्टि ही।

मुखरा—भगवति, दुष्ट जटिला इसको पसन्द नहीं करेगी।

पौर्णमासी—मुखरे, मेरी ओर से जटिला को यह संदेश कहना—"जटिले, शंका नहीं करना, अपनी योग विद्या से ही कृष्ण को राधा से मिलाऊँगी"।

(मुखरा प्रणाम करके चली गयी)

पौर्णमासी—(उपसृत्य ।) वत्से, निजाभीष्टलाभेन कृतार्थीभूयाः ।

(राधा सावहित्थं प्रणमति ।)

पौर्णमासी—(स्वगतम् ।)

भजन्त्याः सव्रीडं कथमपि तदाडम्बरघटा-
मपह्नोतुं यत्नादभिनवमदामोदमधुरा ।
अधीरा कालिन्दीपुलिनकलभेन्द्रस्य विजयं
सरोजाक्ष्याः साक्षाद्वदति हृदि कुञ्जे तनुवनी ॥ १६ ॥

(पुनर्निरूप्य जनान्तिकम् ।) हन्त नान्दीमुखि, निर्भरगभीरप्रेमोर्मिनिर्मित-मनःक्षोभा किमप्येषा विचेष्टते । तदियमवधार्यतामनुरागवीरस्य कापि दुर्विबोधगभीरविक्रमवैचित्री । तथा हि ।

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन्मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः ।

पौर्णमासी —(समीप जाकर) बेटी, अपने मनोरथ को पाकर कृतार्थ होओ

(राधा आन्तरिक भाव को छिपाती हुई प्रणाम करती है)

पौर्णमासी—(अपने आप)

उसके आडम्बर-समूह को छिपाने के लिये प्रयत्न से लज्जापूर्वक किसी प्रकार (उसका) भजन करती हुई कमलनयना (राधा) के हृदयरूपी कुञ्ज में नवीन मद के सुगन्ध से मधुर चञ्चल शरीररूपी वन यमुनातट के गजेन्द्र (कृष्ण) की विजय को स्पष्टरूप से सूचित कर रहा है ॥ १६ ॥

(फिर देखकर एकान्त में) अरी नान्दीमुखि, अत्यधिक गम्भीर प्रेम की लहरों से उत्पन्न मानसिक पीड़ा वाली यह (राधा) कुछ चेष्टा कर रही है । अतः यह निश्चय समझो कि प्रेमवीर (कृष्ण) की नहीं समझने योग्य किसी गम्भीर पराक्रम की यह विलक्षणता है । क्योंकि मुनि अपने मन को सांसारिक विषय से लौटाकर जिसमें लगाते हैं (विषयपराङ्मुख तपस्वी जिसका ध्यान करते हैं) यह बाला उससे अपना मन खींचकर विषयों में लगाती है । हृदय में जिसके प्रकाश-कण को प्राप्त करने के लिए योगी उत्कंठित रहता है देखो खेद है कि

यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं बत पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति ॥१७॥

नान्दीमुखी—भअवदि, ईरिसस्स भाअस्स विण्णाणे मूढम्हि। (भगवति, ईदृशस्य भावस्य विज्ञाने मूढास्मि।)

पौर्णमासी—वत्से, सत्यमात्थ। दुर्गमोऽयं गाढानुरागविवर्तः। श्रूयताम्।

पीडाभिर्नवकालकूटकटुतागर्वस्य निर्वासनो
निःस्यन्देन मुदां सुधामधुरिमाहंकारसंकोचनः।
प्रेमा सुन्दरि नन्दनन्दनपरो जागर्ति यस्यान्तरे
ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरास्तेनैव विक्रान्तयः ॥१८॥

तदेहि। भावमस्याः परीक्षेवहि। (इत्युपसृत्य) वत्से, किमपि प्रष्टव्यासि।

यतिः प्रेमोदात्तः सुचरितकथा गोकुलपुरे
प्रसिद्धा ते शुद्धे जनिरपि च लक्ष्मीवति कुले।

यह मुग्धा अपने हृदय से उसे बाहर करना चाहती है। (जिस कृष्ण की एक झलक के लिए योगीजन लालायित रहते हैं उसीसे यह राधा दूर रहना चाहती है, यह दुःख की बात है) ॥ १७ ॥

नान्दीमुखी—भगवति, ऐसे भाव को समझने में मैं असमर्थ हूँ।

पौर्णमासी—बेटी, तुम ठीक कहती हो। गाढ़ स्नेह का यह विकार विशेष दुर्गम (दुर्बोध) है। सुनो—यातनाओं से नवीन कालकूट विष की कटुता के अहंकार को दूर करने वाला, आनन्द के प्रवाह से अमृत की मधुरता के गर्व को लज्जित करने वाला नन्दनन्दन श्रीकृष्ण-विषयक अनुराग जिसके अन्तःकरण में जाग रहा है वही (व्यक्ति) इस प्रेम के विलक्षण मधुर प्रभावों को स्पष्टरूप से जान सकता है ॥ १८ ॥

इसलिए आओ इसके भाव की परीक्षा लें। (समीप जाकर) बेटी, तुमसे कुछ पूछना है। हे राधे, यति (पति) प्रेम से प्रसन्न है। तुम्हारे सुन्दर

अपूर्वां कुर्वाणा मतिमिह महासाहसमयीं
सुहृद्भ्यस्त्वं लज्जामपि किमिव राधे न भजसि ॥१९॥

(राधिका कातर्यमभिनीय सलज्जं ललिताकर्णमूले लगति)

ललिता—अज्जे, विण्णवेदि राहा । (इति संस्कृतेन ।) (आर्ये विज्ञापयति राधा ।)

दोषोद्गारं त्वमपि कुरुषे हा मयि व्याकुलायां
पादेऽभ्यस्ते भगवति शपे नापराध्यामि साध्वि ।
पर्णैः कर्णोत्पलवलयिभिस्ताड्यमानोऽपि धूर्तो
न श्यामात्मा मम तनुपरिष्वङ्गरङ्गं जहाति ॥ २० ॥

पौर्णमासी—(सेर्ष्यमिवालोक्य ।) मुग्धे, किमन्यां प्रौढमुद्रां नोद्गण्डयसि ।

राधा—(सरोषम् । संस्कृतेन ।)

चरित्र की कथा गोकुल में प्रसिद्ध है । तुम्हारा जन्म भी शुद्ध धनी कुल में (अभिजात वंश) में हुआ है (फिर भी) यहाँ पर अत्यधिक साहसयुक्त अपूर्व विचार करती हुई तुम सखियों से भी क्यों नहीं लजाती हो ॥ १९ ॥

अर्थात् तुम्हारा प्रेमविषयक विलक्षण विचार तुम्हारे स्वरूप के अनुकूल नहीं है ।

राधिका—(दीनता दिखाती हुई ललिता के कान में सट जाती है)

ललिता—आर्ये, राधा सूचित करती है । (संस्कृत में) हे भगवति, मेरे व्याकुल होने पर भी आप मुझे दोष देती हैं । हाय, मैं आपके चरणों की शपथ लेकर कहती हूँ कि मेरा अपराध नहीं है । कानों के आभूषणरूप कमल-दलों से आहत होने पर भी वह कलुषित आत्मा वाला धूर्त मेरे आलिङ्गन की आसक्ति को नहीं छोड़ता ॥ २० ॥

पौर्णमासी—(मानों ईर्ष्यापूर्वक देखकर) अरी मूढ़, किसी दूसरी गम्भीर मुद्रा (संकेत) से क्यों नहीं धमकाती हो ?

राधा—(क्रोध से संस्कृत में) मेरे चिल्लाने पर करपल्लव से मुँह बन्द

क्रोशन्त्यां करपल्लवेन बलवान्सद्यः पिधत्ते मुखं
धावन्त्यां भयभाजि विस्तृतभुजो रुन्धे पुरः पद्धतिम् ।
पादान्ते विलुठत्यसौ मयि मुहुर्दष्टाधरायां रुषा
मातश्चण्डि मया शिखण्डमुकुटादात्माभिरक्ष्यः कथम् ॥२१॥

पौर्णमासी—(स्वगतम् ।) निष्कम्पतया बद्धमूलोऽयं प्रेमपलाशी । (प्रकाशम् ।)

त्वया नीतो ग्रामः फलकमिलदङ्गो मधुरिपुः
सुखाशाभिः क्रीडाकुतुकिनि कुतो नेत्रपदवीम् ।
कुकूलाग्निज्वालापटलकटुकेलिर्यदधुना
दशेयं दन्त त्वां ज्वलयति हिमानीव नलिनीम् ॥ २२ ॥

राधा—(कृष्णमुद्दिश्य सोपालम्भमात्मगतम् ।)

शिशिरय दृशौ दृष्ट्वा दिव्यं किशोरमितीक्षितः
परिजनगिरां विश्रम्भात्त्वं विलासफलाङ्कितः ।

कर देता है । भयभीत होकर मेरे भागने पर बाँह फैला कर आगे का मार्ग रोक देता है । क्रोध से दाँतों तले ओठ दबाने पर बार-बार चरण पर लोटने लगता है । हे क्रुद्ध मातः, मोर मुकुट धारी (कृष्ण) से मैं अपने को कैसे बचाऊँ ? ॥२१॥

पौर्णमासी—(अपने आप) प्रेम वृक्ष ने दृढ़ता से जड़ जमा ली है । (प्रकट) क्रीडा में उत्सुकता दिखाने वाली है राधे, सुख की आशाओं से चित्र-पट में विद्यमान मधुरिपु (कृष्ण) को तुमने कहाँ से अपने नेत्रों का विषय बनाया जो कि भूसे की अग्निज्वाला के समूह से भयंकर क्रीडा से युक्त तुम्हारी यह दशा तुमको उसी प्रकार जला रही है जिस प्रकार बर्फ की राशि कमलिनी को झुलसाती है ॥ २२ ॥

राधा—(कृष्ण को लक्ष्य कर उलाहनापूर्वक अपने आप)

दिव्य किशोर को देखकर अपनी आँखों को शीतल करो, इस प्रकार परिजनों के वचनों के विश्वास से विलासफल से चिह्नित तुमको मैंने देखा है । धिक्,

शिव शिव कथं जानीमस्त्वामनक्रधियो वयं
निबिडवडवावह्निज्वालाकलापविकासिनम् ॥ २३ ॥

पौर्णमासी—(सस्नेहमालोक्य ।) वत्से, क्षणमेकान्ते निविश्य पुष्पेषु लेखो निर्मीयताम्, यथायं कृष्णाय स्वसखीभ्यां समर्प्यते ।

(राधा सखीभ्यां सह निष्क्रान्ता ।)

पौर्णमासी—(परिक्रम्य ।) नान्दीमुखी, कृष्णोऽपि नातिदूरे भविष्यति, यदत्र दक्षिणतो नैचिकीनिकुरम्बस्य हम्बारवाडम्बरोऽयमम्बरमाक्रामति । तदहं स्नानार्थं व्रजामि ।

(इति निष्क्रान्ते ।)

(ततः प्रविशति कृष्णः ।)

कृष्णः—(सोद्वेगम् ।)

यदवधि तदकस्मादेव निस्मायिताक्षं
नवतडिदभिरामं धाम साक्षाद्बभूव ।

शिव, हमलोग सरल हृदय के हैं अतः बढ़े हुए वडवानल की ज्वाला के समूह को फैलानेवाले तुमको हम लोग कैसे जान सकते हैं ? (अर्थात् हम लोग भोली-भाली हैं । तुम्हारे विरह की आग में जल रहे हैं । तुम चंचल हो और मुझे कष्ट दे रहे हो । मेरे दुःख का एकमात्र कारण तुम्हीं हो ॥ २३ ॥

पौर्णमासी—(प्रेम से देखकर) बेटी, एक क्षण एकान्त में बैठकर फूलों पर पत्र-रचना करो जिससे सखियों द्वारा इसे कृष्ण के पास भेजा जाय ।

(राधा दोनों सखियों के साथ जाती है)

पौर्णमासी—(चलकर) नान्दीमुखि, श्री कृष्ण भी बहुत दूर नहीं होगा । क्योंकि यहाँ दाहिनी ओर से श्रेष्ठ गायों के झुण्ड के रम्भाने की आवाज आकाश में फैल रही है अतः मैं स्नान करने के लिए जाती हूँ ।

(यह कह कर दोनों जाती हैं)

(उसके बाद श्री कृष्ण प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—(उद्विग्नतापूर्वक) जब से सहसा नेत्रों को चकित कर देनेवाले

तदवधि चिरचिन्ताचक्रसक्ता विरक्ति
मम मतिरुपभोगे योगिनीव प्रयाति ॥ २४ ॥

(पुरोऽनुसृत्य ।) हन्त, रङ्गणमाल्यमुपनेतुं प्रस्थितो वयस्यः कथं विलम्बते ।

(प्रविश्य माल्यहस्तः)

मधुमङ्गलः—कधं अज्ज दुम्मणाएदि पिअवअस्सो । होदु । पसङ्गदो जाणिस्सम् । (इति परिक्रम्य कृष्णं पश्यन् । स्वगतम् । संस्कृतेन ।) (कथमद्य दुर्मनायते प्रियवयस्यः । भवतु । प्रसङ्गतो ज्ञास्यामि ।)

फुल्लप्रसूनपटलैस्तपनीयवर्णा-
मालोक्य चम्पकलतां किल कम्पतेऽसौ ।

नवीन बिजली के समान सुन्दर उस देव को देखा है, तब से अत्यधिक चिन्ता-चक्र में आसक्त योगिनी की भाँति मेरी बुद्धि उपभोग से विरक्त हो रही है ॥ २४ ॥

विमर्श—स्वप्रकाश परब्रह्म के साक्षात्कार हो जाने पर उपासक योगी उसी तत्त्व के चिन्तन में निरन्तर तल्लीन रहकर विषय-भोग से विमुख हो जाते हैं। उन्हें सांसारिक भोग की अपेक्षा परब्रह्म के साक्षात्कार-जन्य अनुभव में विशेष आनन्द की उपलब्धि होती है। वह आनन्दानुभूति अलौकिक है अतः लौकिक आनन्द से विरति स्वाभाविक ही है।

कृष्ण भी अलौकिक शोभाधाम राधा का साक्षात्कार कर चुके हैं। वे उस विलक्षण सुन्दरी की अलौकिक शोभा-सम्पत्ति से विस्मित होकर निरन्तर उसी का चिन्तन कर रहे हैं। राधाविषयक चिन्ता में उन्हें परम सुख मिलता है अतः सामान्य गोपियों के उपभोग में उनकी विरक्ति-सी हो रही है। (आगे बढ़ कर) अरे, रङ्गणमाला को लाने के लिए गया हुआ मित्र देर क्यों कर रहा है ?

(हाथ में माला लिए प्रवेश करके)

मधुमङ्गल—आज प्रियमित्र उदास क्यों है ? अच्छा, प्रसंगवश जान लूँगा। (यह कहकर चलकर कृष्ण को देखता हुआ। अपने आप। संस्कृत में)

खिले हुए पुष्प के समूहों से सोने के रंगवाली (सुनहली) चम्पा की लता को

शङ्के निरङ्कनवकुङ्कुमपङ्कगौरी
राधाऽस्य चित्तफलके तिलकीबभूव ॥ २५ ॥

(इत्युपसृत्य ।) भो, गेण्ह । (इति माल्यं निवेदयति ।) (भोः, गृहाण ।)

कृष्णः—(अनाकर्णितकेनैव ।)

कनकाद्रिनिकेतकेतकीकलिकाकल्पकलेवरद्युतिः ।
हृदि सा मुदिरालिमेदुरे चपला मां किमलंकरिष्यति ॥२६॥

मधुमङ्गलः—(स्वगतम्) फलिदं मे तक्केण । (प्रकाशमुच्चैः ।) भो पिअवअस्स, संमुहे विक्कोसन्तं वि कीस मं ण पेच्छसि । (फलितं मे तर्केण । भोः प्रियवयस्य, संमुखे विक्रोशन्तमपि कस्मान्मां न पश्यसि ।)

देखकर यह (कृष्ण) काँपता है, ऐसा लगता है कि स्वच्छ नवीन कुङ्कुम की घोल के समान गोरी राधा इसके मानस-पटल पर (अंकित होकर) श्रेष्ठ बन गयी है ॥ २५ ॥

विमर्श—श्रीकृष्ण के अन्तःकरण में सभी गोपियों ने अपना स्थान पाया है। सभी कृष्ण के मनरूपी फलक पर अङ्कित हैं किन्तु राधा ने विशेष स्थान प्राप्त किया है। राधा का प्रभाव औरों की अपेक्षा कृष्ण पर विशेष है अतः राधा कृष्ण के अन्तःकरण में अंकित सभी गोपियों के बीच तिलक रूप में विराजमान है। राधा के प्रति कृष्ण विशेष आकृष्ट हैं।

(यह कह कर समीप पहुँच कर) अजी, लीजिए।

श्रीकृष्ण—(मानो नहीं सुनकर)

सुमेरु पर्वत पर रहने वाली केतकी की कली के समान शरीर की कान्ति से युक्त वह चपला (राधा) मेघ-समूह के स्निग्ध हृदय में (विद्यमान) क्या मुझे अलंकृत करेगी ? अर्थात् क्षणमात्र के स्पर्श से भी मैं अपने को धन्य मानूँगा ॥ २६ ॥

मधुमंगल—(अपने आप) मेरा अनुमान सच हुआ। (प्रकट) मित्र, सामने मे चिल्लाते हुए भी मुझको क्यों नहीं देखते हो !

कृष्णः—(सावहित्थम् ।) सखे, चम्पकलतायाः लावण्याकृष्टेन मया नोपदृष्टोऽसि।

मधुमङ्गलः—सच्चं ज्जेव्व भणासि, किं तु संचारिणीए चम्पअलदाए। (सत्यमेव भणसि, किं तु संचारिण्याश्चम्पकलतायाः ।)

कृष्णः—सखे, काममसंभाव्यश्चम्पकलतायाः संचारः ।

मधुमङ्गलः—वअस्स, क्खणं विरमेदु वङ्कत्तणम् । उज्जुअं कहेहि कहं सुण्णहिअओसि त्ति । (वयस्य, क्षणं विरमतु वक्रत्वम् । ऋजु कथय कथं शून्यहृदयोऽसीति ।)

कृष्णः—(सस्मितम् ।) सखे, मालां विना ।

मधुमङ्गलः—बालं त्ति भण। (बालमिति भण ।)

कृष्णः—मुधेयं ते विशङ्का ।

मधुमङ्गलः—(संस्कृतमाश्रित्य ।)

न जानीषे मूर्ध्नश्च्युतमपि शिखण्डं यदखिलं
न कण्ठे यन्माल्यं कलयसि पुरस्तात्कृतमपि ।

कृष्ण (भाव को छिपाते हुए) मित्र, चम्पा की लता की सुन्दरता से मुग्ध मैंने तुम्हें नहीं देखा है ।

मधुमङ्गल—ठीक ही कहते हो, किन्तु चलने वाली चम्पा की लता की !

कृष्ण—मित्र, चम्पकलता का चलना बिल्कुल असंभव है ।

मधुमङ्गल—मित्र, थोड़ी देर के लिए वक्रता (चालाकी) छोड़ो । सीधे कहो कि क्यों खोए-खोए से हो ?

कृष्ण—(मुस्कुराकर) माला के बिना ।

मधुमंगल—'बाला के बिना' ऐसा कहो ।

कृष्ण—तुम्हारी यह शंका झूठी है ।

मधुमंगल—(संस्कृत का सहारा लेकर)

हे वृन्दावनरूपी गुफा में विहार करने वाले कलभ, (हस्तिशावक) शिर से सम्पूर्ण मोर-पुच्छ के गिरने का भी जिसे पता नहीं है और जो सामने की हुई

तदुन्नीतं वृन्दावनकुहरलीलाकलभ हे
स्फुटं राधानेत्रभ्रमरवरवीर्योन्नतिरियम् ॥ २७ ॥

कृष्णः—(स्वगतम् ।) कथं निखिलमेव तर्कितं धूर्तेन । तदलं प्रतार्य (प्रकाशम्) सखे, यथार्थमात्थ । तदाकर्ण्यताम् ।

मम राधा निसर्गस्थं प्रतीपमनयन्मनः ।
महाज्यैष्ठीव सहसा प्रवाहं सौरसैन्धवम् ॥ २८ ॥

मधुमङ्गलः—णूणं अच्छीणं दे पच्चक्खीभूदा एसा । (नूनमक्ष्णोस्ते प्रत्यक्षीभूतैषा ।)

कृष्णः—अथ किम् । सुबलतः सा परिचिक्ये च । (इत्यौत्सुक्यमभिनीय ।)

माला को भी गले में नहीं धारण कर रहे हो, तो मुझे ऐसा लगता है कि राधा के नेत्ररूपी भौंरा के श्रेष्ठ पराक्रम की यह स्पष्ट उन्नति (प्रभाव) है ॥ २७ ॥

विमर्श—इस पद्य में वृन्दावन पर गुफा का, कृष्ण पर कलभ का और राधा के नेत्र पर भ्रमर का आरोप किया गया है। इसका स्वारस्य यह है—मद के गन्ध का लोभी भौंरा हाथी के गण्डस्थल पर मडराता हुआ उसे उद्विग्न करता है, यह लोक में प्रसिद्ध है। राधा के नेत्ररूपी भ्रमर ने भी कृष्णरूपी हाथी को उद्विग्न बना दिया है। अर्थात् राधा के कटाक्ष ने कृष्ण को आहत कर दिया है।

कृष्ण—(अपने आप) इस धूर्त ने क्या सब कुछ समझ लिया ? तो इसको ठगना व्यर्थ है। (प्रकट) मित्र, तुम सच कहते हो। तो सुनो।

मेरे स्वस्थ मन को राधा ने विपरीत अर्थात् अस्वस्थ बना दिया है जिस प्रकार महाज्येष्ठ की पूर्णिमा तिथि गंगा के प्रवाह को सहसा उलट देती है ॥२८॥

मधुमङ्गल—तुमने जरूर अपनी आँखों से इसे देखा है।

कृष्ण—और क्या ! सुबल से उसका परिचय भी मिला है। (इस प्रकार उत्सुकता दिखाकर।)

भ्रमद्भ्रूवल्लीकैः प्रतिदिशमपाङ्गस्य वलनैः
कुरङ्गीभ्यो भङ्गीभरमुपदिशन्तीमिव दृशोः ।
ततस्तां बिम्बौष्ठीं कलयति मयि क्रोधविकटो
मनोजन्मा पौष्पं धनुरनुपमं सज्जमकरोत् ॥ २९ ॥

मधुमङ्गलः—अवि णाम संवुत्तं अण्णोण्णदंसणम् । (अपि नाम संवृत्तमन्योन्यदर्शनम् ।)

कृष्णः—नहि नहि ।

तस्याः सखे मुखतुषारमयूखबिम्बे
दूरान्ममाक्षिपदवीमधिरूढमात्रे ।
निर्बन्धतः शपथकोटिभिरम्बयाऽहं
नीतः क्षणादहह सद्मनि भोजनाय ॥ ३० ॥

मधुमङ्गलः—वअस्स, चिट्ठन्ति बहुलाओ वल्लवसुन्दरीओ, तदवि कीस तुमं एकाए राहीए णिब्भरं अणुरज्जसि । (वयस्य, तिष्ठन्ति बहुला वल्लवसुन्दर्यः, तदपि कस्मात्त्वमेकस्यां राधायां निर्भरमनुरज्यसि ।)

चंचल भ्रूलताओं के द्वारा प्रत्येक दिशा में कटाक्ष-सञ्चार से हरिणी को मानो नेत्रों के विलास-भार की शिक्षा देती हुई बिम्ब के समान ओठों वाली उस राधा के मेरे देखने पर क्रोध से भीषण कामदेव ने अनुपम पुष्पनिर्मित धनुष को चढ़ा लिया है। अर्थात् राधा के प्रथम साक्षात्कार में ही मैं कामदेव के बाण से बिंध गया हूँ ॥ २९ ॥

मधुमंगल—क्या तुम लोगों ने एक दूसरे को देखा है?

कृष्ण—नहीं, नहीं ।

हे मित्र, दूर से ही मेरे नेत्रों में उसके मुखचन्द्र का प्रतिबिम्ब पड़ते ही करोड़ों शपथ देकर हठपूर्वक मेरी माँ मुझे भोजन के लिये तुरत घर ले गयी ॥ ३० ॥

मधुमंगल—मित्र, बहुत सी सुन्दर गोपियाँ हैं फिर भी एक राधा में इतना अधिक अनुरक्त क्यों हो?

कृष्णः—सखे, राधायामसाधारणी कापि माधुरी। तथा हि—

तस्याः कान्तिद्युतिनि वदने मञ्जुले चाक्षियुग्मे
तत्रास्माकं यदवधि सखे दृष्टिरेषा निविष्टा।
सत्यं ब्रूमस्तदवधि भवेदिन्दुमिन्दीवरं वा
स्मारं स्मारं मुखकुटिलताकारिणीयं हृणीया॥ ३१॥

मधुमङ्गलः—दंसणदो पढमं ज्जेव तत्थ तुज्झ राओ मए तक्किदो त्थि। ता किं त्ति लावण्णोवाहिओ त्ति भणासि। (दर्शनतः प्रथममेव तत्र तव रागो मया तर्कितोऽस्ति। तत्किमिति लावण्योपाधिक इति भणसि।)

कृष्णः—सखे, सत्यमात्थ। स्वचित्ताभिनिवेशादेव तस्यां कोऽपि महिमोन्नाहः प्रतीयते। तथा हि—

कृष्ण—सखे, राधा में कोई असाधारण माधुर्य है, क्यों कि—

हे मित्र, कान्ति से प्रकाशित उसके मुख पर और सुन्दर नेत्रों पर जब से हमारी यह नजर पड़ी है, तब से सच कहता हूँ कि चन्द्रमा अथवा कमल को बार-बार स्मरण करके मेरा मुख लज्जा से टेढ़ा हो जाता है॥ ३१॥

विमर्श—जब से राधा के अनुपम मुख और नेत्र को देखा है तब से चन्द्रमा और कमल में कोई विलक्षणता नहीं नजर आती है। मुख की उपमा चन्द्रमा से और नेत्रों की उपमा कमल से देने के लिए जब-जब उन दोनों को स्मरण करता हूँ तब-तब उनको उपयुक्त उपमान न पाकर मुख को विकृत करने वाली लज्जा का अनुभव करता हूँ। राधा के मुख और नेत्रों की उपमा चन्द्रमा और कमल से देने में मुझे लज्जा आती है क्योंकि उपमान की अपेक्षा उपमेय में अधिक कान्ति और सौन्दर्य है।

मधुमङ्गल—(राधा के) साक्षात्कार (प्रथमदर्शन) से पहले ही मैंने राधा के प्रति तुम्हारे अनुराग का अनुमान कर लिया है। तो सौन्दर्य को कारण क्यों कह रहे हो!

कृष्ण—मित्र, सच कहते हो। अपने मन की आसक्ति से ही उस राधा में किसी महिमा के उत्कर्ष की प्रतीति हो रही है। क्योंकि—

यत्र प्रकृत्या रतिरुत्तमानां तत्रानुमेयः परमोऽनुभावः ।
नैसर्गिकी कृष्णमृगानुवृत्तिर्देशस्य हि ज्ञापयति प्रशस्तिम् ॥२२॥

(नेपथ्ये)

सहि सारिए, दिट्ठो तुए एत्थ वल्लविन्दणन्दणो । (सखि सारिके, दृष्टस्त्वयात्र वल्लवेन्द्रनन्दनः ।)

कृष्णः—सखे, नेदीयानयं सुकुमारीकण्ठध्वनिरुदञ्चति । तदत्र तूष्णीमास्वहे ।

(ततः प्रविशतो ललिताविशाखे ।)

ललिता—पेक्ख एसो दिट्ठिआ पुरदो कण्हो । ता उपसप्पंम्ह । (इत्युभे तथा कृत्वा ।), जअदु जअदु गोउलाणन्दो । (पश्यैष दिष्ट्या पुरतः कृष्णः । तदुपसर्पावः । जयतु जयतु गोकुलानन्दः ।)

कृष्णः—सखि ललिते, शङ्के मनोहारिकुसुमपत्रमादातुमद्य वृन्दाटवीमध्येऽवतीर्णासि ।

जहाँ पर उत्तम पुरुषों का स्वभावतः अनुराग होता है, वहाँ पर विशेष प्रभाव (महत्व) का अनुमान करना चाहिए । क्योंकि कृष्णमृग का स्वाभाविक सञ्चार-स्थान की महत्ता को सूचित करता है । (जिस प्रकार कृष्णमृग का स्वाभाविक संचार उस स्थान की प्रशस्ति का सूचक है उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों की किसी के प्रति स्वाभाविक अनुराग प्रवृत्ति उस व्यक्ति के महत्त्व की ज्ञापिका है ।)

(नेपथ्य में)

सखि सारिके, यहाँ तुमने व्रजेन्द्र-किशोर कृष्ण को देखा है ?

कृष्ण—मित्र, सुकुमारी ललनाओं का यह कंठ-स्वर समीप में सुनाई पड़ रहा है अतः यहाँ हमलोग चुप होकर बैठें ।

(उसके बाद ललिता और विशाखा आती हैं)

ललिता—देखो, सौभाग्य से यह कृष्ण सामने हैं । इसलिए हम लोग समीप चलें । (ऐसा कहकर दोनों समीप आकर) गोकुल को आनन्दित करने वाले आपकी जय हो जय हो ।

कृष्ण—सखि ललिते, मैं समझता हूँ कि सुन्दर फूलों के पत्र (नूतन

ललिता—विण्णादं वि णूणं आआरेण संगोवेसि जं दादुं ति ण भणासि। ता गेण्ह णं कण्णिआरकोरअपत्तम्। (इत्यनङ्गलेखं कृष्णकरेऽर्पयति।) (विज्ञातमपि नूनमाकारेण संगोपयसि यद्दातुमिति न भणसि। तद् गृहाणैतत्कर्णिकारकोरकपत्त्रम्।)

कृष्णः—(स्वगतम्।) चेतः, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। त्वदभीष्टबीजस्याङ्कुरोऽयमिति शङ्के।

मधुमंगलः—भोदि ललिदे, किं इमिणा अक्खराणां पत्तेण। सक्कराणं पत्तं समप्पेहि। (भवति ललिते, किमेतेनाक्षराणां पत्त्रेण। शर्कराणां पत्त्रं समर्पय।)

कृष्णः—सखे, वाचय पत्त्रम्। कदाचिदेतन्नः कर्णरसायनस्य पात्रीभवति।

मधुमंगलः—भो वअस्स, दिट्ठा तुम्ह गोआलजादीए वदाण्णदा। णं अम्ह अम्हणजादिं जेव्व गोरवेण वन्दामि, जं तहिं दिअहे...

क्रिकेय) को लेने के लिए आज वृन्दावन में उतरी हो।

ललिता—जानी हुई बात को भी वचन-चातुरी से (दातुम् के स्थान में 'आ' उपसर्ग लगाकर 'आदातुम्' कथन के द्वारा) छिपा रहे हो अतः 'देने के लिए' ऐसा नहीं कहते हो। तो इस कनेल कली के पत्र को ग्रहण करो। (यह कहकर कृष्ण के हाथ में मदनलेख (प्रेमपत्र) देती है।)

कृष्ण—(अपने आप) हे मन, धीरज धरो, धीरज धरो। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे अभिलषित बीज का यह अङ्कुर है।

मधुमङ्गल—हे ललिते, अक्षरों के इस पत्र से क्या लाभ! चीनी का पत्र दो।

कृष्ण—मित्र, पत्र को पढ़ो। हो सकता है कि यह हम लोगों के कानों के रसायन का पात्र हो।

मधुमङ्गल—हे मित्र, तुम्हारी गोपजाति की उदारता देखी गयी। मैं तो गौरव से अपनी ब्राह्मण जाति की ही वन्दना करता हूँ क्योंकि उस दिन याज्ञिक

जणिणअवम्हणीहिं चउविहेण अण्णेण भोइद म्ह । (इति लेखं वाचयति ।) (भो वयस्य, दृष्टा युष्मद्गोपालजातेर्वदान्यता । नन्वस्मद्ब्राह्मणजातिमेव गौरवेण वन्दे, यत्तस्मिन्दिवसे याज्ञिकब्राह्मणीभिश्चतुर्विधेनान्नेन भोजिताः स्मः ।)

धरिअ पडिच्छन्दगुणं सुन्दर मम मन्दिरे तुमं वससि ।
तह तह रुन्धसि वलिअं जह जह चइदा पलाएमि ॥ ३३ ॥

(धृत्वा प्रतिच्छन्दगुणं सुन्दर मम मन्दिरे त्वं वससि ।
तथा तथा रुणत्सि वलितं यथा यथा चकिता पलाये ॥)

कृष्णः—सखे, दुरधिगमार्था तावदियं गाथा । तेन पुनर्भण्यताम् ।

(मधुमङ्गलस्तथा करोति ।)

कृष्णः—(सानन्दं स्वगतम् ।) कुलस्त्रियो हि धर्मभीरवो भवन्ति । तदुपेक्षया भावनिष्ठां निष्टङ्कयामि । (इति संरम्भमभिनीय प्रकाशम् ।) हंहो, पश्यत पश्यत ।

स्निग्धैरेभिः सखिभिरखिलैर्धेनुवृन्दानुसारी

ब्राह्मणियों ने हम लोगों को चार प्रकार के अन्नों से भोजन कराया था । (ऐसा कहकर पत्र पढ़ता है) हे सुन्दर प्रतिमा (चित्रपट) का गुण धारण करके तुम मेरे मन्दिर में निवास करते हैं । मैं चकित होकर ज्यों-ज्यों भागती हूँ त्यों-त्यों तुम घेर कर मुझे रोकते हो । (अर्थात् तुम मेरे मनोमन्दिर के आराध्यदेव हो । मैं तुमको अपने हृदय से नहीं निकाल सकती ।) ॥ ३३ ॥

कृष्ण—मित्र, इस गाथा (पद्य) का अर्थ समझने में कठिन है अतः फिर से पढ़ो ।

(मधुमङ्गल फिर से पढ़ता है)

कृष्ण—(आनन्दपूर्वक अपने आप) कुलीन स्त्रियाँ धर्म से डरती हैं । अतः उनकी उपेक्षा करके उनके हार्दिक भावों की अनन्यता का निश्चय करता हूँ । (अर्थात् उनकी ओर से उदासीन होकर भावों की गहराई का पता लगाता हूँ कि मेरे उपेक्षाभाव से भी उनमें मेरे प्रति सच्चा स्नेह है या नहीं ! (क्रोध-भाव दिखाकर प्रकट) अरे देखो, देखो—

इन सभी प्रिय मित्रों के साथ गाय-समूह का अनुसरण करने वाला और क्री-

नारीवार्ताविमुखहृदयः काननान्ते चरामि ।
मा स्वैरिण्यस्तदपि यदिमा दूषयन्ति प्रकामं
तद्विज्ञप्तिं द्रुतमिह जरद्गोपगोष्ठ्यां करिष्ये ॥ ३४ ॥

(इति कृत्रिमामर्षेण द्रुतं परिक्रामति ।)

मधुमङ्गलः—(स्मितमाहृत्य ।) भो बम्हआरिसिहामणी, क्खणं णिवट्टिअ इमाओ दुम्मुहगोइआओ पच्चुत्तरेण णिजित्तिअ विद्दावेहि । अहं क्खु एदं सव्वं धिट्ठाणं वुत्तन्तं गोउलेसरीए विण्णविस्सम् । (इति पाणौ धृत्वा व्यावर्तयति) (भो ब्रह्मचारिशिखामणे, क्षणं निवर्त्य इमा दुर्मुखगोपिकाः प्रत्युत्तरेण निर्जित्य विद्रावय । अहं खल्विदं सर्वं धृष्टानां वृत्तान्तं गोकुलेश्वर्यै विज्ञापयिष्यामि ।)

(इति परस्परमवेक्ष्य वैलक्ष्यं नाटयतः ।)

कृष्णः—सखि विशाखे, चातुरक्षिकं प्रेक्षणमपि नास्ति । कुत-स्तावत्परितो रोधनम् । तदनुयामि । केनाप्यपरेण नागरेण तस्याः स्वान्तमुच्चालितम् ।

विषयक वार्तों से दूर हृदय वाला मैं जगलों में घूमता हूँ । फिर भी ये स्वेच्छा-चारिणी गोपियाँ मुझे खूब दोष देती हैं । अतः मैं इसकी सूचना शीघ्र वृद्ध गोपों की गोष्ठी (बैठक) में दूँगा ॥ ३४ ॥

(यह कह कर बनावटी क्रोध से तेजी से जाते हैं)

मधुमङ्गल—(मुस्कान दबाकर) हे ब्रह्मचारिशिरोमणे, एक क्षण लौटकर इन दुष्ट (कलमुही) गोपियों को जवाब से जीत कर भगा दो । मैं ढीठ गोपियों के इस वृत्तान्त को गोकुल की स्वामिनी यशोदा से कहूँगा । (यह कह कर कृष्ण के हाथों को पकड़ कर लौटता है) इस प्रकार एक दूसरे को देखकर लजाते हैं)

कृष्ण—सखि विशाखे मेरी उससे चार आँखें भी नहीं हुई हैं फिर रोकने की क्या बात है ? अतः मैं जाता हूँ । किसी दूसरे चतुर नागर ने ही उसके मन को चंचल बनाया है । (मेरी-उसकी मुलाकात नहीं है उस पर किसी दूसरे ने ही जादू चलाया है ।)

विशाखा—(संस्कृतमाश्रित्य ।)

कस्तादृग्व्रजमण्डलेऽथ वलते शक्यो गरीयानसौ
येनोच्चालयितुं बलात्कुलवतीचेतोगिरिग्रामणीः ।
इत्यस्माभिरवक्रविक्रमलवादुत्क्षिप्तगोवर्धनो
हेतुस्त्वं किल पङ्कजाक्ष यदुभिस्तत्रासि निष्टङ्कितः ॥ ३५ ॥

मधुमङ्गलः—अइ वाआलिए, चिट्ठ चिट्ठ। दिट्ठो मए उक्खित्तदण्डमण्डलेहिं गोवेहिं गोवद्धणो धरिदो। तुमं कीस एक्कं ज्जेव पिअवअस्सं संभावेसि। (अयि वाचालिके, तिष्ठ तिष्ठ। दृष्टो मया उत्क्षिप्तदण्डमण्डलैर्गोपैर्गोवर्धनो धृतः। त्वं कस्मादेकमेव प्रियवयस्यं संभावयसि।)

कृष्णः—ललिते, अलमतिप्रसङ्गेन। तन्निवर्तस्व।

विशाखा—(संस्कृत में)

हे कमलनयन, गोकुल में ऐसा कौन है जो बलात् कुल-युवतियों के मनरूपी श्रेष्ठ पर्वत को चंचल कर सके ? दुर्बोध पराक्रम के लेशमात्र से गोवर्धन को उठाने वाले तुम्हीं उसके कारण हो, ऐसा हम लोगों का निश्चय है ॥ ३५ ॥

विमर्श—कुलीन गोपियों का मन पर्वत के समान दृढ़ है। उसको हिलाने वाला कोई असाधारण पराक्रमी व्यक्ति ही होना चाहिए। तुमने स्वल्प प्रभाव से ही गोवर्धन पर्वत को उठाया है अतः राधा के मन-पर्वत को भी तुम्हीं चंचल कर सकते हो दूसरा नहीं। राधा एकमात्र तुम्हीं में अनुरक्त है, किसी दूसरे में नहीं।

मधुमंगल—अरी बातूनी, ठहरो, मैंने तो दण्डसमूहों को उठाए गोपों द्वारा गोवर्धन को धारण किए देखा है। तुम अकेले प्रियमित्र को क्यों कह रही हो ? (अर्थात् गोवर्धन पर्वत को सभी गोपों ने मिलकर उठाया है अकेले कृष्ण ने नहीं।)

कृष्ण—ललिते, अधिक बहस की जरूरत नहीं, अतः लौट जाओ।

ललिता—सुन्दर, सव्वगोउलसुहकारिणो वि तुअत्तो कधं सा एका व्वेजेव्व दुक्खं अरिहदि वरिअसि। (सुन्दर, सर्वगोकुलसुखकारिणोऽपि त्वत्तः कथं सा एकैव दुःखमर्हति वरीयसी।)

कृष्णः—

सङ्गी मे मधुमङ्गलो न सहते धर्माध्वनो विच्युतिं
श्रीदामा परिमार्गयन्मम नहि च्छिद्राणि निद्रायति।
कंसः शास्ति खलः क्षितिं कथमतो मुग्धे विधेयं मया
निःशङ्कं कुलसुन्दरीपरिभवज्वालामहासाहसम् ॥ ३६ ॥

ललिता—(सामर्षम्। संस्कृतेन।)

अन्तःक्लेशकलङ्किताः किल वयं यामोऽद्य याम्यां पुरीं
नायं वञ्चनसंचयप्रणयिनं हासं तथाप्युज्झति।
अस्मिन्संपुटिते गभीरकपटैराभीरपल्लीविटे
हा मेधाविनि राधिके तव कथं प्रेमा गरीयानभूत् ॥३७॥

(इति रोदिति।)

ललिता—सुन्दर, समस्त गोकुल को सुख देने वाले भी तुमसे एक वही क्यों दुःखी हो रही है ?

कृष्ण—मेरा सहचर मधुमङ्गल धर्ममार्ग से विचलित होना नहीं सहता। श्रीदामा मेरे दोषों को छिपाता नहीं। दुष्ट कंस पृथिवी का शासन करता है अतः हे सरले, कुल-सुन्दरियों के अपमान की ज्वाला में प्रवेश करने का दुःसाहस मैं निःशंक होकर कैसे करूँ ? ॥ ३६ ॥

ललिता—(क्रोध से संस्कृत में)

आन्तरिक दुःखों से चिह्नित हमलोग आज यमपुरी जा रहे हैं फिर भी यह धोखा देने वाली हँसी को नहीं छोड़ रहा है। हे बुद्धिमति राधे, गम्भीर छलनाओं से युक्त और व्रज-ललनाओं के कामुक इसमें तुम्हारा इतना अधिक प्रेम कैसे हो गया ? ॥ ३७ ॥ (यह कह कर रोती है)

मधुमंगलः—अइ मुद्धे, सअलसत्थविसारओ जस्स अम्हारिसो अमच्चो होइ सोवि किं एदं धम्मं अदिक्कमिस्सइ। ता अलं वणरु-दिदेण। (अयि मुग्धे, सकलशास्त्रविशारदो यस्यास्मादृशोऽमात्यो भवति सोऽपि किमिमं धर्ममतिक्रमिष्यति। तदलं वनरुदितेन।)

विशाखा—(स्वगतम्।) णं राहीए गुञ्जाअलिअं कण्हस्स देन्ती हं इङ्गिदं लक्खेमि। (प्रकाशम्। संस्कृतेन।) (नूनं राधाया गुञ्जावलीं कृष्णाय ददती अहमिङ्गितं लक्षयामि।)

उदीर्णरागेण करम्बितान्तरा परिस्फुरत्कृष्णमुखी गुणाञ्चिता।
गुञ्जावली मञ्जुतरावलम्बतां सा राधिकेयं तव कण्ठसंगमम् ॥ ३८ ॥

(इति कण्ठे स्वयमर्पयति।)

कृष्णः—(स्मित्वा सकपटेर्ष्यम्।)

मधुमंगल—अरी भोली, जिसका सम्पूर्ण शास्त्र में विशारद मेरे जैसा मंत्री है, क्या वह भी कभी इस धर्म का उल्लंघन करेगा? इसलिए जंगल में रोने की आवश्यकता नहीं।

विशाखा—(मन ही मन) राधा की गुञ्जावली को कृष्ण के लिए देती हुई मैं संकेत को समझती हूँ।

(प्रकट। संस्कृत में)

बढ़ी हुई लालिमा से युक्त बाहरी भाग वाली, स्पष्ट रूप से प्रतीत कृष्णवर्ण की मुखवाली, सूत्र में पिरोयी और वजनदार यह अति सुन्दर गुञ्जावली तुम्हारे गले के सम्पर्क को प्राप्त करे।

पक्ष में—बढ़े हुए अनुराग से व्याप्त अन्तःकरण वाली मुख से स्पष्टतः 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करने वाली, प्रशस्त गुणों से युक्त और गुञ्जावली से भी अधिक सुन्दर यह राधा तुम्हारे कण्ठ का संसर्ग प्राप्त करे। अर्थात् तुमपर अनुरक्त राधा तुम्हारे गले लगे) ॥ ३८ ॥

(ऐसा कह कर स्वयं कृष्ण के गले में माला पहनाती है)

कृष्ण—(हँसकर छलपूर्वक क्रोध से)

रागिणमपि सुकठोरं सुवृत्तमपि मुहुरुदीर्णमालिन्यम् ।
युवतीनामिव भावं नहि गुञ्जाहारमिच्छामि ॥ ३९ ॥

(इत्यजानन्निव कण्ठादवतार्य रङ्गणमालिकामर्पयति ।)

विशाखा—(स्वगतम् ।) इमस्स भमो वि अम्हाणं मङ्गलो संवुत्तो । (इति वस्त्रेण संवृणोति ।) (एतस्य भ्रमोऽप्यस्माकं मङ्गलः संवृत्तः ।)

ललिता—हला, गोविआकोडिमुअङ्गस्स इमस्स अक्खलिदं अचरिअं बम्हचरिअं दिट्ठिआ पअडीभूदम् । ता अम्हेवि गदुअ तं अत्थाणाणुराइणी राहिअं णिवट्टावेम्ह । (हला, गोपिकाकोटिभुजङ्गस्य एतस्य अस्खलितमाश्चर्यं ब्रह्मचर्यं दिष्ट्या प्रकटीभूतम् । तद् आवामपि गत्वा तामस्थानानुरागिणीं राधिकां निवर्तयावः ।)

विशाखा—सहि, जुत्तं मन्तेसि । (सखि, युक्तं मन्त्रयसि ।)

(इत्युभे परिक्रामतः ।)

ललिता—विशाहे, तुमं गदुअ इमाए रङ्गणमालिआए पिअसहीं

लालिमायुक्त होकर भी अधिक कठोर, गोलाकार होकर भी अधिक मलिनता-युक्त गुञ्जाहार को युवतियों के भाव की भाँति मैं नहीं चाहता हूँ ॥ ३९ ॥

विमर्श—युवतियों के भाव प्रेम पूर्ण होकर भी कठोर होते हैं, सुन्दर चरित होने पर भी उसमें टेढ़ापन रहता ही है ।

(यह कहकर अनजान की तरह गले से निकाल कर रङ्गमाला देते हैं)

विशाखा—(अपने आप) इस की भूल भी हमलोगों के लिए शुभ ही हुई । (कृष्ण ने गुञ्जावली के बदले वैजयन्तीमाला दे दी)

(यह कह कर) माला को वस्त्र से छिपा लेती है ।)

ललिता—सखि, करोड़ों गोपियों के कामुक इसका नहीं टूटने वाला ब्रह्मचर्य भाग्य से प्रकट हो गया । इसलिए हम दोनों भी जाकर अनुचित स्थान (कृष्ण) में अनुरक्त राधा को लौटाते हैं ।

विशाखा—सखि, उचित परामर्श देती हो ।

(यह कह कर दोनों जाती हैं)

ललिता—सखि विशाखे, तुम जाकर इस रंगमाला से प्रिय सखी (राधा)

आसासेहि। अहं क्खु एदं वुत्तन्तं भअवदीए विणिवेदिस्सम्। (विशाखे, त्वं गत्वा एतया रत्नमालिकया प्रियसखीमाश्वसिहि। अहं खल्विदं वृत्तान्तं भगवत्यै विनिवेदिष्यामि।)

(इति निष्क्रान्ते।)

मधुमङ्गलः—भो, आदरिज्जन्तं वि अप्पाणं कीस आदरावेसि। इदं क्खु पच्चादावपव्वदाहिरोहणस्स अहिरोहिणीणिम्माणं दाव। (भोः, आद्रियमाणमप्यात्मानं किमित्यादरयसि। इदं खलु पश्चात्तापपर्वताधिरोहणस्याधिरोहिणीनिर्माणं तावत्।)

कृष्णः—सखे, सत्यं ब्रवीषि। साहसिक्यं हसितेनैवानुष्टितम्।

मधुमङ्गलः—पेक्ख गोईजुअलं णेत्तपहं अदिक्कमिदम्। (पश्य गोपीयुगलं नेत्रपथमतिक्रान्तम्।)

कृष्णः—(सानुतापम्।)

श्रुत्वा निष्ठुरतां ममेन्दुवदना प्रेमाङ्कुरं भिन्दती
स्वान्ते शान्तिधुरां विधाय विधुरे प्रायः पराञ्चिष्यति।
किं वा पामरकामकार्मुकपरित्रस्ता विमोक्ष्यत्यसून्
हा मौग्ध्यात्फलिनी मनोरथलता मृद्वी मयोन्मूलिता॥४०॥

को धीरज बँधाओ। मैं तो इस समाचार को भगवती (पौर्णमासी) से कहूँगी।

(यह कह कर दोनों चली गयीं।)

मधुमङ्गल—अरे, सम्मोग-योग्य भी अपने को इतना क्यों आदर दे रहे हो? यह तो पश्चात्ताप के पर्वत पर चढ़ने की सीढ़ी का बनाना है।

कृष्ण—मित्र, तुम ठीक कहते हो, मजाक में ही साहस कर दिया है।

मधुमङ्गल—देखो, दोनों गोपियाँ आँखों से ओझल हो गयीं।

कृष्ण—(दुःखपूर्वक)।

(मेरी) कठोरता को सुनकर चन्द्रमुखी (राधा) प्रेम के अङ्कुर को मसलती हुई प्रायः दुःखी अन्तःकरण में शान्ति-स्थापना कर (मुझसे) विमुख हो जायगी। अथवा क्या नीच कामदेव के बाणों से संत्रस्त हुई वह अपने प्राणों को

मधुमङ्गलः—दाणिं किं एत्थ सरणम् । (इदानीं किमत्र शरणम् ।)

कृष्णः—सखे, प्रत्यनङ्गलेखं विना नान्यत्पश्यामि शरणम् ।

मधुमङ्गलः—किं एत्थ लेहसाहणम् । (किमत्र लेखसाधनम् ।)

कृष्णः—वशीकारक्रियाप्रशस्तो रागवान् जवानिर्यासः ।

मधुमङ्गलः—एहि । उड्डुमहाडइमण्डिदं णादिदूरे पक्कन्दणतीत्थं गछेम्ह । (एहि । उड्डमहाटवीमण्डितं नातिदूरे प्रस्कन्दनतीर्थं गच्छावः)

(इति निष्क्रान्तौ ।)

(ततः प्रविशति विशाखया प्रबोध्यमाना राधा ।)

राधा—(सखेदम् । संस्कृतेन)

यस्योत्सङ्गसुखाशया शिथिलिता गुर्वी गुरुभ्यस्त्रपा
प्राणेभ्योऽपि सुहृत्तमाः सखि तथा यूयं परिक्लेशिताः ।

त्याग देगी ? हाय, मूढ़ता से मैंने फलवती कोमल मनोरथलता को जड़ से उखाड़ दिया ॥ ४० ॥

मधुमङ्गल—अब यहाँ क्या उपाय है ?

कृष्ण—मित्र, प्रत्युत्तर में कामलेख (प्रेम-पत्र) लिखे बिना दूसरा उपाय नहीं देखता हूँ ।

मधुमङ्गल—यहाँ लिखने का साधन क्या है ?

कृष्ण—वश करने की क्रिया में प्रसिद्ध लाल अड़हुल के फूल का रस ।

मधुमङ्गल—आओ, विशाल जंगलों से सुशोभित समीपवर्ती प्रस्कन्दनतीर्थ चलें ।

(दोनों चले जाते हैं)

(तदनन्तर विशाखा के द्वारा समझायी जाती हुई राधा प्रवेश करती है)

राधा—(दुःख के साथ । संस्कृत में) ।

जिसके संभोग-सुख की आशा से मैंने गुरुजनों से महती लज्जा को शिथिल कर दिया । और हे सखि, प्राणों से भी अधिक प्रिय तुम लोगों को कष्ट पहुँचाया । पतिव्रता स्त्रियों द्वारा स्वीकृत उस महान् धर्म की भी मैंने परवाह नहीं

धर्मः सोऽपि महान्मया न गणितः साध्वीभिरध्यासितो
धिग्धैर्यं तदुपेक्षितापि यदहं जीवामि पापीयसी ॥ ४१ ॥

विशाखा—(ससंभ्रमम्) सहि, समास्सस समास्सस । (इति रङ्गमालां आणेऽर्पयति ।) (सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।)

राधिका—(संज्ञां लब्ध्वा ।) हला, किं एदं अच्चरिअं जं संमोहणं वि पबोहेदि । (हला, किमिदमाश्चर्यं यत्संमोहनमपि प्रबोधयति ।)

विशाखा—(माल्यं निवेद्य । संस्कृतेन ।)

अङ्गोत्तीर्णविलेपनं सखि समाकृष्टिक्रियायां मणि-
मन्त्रो हन्त मुहुर्वशीकृतिविधौ नामास्य वंशीपतेः ।
निर्माल्यस्रगियं महौषधिरिह स्वान्तस्य संमोहने
नासां कस्तिसृणां गृणाति परमाचिन्त्यां प्रभावावलीम् ॥४२॥

की । मेरे धैर्य को धिक्कार है कि उसके द्वारा उपेक्षित होकर भी मैं पापिनी जी रही हूँ ॥ ४१ ॥

विशाखा—(घबड़ाहट से) सखि, धीरज रखो धीरज रखो ।

(यह कहकर रङ्गमाला को नाक से लगाती है)

राधिका—(होश में आकर) सखि, कितने अचरज की बात है कि जो मोह (बेहोशी) उत्पन्न करने वाला होकर भी होश में ला रहा है । (कृष्ण की जिस माला ने पहले राधा को बेहोश कर दिया था उसी को सूँघने से वह इस समय होश में आ गयी है) ।

विशाखा—(माला को देकर संस्कृत में) ।

हे सखि, इस वंशीपति (मुरलीधर कृष्ण) का नाम अंगों को उबटन करने में उबटन, अच्छी तरह आकृष्ट करने की क्रिया में मणि और बार-बार वशीकरण की विधि में मंत्र है । यह स्वच्छ माला अन्तःकरण को विशेष रूप से मोहने में महौषधि है । इन तीनों (मणि-मन्त्र-औषधि) की अत्यधिक अगम्य प्रभावराशि की कौन प्रशंसा नहीं करता ॥ ४२ ॥

राधिका—(स्वगतम्।) एव्वंगुणेण इमिणा उवेक्खिदं वि णं हदसरीरं कधं अज्जवि णिल्लज्जाहं धारेमि। ता कालिअहदपवेसो-वाअं अणुसरिस्सम्। (प्रकाशम्।) विसाहे, विण्णवेहि, गुरुअणं जं बारहाइच्चतित्थं गदुअ सूरं अच्चिदुकामम्हि। (एवंगुणेनानेनोपेक्षितमपि इदं हतशरीरं कथमद्यापि निर्लज्जाहं धारयामि। तत्कालियह्रदप्रवेशोपायमनुसरिष्यामि। विशाखे, विज्ञापय गुरुजनं यद् द्वादशादित्यतीर्थं गत्वा सूर्यमर्चयितुकामास्मि।)

विशाखा—साहु सुमराइदं पिअसहीए जं अज्जाए जडिलाए वि इदं ज्जेव्व दाणिं आदिट्ठम्हि। ता एहि। (साधु स्मारितं प्रियसख्या यदार्यया जटिलयापि इदमेवेदानीमादिष्टाहिम। तदेहि।)

(इत्युभे परिक्रामतः।)

राधिका—(सव्यामोहम्।)

मं परिहरइ मुउन्दो तहवि दुरासा विरोहिणी डहइ।
मह सहि गहीरणीरा सरणं बहिणी किदन्तस्स ॥ ४२ ॥

(मां परिहरति मुकुन्दस्तदपि दुराशा विरोधिनी दहति।
मम सखि गभीरनीरा शरणं भगिनी कृतान्तस्य ॥)

राधिका—(अपने आप) इस प्रकार के गुणों से युक्त इससे तिरस्कृत भी इस शरीर को अभी भी निर्लज्ज होकर मैं किस प्रकार धारण कर रही हूँ ! तो कालिय ह्रद में प्रवेश करने का उपाय करूँगी। (प्रकट) विशाखे, गुरुजनों को बता दो कि मैं द्वादश सूर्य तीर्थ जाकर सूर्य देव की पूजा करना चाहती हूँ।

विशाखा—प्रियसखी ने ठीक याद दिलायी क्योंकि अभी पूज्या जटिला ने भी मुझे यही आदेश दिया है। इसलिए आओ। (दोनों चलती हैं)।

राधिका—(व्याकुलतापूर्वक)।

(यद्यपि) श्रीकृष्ण मुझे छोड़ रहे हैं (मेरी उपेक्षा करते हैं) फिर भी मेरी विरोधिनी दुराशा मुझे जला रही है। (उनके नहीं चाहने पर भी मैं उन्हें चाह रही हूँ) हे सखि, यमराज की बहिन गम्भीर जलवाली यमुना ही मेरी शरण है ॥ ४२ ॥

विशाखा—हला, पेक्ख पत्थाणे मङ्गलसूअणाइं सउणाइं। ता एवं मा भण। (हला, पश्य प्रस्थाने मङ्गलसूचनानि शकुनानि। तदेवं मा भण।)

राधिका—(पुरो दृष्ट्वा।) हला, कथमेसा पुव्वदिसामुहे आआलिआ संझा दीसइ। (हला, कथमेषा पूर्वदिशामुखे आकालिकी सन्ध्या दृश्यते।)

विशाखा—ण क्खु संझा। पेक्ख पक्कन्दणे सूरस्स वल्लहा परिफुल्लिदा उडुराइ रेहदि। ता इमस्स अग्घं कादुं णं अवचिणम्ह। (न खलु संध्या। पश्य प्रस्कन्दतीर्थे सूर्यस्य वल्लभा प्रफुल्लिता उडुराजी राजति। तदस्या अर्घ्यं कर्तुमेतदवचिनुवः।)

(इत्युभे तथा कुरुतः।)

(ततः प्रविशति बटुना सह कृष्णः।)

कृष्णः—सखे, सेयं राधाधरकान्तितस्करी जवाराजिः।

मधुमङ्गलः—अदो णं णिप्पीडिअ णिम्माहि पच्चणङ्गलेहम्। (अत एतन्निष्पीड्य निर्माहि प्रत्यनङ्गलेखम्।)

कृष्णः—(परिक्रम्य सविस्मयम्।)

विशाखा—सखि, देखो यात्रा में मंगलसूचक शुभ शकुन हो रहे हैं। अतः ऐसा मत कहो।

राधिका—(सामने देख कर) सखि, पूरब दिशा में यह असामयिक सन्ध्या कैसी दिखायी दे रही है?

विशाखा—यह सन्ध्या नहीं है। देखो, प्रस्कन्द तीर्थ में सूर्य की प्रिया प्रफुल्लित नक्षत्र-पंक्ति सुशोभित हो रही है। तो इसका अर्घ्य बनाने के लिए इसे हम दोनों चुनें। (दोनों वैसा करती हैं)।

(उसके बाद बटुक (मधुमङ्गल) के साथ कृष्ण प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—मित्र, राधा के अधर की शोभा को चुराने वाली अड़हुल की वह यही पंक्ति है।

मधुमङ्गल—इसलिए इसे निचोड़ कर प्रत्युत्तर में मदनलेख (प्रेमपत्र) लिखो।

कृष्ण—(घूम कर आश्चर्य से)।

एषा नान्तिकवर्तिनी सुरगिरेरैलावृती हन्त भू-
रग्रे किं कलयामि काञ्चनरुचामुद्गारगौरीर्दिशः ।
आं ज्ञातं मणिनूपुरध्वनिभरादालीजनालंकृता
कान्तीनां कुलदेवता विलसितुं वृन्दाटवीं विन्दति ॥ ४४ ॥

मधुमङ्गलः—हन्त भो, मग्गिज्जन्तम्मि वाउरासाहणे कुरङ्गी सअं हत्थं गदा । (हन्त भोः, मृग्यमाणे वागुरासाधने कुरङ्गी स्वयं हस्तं गता ।)

कृष्णः—(सानन्दम् ।) सखे, साधु विज्ञातम् । तदत्र वृत्तान्तरितौ शृणुवः किमसौ प्रस्तौति ।

(इति तथा स्थितौ ।)

राधिका—(विशाखामालम्ब्य सास्रम् ।) हला, एसो जणो कधापसङ्गे सअं सुमरिदव्वो । (हला, एष जनः कथाप्रसङ्गे स्वयं स्मारितव्यः ।)

विशाखा—(सबाष्पम् ।) सहि, अच्छीणधीरत्तणादिगुणा भणि-

सुमेरु पर्वत का समीपवर्ती भूभाग स्थावर नहीं है, सुवर्ण की शोभा के उद्गार से दिशाएँ पीले रंग की क्यों दीख रही हैं ? अच्छा, मालूम हुआ—मणि से बने हुए नूपुर के शब्द-भार से अलंकृत सखियों वाली, शोभाओं की कुल देवता (राधा) विलास करने के लिए वृन्दावन आ रही है ॥ ४४ ॥

मधुमङ्गल—हे मित्र, जाल के ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हरिणी स्वयं हाथ में आ गयी । (अर्थात् राधा को पाने का उपाय सोचा ही जा रहा था कि वह स्वयं मिल गयी) ।

कृष्ण—(प्रसन्नतापूर्वक) मित्र, तुमने ठीक समझा है । इस लिए यहाँ हम दोनों वृक्ष की आड़ में छिप कर सुनें कि यह क्या कहती है ?

(यह कह कर दोनों वृक्ष की ओट में छिप जाते हैं)

राधिका—(विशाखा का सहारा लेकर आँसू बहाती हुई) सखि, यह व्यक्ति बात चीत के सिलसिले में स्वयं याद दिलाने योग्य है ।

विशाखा—(आँसू के साथ) तुम धीरज रखने वाली कही जाती हो तो

वज्जसि। ता किंति एव्वं उव्विग्गासि। (सखि, अक्षीणधीरत्वादिगुणा भण्यसे। तत्किमित्येवमुद्विग्नासि।)

राधिका—सहि, णिग्गुणीकिद्म्हि तेण धुत्तेण। (इति संस्कृतेन।) (सखि, निर्गुणीकृतास्मि तेन धूर्तेन।)

तस्योरस्तटमण्डलं धृतिनदीरोधक्रियापण्डितं
वक्त्रेन्दुः कुलधर्मपङ्कजवनीसंकोचदीक्षाव्रती।
दोर्यूपौ नितरामुदञ्चितचिरव्रीडाभिचाराध्वरौ
हा कष्टं निखिलंगिला सखि दृशोर्भङ्गीभुजङ्गी तु सा ॥४५॥

कृष्णः—प्रिये त्वन्माधुर्येण माधवश्च जडीकृत्य निर्गुणामवस्थां नीतोऽयम्।

इस प्रकार उद्विग्न (अधीर) क्यों होती हो ?

राधिका—सखि, उस धूर्त ने मुझे गुणहीन बना दिया है। (संस्कृत में)

उसका वक्षस्थलरूपी तटसमूह धैर्यरूपी नदी की बाढ़ को रोकने के व्यापार में निपुण है। मुखरूपी चन्द्रमा कुलधर्मरूपी कमलवन के संकोच में दीक्षित है। उसकी दोनों भुजाएँ लज्जा के (वध के लिये) अभिचार यज्ञ के यूप (यज्ञ स्तम्भ) हैं। हाय, दुःख है कि उसकी आँखों की भंगिमारूपी सर्पिणी समस्त वस्तु को निगल जाने वाली है॥ ४५॥

विमर्श—कृष्ण के वक्षस्थल, मुख, भुजाएँ और नेत्र-भंगिमा ये सब राधा के धीरज, कुलधर्म, लज्जा और अन्य भी स्त्रियोचित गुणों को लूटनेवाले हैं। अतः राधा विवश होकर कृष्ण से अपना पीछा नहीं छुड़ा सकती। वह कृष्ण की रूपमाधुरी पर लुट कर उसके प्रेमजाल में इस प्रकार फँस गयी है कि उस से बाहर निकलना असंभव है। अभिचार याग—शत्रु के वध के उद्देश्य से किया गया यज्ञ अभिचार याग कहलाता है।

यूप—यज्ञ में बलि-पशु को बाँधने के लिए गाड़ा गया खम्भा यूप कहलाता है। प्रस्तुत पद्य में रूपक का सुन्दर निवेश है।

कृष्ण—प्रिये, तुम्हारी मधुरता ने इस माधव को जड़ बनाकर निर्गुण अवस्था में पहुँचा दिया है।

राधिका—(आकाशे अञ्जलिं बद्ध्वा । संस्कृतेन ।) हन्त भो बकीहन्तः,

गृहान्तःखेलन्त्यो निजसहजबाल्यस्य बलना-
दभद्रं भद्रं वा किमपि नहि जानीमहि मनाक् ।
वयं नेतुं युक्ताः कथमशरणां कामपि दशां
कथं वा न्याय्या ते प्रथयितुमुदासीनपदवीम् ॥ ४६ ॥

कृष्णः—प्रिये, कः खलु जिजीविषुर्जीवातुभूतायां सिद्धौषधिलतायामुदास्ते ।

राधिका—(निःश्वस्य ।) हला, एसा पिआ मे एकावली तुए अप्पणो कण्ठे धारणिज्जा । (इति कण्ठादेकावलीमुत्तारयति ।) (सखि, एषा प्रिया मे एकावली त्वया आत्मनः कण्ठे धारणीया ।)

विशाखा—(हठान्निवार्य ।) हला, एव्वं अणुचिट्ठन्ती किंति मं डहसि जं ललिदं पडिक्खिअ णिकज्जम्हि । (इति रोदिति ।) (हला,

---

(राधिका) (आकाश में हाथ जोड़ कर । संस्कृत में) हे पूतनाघातक, घर में खेलती हुई हम लोग अपनी बाल चपलता के कारण (किए हुए) अच्छे अथवा बुरे कार्यों को कुछ भी नहीं जानते हैं; तो हम लोग इस असहाय दशा में क्यों पहुँचायी गयीं । और अब इस उदासीन भाव को प्रकट करना क्या तुमको उचित है ? ॥ ४६ ॥

विमर्श—राधा के कथन का आशय है—हम लोग अनजान में की गयी अपनी त्रुटियों से अनभिज्ञ हैं । आपने संमोहन का जादू फैला कर हम लोगों को शोचनीय दशा में पहुँचा दिया है और अब हम लोगों के प्रति उदासीन होने का स्वांग रचते हैं, यह उचित नहीं है । विश्वस्त स्नेही जन को उपेक्षाभाव से धोखा देना आप जैसे व्यक्ति को शोभा नहीं देता ।

कृष्ण—प्रिये, जीने की अभिलाषा रखने वाला ऐसा कौन है जो संजीवनी रूप में विद्यमान सिद्ध औषधिलता के प्रति उदासीन हो ।

राधिका—(साँस लेकर) सखि, मेरी इस प्रिय माला को तुम अपने गले में पहनो । (यह कह कर गले से माला को उतारती है)

विशाखा—(बलपूर्वक रोक कर) सखि, इस प्रकार का व्यवहार

एवमनुतिष्ठन्ती किमिति मां दहसि यल्ललितां प्रतीक्ष्य निरुद्यमास्मि ।)

राधिका—(संस्कृतेन ।)

अकारुण्यः कृष्णो यदि मयि तवागः कथमिदं
मुधा मा रोदीर्मे कुरु परमिमामुत्तरकृतिम् ।
तमालस्य स्कन्धे विनिहितभुजावल्लरिरियं
यथा वृन्दारण्ये चिरमविचला तिष्ठति तनुः ॥ ४७ ॥

कृष्ण—(सास्रम् ।) सखे, दृष्टानुरागस्य साधिष्ठता ।

राधिका—(स्वगतम् ।) तुवरावेदि मं कावि वत्थुक्कण्ठा । (प्रकाशम् ।) हला, सूरमच्चिअ किं पि अब्भत्थिदुकामाम्हि । ता जाव सिणाणं कदुअ णिवुत्ता भवे ताव तुमं एत्थ पुप्फं अवचिणोहि । (इति तीर्था-

---

करती हुई तुम मुझे क्यों जला रही हो ? ललिता की प्रतीक्षा करके मैं तो उद्योग शून्य हो गयी हूँ । (रोती है)

राधिका—(संस्कृत में)

यदि कृष्ण निर्दय है तो मुझ में तुम्हारा अपराध कैसा ? अतः बेकार मत रोओ । मेरा अन्त्येष्टि किया करो । तमालवृक्ष की शाखा में लटको भुजारूपी लता वाला मेरा शरीर इस वृन्दावन में जिस प्रकार सदा अविचल (स्थिर) होकर रहे । (वैसा करो) (अर्थात् प्राणत्याग के बाद मेरा अन्त्येष्टि कर्म साधारण जन की तरह न होकर विलक्षण ही हो ।)

कृष्ण—(आँसू के साथ) मित्र, प्रेम की अविचलता देख ली ।

विमर्श—मेरे वियोग में प्राणों का उत्सर्ग कर देने पर भी मेरे समान कृष्ण वर्ण के तमालवृक्ष से संयोग प्राप्त करने की राधा की अभिलाषा है । यही प्रेमाधिक्य का उदाहरण है ।

राधिका—(मन ही मन) कोई गाढ़ (तीव्र) उत्कंठा मुझे जल्दी करा रही है । (प्रकट) सखि, सूर्य की पूजा करके कुछ प्रार्थना करना चाहती हूँ । इसलिए मैं जब तक स्नान करके लौटूँ, तब तक तुम यहाँ फूल चुनो । (यह कह कर तीर्थ की ओर दो-तीन कदम चल कर फिर मन ही मन) अरे, त्रिभुवन-

भिमुखं द्वित्राणि पदानि गत्वा पुनरागमगतम् ।) हन्त, सो तिल्लोकमोहणो मुहचन्दो पुणो मए ण दिट्ठो । (इति सोत्कण्ठं निवृत्य प्रकाशम् ।) हला, पसीद पसीद । दंसेहि तं पडिच्छन्दअम् । (त्वरयति मां कापि घनोत्कण्ठा । हला, सूर्यमर्चयित्वा किमप्यभ्यर्थयितुकामास्मि । तद्यावत्स्नानं कृत्वा निवृत्ता भवेयं तावत्त्वमत्र पुष्पमवचिनु । हन्त, स त्रैलोक्यमोहनो मुखचन्द्रः पुनर्मया न दृष्टः । हला, प्रसीद प्रसीद । दर्शय एनं प्रतिच्छन्दम् ।)

विशाखा—सहि, णत्थि एत्थ चित्तफलअम् । (सखि, नास्त्यत्र चित्रफलकम् ।)

राधिका—(सव्यथम् ।) तदो पणिहाणेण णं पच्चक्खीकरिस्सम् । (इति ध्यानं नाट्यति ।) (ततः प्रणिधानेनैवं प्रत्यक्षीकरिष्यामि ।)

कृष्णः—सखे, पीतमपीतपूर्वमुन्मादकं श्रोत्रमाध्वीकम् । तदग्रतो गच्छावः ।

(इत्युभौ तथा कुरुतः ।)

विशाखा—(विलोक्य सानन्दं ससंभ्रमम् ।) सहि, दिट्ठिआ तुज्झ सुहज्झाणेण फलिदम् । ता झत्ति उग्घाडेहि लोअणम् । (सखि, दिष्ट्या तव सुखध्यानेन फलितम् । तज्झटिति उद्घाटय लोचनम् ।)

को मोहने वाले उस मुख-चन्द्र को मैंने फिर नहीं देखा । (प्रकट) सखि, प्रसन्न हो प्रसन्न हो । इस चित्र को दिखाओ ।

विशाखा—सखि, यहाँ पर चित्रफलक नहीं है ।

राधिका—(दुःखपूर्वक) तो ध्यान के द्वारा ही इसका साक्षात्कार करूँगी । (यह कह कर ध्यान करती है)

कृष्ण—मित्र, पहले जिसका पान न किया हो ऐसे मधु का कानों द्वारा पान कर लिया । (अर्थात् राधा के स्नेहपूर्ण वचनों को सुन लिया । अतः आगे चलें ।

(इस प्रकार दोनों आगे बढ़ते हैं)

विशाखा—(देखकर आनन्द और उत्कंठा से) सखि, भाग्य से तुम्हारा ध्यान सफल हुआ अतः शीघ्र अपने नेत्र, को खोलो ।

(राधिका दृशं दरोन्मील्य चमत्कारं नाटयति ।)

विशाखा—(संस्कृतेन ।)

यदर्थं संकीर्णे पतसि हतकन्दर्पकदने
मृदुं वा दुर्वारे ज्वलयसि तनुं प्रेमदहने ।
अखण्डेनापीडं सखि नवशिखण्डेन कलयन्
विलासी सोऽयं ते स्फुरति पुरतो जीवितपतिः ॥ ४८ ॥

राधिका—अम्महे सिविणस्स माहुरी । (अहो स्वप्नस्य माधुरी ।)

विशाखा—अविसद्धे, एसो दे अपुव्वो सिविणो जो णिद्दाए विणा वि णिप्पण्णो । (अविश्रब्धे, एष तेऽपूर्वः स्वप्नो यो निद्रया विनापि निष्पन्नः ।)

कृष्णः—

असौ दृग्भङ्गीभिः कुसुमशरमङ्गीकृतशरं
सृजन्ती दन्तीन्द्रक्रमणकमनीयालसगतिः ।
अदूरे रम्भोरूरिह वदनबिम्बस्य सुषमा
समारम्भादम्भोरुहमधुरिमाणं दमयति ॥ ४९ ॥

(राधिका आँख को थोड़ा खोल कर चमत्कृत (चकित) होती है ।

विशाखा—(संस्कृत में)

सखि, जिसके लिए दुष्ट कामदेव के व्यापक विनाश में गिरती हो अथवा अपने कोमल शरीर को कठिन प्रेम की आग में जला रही हो । वह विलासी प्राणनाथ समस्त नूतन मयूर-पुच्छ का मुकुट पहने तुम्हारे समक्ष प्रकट हो रहा है ॥ ४८ ॥

राधिका—स्वप्न की मधुरिमा विलक्षण है ।

विशाखा—अविश्वस्ते, तुम्हारा यह स्वप्न विलक्षण है जो निद्रा के बिना भी निष्पन्न हो गया है ।

कृष्ण—नेत्र की भंगिमाओं से बाण लिए कामदेव की सृष्टि करती, गजेन्द्र की चाल से भी अधिक सुन्दर चालवाली यह सुजघना (राधा) समीप में है ।

राधिका—(कृष्णे दृगन्तं नर्तयन्ती स्वगतम् ।) साहु रे हिअअ, साहु । दिट्ठिआ मुहुत्तं विलम्बिदम् । (साधु रे हृदय, साधु । दिष्ट्या मुहूर्तं विलम्बितम् ।)

कृष्णः—(स्मित्वा ।) धूर्ते विशाखिके, समन्तान्मृग्यमाणा दिष्ट्या त्वमत्र दृष्टासि । यदद्य भवत्या रूपसादृश्यादपाकिमगुञ्जाहारेण मां प्रतार्य दुर्लभा मे रङ्गणमालिकापनीता ।

मधुमङ्गलः—भो, णं राहीए कण्ठादो दीसन्तीं अप्पणो रङ्गणमालिअं सअं जेव्व आअड्डिअ गेण्ह । (भो, एनां राधायाः कण्ठतो दृश्यमानामात्मनो रङ्गणमालिकां स्वयमेवाकृष्य गृहाण ।)

कृष्णः—सखे, जानतापि भवता किमिदमन्याय्यमुपन्यस्तम् । न खलु स्वप्नेऽपि मया कामिनीस्पर्शः स्मर्यते ।

राधिका—(स्वगतम्) इमस्स परिहासो वि एसो संकिदाए मम सच्चो पडिभादि । (एतस्य परिहासोऽप्येष शङ्किताया मम सत्यः प्रतिभाति ।)

इसके मुख-बिम्ब की सुन्दरता कमल की मधुरता (मनोहरता) को भी तिरस्कृत कर रही है ॥ ४९ ॥

राधिका—(कृष्ण पर कटाक्ष डालती हुई मन ही मन) हे हृदय तुम धन्य हो, सौभाग्य से तुम एक क्षण विलम्ब किया ।

कृष्ण—(मुस्कुराकर) धूर्ते विशाखे, सभी ओर से खोजी जानेवाली तुम भाग्य से यहाँ दिखायी पड़ी । क्योंकि आज तुमने रूप की समता के कारण (एक समान होने के कारण) निकृष्ट (निम्न कोटि के) गुञ्जाहार से मुझको ठग कर मेरी दुर्लभ रङ्गण माला ले ली है ।

मधुमङ्गल—अरे, इस रङ्गणमाला को राधा के गले से स्वयं ही खींच कर ले लो ।

कृष्ण—मित्र, जानते हुए भी तुमने यह अनुचित प्रस्ताव क्यों किया ? स्वप्न में भी स्त्री के स्पर्श का स्मरण मुझे नहीं हो रहा है ।

राधिका—(अपने आप) इसका यह मजाक भी शंकित मुझको सच्चा लग रहा है ।

विशाखा—(विहस्य) अयि वराङ्गणातरङ्गिणीणं महासाअर, चिट्ठ चिट्ठ। दाणि वि इमाइं दीसन्ति तुज्झ अङ्गेसु ताणं चिण्हाइं। (इति संस्कृतेन)। (अयि वराङ्गनातरङ्गिणीनां महासागर, तिष्ठ तिष्ठ। इदानीमपीमानि दृश्यन्ते तव अङ्गेषु तासां चिह्नानि।)

आकृष्टानि कटाक्षभङ्गिभिरलं गोपाङ्गनानां त्वया
रक्तान्यत्र मनांसि यानि निमिषोन्मुक्तानि नेत्राण्यपि।
तान्येतानि नवाम्बुदाञ्जनतनो गुञ्जावलीनां छलात्
पिच्छानां च सदा प्रसाधनधिया संधारयन्नन्दसि॥ ५०॥

कृष्णः—(सहर्षमात्मगतम् ।)

प्रमदरसतरङ्गस्मेरगण्डस्थलायाः
स्मरधनुरनुबन्धिभ्रूलतालास्यभाजः।

विशाखा—(हँसकर) हे श्रेष्ठ ललनारूपी लहरियों के महासमुद्र, ठहरो, ठहरो। अभी भी तुम्हारे अंगों में उनके ये चिह्न (निशान) दिखायी दे रहे हैं। (संस्कृत में) नवीन काजल के समान शरीरवाले कृष्ण, यहाँ पर तुमने अपने कटाक्ष की भंगिमाओं से गोपियों के जिन अनुरक्त चित्तों और अपलक नेत्रों को पर्याप्त रूप से खींच लिया है इन-इन चित्तों और नेत्रों को ही तुम गुञ्जावली और मोरपंख के छल से अपने सजाने की इच्छा से धारण किए सुशोभित हो रहे हो॥ ५०॥

विमर्श—तुमने गुञ्जावली (माला) और मोर-पंख (मुकुट) को आभूषण के रूप में धारण किया है। ये दोनों अलंकार तुम्हारे कटाक्ष द्वारा आकृष्ट गोपियों के मन और नेत्र हैं। इन्हीं को धारण करने से तुम्हारी शोभा बढ़ रही है। ये दोनों ही तुम्हारे अंगों में ललना-सम्पर्क के चिह्न रूप में विराजमान हैं। अतः स्त्री-स्पर्श नहीं करने की तुम्हारी बात थोथी दलील है।

कृष्ण—(प्रसन्नतापूर्वक अपने आप)

धतूरे के रस की लहर से अथवा प्रसन्नतारूपी रस की लहर से प्रफुल्लित कपोलस्थलवाली, कामदेव के धनुष का अनुकरण करती भ्रूलता के नर्तन से

मदकलचलभृङ्गीभ्रान्तिभङ्गीं दधानो
हृदयमिदमदाङ्क्षीत् पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षः ॥ ५१ ॥

(नेपथ्ये ।)

णत्तिणि विसाहे । (नप्त्रि विशाखे ।)

कृष्णः—कथमकाण्डे जरापाण्डुरेयं जटिला ।

(प्रविश्य ।)

जटिला—(पुरो दृष्ट्वा स्वगतम् ।) कहं एत्थ कण्हो । (प्रकाशम् ।) विसाहे, किंति इमाइं धूअगन्धरत्तचन्दनाइं तुए विसुमरिदाइं । (कथमत्र कृष्णः । विशाखे, किमित्येतानि धूपगन्धरक्तचन्दनानि त्वया विस्मृतानि ।)

कृष्णः—(स्वगतम् ।)

चन्द्रिकां चन्द्रलेखायाश्चकोरे पातुमुद्यते ।
पिधानं विदधे हन्त शरदम्भोधरावली ॥ ५२ ॥

युक्त और प्रशस्त बरौनीयुक्त आँखोंवाली इस (राधा) के मतवाले तथा चंचल भौंरों के भ्रम की भंगिमा को धारण करनेवाले कटाक्ष ने मेरे इस हृदय को विद्ध कर दिया है। (अर्थात् राधा के कटाक्ष-बाण मेरे हृदय को छेद दिया है .) ॥ ५१ ॥

(नेपथ्य में)

नतिनी विशाखे,

कृष्ण—वृद्धावस्था के कारण श्वेतवर्णा यह जटिला बेमौके कैसे आयी !

(प्रवेश करके)

जटिला—(सामने देख कर अपने आप) यहाँ कृष्ण कैसे ? (प्रकट) विशाखे, क्या इन धूप, गन्ध और रक्त चन्दनों को तुम भूल गयी ?

कृष्ण—(मन ही मन) चन्द्रमा की चाँदनी को पीने के लिए चकोर के उद्यत होने पर शरत्कालीन मेघसमूह ने बाधा डाल दी ॥ ५२ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में समासोक्ति द्वारा राधा-कृष्ण वृत्तान्त व्यञ्जित हो रहा है । यथा—

(प्रकाशम् ।) मातुर्मातुलानि, प्रणमामि ।

जटिला—मोहण, वल्लअकिशोरीउले अवक्कदिट्ठी होहि । (मोहन, वल्लवकिशोरीकुले अवक्रदृष्टिर्भव ।)

मधुमङ्गलः—(विहस्य ।) भो दधीचिहड्डकक्कसे, एसो सव्वदो उदारदिट्ठी च्चेअ मज्झ पिअवअस्सो । तुमं क्खु केअरच्छी । ता अप्पाणं आसंसेहि । (भो दधीच्यस्थिकर्कशे, एष सर्वदोदारदृष्टिरेव मम प्रियवयस्यः । त्वं खलु केकराक्षी । तदा आत्मानमाशिषय ।)

जटिला—भो किशोरीभुअङ्ग, कीस तुमं आअदोसि । (भो किशोरीभुजङ्ग, कस्मात्त्वमागतोऽसि ।)

कृष्णः—आर्ये, लोकोत्तरानुरागचमत्कारिणीयं सुजवालक्ष्मीः कं वा नाकर्षति ।

जटिला—(स्वगतम् ।) णूणं भअवदीए विज्जापहावसंभाविदा

अभी श्रीकृष्ण राधा के मुख-चन्द्र का दर्शन करने जा ही रहे थे कि जटिला बाधक बन कर आ गयी । इस तथ्य का संकेत कृष्ण ने चन्द्रिका के पान के लिए उद्यत चकोर के कार्य में बाधक-रूप में उपस्थित शारद मेघ से दिया है । शरत्कालीन मेघ शुभ्र होता है । जटिला भी वार्धक्य के कारण श्वेत होने से शारद मेघ के स्थान में वर्णित है । राधिका मुख-चाँदनी और कृष्ण चकोर के स्थान पर वर्णित हैं । राधा-कृष्ण-वृत्तान्त व्यंग्य है ।

(प्रकट) माता की मामी, प्रणाम करता हूँ ।

जटिला—मोहन, गोप-युवतियों के समूह में सरल दृष्टिवाला बनो ।

मधुमङ्गल—(हँसकर) दधीचि की हड्डी के समान कठोर जटिले, मेरा यह मित्र सदा उदार दृष्टिवाला ही है । तुम्हीं ऐंचातान हो अतः अपने को ही आशीर्वाद दो । (अर्थात् तुम्हारी आँख ही कौए की तरह टेढ़ी है । अपने को आशीर्वाद देकर आँख सीधी कर लो ।)

जटिला—हे युवतियों में कुटिल, तुम क्यों आए हो ?

कृष्ण—आर्ये, अलौकिक प्रेम को उत्पन्न करने वाली सुन्दर अड़हुल के फूलों की यह शोभा किसको आकर्षित नहीं करती है ।

जटिला—(अपने आप) निश्चय ही भगवती की योगविद्या के प्रभाव से

इमस्स एत्थ उवसत्ती। (प्रकाशम्।) मोहण, झत्ति इदो गच्छेहि। (नूनं भगवत्या विद्याप्रभावसंभाविता अस्यात्रोपसत्तिः मोहन, झटिति इतो गच्छ।)

कृष्णः—अयि जल्पाकि वृद्धे, किमित्याकुलासि। स्वच्छन्दतो गच्छेयम्।

जटिला—(कुटिलं विलोक्य। संस्कृतेन।)

निर्धौतानां निखिलधरणीमाधुरीणां धुरीणा
कल्याणी मे निवसति वधूः पश्य पार्श्वे नवोढा।
अन्तर्गोष्ठे चटुल नटयन्नत्र नेत्रत्रिभागं
निःशङ्कस्त्वं भ्रमसि भविता नाकुलत्वं कुतो मे ॥ ५३ ॥

कृष्णः—मृषाशङ्किनि वृद्धे, मा प्रलापं कृथाः। यावदेतां ते वधूमाकर्णयं तावन्मान्यां भावयामि।

जटिला—विसाहे, किं ति एत्तिअ विलम्बिदासि। (विशाखे, किमित्येतावद्विलम्बितासि।)

यहाँ पर इसकी उपस्थिति हुई है। (प्रकट) मोहन, यहाँ से शीघ्र चले जाओ।

कृष्ण—अरे बहुत बोलने वाली बूढ़ी, व्याकुल क्यों हो? स्वतंत्रतापूर्वक चलें।

जटिला—(तिरछी देखकर। संस्कृत में)

समस्त भूमण्डल की सारभूत मधुरिमाओं की अग्रगामिनी, नवोढा और मेरी कल्याणी पुत्रवधू यहाँ निवास करती है। देखो, हे चञ्चल, तुम यहाँ पर गोष्ठ के भीतर नेत्र के तीन भागों को नचाते हुए निःशंक होकर घूमते हो। यह मेरे लिए अनुचित क्यों नहीं होगा? (मेरी बहू राधा के समीप तुम्हारा चक्कर काटना मेरी कुलमर्यादा के लिए हानिकर होगा।) ॥ ५३ ॥

कृष्ण—झूठी शंका करने वाली वृद्धे, बेकार मत बको। जब से मैंने इसको तुम्हारी वधू (के रूप में) सुना है, तब से इसको मान्या मानता हूँ। (मा अन्या अर्थात् अपनी ही समझता हूँ)

जटिला—विशाखे, तुमने इतनी देर क्यों कर दी?

विशाखा—(स्मित्वा ।) अज्जे, णं दुल्ललिदं कुरङ्गं पेक्खन्ती विम्हिदम्हि । (इति सहष्टिक्षेपम् ।) (आर्ये, एतं दुर्ललितं कुरङ्गं पश्यन्ती विस्मितास्मि ।)

अकरुण मुञ्चिअ चङ्गं कुरङ्गपेम्मेण संगदं हरिणीम् ।
विहलं कुद्दणचडुलो तुमं वणादो वणं भमसि ॥ ५४ ॥

(अकरुण त्यक्त्वा चङ्गं कुरङ्ग प्रेम्णा संगतां हरिणीम् ।
विफलं कूर्दनचटुलस्त्वं वनाद्वनं भ्रमसि ॥)

जटिला—अइ अत्थाणदुग्गहे, मुञ्च कुरङ्गकोदूहलम् । (अयि अस्थानदुर्ग्रहे, मुञ्च कुरङ्गकौतूहलम् ।)

मधुमङ्गलः—पिअवअस्स, पेक्ख । एसो सतिण्णो वि कीरजुआणो णं महुरं दाडिमीं ण पडिपज्जइ । (प्रियवयस्य, पश्य । एष सतृष्णोऽपि कीरयुवा इमां मधुरां दाडिमीं न प्रतिपद्यते ।)

कृष्णः—(स्मित्वा ।)

हृदि ताडितोऽपि दाडिमि सुमनोरागेण ते रुचिं वहता ।

विशाखा—(हँस कर) आर्ये, इस दुर्ललित हरिण को देखती हुई विस्मित हूँ ।

कृष्ण पक्ष में—निन्दित काले रंग वाले कृष्ण को देख कर अचरज में पड़ी हूँ ।

(आँख के इशारे से) निर्मम हरिण, प्रेम से आपूर्ण मृगी को छोड़ कर कूदने में चपल तुम व्यर्थ ही एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमते हो (अर्थात् राधा का तुम पर अगाध स्नेह है । उसकी उपेक्षा करके तुम्हारा इधर-उधर भटकना ठीक नहीं है ।) ॥ ५४ ॥

जटिला—अरी बेमौके हठ करनेवाली, मृग के कुतूहल को छोड़ो ।

मधुमङ्गल—प्रिय मित्र, देखो, यह प्यासा भी शुक-युवा इस मधुर अनारफल को नहीं पा रहा है ।

कृष्ण—(मुस्कुरा कर) हे दाडिमि, तुम्हारी कान्ति को धारण करनेवाले,

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति ललितानुगम्यमाना पौर्णमासी ।)

पौर्णमासी—वत्से, नूनं मत्तस्त्रपमाणो नाभिनन्दति नन्दकुमारस्ते सखीसंगमम् ।

ललिता—भअवदि, दुव्वोहं क्खु लोओत्तराणां चित्तं ण झत्ति विअसदि । (भगवति, दुर्बोधं खलु लोकोत्तराणां चित्तं न झटिति विकसति ।)

पौर्णमासी—(पुरोऽवलोक्य ।) वत्से, पश्य कदम्बवाटिकायां मधुमङ्गलेन सार्धं वर्धते मधुमर्दनः । (पुनर्निरूप्य ।)

परामृष्टाङ्गुष्ठत्रयमसितरत्नैरुभयतो
वहन्ती संकीर्णौ मणिभिररुणैस्तत्परिसरौ ।
तयोर्मध्ये हीरोज्ज्वलविमलजाम्बूनदमयी
करे कल्याणीयं विहरति हरेः केलिमुरली ॥ १ ॥

(उसके बाद ललिता से अनुगम्यमाना पौर्णमासी प्रवेश करती है ।)

पौर्णमासी—बेटी, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण मुझसे लजाता हुआ तुम्हारी सखी के सम्पर्क का स्वागत नहीं करती है ।

ललिता—देवि, अलौकिक पुरुषों का अगम्य मन शीघ्र प्रकाश में नहीं आता ।

पौर्णमासी—(सामने देख कर) बेटी ! देखो, कदम्ब के उद्यान में मधुमंगल के साथ सकुशल मधुसूदन (आनन्द से) बढ़ रहे हैं । (आनन्दित हो रहे हैं) (फिर से देखकर) दोनों ओर (शिरोभाग तथा पुच्छ भाग में) तीन अंगुष्ठ परिमित स्थान को व्याप्त कर इन्द्रनीलमणियों से खचित, लाल मणियों से व्याप्त दोनों प्रान्त भागों (किनारों) को धारण करती हुई और उन दोनों के बीच हीरों से उज्ज्वल और विमल स्वर्ण से युक्त यह शुभदायिनी क्रीडावंशी कृष्ण के हाथ में विहार कर रही है ॥ १ ॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः कृष्णः ।)

कृष्णः—(सानुतापम् ।)

त्रपया नितरां पराङ्मुखी सहसा स्मेरसखीधृताञ्चला ।
गमिताऽद्य हठेन राधिका न कथं हन्त मया भुजान्तरम् ॥२॥

(निःश्वस्य ।) सखे मधुमङ्गल, खञ्जरीटदृशः सा विलासमञ्जरी चोरयति मे चित्तचञ्चरीकम् । (इत्यौत्सुक्यं नाटयन् ।)

विमर्श—मुरली ऊपरी हिस्से से नीचे तीन अंगुल पर्यन्त इन्द्रनीलमणियों से तथा निचले हिस्से से ऊपर तीन अंगुल पर्यन्त लालमणियों (पद्मरागमणियों) से जड़ी हुई है। उन दोनों के बीच का भाग हीरों की आभा से स्वच्छ कनकमय है। नील तथा अरुणमणियों और स्वच्छ हीरों से खचित स्वर्णनिर्मित मुरली कृष्ण के हाथ को सुशोभित कर रही है।

(उसके बाद मुरली लिए कृष्ण प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—(दुःखपूर्वक)

सहसा लज्जा से अत्यन्त विमुख, मुस्कुराती हुई सखी के द्वारा पकड़ी गयी आँचल वाली राधा आज मेरे द्वारा भुजाओं में क्यों नहीं लायी गयी ? ॥ २ ॥

विमर्श—"मधुमङ्गलने मुझ को परामर्श दिया था कि राधा को खींच कर उसके गले से माला ले लो। उसी समय हमें पीछे से उसके निकट जाना चाहिए मुझको सहसा अपने समीप देखकर वह लाज से विमुख हो जाती। तब उसकी सखियाँ उसका आँचल पकड़ कर उसे मेरे पास पहुँचा देतीं। और इस प्रकार हम दोनों का संगम सुलभ हो जाता" कृष्ण के मनोगत अनुताप का यही स्वरूप है।

(साँस लेकर, मित्र मधुमङ्गल, खञ्जन के समान नेत्र वाली राधा की वह विलासरूपी मञ्जरी मेरे मनरूपी भौंरे को चुरा रही है। अर्थात् मेरा मन राधा के विलास पर लुट गया है। (यह कह कर उत्सुकता दिखाते हुए)

छिन्नः प्रियो मणिसरः सखि मौक्तिकानि
वृत्तान्यहं विचिनुयामिति कैतवेन ।
मुग्धं विवृत्य मयि हन्त दृगन्तभङ्गीं
राधा गुरोरपि पुरः प्रणयाद् व्यतानीत् ॥ ३ ॥

पौर्णमासी—(दूरत एव कृष्णं निर्वर्ण्य । साशङ्कम् ।)

अक्ष्णोर्द्वन्द्वं प्रसरति दरोद्घूर्णतारं मुरारेः
श्वासाः क्लृप्तां किल विचकिलैर्मालिकां म्लापयन्ति ।
केयं धन्या वसति रमणी गोकुले क्षिप्रमेतां
नीतस्तीव्रामयमपि यया कामपि ध्याननिष्ठाम् ॥ ४ ॥

'हे सखि मणिमाला टूट गयी। मुक्ताफल बिखर गये। मैं उन्हें चुन लूँ इस बहाने मुग्धतापूर्वक घूमकर राधाने गुरुजनों के सम्मुख भी मेरे ऊपर प्रेम से कटाक्षपात किया था ॥ ३ ॥

विमर्श—कृष्ण को पीछे घूम कर देखने के लिए माला टूटने का अच्छा बहाना राधा ने बनाया है। कवि की इस उक्ति में कालिदास के भाव की छाया दृष्टिगोचर होती है। शकुन्तला ने भी दुष्यन्त को देखने के लिए काँटों में वल्कल उलझने का बहाना किया था। प्रियतम को देखने का यह व्याज भारतीय प्रणय-क्षेत्र का अनूठा निदर्शन है।

पौर्णमासी—(दूर से ही कृष्ण को देखकर सशंक भाव से)

श्री कृष्ण की कुछ-कुछ घूमते हुए तारों से युक्त दोनों आँखें फैल रही हैं। श्वास मल्लिका (चमेली) के फूलों से बनी माला को मलिन कर रहे हैं। (साँस की गर्मी से चमेली की माला कुम्हला गयी है) गोकुल में यह कौन धन्य ललना है जिसने इसको (कृष्ण को) भी शीघ्र किसी अनिर्वचनीय ध्यान की चरम दशा में पहुँचाया है। अर्थात् वह कौन सौभाग्यवती रमणी है जिसका कृष्ण निरन्तर ध्यान करता रहता है ? ॥ ४ ॥

अथवा कृतं संदेहेन। वत्सा, राधिकैव खल्वत्र कारणम्।

कृष्णः—(पौर्णमासीं पश्यन्नुपसृत्य।) भगवति, प्रणमामि।

पौर्णमासी—नागर, गोपीस्तनतटीष्वलंपटीभव।

कृष्णः—(किंचिद्विहस्य।) कृतं पिष्टपेषिणीभिराशीर्भिर्यदहमेव गोपीतिप्रसिद्धां श्यामां वल्लीमपि न पाणिपल्लवेन स्पृशामि।

मधुमङ्गलः—(विहस्य।) भोः, किं अम्हाणं सामए, गोरी ज्जेव्व मग्गिज्जइ। (भोः, किमस्माकं श्यामया, गौर्येव मृग्यते।)

पौर्णमासी—(सनर्मस्मितम्।)

गोपेश्वरस्य तनयोऽसि नयोपपन्नः
ख्यातस्तथा व्रजकुले भुजयोर्बलेन।
लीलाशतैस्तदपि किं कुलयोपितस्त्व-

अथवा सन्देह करने की आवश्यकता नहीं। बेटी राधा ही यहाँ पर कारण है।

कृष्ण—(पौर्णमासी को देखते हुए समीप आकर) देवि, प्रणाम करता हूँ।

पौर्णमासी—नागर, गोपियों के स्तनतटों में लम्पट न बनो।

पक्ष में—अलम्—अत्यधिक, पटीभव—चतुर बनो (गोपियों के स्तनतटों में चतुरता से विहार करो)

कृष्ण—(हँसकर) एक ही प्रकार के आशीर्वादों की आवृत्ति पर्याप्त है। अर्थात् आशीर्वाद दुहराने की जरूरत नहीं। क्योंकि मैं 'गोपी' इस नाम से प्रसिद्ध श्याम लता को भी अपने कर-पल्लव से स्पर्श नहीं करता हूँ।

मधुमंगल—(हँसकर) अरे, हम लोगों को श्यामा से क्या मतलब गोरी ही चाहिए।

पौर्णमासी—(मधुर मुस्कुराहट के साथ)

हे माधव, तुम गोपों के स्वामी नन्द के नीति-सम्पन्न पुत्र हो और गोकुल में अपनी दोनों भुजाओं के बल से विख्यात हो। फिर भी सैकड़ों लीलाओं से कुलाङ्गना राधा के उन्माद (मादकता) की तुम क्यों हो रहे हो? अर्थात्

मुन्मादमुद्वहसि माधव राधिकायाः ॥ ५ ॥

मधुमङ्गलः—अइ विवरीदवादिणि वुड्ढिए, चिट्ठ चिट्ठ। (अयि विपरीतवादिनि वृद्धे, तिष्ठ तिष्ठ।

तुज्झ राहिआए ज्जेव्व एसो अम्ह पिअवअस्सो उम्मादिओ।
जं सेहरसिङ्गवेत्ताइ दाणिं कहिं विभट्टाइं ति ण जाणादि ॥६॥

(तव राधिकयैव एषोऽस्मत्प्रियवयस्य उन्मादितः।
यस्माच्छेखरशृङ्गवेत्राणीदानीं कस्मिन् विभ्रष्टानीति न जानाति ॥)

कृष्णः—(सलज्जम्।) आर्ये, वाचाटोऽयं बटुर्मृषा जल्पति। किंतु निश्चितं ते व्याहरामि। न तासु मच्चित्तरागस्त्वद्गोपीषु। तदत्र तत्त्वतः पृच्छ्यतामयम्।

मधुमङ्गलः—अज्जे, सच्चं सच्चम्। अम्हपिअवअस्सहिअअस्स अज्जवि राओ तुम्हगोइआणं अङ्गेसु ण मए दिट्ठोत्थि। पत्थुद ताणं अङ्गराओ ज्जेव्व इमस्स हिअये दीसइ। (आर्ये, सत्यं सत्यम्। अस्मत्प्रियवयस्यहृदयस्य अद्यापि रागो युष्मद्गोपिकानामङ्गेषु न मया दृष्टोऽस्ति। प्रत्युत तासामङ्गराग एवास्य हृदये दृश्यते।)

कुलीन, नीतिज्ञ और वीर होकर भी राधा के प्रेम में उन्मत्त क्यों हो रहे हो ! ॥ ५ ॥

मधुमङ्गल—अरी उल्टा बोलने वाली बूढ़ी ठहरो ठहरो।

तुम्हारी राधा ने ही मेरे इस प्रिय मित्र को उन्मत्त कर दिया है जिससे शिर के मुकुट, शृङ्गी और बेंत की लकुटी इस समय कहाँ खो गयी, यह भी नहीं जानता है ॥ ६ ॥

कृष्ण—(लज्जापूर्वक) आर्ये, यह बकवादी बटुक झूठ बोलता है। परन्तु मैं सच कहता हूँ। मेरा मानसिक प्रेम आपकी उन गोपियों में नहीं है। अतः इसी से सच्ची बात पूछ लीजिए।

मधुमङ्गल—आर्ये, सच है। मेरे प्रिय मित्र के हृदय का राग अभी भी आपकी गोपियों के अंगों में मैंने नहीं देखा है। बल्कि उन्हीं का अङ्गराग इसके हृदय में दिखायी पड़ रहा है।

कृष्णः—(सप्रणयरोषम् ।) धिङ्मूर्ख, विश्रम्भादादृतोऽपि जिम्हतां न जहासि ।

पौर्णमासी—सत्यमाह बटुः । तथाहि ।

कामं सद्गुणमण्डलाश्रयतया तन्वन्महिष्ठां रुचिं
वैचित्रीभरभाक्सदा शुभदशाश्रेणीश्रियामास्पदम् ।
वंशीहुंकृतिलीलया शिथिलतामेणीदृशां नीयते
वासः कंसनिषूदनाद्य भवता देहेषु गेहेष्वपि ॥ ७ ॥

मधुमङ्गलः—अज्जे, किं वि जाणासि जं वंसीहुंकिदिलीलाएत्ति भणासि । दिट्ठं तहिं दिअहे कण्णआणं तीरट्ठिदाइं अम्बराइं अप्पणो हत्थेण उक्खिविअ इमिणा क्खन्धे णिक्खित्ताइं । (आर्ये, किमपि न जानासि यद्वंशीहुंकृतिलीला इति भणसि । दृष्टं तस्मिन्दिवसे कन्यकानां तीरस्थितान्यम्बराण्यात्मनो हस्तेनोत्क्षिप्यानेन स्कन्धे निक्षिप्तानि ।)

कृष्णः—(सभ्रूभङ्गं बटुमावार्य ।) आर्ये, हुंकारादपि तथाभावाद्भव-

---

कृष्ण—(प्रेममिश्रित क्रोध से) अरे मूढ़, विश्वास के कारण आदर पाकर भी कुटिलता नहीं छोड़ते हो ।

पौर्णमासी—बटुक ठीक कहता है । क्योंकि—

हे कंसविनाशक, सद्गुण-समूह के आश्रय होने से विशिष्ट कांति को फैलाते हुए, विचित्रता के भार से युक्त, कल्याणदायक दशा समूह की पंक्ति के उचित स्थान (वस्त्र तथा निवास-स्थान) वंशी के हुंकार की क्रीडा से मृगनयनी गोपियों के शरीर और घरों में आप आज वस्त्र और निवास को शिथिल बना रहे हैं । (अर्थात् आपकी मुरली की मधुर तान सुनकर सभी गोपियाँ अपने वस्त्रों तक की चिन्ता न करके घरसे निकल जाना चाहती हैं) ॥ ७ ॥

मधुमङ्गल—आर्ये, कुछ भी नहीं जानती हो अतः 'वंशी के हुंकार की लीला' ऐसा कहती हो । देखा, उस दिन यमुनातट पर रखे हुए गोपियों के वस्त्रों को अपने हाथ से खींच कर इसने वृक्ष की डाल पर रख दिया था ।

कृष्ण—(भ्रूभंगिमा से बटुक को मना करके) आर्ये, उस प्रकार के हुंकार

द्गोपीनामभिव्यक्तः साध्वीभावप्रभावः।

ललिता—(संस्कृतेन ।)

केनापि धूर्तपतिना खलु शिक्षितोऽसि
मन्त्रं वशीकरणकारणमौषधं वा ।
पुण्योज्ज्वलान्यखिलगोपविलासिनीनां
येन त्वया गृहसुखानि विलुण्ठितानि ॥ ८ ॥

मधुमङ्गलः—सच्चं कहेदि ललिदा। अण्णधा मन्तादिमन्तरेण पव्वदुत्तुङ्गा महादाणआ णविन्दीवरादोवि सोम्मसीअलपइदिणा कधं इमिणा संहरिज्जन्ति। (सत्यं कथयति ललिता। अन्यथा मन्त्रादिमन्तरेण पर्वतोत्तुङ्गा महादानवा नवेन्दीवरादपि सौम्यशीतलप्रकृत्या कथमनेन संह्रियन्ते।)

ललिता—अज्ज, जस्स सुमरणं वि तथा संतावणं तं एदं अप्पणो वअस्सं मा क्खु सीअलं भण। (आर्य, यस्य स्मरणमपि तथा संतापनं तमेतमात्मनो वयस्यं मा खलु शीतलं भण।)

मधुमङ्गलः—भो वअस्स, पइदिसीअलो वि तुमं गोइआहिं उण्हो त्ति

से भी आपकी गोपियों के सतीभाव के प्रभाव की अभिव्यक्ति हो गयी।

ललिता—(संस्कृत में)

किसी धूर्तराज से तुमने वशीकरण के कारणभूत मंत्र अथवा औषधि की शिक्षा पायी है जिससे तुमने समस्त गोपललनाओं के पुण्य से उज्ज्वल उनके गृह-सुखों को लूट लिया है (तुम्हारी वशीकरण विद्या से अभिभूत होकर गोपियाँ घरों में चैन नहीं पा रही हैं) ॥ ८ ॥

मधुमंगल—ललिता सच कहती है। नहीं तो मंत्रादि के बिना पर्वत के समान ऊँचे महाराक्षसों को नवीन कमल से भी सौम्य और शीतल स्वभाव वाला यह (कृष्ण) किस प्रकार पराजित करता है।

ललिता—आर्य, जिसका स्मरण भी इस प्रकार का कष्टदायक है, ऐसे अपने इस मित्र को शीतल मत कहो।

मधुमंगल—हे मित्र, स्वभाव से शीतल भी तुमको गोपियाँ उष्ण (गर्म)

भणिज्जसि। ता प्फंसिअ जाणिस्सम्। (इति कृष्णवक्षसि हस्तं न्यस्य ससंभ्रमम्।) अहो, सच्चं ज्जेव्व कहेदि ललिदा। (क्षणं विमृश्य।) ललिदे, ललिदे, विण्णादं विण्णादम्। तुअ राआ च्चेअ णूणं उण्णा जाए हिअअवट्टिणीए चन्दकोडिसीअलो वि एस उण्णीकिदो। (भो वयस्य, प्रकृतिशीतलोऽपि त्वं गोपिकाभिरुष्ण इति भण्यसे। तत्स्पृष्ट्वा ज्ञास्यामि। अहो, सत्यमेव कथयति ललिता। ललिते विज्ञातं विज्ञातम्। तव राधिकैव नूनमुष्णा यया हृदयवर्तिन्या चन्द्रकोटिशीतलोऽप्येष उष्णीकृतः।)

ललिता—अज्ज, एत्थ राअवट्टपत्थरहिअए ताए दुरन्तपेम्मसोकुमज्जहदाए महसहीए कुदो पवेसो संभावीअदि। (आर्य, अत्र राजपट्टप्रस्तरहृदये तस्या दुरन्तप्रेमसौकुमार्यहताया मत्सख्याः कुतः प्रवेशः संभाव्यते।)

मधुमङ्गलः—(सरोषम्।) चवले, अम्हवअस्सो तदो वि तुम्हसहीदो णिब्भरं सिणेहकोमलो जं एसो वज्जिदणिन्दो जोइन्दो विअ एक्कग्गचित्तो णं ज्जेव्व सव्वदा चिन्तेइ। (चपले, मम वयस्यस्ततोऽपि तव सखीतो निर्भरं स्नेहकोमलो यस्मादेष वर्जितनिद्रो योगीन्द्र इव एकाग्रचित्त एनामेव सर्वदा चिन्तयति।)

कृष्णः—(सापत्रपम्।) धिग्बालिश, कृतमलोकेन नर्मपुञ्जेन।

कहती है। इसलिए छूकर जानूँगा। (कृष्ण की छाती पर हाथ रखकर) अरे ललिता सच कहती है। (कुछ सोचकर) ललिते, समझ गया समझ गया। तुम्हारी राधिका ही उष्ण (गर्म) है जिसने इसके हृदय में विराजमान होकर चन्द्रकिरणों से भी शीतल इसको उष्ण बना दिया है।

ललिता—आर्य, राजसिंहासन के पत्थर के समान कठोर इस हृदय में परिणाम में दुःखदायी प्रेम की सुकुमारता से आहत मेरी उस सखी का प्रवेश कहाँ संभव है।

मधुमंगल—चपले, मेरा मित्र तुम्हारी उस सखी से भी अधिक प्रेम-कोमल है जिससे यह नींद छोड़कर योगेश्वर की भाँति एकाग्रमन से इसीका (राधाका) सदा ध्यान करता है।

कृष्ण—(लज्जा से) अरे मूर्ख, झूठी चापलूसी बन्द करो।

ललिता—(स्वगतम्) दिट्ठिआ वड्ढदि पिअसही। (दिष्ट्या वर्धते प्रियसखी।)

पौर्णमासी—सुन्दर, विश्राम्यतु नर्ममुद्रा। आकर्णय मद्विवक्षितम्।

हित्वा दूरे पथि धवतरोरन्तिकं धर्मसेतो-
भङ्गोदग्रा गुरुशिखरिणं रंहसा लङ्घयन्ती।
लेभे कृष्णार्णव नवरसा राधिकावाहिनी त्वां
वाग्वीचीभिः किमिव विमुखीभावमस्याः करोषि॥ ९॥

मधुमङ्गलः—अइ, सुद्धबुद्धिए अज्जवि एदं च्चेअ पुच्छसि। पेक्ख कूअताणं हदकोकिलाणं वित्तासणत्थं मए एदं पुप्फकोदण्डं णिम्मिदम्। (अयि शुद्धबुद्ध्याद्यापीदमेव पृच्छसि। पश्य कूजतां हतकोकिलानां वित्रासनार्थं मयेदं पुष्पकोदण्डं निर्मितम्।)

ललिता—(मन ही मन) भाग्य से प्रियसखी बढ़ रही है (अर्थात् राधा का भाग्योदय हुआ है।)

पौर्णमासी—सुन्दर, नर्ममुद्रा शान्त हो। मेरा कहना सुनो। हे कृष्ण रूपी समुद्र, धववृक्ष (पतिरूपी वृक्ष) के सामीप्य को भी दूरमार्ग में छोड़ कर धर्म के बाँध को तोड़ने में तत्पर, वेग से विशद पर्वत को लाँघती हुई (पर्वत-तुल्य कठोर गुरुजन अथवा गुरुजनरूपी पर्वत का अतिक्रमण करती हुई) नवीन रस (स्नेहरस) वाली इस राधारूपी नदी ने तुमको प्राप्त किया है। उस राधा-नदी को अपने उपेक्षा भरे वचनरूपी लहरों से किस प्रकार लौटा रहे हो !॥ ९॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में राधा के ऊपर नदी का, कृष्ण के ऊपर समुद्र का, पति के ऊपर वृक्ष का, गुरुजन के ऊपर पर्वत का और कृष्ण के वचनों के ऊपर लहर का आरोप किया गया है। आशय है जिस प्रकार नदी मार्गवर्ती वृक्षों की परवाह न करके पर्वतों को लाँघती हुई समुद्र में जाकर मिलती है किन्तु समुद्र की उत्ताल तरंगें उसे लौटाने लगती हैं, उसी प्रकार अपने स्वामी को छोड़कर गुरुजनों के आदेश का उल्लंघन करके राधा तुम्हारे पास आसक्त होकर आयी है किन्तु तुम अपनी उपेक्षा भरी बातों से उसे निराश लौटाना चाहते हो। यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है।

मधुमङ्गल—अयि, शुद्ध भाव से अभी भी यही पूछती हो। देखो, कूकने

पौर्णमासी—चन्द्रानन, सापि वत्सा—

आलीनां प्रतिहाररोधनविधौ वीक्ष्य प्रयत्नावलीं
बाला तर्कितमाधवीपरिमलस्फूर्तिर्भयाद्वेपते ।
किंचालोक्य सुधांशुकान्तसलिलस्पन्दानलिन्दे क्षणा-
देणाङ्कोदयशङ्किनी विकलतामातन्वती मूर्च्छति ॥ १० ॥

कृष्णः—(स्वगतम् ।) हन्त, कठोरोऽयं दशाविवर्त्तः ।

पौर्णमासी—सुन्दर,

प्रणयिषु मिलितेषु प्रेमभाजामुपेक्षा
घटयति कटुपाकान्युच्चकैर्दूषणानि ।

वाले दुष्ट कोकिलों को डराने के लिए मैंने इस पुष्प-धनुष को बनाया है ।

पौर्णमासी—चन्द्रमुख, वह बेटी भी—

द्वार पर स्थित बन्दनवार पर मधुमक्खियों के झुंड को देखकर माधवी के मकरन्द के विकास का अनुमान कर यह बाला भय से काँपती है । और घर के दरवाजे के सामने के चबूतरे पर चन्द्रकान्त मणि के जलबिन्दुओं को देखकर एक क्षण चन्द्रमा के उदय की शंका से विकल होकर मूर्छित हो जाती है । (अर्थात् तुम्हारे विरह में माधवी-पुष्परस और चन्द्रमा भी राधा को असह्य परिताप देंगे अतः उसकी कल्पना भी नहीं करना चाहती) ॥ १० ॥

विमर्श—चन्द्रमा और पुष्परस कामोद्दीपक हैं । संयोग-दशा में ये प्रेमीजनों को सुख पहुँचाते हैं, किन्तु विरह दशा में ये ही उद्दीपक तत्त्व विरहिणी नायिकाओं को संताप देने वाले बन जाते हैं, अतः वे इनसे बचना चाहती हैं । प्रणय-क्षेत्र की यह अनूठी रीति है कि जो वस्तु संयोगावस्था में सुखदायी हैं, वे हीं वियोगावस्था में दुःखदायी हो जाती हैं ।

कृष्ण—(मन ही मन) हाय, अवस्था का यह परिवर्तन कठोर है ।

पौर्णमासी—सुन्दर, प्रेमी जनों के मिलने पर प्रेमपात्रों की उपेक्षा परिणाम में भयंकर अत्यधिक दोषों को उत्पन्न करती है । यह प्रेमी स्वयं अनुरागिणी

दिनमणिरनुरागी प्रोज्झ्य संध्यां हि रक्तां
तमसि निखिलमुग्रे मज्जयत्येष लोकम् ॥ ११ ॥

(कृष्णः सलज्जं नम्रीभवति ।)

पौर्णमासी—(पुनर्निभाल्य । सानन्दं स्वगतम् ।) दिष्ट्यायं स्मितालिङ्गितमङ्गीकुर्वन्दक्षिणं न्यमीलयदीक्षणम् । (प्रकाशम् ।) गोकुलानन्द, पुरस्तादियं माकन्दवेदी स्वयमलंकर्तव्या निमीलति हेलिबिम्बे सख्योरेकतरा त्वामभीष्टदेशं प्रापयति ।

कृष्णः—(सापत्रपम् ।) यथाह भगवती । (इति सवयस्यो निष्क्रान्तः ।)

संध्या को छोड़ कर समस्त संसार को अन्धकार में डुबो देता है ॥ ११ ॥ (कृष्ण लज्जा से मुँह झुका लेते हैं)

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में समासोक्ति द्वारा 'रक्ता संध्या' से राधा, 'दिनमणि' से कृष्ण और 'लोकम्' से पौर्णमासी प्रभृति समस्त गोकुल अर्थ प्रस्तुत रूप में व्यञ्जित हो रहा है । ध्वनि है—

जिस प्रकार सूर्य अनुरागवती संध्या का परित्याग कर समस्त संसार को अन्धकार से आच्छन्न कर देता है, उसी प्रकार कृष्ण भी राधा की उपेक्षा कर पौर्णमासी-ललिता प्रभृति गोपियों को निराश कर रहे हैं । कृष्ण प्रेमी हैं और राधिका उनकी प्रेमिका । दोनों का परस्पर सानुराग मिलन परिणाम सुखदायी होगा । यदि कृष्ण ने राधा की उपेक्षा की तो राधा की शुभचिन्तक ललितादि सखियाँ बहुत दुःखी होंगीं । राधा की दशा का कहना ही क्या ?

पौर्णमासी—(फिर देखकर । आनन्द पूर्वक मन ही मन) सौभाग्य से मुस्कुरा कर इसने अपनी दाहिनी आँख को बन्द किया है । (प्रकट) हे गोकुल को आनन्द देनेवाले, सामने स्वयं अलंकृत करने योग्य यह माकन्द वेदी है । सूर्यबिम्ब के अस्त होने पर दोनों सखियों में कोई एक तुमको अभीष्ट स्थान में ले जायगी ।

कृष्ण—(लज्जापूर्वक) आपकी जो आज्ञा । (यह कह कर मित्र के साथ चले जाते हैं)

पौर्णमासी—पुत्रि ललिते, कामं निर्वृतास्मि। तदेहि। राधामनुसरावः।

(इत्युभे परिक्रामतः।)

(ततः प्रविशति विशाखया सह संकथयन्ती राधा।)

राधिका—(संस्कृतेन।)

सखि जल्पितनारिकेलनीरं स्मितकर्पूरवृतं हरेर्निपीय।
तनुसङ्गसुधां विना न तस्य ग्लपिताहं गरलेन जीवितास्मि॥१२॥

विशाखा—अइ अविण्णादणिअमाहादुम्ये, तादिसो तुह राअस्स गरिमा जेण सो क्खु सामसुन्दरो वि वाढं रत्तीकिदो तधा विअप्पणो

पौर्णमासी—बेटी ललिते, हमलोग पर्याप्त सफल रहे। इसलिए आओ, हमलोग राधा के पास चलें।

(यह कह कर दोनों आगे बढ़ती हैं)

(उसके बाद विशाखा के साथ बातें करती राधा प्रवेश करती है।)

राधिका—(संस्कृत में)

सखि, कृष्ण के मुस्कानरूपी कर्पूर से मिश्रित कथनरूपी नारियल के जल को पीकर उसके शरीर के संसर्गरूपी अमृत के बिना विष से मूर्छित मैं जीवित नहीं हूँ॥ १२॥

विमर्श—नारियल के जल में कपूर मिला देने से वह विष बन जाता है, यह बात वैद्यकशास्त्र में प्रसिद्ध है। राधिका ने कृष्ण की मुस्कान और उनके वचनों से ही परिचय प्राप्त किया है। उनका संयोग-सुख नहीं पा सकी है। राधिका ने कृष्ण की मुस्कान पर कपूर, वचन पर नारिकेल जल और शरीर-सम्पर्क पर अमृत का आरोप किया है। मुस्कान और वचन का मिश्रण विष बन गया है। विष का शमन अमृत से ही होता है संसर्ग-सुधा नहीं पा सकी है अतः विष के प्रभाव से मूर्छित होकर मरणासन्न है।

विशाखा—अरी, अपनी महिमा को नहीं जानने वाली, तुम्हारे प्रेम का प्रभाव तो वैसा है जिससे वह श्याम सुन्दर भी अत्यधिक अनुरागी बन गया है।

मालिण्णं सङ्कसि। (अत्यधिकातिशयमाहात्म्ये, गाढस्तव रागस्य गरिमा येन न खलु श्यामसुन्दरोऽपि गाढं रक्तीकृतस्तथाप्यात्मनो मालिन्यं शङ्कसे।)

राधिका—(पुनः संस्कृतेन।)

नालीकिनीं निशि घनोत्कलिकामशङ्कं
क्षिप्त्वा वृतीरतनुवन्यगजः क्षुणत्ति।
अत्रानुरागिणि चिरादुदितेऽपि भानौ
हा हन्त किं सखि सुखं भविता वराक्याः॥ १३॥

पौर्णमासी—(पुरो राधां दृष्ट्वा।) पुत्रि ललिते, सख्यास्तव प्रेमोक्तिमुद्रामुद्घाटयितुमुत्कण्ठितास्मि। तद्भवत्या तूष्णीमेव भवितव्यम्।

(तुम्हारे प्रेम का रंग उस पर भली भाँति चढ़ गया है) फिर भी तुम अपने को मलिन (हीन) समझती हो ! (तुम्हारी हीन भावना निर्मूल है)

राधिका—(फिर संस्कृत में)

सघन कलिका वाली कमलिनी को रात में अशंक भाव से घेरा डालकर कामदेवरूपी जंगली हाथी (यदि) चूर कर देता है। (तो) यहाँ पर प्रेमी सूर्य के देर से उगने पर भी उस अभागिन कमलिनी को क्या सुख मिलेगा॥ १३॥

विमर्श—कमलिनी सूर्य की प्रियतमा है। प्रातः काल कमल-कलिका अपने प्रियतम सूर्य का अनुपम स्पर्श पाकर विकसित हो जाती है। यदि रात में ही उस कली को जंगली हाथी चूर्ण कर दे तो प्रातः सूर्य के उगने से उसे क्या प्रयोजन ? राधिका कृष्ण से प्रेम करती है किन्तु कामदेव रात्रि में उसे कृष्ण के विरह में असह दुःख दे रहा है। यदि कामयातना को न सह कर कहीं वह अपने प्राणों से हाथ धो बैठी तो प्रेमी कृष्ण के देर में आने से लाभ ? अतः कृष्ण को यथासमय ही राधा से मिलने का उपाय करना चाहिए।

पौर्णमासी—(सामने राधा को देख कर) बेटी ललिते, तुम्हारी सखी के प्रणय-कथन के भाव को प्रकट करने की मेरी उत्सुकता है। अतः तुम्हें चुप ही रहना चाहिए।

ललिता—जं आणवेदि तत्थहोदु। (यद्विज्ञापयति तद्भवतु।)

पौर्णमासी—(राधामुपेत्य। सकैतवविषादम्।)

भवदङ्गसङ्गविषये प्रियोक्तिभि-
मुहुरर्थितोऽपि मदिराक्षि माधवः।
मनुते मनागपि न हीति हृद्व्यथा-
प्रतिकारयुक्तिरपरा विधीयताम्॥ १४॥

राधिका—(सव्यामोहम्।) अलं एत्थ लज्जिदेण। (इत्यञ्जलिं बध्वा

अत्रमत्र लज्जितेन।

अब्भंलिहम्मि डहणे गाढहं रङ्गणलदं लिहन्तम्मि।
का पडिआरे जुत्ति मुक्किअ सामलघणुल्लासम्॥
(अभ्रंलिहे दहने कोमलां रङ्गणलतां लिहति।
का प्रतिकारे युक्तिरयक्त्वा श्यामलघनोल्लासम्॥)

पौर्णमासी—

जरत्यास्त्वं नप्त्री स तु कमलया लालितपदः

ललिता—आपकी जो आज्ञा, वही हो।

पौर्णमासी—(राधा के समीप जाकर। छलपूर्ण विषाद से)

हे सुनयने, तुम्हारे शरीर-सम्पर्क के विषय में प्रिय वचनों से बार-बार याचना किए गये भी माधव थोड़ा भी नहीं मानते हैं। अतः मानसिक व्यथा को दूर करने का कोई दूसरा उपाय करो॥ १४॥

राधिका—(मोह के साथ) यहाँ लज्जा करने की आवश्यकता नहीं। (हाथ जोड़ कर) आकाश तक व्याप्त आग के, सुकुमार रंगणलता को छूने पर श्यामल मेघ के उल्लास को छोड़ कर प्रतिकार में दूसरा क्या उपाय हो सकता है। अर्थात् कामाग्नि से दग्ध मेरे बचने का एक मात्र उपाय घनश्याम (कृष्ण) ही है।

पौर्णमासी—तुम बूढ़ी की नातिनी हो, लक्ष्मी उस कृष्ण की चरण सेविका

कथंकारं तस्मै मुहुरसुलभाय स्पृहयसि ।
प्रसीद व्याहारे मम रचय चेतो दिविचरं
ग्रहीतुं पाणिभ्यां विधुमइह मा भूत्कुतुकिनी ॥ १५ ॥

राधिका—(सगद्गदम् । संस्कृतेन ।)

मया ते निर्बन्धान्मुरजयिनि रागः परिहृतो
मयि स्निग्धे किंतु प्रथय परमाशीस्ततिमिमाम् ।
मुखामोदोद्गारग्रहिलमतिरद्यैव हि यतः
प्रदोषारम्भे स्यां विमलवनमालामधुकरी ॥ १६ ॥

(इति वैवश्यं नाटयति ।)

विशाखा—भअवदि, परित्ताहि परित्ताहि । इअं उत्ताणिदणेत्ता

है । अतः पुनः असंभव उसको पाने की इच्छा क्यों करती हो । प्रसन्न हो, मेरे कथन में मन लगाओ (मेरा कहना मानो) आकाशचारी चन्द्रमा को दोनों हाथों से पकड़ने का कुतूहल मत करो । (अर्थात् कृष्ण के साथ तुम्हारा मिलन असम्भव है अतः उसकी आशा छोड़ दो ।) ॥ १५ ॥

राधिका—(गद्गद भाव से संस्कृत में)

हे मुझ में प्रेम रखने वाली देवि, आपके आग्रह से मैंने मुरविजेता कृष्ण के विषय में अपना स्नेह हटा लिया किन्तु यह आशीर्वाद दीजिये कि मुख के आमोद के उद्गार को ग्रहण करने की बुद्धिवाली मैं आज ही प्रदोष के आरम्भ में निर्मल वनमाला की मधुकरी हो जाऊँ ॥ १६ ॥

विमर्श—राधा की यह उक्ति बड़ी मार्मिक है । उसका कहना है कि मैं कृष्ण के प्रेम में ऐसी पगी हूँ कि उससे दूर होना इस जीवन में संभव नहीं । हाँ, प्राणों का उत्सर्ग कर सकती हूँ । अतः मुझे ऐसा आशीर्वाद चाहिए जिससे अविलम्ब आज ही सायंकाल हँसते-हँसते कृष्ण के प्रेम में अपने प्राणों को न्योछावर कर सकूँ ।

(यह कह कर अपनी विवशता (लाचारी) दिखाती है)

विशाखा—देवि, बचाइये, बचाइये । खुली हुई आँख वाली यह राधा

कंपि दारुणं दसाविसेसं लहेदि राही।

पौर्णमासी—(सावेगम्।) हा धिक्। बलादाकृष्टा महाविपत्कालसर्पी (इति सदयं राधामालिङ्गय।) वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। भावाभिव्यक्तये प्रोत्थापितासि। तदिदं यथार्थमाकर्ण्यताम्।

अमितविभवा यस्य प्रेक्षालवाय भवादयो
भुवनगुरवोऽप्युत्कण्ठासितपांसि वितन्वते।
अहह महतादृष्टानां ते फलं किमभिष्टुवे
सुतनु स तनुर्जज्ञे कृष्णस्तवेक्षणतृष्णया॥ १७॥

ललिता—(संस्कृतेन।)

त्वद्वार्तोत्तरगीतगुम्फितमुखो वेणुः समन्तादभूत्
त्वद्वेशोचितशिल्पकल्पनमयी सर्वा बभूव क्रिया।

किसी दुःखदायिनी अवस्था को प्राप्त कर रही है। (इसकी दशा शोचनीय है)

पौर्णमासी—(आवेग से) हाय, बलपूर्वक आकृष्ट यह कौन विपत्तिरूपिणी काल-सर्पिणी है ? (दयापूर्वक राधा का आलिंगन करके)।

बेटी, धीरज धरो, धीरज धरो। भाव की जानकारी के लिए उत्तेजित की गयी हो। (मैं तुम्हारे प्रेम की परीक्षा ले रही थी) अतः यथार्थ बात सुनो।

अतुल ऐश्वर्यवाले शंकर प्रभृति लोकगुरु जिनके क्षणिक दर्शन के लिए उत्सुकतापूर्वक तपस्या का विस्तार करते हैं। हे सुन्दरि, तुम्हारे अत्यधिक बढ़े हुए भाग्यों के फल की प्रशंसा क्या करूँ ? तुम को देखने की लालसा से (वही) कृष्ण दुर्बल हो गये हैं॥ १७॥

विमर्श—जिसके दिव्य रूप की एक झलक के लिए शंकरादि देवगण घोर तपस्या करते हैं, वही कृष्ण राधा को देखने की लालसा से शरीर को क्षीण बना कर मानो तपस्या कर रहे हैं। यह राधा के सौभाग्य की पराकाष्ठा है।

ललिता—(संस्कृत में)

हे राधे, तुम्हारी वार्ता से कृष्ण की मुरली गीत से गुम्फित हो गयी है। सारी क्रिया तुम्हारे वेश के अनुकूल रचनापरक हो गयी है। इसके गायों का समूह

त्वन्नामानि बभूवुरस्य सुरभीवृन्दानि वृन्दाटवी
राधे त्वन्मयवल्लिमण्डलघना जाताऽद्य कंसद्विषः ॥ १८ ॥

राधिका—(समाश्वस्य । स्वगतम्) चञ्चल हे चित्त, अज्जवि ण पत्तिआएसि। (चञ्चल हे चित्त, अद्यापि न प्रत्याययसि ।)

पौर्णमासी—पुत्रि ललिते, वाढं प्रगल्भासि। तद्विशाखा यावन्माकन्दमूलान्मुकुन्देन सह प्रत्यावर्तते तावदत्र संकेतिते कर्णिकारकुञ्जे गोपय त्वं गोपालिकाभ्यो राधिकाम्। मया तु स्वकृत्याय गन्तव्यम्।

(इति त्रितोऽपि निष्क्रान्ताः ।)

विशाखा—(दूरं परिक्रम्य ।) सो माकन्दो एसो पुरो दीसइ जत्थ कण्हो। (स माकन्द एष पुरो दृश्यते यत्र कृष्णः।)

तुम्हारे नामों वाला हो गया है। आज कंसारि का यह वृन्दावन तुम्हारे रूप में विद्यमान लताओं के मण्डल से सघन हो गया है ॥ १८ ॥

विमर्श—कृष्ण की मुरली चारों ओर राधा के विषय में ही गीत गा रही है। कृष्ण का सारा काम राधा की वेशभूषा के अनुकूल ही होता है। कृष्ण ने अपनी सभी गायों का नाम राधा रख दिया है। कृष्ण का समस्त क्रिया कलाप राधा के लिए ही चल रहा है। आज समस्त वृन्दावन ही कृष्ण की दृष्टि में राधामय हो गया है।

राधिका—(धीरज धरकर। मन ही मन) हे चञ्चल मन, अभी भी विश्वास नहीं करते हो ?

पौर्णमासी—बेटी ललिते, तुम बहुत चतुर हो, इसलिए जब तक विशाखा आम्रवृक्ष के पास से कृष्ण के साथ लौटती है, तब तक इस संकेतित कर्णिकार कुञ्ज में गोपियों से इस राधिका की रक्षा करो। (गोपियों की दृष्टि से राधा को बचाओ) मैं तो अपनी नित्य क्रिया के लिए जा रही हूँ।

(यह कह कर तीनों ही चली जाती हैं)

विशाखा—(दूर तक चलकर) वह आम्र वृक्ष सामने दिखायी दे रहा है, जहाँ कृष्ण हैं।

(ततः प्रविशति कृष्णः ।)

कृष्णः—(सोत्कण्ठं प्रतीचीमवलोक्य ।)

सद्यस्तप्तहिरण्यपिण्डमधुरं चण्डत्विषो मण्डलं
  सङ्गं हन्त तरङ्गिणीरतिगुरोरङ्गीचकाराम्भसि ।
द्रागेतान्यपि घूकनेत्रपटलीसिद्धाञ्जनक्षोदतां
  बिभ्रन्ति द्विपविभ्रमाणि रुरुधुर्ध्वान्तानि वृन्दावनम् ॥१६॥

(सौत्सुक्यं पन्थानमुद्वीक्ष्य ।) कथमद्यापि सखी काचिन्नेत्राध्वनि मे नावततार । (इति परावृत्य प्राचीं पश्यन् ।)

सान्द्राः सुप्तकुमुद्वतीकुलवधूनिद्राभिदाकोविदाः
  कुर्वाणाः कलुषश्रियं परिभवातङ्केन पङ्केजिनीम् ।
संरम्भादभिसारिकाभिरसकृद्व्याकृष्यमाणोद्गमा-

(उसके बाद कृष्ण प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—(उत्कंठा के साथ पश्चिम दिशा को देख कर) ।

तपे हुए स्वर्णपिण्ड के समान रोचक सूर्य के मण्डल ने समुद्र के जल में संसर्ग को स्वीकार किया । (अर्थात् सूर्यबिम्ब पश्चिम समुद्र में डूब गया ।) और शीघ्र ही उल्लुओं के नेत्र-समूहों के सिद्धांजन के कणों को बिखेरते हुए, हाथियों के समान विभ्रम वाले ये अन्धकार भी वृन्दावन को अवरुद्ध कर दिये हैं । (समस्त वृन्दावन तिमिराच्छन्न हो गया है उधर सूर्य डूबा और इधर वृन्दावन में अन्धकार फैल गया) ॥ १६ ॥

(उत्सुकतापूर्वक मार्ग को देखकर)

अभीतक कोई सखी मेरे दृष्टिपथ में क्यों नहीं आयी !

(यह कह कर लौट कर पूर्व दिशा को देखते हुए)

सोयी हुई कुमुदिनीरूपी कुलवधू की निद्रा को दूर करने में निपुण, तिरस्कार के आतंक से कमलिनी की शोभा को मलिन करते हुए, अनेक बार अभिसारिकाओं से निन्दित उदयवाले, चन्द्रमा के सघन प्रकाश पूर्वदिशा को

भासः शीतकरस्य हन्त हरितं पूर्वां परिष्कुर्वते ॥ २० ॥

(इति वैयग्र्यं नाटयति ।)

ध्यात्वा धर्मं धृतिमुदयिनीं किं बबन्धाद्य राधा
तीव्राक्षेपैः किमुत गुरुभिर्लम्भिता वा निवृत्तिम् ।
किं वा कष्टामभजत दशां तामविस्पन्दमन्दा-
मिन्दौ विन्दत्युदयमपि यन्नाजगामाद्य दूती ॥ २१ ॥

विशाखा—(लतान्तरे सोद्ग्रीविकम् ।) एसो णूणं उक्कण्ठाए मह ज्जेव पअवीं विलोएदि कण्हो । ता क्खणं परिहसिस्सम् । (एष नूनमुत्कण्ठया ममैव पदवीं विलोकयति कृष्णः । तस्मात्क्षणं परिहासं करिष्ये ।)

परिष्कृत कर रहे हैं। (अर्थात् पूर्व दिशा में चन्द्रमा की चाँदनी फैल रही है।) ॥ २० ॥

(यह कह कर आकुलता दिखाते हैं)

क्या आज राधा ने धर्म का (पातिव्रत्य) विचार करके धैर्य को बाँध लिया है, अथवा तीव्र आक्षेपों से गुरुजनों द्वारा निवृत्ति (उदासीनता) को प्राप्त करायी गयी है अथवा अत्यन्त कष्टदायक अवस्था को प्राप्त किया है जिससे चन्द्रमा के उदित होने पर भी अभी तक दूती नहीं आयी है ॥ २१ ॥

विमर्श—राधा की दूती के नहीं आने के कारणों पर विचार करते हुए कृष्ण का आशय है कि—

या तो राधा ने पतिव्रता धर्म का विचार कर अपने मन को धीरज बँधाया है। अथवा गुरुजनों की तीव्र निन्दा के कारण हठात् उदासीन बना दी गयी है अथवा निराश होकर किसी शोचनीय दशा में पहुँच गयी है। इन्हीं कारणों में से कोई एक है, जो राधा के लिए मुझ से मिलने में बाधक बन गया है। 'स्नेहः पापमाशंकते' इस उक्ति के अनुसार राधा के विषय में कृष्ण की चिन्ता स्वाभाविक ही है।

विशाखा—(लता की ओट में गर्दन उठाकर)।

यह कृष्ण उत्सुकता से मेरे ही मार्ग को देख रहा है। अतः एक क्षण इस से परिहास (मजाक) करूँगी।

कृष्णः—(सानन्दम् ।) इयं विशाखापि चञ्चलपक्ष्मशाखा सखी मिलिता (इत्युपसृत्य ।) सखि, तवोपलम्भात्तामेव रम्भोरुं लब्धामवैमि-यद्विशाखाराधयोरद्वैतम् ।

(विशाखा मुखमानमय्य मौनमालम्बते ।)

कृष्णः—सखि, किमत्र तूष्णीमसि ।

विशाखा—चन्दमुह, मन्दभाइणी म्हि । ता किं विण्णविस्सम् । (चन्द्रमुख, मन्दभागिन्यस्मि । तस्मात्किं विज्ञापयिष्ये ।)

कृष्णः—(सशङ्कम् ।) किमर्थमिदम् ।

विशाखा—सुन्दर, ण मे सरस्सई णिस्सरदि । होदु । तधा वि संवरिदुं ण जुत्तमिदम् । (इति मुखवैकृत्यमभिनीय ।) भो भट्टिदारअ, सा पिअसही अहिमण्णुणा हदासेण महुरापत्तणम्मि—(इत्यर्धोक्ते शुष्कं रोदिति ।) (सुन्दर, न मे सरस्वती निःसरति । भवतु । तथापि गोपयितुं न युक्तमिदम् । भो भर्तृदारक, सा प्रियसखी अभिमन्युना हताशेन मथुरापत्तने—।)

कृष्णः—(सव्यथम् ।) कदा नाम नीता ।

कृष्ण—(प्रसन्नतापूर्वक) चंचल हाथों वाली यह विशाखा सखी मिल गयी । (समीप जाकर) सखि, तुमको पाकर उसी सुन्दरी राधा को पाया हुआ मानता हूँ क्योंकि विशाखा और राधा में भेद नहीं है ।

(विशाखा मुँह लटकाकर चुप रहती है)

कृष्ण—सखि, यहाँ चुप क्यों हो ?

विशाखा—हे चन्द्रमुख मैं अभागिन हूँ इसलिए क्या सूचना दूँ ।

कृष्ण—(शंका से) यह क्यों ?

विशाखा—सुन्दर, मेरी बोली नहीं निकलती है । अच्छा, फिर भी इस को छिपाना ठीक नहीं है । (यह कह कर अपने मुँह को बिगाड़ कर) हे राजपुत्र, वह प्रियसखी हताश अभिमन्यु द्वारा मथुरा नगर—(इतना आधा कह कर रोती है) ।

कृष्ण—(दुःखपूर्वक) कब ले जायी गयी ?

विशाखा—जदा भअवदी तुम्ह सआसं लद्धा। (यदा भगवती तव सकाशं लब्धा।)

कृष्णः—(सखेदम्।) विशाखे, कथंकारं नीता।

विशाखा—तुअम्मि भाअं तक्किअ। (त्वयि भावं तर्कयित्वा।)

कृष्णः—कथं स तर्कितः।

विशाखा—लोओत्तरीहोन्तो अत्थो ण कस्स तक्कणिज्जो होइ। (लोकोत्तरीभवन्नर्थो न कस्य तर्कणीयो भवति।)

कृष्णः—

ग्लपयति वपुर्दुर्लीलो मे बलान्मलयानिलो
विकिरति करैरिन्दुः खेदं तुषाग्निभवं रुषा।
मदनहतकस्तर्जत्येष स्फुटैरलिहुंकृतै-
स्त्रुटिरपि विना राधां नेतुं मया न हि शक्यते ॥२२॥

(इति व्यामोहं नाटयति।)

विशाखा—(सखेदं ससंभ्रमम्।) गोउलानन्द, समासस्स समा-

विशाखा—जब भगवती तुम्हारे पास आयी थी।

कृष्ण—(दुःख के साथ) विशाखे, क्यों ले जायी गयी?

विशाखा—तुम्हारे भाव का अनुमान करके।

कृष्ण—उसने कैसे अनुमान किया?

विशाखा—अलौकिक होती हुई बात किस के अनुमान का विषय नहीं होगी?

कृष्ण—दुष्ट मलय पवन मेरे शरीर को बलपूर्वक सुखा रहा है। चन्द्रमा क्रोध से अपनी किरणों द्वारा भूसे की आग से उत्पन्न पीड़ा को फैला रहा है। यह दुष्ट कामदेव भौंरे के हुंकारों से मुझे फटकार रहा है। राधा के बिना एक क्षण भी बिताना मेरे लिए असंभव है ॥ २२ ॥

(यह कह कर बेहोश हो जाते हैं)

विशाखा—(दुःख के साथ घबड़ाकर)। हे गोकुल को आनन्द पहुँचाने

सस्स। मए क्खु परिहसिदम्। सा तवस्सिणी ताए रङ्गणमालिआए रक्खिदपराणत्थि। (गोकुलानन्द, समाश्वसिहि। मया खलु परिहसितम्। सा तपस्विनी तया रङ्गणमालिकया रक्षितप्राणास्ति।)

कृष्णः—(समाश्वस्य।) धूर्ते, भद्रेण कदर्थितोऽस्मि।

विशाखा—अप्पणो गुणं ण सुमरसि। (आत्मनो गुणं न स्मरसि।)

कृष्णः—सखि, वर्ण्यतां प्रेम्णामङ्कः प्रियायाः।

विशाखा—(संस्कृतेन।)

दूरादप्यनुषङ्गतः श्रुतिमिते त्वन्नामधेयाक्षरे
सोन्मादं मदिरेक्षणा विरुवती धत्ते मुहुर्वेपथुम्।
आः किं वा कथनीयमन्यदपि ते दैवाद्धराम्भोधरे
दृष्टे तं परिरब्धुमुत्सुकमतिः पक्षद्वयीमिच्छति॥ २३॥

कृष्णः—तदेहि। सत्वरमेव प्रेयसीं प्रेक्षावहि।

वाले, धीरज धरो, धीरज धरो। मैंने तो परिहास किया था। वह तपस्विनी (राधा) उस रंगणमाला से अपने प्राणों की रक्षा कर रही है। (आपकी वैजयन्तीमाला ही उसके प्राणों का सहारा है)।

कृष्ण—(धीरज धर कर) धूर्ते, भद्रता से तिरस्कृत हुआ हूँ।

विशाखा—अपना गुण नहीं याद करते हो!

कृष्ण—सखि, प्रियतमा के प्रेमों के चिह्न का वर्णन करो। (राधा की अनुराग-चेष्टा बताओ)।

विशाखा—(संस्कृत में)

दूर से तुम्हारे नाम के अक्षर के कानों में पड़ने पर वह सुलोचना उन्माद से बार-बार काँप उठती है। और दूसरी बात तुम्हें क्या कही जाय, यदि संयोग से सुन्दर मेघ को देख लेती है तो उसका आलिंगन करने की उत्कंठा से दो पाँखों को चाहती है। (अर्थात् आकाश में उड़ कर तुम्हारी शरीर कान्ति को धारण करने वाले मेघ के आलिंगन के लिए पाँख की याचना करती है)॥ २३॥

कृष्ण—तो आओ, शीघ्र ही प्रिया को देखें।

(इति परिक्रामतः ।)

(ततः प्रविशति ललितयाराध्यमाना राधा ।)

राधा—(सखेदम् । संस्कृतेन ।)

प्रत्यूहेन पराहता नु किमभूद् गन्तुं सखी न क्षमा
तस्याः किं तु निवेदितेन हि हरिर्विश्रम्भमभ्याययौ ।
हा हन्त प्रतिकूलतां मयि गतः किंवा विधिर्दारुणो
यद्दूराद्वनमालिकापरिमलोऽप्यद्यापि नासाद्यते ॥२४॥

विशाखा-(पुरोऽनुसृत्य । संस्कृतेन ।)

नम्रीकृत्य शिरो मुहुस्तरुवृतामालोकते वर्तनी-
मुत्थाय क्षणमासनात्पुनरहो श्रान्ता निषीदत्यसौ ।

(दोनों आगे बढ़ते हैं)

(उसके बाद ललिता के द्वारा सेवा की जाती हुई राधा प्रवेश करती है)

राधा—(दुःख के साथ । संस्कृत में)

विघ्न से पराहत होकर क्या सखी जा नहीं सकी, (अथवा) उसके निवेदन (प्रार्थना) से कृष्ण को विश्वास उत्पन्न हुआ ! हाय, अथवा मुझ पर निष्ठुर भाग्य ही विपरीत हो गया है, जिससे दूर से वनमालिका की सुगन्धि भी अभी नहीं मिल रही है ॥ २४ ॥

विमर्श—राधा ने विशाखा को कृष्ण के पास प्रणय निवेदन के लिए भेजा था । विशाखा को आने में विलम्ब देखकर राधा का उपर्युक्त विकल्प स्वाभाविक ही है । यहाँ पर कृष्ण के सम्बन्ध में राधा की चिन्ता वर्णन है । इस प्रकार राधा और कृष्ण एक दूसरे के स्नेह में बँध कर परस्पर चिन्तित हैं । उभयानुराग की चेष्टा सफलतापूर्वक दिखायी जा रही है । यही स्वाभाविक प्रेम-भाव का निर्वाह है । श्लो० सं० २१ में कृष्ण का विकल्प द्रष्टव्य है ।

विशाखा—(आगे बढ़ कर । संस्कृत में)

शिर को झुका कर वृक्षों से युक्त मार्ग को बार-बार देखती है । यह (राधा) एक क्षण आसन से उठ कर फिर श्रान्त होकर बैठ जाती है दो-तीन कदम चल-

द्वित्राण्येत्य पदानि वीक्ष्य ललितां भूयः परावर्तते
पश्याग्रे तव संगमोत्सुकतया राधा परिक्लाम्यति ॥२५॥

कृष्णः—

वदनदीप्तिविधूतविधूदया
कुमुदधाममधुरामधुरस्मिता ।
नखजितोडुरियं हरिणेक्षणा
तृणयति क्षणदामुखमाधुरीम् ॥ २६ ॥

राधिका—(सकातर्यम् । संस्कृतेन ।)

दृग्भङ्गीनां किमु परिमलैः प्रेयसीभिर्निरुद्धः
किं वा स्वैरी मयि विहितवानुद्धतायामुपेक्षाम् ।
हा चान्द्रीभिर्द्युतिभिरभितो ग्रस्यमानेऽपि लोके
प्राप्तो नायं यदि हलतिकामन्दिरे नन्दसूनुः ॥ २७ ॥

कर पुनः ललिता को देखकर लौट जाती है। आगे देखो, तुमने मिलने की उत्सुकता से राधा खिन्न हो रही है ॥ २५ ॥

कृष्ण—मुख की कान्ति से चन्द्रमा को तिरस्कृत करने वाली, कुमुद की शोभाओं के आश्रय में मधुर मुस्कान वाली तथा नखों से नक्षत्रों की कान्ति को पराजित करने वाली यह मृगनयनी राधा प्रदोष की माधुरी को तिनका बना रही है। (अर्थात् प्रदोष-वेला में राधा की शोभा चन्द्रमा, कुमुद और नक्षत्रों की शोभा को तिरस्कृत कर रही है।) ॥ २६ ॥

राधा—(दीनतापूर्वक । संस्कृत में) ।

दृष्टि की भंगिमाओं के परिमलों से (तीक्ष्ण कटाक्षों से) क्या वह स्वेच्छाचारी (कृष्ण) प्रियाओं द्वारा रोक लिया गया है अथवा उद्धत स्वभाव वाली मेरे प्रति उसने उपेक्षा कर लिया है ? हाय, समस्त विश्व सभी ओर से चन्द्रमा की कान्ति से व्याप्त हो गया है फिर भी यह नन्दनन्दन लताकुञ्ज में नहीं आया है ॥ २७ ॥

कृष्णः—(पुरोऽनुसृत्य ।) अहो, साधीयान्प्रसादः पौर्णमास्याः, यदियमामोदयति कौमुदी ।

राधिका—(चमत्कृतिमभिनीय। स्वगतम्।) हुं, एत्तिअ भाअधेआणं भाअणं संवुत्तो एस जणो । (इति वैवश्यमालम्बते ।) (अहो, एतावद्भागधेयानां भाजनं संवृत्त एष जनः ।)

विशाखा—(संस्कृतेन ।)

अहो धन्या गोप्यः कलितनववर्मोक्तिभिरलं
विलासैरानन्दं दधति मधुरैर्या मधुभिदः ।
धिगस्तु स्वं भाग्यं मम यदिह राधा प्रियसखो
पुरस्तस्मिन्प्राप्ते निबिडजडिमाङ्गी विलुठति ॥ २८ ॥

विमर्श—अब तक लताकुञ्ज को कृष्ण के सनाथ नहीं करने के दो ही कारण हो सकते हैं—एक तो प्रेयसियों का अवरोध अथवा मेरे प्रति उसका उपेक्षाभाव । प्रथम कारण में उसकी विवशता है और दूसरे में मेरा उद्धत भाव । अतः मेरे दोष के कारण ही मेरे प्रति उपेक्षाभाव है । इसमें कृष्ण के दोष की अपेक्षा मेरा अपराध ही अधिक है । भारतीय ललना सदा प्रियतम की उपेक्षा वृत्ति में अपना ही दोष देखती हैं । भारतीय संस्कृति में कुलाङ्गनाओं के निःस्वार्थ समर्पणभाव का यह अनूठा निदर्शन है ।

कृष्ण—(आगे बढ़ कर) अहो, पौर्णमासी की प्रसन्नता अधिक श्रेष्ठ है, जो यह चन्द्रिका आनन्दित कर रही है । (पूर्णिमा तिथि की चाँदनी अधिक सुहावनी लगती है । पक्षमें पौर्णमासी देवी की कृपा से राधा का दर्शन हुआ) ।

राधा—(चमत्कृत होकर । मन ही मन) अहा, यह व्यक्ति इतने सौभाग्यों का पात्र हो गया ! (अर्थात् मेरा भाग्य खुल गया)

(यह कह कर विवश हो जाती है)

विशाखा—(संस्कृत में) अहो, गोपियाँ धन्य हैं जो सुन्दर नवीन प्रेमवचनों के विलास से कृष्ण के साथ आनन्द मनाती हैं । मेरे भाग्य को धिक्कार है कि सखी राधा उस श्रीकृष्ण के सामने होने पर जड़ता को प्राप्त कर लुट रही है । (अर्थात् कृष्ण को सामने देखकर भी जड़ भाव से ठगी सी खड़ी है ।) ॥२८॥

ललिता—अइ लज्जालुए राहिए, अग्गदो एसो दे माणसहंस-हरो णाअरो। ता मा क्खु सज्झसेण विम्हला होहि। जं पगब्भदा जेव अज्ज कज्जसाहिणी। (इति राधिकां बलादिवाकृष्य कृष्णान्तिकमानीय च। संस्कृतेन।) (अयि लज्जालुके राधिके, अग्रत एष ते मानसहंसहरो नागरः। तस्मा खलु साध्वसेन विह्वला भव। यस्मात्प्रगल्भतैवाद्य कार्यसाधिनी।)

विदूरादालोक्य प्रबलतरतृष्णातरलितः
सखीचेतोहंसस्तव वदनपद्मे निपतितः।
अमदभ्रूपाशाभ्यां कितव समबध्नादिह भवान्
किमस्मासु न्याय्या व्यवसितिरियं ते विसदृशी ॥२६॥

कृष्णः—(स्मित्वा।) ललिते, मद्विधा नाबलार्थहारिणो भवन्ति।

विशाखा—धम्मिअ, सच्चं सच्चम्। भद्दकालितित्थकलम्बो उजेव्व अत्त पमाणम्। (धार्मिक, सत्यं सत्यम्। भद्रकालितीर्थकदम्ब एवात्र प्रमाणम्।)

कृष्णः—सखि ललिते, मद्विशुद्धौ कथं वः प्रतीतिः।

ललिता—अरी लजीली राधिके, तुम्हारे मानस हंस को चुराने वाला चतुर तुम्हारे आगे है। इसलिए डर से व्याकुल मत हो, क्योंकि अभी तुम्हारी प्रगल्भता (ढिठाई) ही कार्य सिद्ध करने वाली है।

(यह कह कर राधिका को जबर्दस्ती खींच कर और कृष्ण के समीप लाकर। संस्कृत में)।

दूर से देखकर अत्यधिक तृष्णा से चंचल सखी का मन रूपी हंस तुम्हारे मुख कमल पर गिर गया है। अरे भोलेबाल, तुमने यहाँ उस हंस को अपने चंचल भ्रूबन्धनों से बाँध लिया है। हम लोगों के प्रति तुम्हारा यह विपरीत व्यापार क्या उचित है? (अर्थात् अपनी आँखों का जादू डालकर हम लोगों को भटकाना तुम्हारे लिए अनुचित है॥ २६॥

कृष्ण—मेरे जैसे लोग अबलाओं की वस्तु को नहीं चुराते।

विशाखा—धार्मिक, सच है सच है, भद्रकालितीर्थ का कदम्ब-वृक्ष ही यहाँ पर प्रमान है।

कृष्ण—सखि ललिते, मेरी शुद्धि में तुम लोगों को कैसे विश्वास होगा?

ललिता—छइल्लपरिक्खाविहाणेण। (विदग्धपरीक्षाविधानेन।)

कृष्णः—वामे, कामं कथ्यतां परीक्षा। मम भ्राजिष्णुरयं कीर्तिशुभ्रांशुर्न मृषा कलङ्कीकर्तुं शक्यते।

ललिता—(संस्कृतेन।)

त्वमुन्नद्धे राधास्तनकनककुम्भान्तरमिल-
त्तनूजालीकालोरगयुवतिमूर्धप्रणयिनि।
यदि क्षोभोन्मुक्तः कलयसि करं नायकमणौ
ततस्ते ध्वस्ताङ्कः प्रचरति यशोमण्डलशशी॥ ३०॥

कृष्णः—(कृत्रिमं त्रासमभिनीय।) हन्त निष्ठुरे, नाम्नैव ललितासि। यदल्पीयसि तावदर्थे गरीयसीं सर्पघटाख्यां परीक्षामुपक्षिपसि।

राधिका—(सप्रणयेर्ष्यम्।) ललिदे, चिट्ठ चिट्ठ। (इति सभ्रूभङ्गमवलोकते।) (ललिते, तिष्ठ तिष्ठ।)

ललिता—परीक्षा के निपुण विधान द्वारा।
(अर्थात् अच्छी तरह तुम्हारी परीक्षा लूँगी)

कृष्ण—वामे, यथेष्ट परीक्षा कहो। (मेरी भरपूर परीक्षा ले लो) मेरे इस उज्ज्वल कीर्ति चन्द्र को मिथ्या कलंक नहीं लगा सकती हो।

ललिता—(संस्कृत में)

यदि तुम मानसिक क्षोभ से उन्मुक्त होकर राधा के स्तन रूपी स्वर्ण कलश के मध्य में मिलती हुई रोमावली रूपी नाग युवती के मस्तक के प्रेमी बँधे हुए हार के बीच के मुख्य मणि के ऊपर अपना हाथ रखते हो तो तुम्हारे यशसमूह रूपी चन्द्रमा का कलंक दूर हो सकता है। (अर्थात् राधा के कुच कलश के स्पर्श से ही तुम्हारा यश उज्ज्वल हो सकता है) ॥ ३० ॥

कृष्ण—(बनावटी भय दिखाकर) अरी कठोर, तुम नाम से ही ललिता हो जो साधारण अर्थ में ही महान् सर्पघटा नामक परीक्षा का उपक्षेप करती हो।

राधिका—(प्रेमपूर्वक ईर्ष्या से) ललिते, ठहरो ठहरो। (यह कहकर भौंहे चढ़ाकर देखती है)

ललिता—विसाहे, णट्ठघणुद्देसकारिणीं मं कीस तज्जति राहिआ। (विशाखे, नष्टघनोद्देशकारिणीं मां कस्मात्तर्जयति राधिका।)

विशाखा—ललिदे, इमाए हिअअट्ठिदं आऊदं मए जाणीअदि। (ललिते, अस्या हृत्स्थितमाकूतं मया ज्ञायते।)

ललिता—तं कधेहि। सुणिस्सम्। (तत्कथय। श्रोष्यामि।)

विशाखा—(संस्कृतमाश्रित्य।)

स्पृशन्तं यो मेघानघमनघकर्मा तमवधीद्
विषज्वालाजालोन्मदमदमयत्कालियमहिम्।
अकार्षीद्गोपेन्द्रद्रुहमजगरं दिव्यपुरुषं
भुजङ्गाचार्येऽस्मिन्किमिव घटते यन्नगघटः॥ २१॥

ललिता—(विहस्य) हला राधे, अप्पणो परिअररूवाए ण जाणासि महप्पं इमाए। पेक्ख। तह हि। (सखि राधे, आत्मनः परिकररूपाया न जानासि माहात्म्यमेतस्याः। पश्य। तथा हि।)

अवि गरुडस्स सिहामणिमुरगबहूगव्वहारिचिह्नदस्स।

ललिता—विशाखे, विनष्ट धन का संकेत करने वाली मुझ को राधा क्यों धमका रही है?

विशाखा—ललिते, मैं इसके हृदय के भाव को जानती हूँ।

ललिता—उसे कहो। सुनूँगी।

विशाखा—(संस्कृत का आश्रय लेकर)।

जिस अनघकर्मा (पापहारी कृष्ण) ने मेघों को स्पर्श करते हुए अघ नामक राक्षस का वध किया, जिसने विष की ज्वाला से उन्मत्त कालिय नाग का दमन किया, और जिसने गोपराज के शत्रु अजगर को दिव्य पुरुष बनाया, भुजङ्गों के आचार्य इस (कृष्ण) में क्या नहीं संभव है! अर्थात् इसके लिए सब संभव है॥ २१॥

ललिता—(हँसकर) सखि राधे, अपनी इस अनुचरी (रोमराजिसर्पिणी) की महिमा नहीं जानती हो। देखो, क्योंकि हे सखि, तुम्हारी नवीन रोमराजिरूपी

पहवइ सहि मोहेदुं तुह णअरोमाअलीभुअगी ॥ ३२ ॥

(अपि गरुडस्य शिखामणिमुरगवधूगर्वहारिविरुतस्य ।

प्रभवति सखि मोहयितुं तव नवरोमावलीभुजगी ॥)

राधिका—(सप्रणयरोषम् ।) अइ धिट्ठे ललिदे, एत्थ आणिअ मं विडम्बेसि । ता गदुअ बुड्ढिआणं गोईणं विण्णविस्सम् । (इति गन्तुमिच्छति ।) (अयि धृष्टे ललिते, अत्रानीय मां विडम्बयसि । तद्गत्वा वृद्धानां गोपीनां विज्ञापयिष्ये ।)

ललिता—अइ मुद्धे, णं साहुं चोरं वा जाणिअ जाहि । (इति पटाञ्चलमाददाति ।) (अयि मुग्धे, एनं साधुं चोरं वा ज्ञात्वा याहि ।)

कृष्णः—चण्डि ललिते, यद्यतो दुराग्रहान्न विश्रान्तासि, ततः करचारिणि परीक्षाम् । (इति राधामनुसर्पति ।)

ललिता—(विलोक्य ।) छइल्ल, चिट्ठ चिट्ठ । विण्णादं विण्णादम् । (इति संस्कृतेन ।) (विदग्ध, तिष्ठ तिष्ठ । विज्ञातं विज्ञातम् ।)

प्रारब्धे पुरतः परीक्षणविधौ त्रासानुविद्धस्य ते

खिन्नोऽयं करपल्लवस्तरलतां कम्पोद्गमैः पुष्यति ।

सर्पिणी सर्पवधू के अहंकार को दूर करने वाले गर्जन से युक्त गरुड के शिखामणि को भी मोह लेने में समर्थ है ॥ ३२ ॥

राधिका—(स्नेह मिश्रित क्रोध से) अरी ढीठ ललिते ! यहाँ लाकर मुझको ठगती है ? तो जाकर बूढ़ी गोपियों को सूचित कर दूँगी ।

ललिता—अरी भोली, इसको सज्जन अथवा चोर जानकर जाती हो ।

कृष्ण—कठोर ललिते, यदि हठ नहीं छोड़ती हो तो परीक्षा लूँ ? (राधा से दूर हट जाते हैं) ।

ललिता—(देखकर) चतुर, ठहरो ठहरो, समझ गयी समझ गयी । (संस्कृत में) ।

सामने परीक्षा कार्य प्रारम्भ होने पर भयभीत तुम्हारा यह खिन्न कर-किसलय कम्पन के उद्गम से चञ्चलता को पुष्ट कर रहा है । तुम्हारी मूर्ति मोर की पूँछ के समान-सघन-रोमाञ्च को धारण कर रही है । अतः तुम निश्चय ही चोरों की नगरी

रोमाञ्चं शिखिपिच्छचूडनिविडं मूर्तिश्च धत्ते ततो
ज्ञातस्त्वं ननु पश्यतोहरपुरोसाम्राज्यधौरेयकः ॥ ३३ ॥

कृष्णः—(संकुचन्नम्रीभूय ।) हन्त, धीगौरवं गौरीणां यदहमेव चौरीकृतोऽस्मि ।

ललिता—छइल्ल, दिट्ठिआ अप्पणो मुहेण अङ्गीकिदम् । (विदग्ध, दिष्ट्या आत्मनो मुखेनाङ्गीकृतम् ।)

कृष्णः—सखि, सौहृदेनोपदिश्यतां मे श्रेयसः पन्थाः, येनाहमपराधीभवन्न व्रजामि ।

ललिता—(संस्कृतमाश्रित्य ।)

गतानां राधायाः स्तनगिरितटे योगभगितो
विविक्ते मुक्तानां त्वमिह तरलीभूय तरसा ।
विशुद्धानां मध्ये प्रविश शरणार्थी सहृदया
भजन्ते साद्गुण्यादपि पृथुलदोषं हि पुरुषम् ॥ ३४ ॥

के साम्राज्य के आश्रय रूप में ज्ञात हुए हो । (अर्थात् लाँच के समय तुम डरकर घबड़ा गये हो अतः चोरों के सरदार मालूम पड़ते हो) ॥ ३३ ॥

कृष्ण—(लजाते हुए नम्र होकर) हा, गोपियों की बुद्धि का महत्त्व आश्चर्यजनक है जिससे मैं ही चोर बन गया हूँ ।

ललिता—चतुर, सौभाग्य से तुमने अपने मुँह से स्वीकार किया है ।

कृष्ण—सखि, मित्र-भाव से (सहृदयता से) मेरे कल्याण-मार्ग का उपदेश दो, जिससे हम अपराधी न बनें ।

ललिता—(संस्कृत का आश्रय लेकर) ।

राधा के स्तनरूपी पर्वत के तट पर चारों ओर से योगाभ्यास को प्राप्त हुए विशुद्ध मुक्त पुरुषों के बीच में शरणार्थी होकर प्रवेश करो, क्योंकि सज्जन सद्गुण के कारण स्थूल दोषयुक्त पुरुष का भी भजन (सेवन) करते हैं ॥ ३४ ॥

विमर्श—पर्वत पर ईश्वर की उपासना करने वाले विशुद्ध मुक्त पुरुषों के मध्य में आश्रयार्थी होकर जाने वाले स्थूल दोषयुक्त पुरुष की सज्जन सद्गुण

कृष्णः—सखि, साधूपदिष्टं त्वया। (इति सानन्दमुपसृत्य पाणौ राधां दधाति।)

राधिका—(सगद्गदम्।) सुन्दर, अजुत्तं तुज्भ एदम्। (इति पाणिमाच्छिद्य शाखिनां तिरोदधाति।) (सुन्दर, अयुक्तं तवेदम्।)

कृष्णः—(राधामप्रेक्ष्य। सशङ्कम्) हन्त ! सख्यौ, क वां प्रियसखी।

उभे—मोहण, णिरूविअ भणिस्सह। (इति शाखिपृष्ठमासाद्य।) हला राहि, णम्मसीलं कण्हं परिहसिदुं लद्धो ओसरो। ता क्खणं सावहित्था होइ। (मोहन, निरूप्य भणिष्यावः। सखि राधे, नर्मशीलं कृष्णं परिहसितुं लब्धोऽवसरः। तत्क्षणं सावहित्था भव।)

राधिका—(सव्याजं भ्रुवौ विभुज्य।) ललिदे, परिहसिदुं ति किं भणासि। जं ईरिसं साहसं ण क्खु मादिसीए जुत्तम्। ता पत्थिदम्हि। (ललिते, परिहसितुमिति किं भणसि। यदीदृशं साहसं न खलु मादृश्या युक्तम्। तत्प्रस्थितास्मि।)

(सत्संगति) के कारण सेवा करते हैं। तुम भी राधा के स्तनतटवर्ती मुक्तामाला का मध्यमणि होकर आश्रय खोजो। मुक्तामाला अच्छे सूत्र में गुँथी है। यदि तुम्हें वहाँ उसकी संगति मिल गयी तो तुम्हारा आदर भी लोग करेंगे।

कृष्ण—सखि, तुमने सुन्दर उपदेश दिया है। (यह कह कर और समीप जाकर राधा का हाथ पकड़ते हैं)।

राधिका—(गद्गद होकर) सुन्दर, तुम्हारा यह कार्य उचित नहीं है।

(यह कह कर हाथ छुड़ाकर वृक्षों की ओट में छिप जाती है)

कृष्ण—(राधा को नहीं देखकर शंका से) सखियो, तुम दोनों की प्रियसखी कहाँ है ?

दोनों—मोहन, देख कर कहेंगे। (यह कह कर वृक्ष के पीछे जाकर) सखि राधे, स्नेही कृष्ण के साथ उपहास (मजाक) करने का तुम को अवसर मिला है अतः एक क्षण मानसिक भावों को छिपाओ।

राधिका—(बहाना से भौंहों को टेढ़ी करके) ललिते, उपहास करने के लिए ऐसा क्या कहती हो, क्योंकि इस प्रकार का साहस हम जैसी के लिए अनुचित है, इसलिए जा रही हूँ।

ललिता—(कृष्णमभ्युपेत्य) चन्दाणण, अम्हपिअसही किं वि विण्णविदुकामावि भाएदि । (चन्द्रानन, अस्मत्प्रियसखी किमपि विज्ञापयितुकामापि बिभेति ।)

कृष्णः—सखि, न खल्वत्र वशावर्तिनि जने भीतिरवकाशं लभते । तन्निकाममाज्ञापयतु ।

ललिता—(संस्कृतमाश्रित्य ।)

चेतस्ताम्यति मे भयोर्मिभिरलं पाणिद्वयं कम्पते
कण्ठः सज्जति हन्त घूर्णति शिरः स्विद्यन्ति गात्राण्यपि ।
गोष्ठाखण्डल चण्डसाहसविधौ तेनास्मि नाहं क्षमा
यद्दूरादभिसारितो निशि भवानेतन्मम क्षाम्यतु ॥ ३५ ॥

कृष्णः—(स्वगतम् ।) न जाने नर्मतो धर्मतो वाऽयं गिरां गरिमा ।

राधिका—(किंचिदाविर्भूय ।) सहि, तुण्णं पत्थावेहि णम् । जाव

ललिता—(कृष्ण के पास आकर) चन्द्रमुख, मेरी प्रिय सखी कुछ कहना चाहती हुई भी डर रही है ।

कृष्ण—सखि, अधीनस्थ व्यक्ति में (इस प्रकार के) डर को अवसर नहीं मिलता अतः निश्चिन्त होकर स्वेच्छा से आदेश दो ।

ललिता—(संस्कृत का आश्रय लेकर) ।

मेरा मन भय की लहरों से अत्यधिक दुःखी हो रहा है, मेरे दोनों हाथ काँप रहे हैं, गला रूँध रहा है, शिर घूम रहा है । सम्पूर्ण शरीर पसीने से तर हो रहा है, अतः हे गोपेन्द्र, विकट साहस कार्य में मैं समर्थ नहीं हूँ इसलिए तुम रात में दूर से जो बुलाए गये हो, इसे क्षमा कर दो ।' (अर्थात् तुम रात में अभिसार के लिए आए हो किन्तु मेरा साहस नहीं होता है अतः मेरी असमर्थता पर ध्यान देकर मेरे इस अपराध को क्षमा कर दो) ॥ ३५ ॥

कृष्ण—(मन ही मन) वाणी की यह महिमा प्रेम से अथवा धर्म से है, यह नहीं जान पाता हूँ ।

राधिका—(कुछ बाहर निकल कर) सखि, शीघ्र इसे (कृष्ण को) भेज

कोवि ण पेक्खदि । (सखि, तूर्णं प्रस्थापयैनम् । यावत्कोऽपि न पश्यति ।)

कृष्णः—(सखेदमात्मगतम् ।) चपलप्रेमाणो हि बाला रमण्यः । तत्किमिवासंभाव्यं नाम । (प्रकाशम् ।)

त्वयाहूतः पार्श्वे प्रणयनिकुरम्बेण रभसा-
दसिद्धार्थो राधे भवितुमिह युक्तः कथमहम् ।
श्रियाकृष्टः कृष्णायसमणिरयस्कान्तशिलया
स्फुटं तामस्पृष्ट्वा भजति किमदूरे स्थगितताम् ॥ ३६ ॥

ललिता—गोउलाणन्द, राहिअं कीस उवालहेसि । णं धम्महदअं च्चेअ, उवालह, जो क्खु हदासो दोण्णं णिब्भराणुरत्ताणं अन्तरे पडिबन्धीहोदि । (गोकुलानन्द, राधिकां कस्मादुपालभसे । नूनं धर्महतकमेवोपालभस्व, यः खलु हताशो द्वयोर्निर्भरानुरक्तयोरन्तरे प्रतिबन्धीभवति ।)

कृष्णः—पश्य पश्य ।

दो, जब तक कोई नहीं देखता । (किसी के देखने से पहले यह चला जाय ।)

कृष्ण—(दुःख पूर्वक अपने आप) बाला स्त्रियों का प्रेम चञ्चल होता है अतः असंभव क्या है ! (चंचला के लिए सब सम्भव है) (प्रकट) हे राधे, स्नेह से तुमने मुझ को अपने पास बुलाया है, तो मैं यहाँ असफल कैसे बनूँ ? (प्रेम से बुलाकर निराश करना उचित नहीं है) अयस्कान्त शिला की शोभा से आकृष्ट कृष्णायसमणि उसका स्पर्श न कर क्या दूर में रुका रहता है । (अर्थात् जिस प्रकार कृष्णायसमणि अयस्कान्त शिला का स्पर्श करके उससे मिल जाता है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा स्पर्श करके तुम्हारे सम्पर्क में आऊँगा क्योंकि तुमने मुझे अपनी रूप माधुरी से आकृष्ट किया है ॥ ३६ ॥

ललिता—गोकुलानन्द, राधिका को क्यों उलाहना देते हो । दुष्ट धर्म को ही उपालंभ दो जो कि परस्पर प्रेमासक्त तुम दोनों प्रेमियों के बीच में बाधक बन रहा है । (अर्थात् तुम दोनों में परस्पर पर्याप्त अनुराग है किन्तु इस कार्य में धर्म बाधक हो रहा है ।

कृष्ण—देखो देखो ।

सखि निर्भरमनुरक्ताः प्रणयिनमनुयान्ति धर्ममपि हित्वा ।
इयमतिरागा प्राची चुम्बति विधुमिन्द्रनाथापि ॥३७॥

ललिता—तुम्हाणं उत्तरपउत्तरे को णाम पहवदि । ता इदो विजयेन्तु सामिपादा । (युष्माकमुत्तरप्रत्युत्तरे को नाम प्रभवति । तस्मादितो विजयन्तां स्वामिपादाः ।)

राधिका—(साकूतमनुसृत्य ।) ललिदे, अप्पणो मुहेण किंवि विण्णविअ णं णिवट्टाबइस्सम् । (इति ललितामवेक्ष्य संस्कृतेन ।) (ललिते, आत्मनो मुखेन किमपि विज्ञाप्यैनं निवर्तयिष्ये ।)

समन्तान्मे कीर्तिर्मुखरितसतीमण्डलमुखा
कलङ्केनोन्मुक्तं कुलमविकलश्रीरपि पतिः ।
चलच्चिल्लीलीलाजितमदनधन्वोद्धतिरयं
तदस्मिन्नारम्भे हृदयमफलं विक्लवयति ॥ ३८ ॥

कृष्णः—(राधां निरूप्य । सोच्छ्वासमात्मगतम् ।)

हे सखि, अत्यधिक प्रेमासक्त व्यक्ति धर्म को भी छोड़ कर प्रेमी का अनुसरण करते हैं। लालिमा युक्त यह पूरब दिशा इन्द्र की पत्नी होकर भी चन्द्रमा को चूम रही है ॥ ३७ ॥

ललिता—तुमसे उत्तर-प्रत्युत्तर कौन कर सकता है ? अतः आप यहाँ से प्रस्थान करें।

राधिका-(साभिप्राय अनुसरण करके) ललिते, अपने मुँह से कुछ सूचना देकर इसे लौटाऊँगी। (ललिता को देखकर।) (संस्कृत में)।

सती समूह के मुख से हमारा यश सर्वत्र फैला हुआ है। कुल कलंक से मुक्त है और स्वामी (पति) शोभा सम्पन्न हैं। चंचल भौंहों के विलास से कामदेव के धनुष के अहंकार को जीतने वाला यह (कृष्ण) इस प्रयास में हृदय को व्यर्थ ही कष्ट दे रहा है। (अर्थात् मेरे प्रति इसका अनुराग सार्थक नहीं है) ॥ ३८ ॥

कृष्ण—(राधा को देखकर। साँस लेकर अपने आप)

धावन्त्याः श्रुतिशष्कुलीपरिसरं सङ्गादपाङ्गश्रियो
धत्ते हीरककुण्डलं मरकतोत्तंसद्युतिं सुभ्रुवः ।
वागन्तःस्मितभाग्विभाति तदिदं शङ्के सखीशिक्षया
वैमुख्यं किल कृत्रिमं विलसति क्लान्तिं मनो मा स्म गाः ॥२९॥

ललिता—(कृष्णमुखमालोक्य । जनान्तिकम् ।) विसाहे, इङ्गिदेण लक्खेमि । उण्णीदं इमिणा अम्हाणं रहस्सम् । (विशाखे, इङ्गितेन लक्ष्ये । उन्नीतमनेनास्माकं रहस्यम् ।)

विशाखा—अध इम् । (अथ किम् ।)

कृष्णः—(सस्मितम् ।) ललिते, कृतमत्र वञ्चनचातुरीप्रपञ्चेन । नहि लूतया प्रसारितास्तन्तवो गन्धसिन्धुरस्य बन्धाय प्रभवन्ति ।

विशाखा—सहि राहे, णिप्फलं विलम्बसि । भत्ति किदत्थीकुण अप्पणो पिअजणम् । (सखि राधे, निष्फलं विलम्बसि । झटिति कृतार्थीकुर्वात्मनः प्रियजनम् ।)

कर्णकुहर के प्रान्तदेश तक दौड़ती हुई अपाङ्ग शोभा के सम्पर्क से सुन्दरी का हीरक कुण्डल मरकत मणि की छटा को धारण कर रहा है । वाणी के अन्दर मुस्कान की झलक है अतः मुझे शंका है कि सखी के कहने से (मेरे प्रति) इसकी विमुखता बनावटी ही लगती है इसलिए हे मन खेद मत करो ॥ २९ ॥

ललिता—(कृष्ण के मुख को देखकर । एकान्त में विशाखा से) विशाखे, चेष्टा (इशारा) से समझती हूँ कि इसने हम लोगों के रहस्य का अन्दाज पा लिया है ।

विशाखा—और क्या ?

कृष्ण—(मुस्कुराहट के साथ) ललिते, यहाँ धोखा देने की चतुराई के जाल को बिछाने की आवश्यकता नहीं । मकरी के द्वारा फैलाया गया सूत-जाल मत्त हाथी को बाँध सकने में समर्थ नहीं हो सकता । (अर्थात् मुझको ठगना आसान नहीं है)

विशाखा—सखि राधे, तुम बेकार देर करती हो । अपने प्रियजन को शीघ्र ही सफल मनोरथ करो ।

कृष्णः—(सानुरागम् ।)

कर्णद्वन्द्वमिदं रुतैरिह कुहूकण्ठस्य कुण्ठीकृतं
सद्यः कोमलभारतीपरिमलेनोल्लाघय श्लाघया ।
निःशङ्कं किल शीतलीकुरु परीरम्भेण रम्भोरु मे
गम्भीरस्मरवह्नितापलहरीपात्राणि गात्राण्यपि ॥४०॥

विसाहा—सुन्दर, एसा भअवदी लज्जा ज्जेव्व राहिआरूवेण ओत्तिण्णा। ता जाव णं चाडुवन्धेण संमुहीकदुअ समप्पेम्हि ताव भवन्तेण सोम्मसीअलवुत्तिणा होदव्वम्। (सुन्दर, एषा भगवती लज्जैव राधिकारूपेणावतीर्णा । तस्माद्यावदेनां चाटुबन्धेन संमुखीकृत्य समर्पयामि तावद्भवता सौम्यशीतलवृत्तिना भवितव्यम् ।)

कृष्णः—(सादरम् ।)

अयमत्र निसर्गशीतलः सखि राधाकुचयोरवस्थितिम् ।
नवकाञ्चनकुम्भयोरहं स्फुरदिन्दीवरदामवद् भजे ॥४१॥

कृष्ण—(प्रेम से)

सुन्दरि, यहाँ कोयल की कूकों से मेरे दोनों कान बहरे हो गये हैं। अतः इसी क्षण मधुर वचन के मकरन्द से इनके रोग को दूर करो। कामदेव की भीषण अग्निज्वाला के तरंगों के पात्र मेरे शरीर के अवयवों को भी निःशंक आलिङ्गन से शीतल करो। (अर्थात् कोयल की कूक और मदनाग्नि की ज्वाला से मेरा अंग-अंग झुलस रहा है अतः अपने मधुर वचन और गाढ़ आलिंगन से इसे शीतल करो।) ॥ ४० ॥

विशाखा—सुन्दर, यह भगवती लज्जा ही राधिका के रूप में उतरी है अतः जब तक पुचकार कर इसे सामने लाऊँ, तब तक आप शान्त भाव से रहें।

कृष्ण—(आदर पूर्वक)

यहाँ स्वभावतः शीतल यह मैं राधा के दोनों स्तनों के मध्य में, दो नवीन स्वर्ण कलशों में खिलते हुए कमल की माला की भाँति निवास चाहता हूँ ॥४१॥

(इति मन्दं मन्दं राधामुपसर्पति ।)

राधिका—(किञ्चिदपसृत्य ।) सहि विसाहे, सुट्ठु भीदम्हि । ता किंति मं उवेक्खसि । (सखि विशाखे, सुष्ठु भीतास्मि । तस्मात्किमिति मामुपेक्षसे ।)

ललिता—राहे, एसा विसाहेति विक्खीदा कधं तुमं पच्छादिअ रक्खिदुं पहवदु । ता रक्खणक्खमं णं वणमालिअं ज्जेव भजेहि, जं एसा आअड्ढिदसिलीमुहा दीसइ । (राधे, एषा विशाखेति विख्याता कथं त्वां प्रच्छाद्य रक्षितुं प्रभवतु । तद्रक्षणक्षमामेनां वनमालामेव भज, यदेषाकृष्टशिलीमुखा दृश्यते ।)

राधिका—(सप्रणयरोषम् ।) अइ दुम्मुहि ललिदे, सिद्धा ज्जेव तुन्द मणोरहा । तधावि ण णिवुत्तासि । (अयि दुर्मुखि ललिते, सिद्धा एव तव मनोरथाः । तथापि न निवृत्तासि ।)

विशाखा—हला राहि, सव्वाणं गोउलजणाणं अभअदाणसत्ते दीक्खिदो कण्हो । ता इदो किं ति भाएसि । (हला राधे, सर्वेषां गोकुलजनानामभयदानसत्रे दीक्षितः कृष्णः । तस्मादितः किमिति भीतासि ।)

कृष्णः—सुन्दरि राधे, त्वमेव सुष्ठु बलिष्ठासि । ततः कथं मत्तस्त्व

(यह कह कर धीरे-धीरे राधा के समीप जाते हैं)

राधिका—(कुछ हटकर) सखि विशाखे, मैं बहुत डर गयी हूँ अतः मेरी उपेक्षा क्यों करती हो ?

ललिता—राधे, यह 'विशाखा' इस नाम से प्रसिद्ध हैं तो तुमको छिपाकर (ढँककर) कैसे बचा सकती है ? अतः रक्षा करने में समर्थ इस वनमाला की ही सेवा करो, जो यह भौंरा को आकृष्ट करने वाली दीख पड़ती है । (अर्थात् इसी माला ने कृष्ण को यहाँ तक खींच लाया है)

राधिका—(प्रेममिश्रित क्रोध से) अरी दुष्ट मुख वाली ललिते, तुम्हारी अभिलाषाएँ तो पूरी हो गयीं फिर भी चैन नहीं लेती हो ।

विशाखा—अरी राधे, सभी गोकुलवासियों को अभय देने के यज्ञ में कृष्ण दीक्षित हैं अतः यहाँ भयभीत क्यों हो । (कृष्ण के पास जाने में कोई डर नहीं है ।)

कृष्ण—सुन्दरि राधे, मेरी अपेक्षा तुम्हीं बलवती हो, अतः मुझसे तुमको डर

भीतिः । तथा हि ।

अहीनो भ्रूगुच्छः कुटिलवलनैर्वेष्टयति मां
खरस्ते नेत्रान्तो मयि वितनुते ताडनविधिम् ।
प्रलम्बः केशान्तो हरति हठवृत्त्या मम बलं
भजद्भिस्त्वामेतैरहमिह जितैरस्मि विजितः ॥४२॥

ललिता—कण्ह, कुदो इमाए वलिट्ठत्तणं जं अप्पणो धणं तुअत्तो मोआविदुं ण समत्था । (कृष्ण, कुत एतस्या बलिष्ठत्वं यदात्मनो धनं त्वत्तो मोचयितुं न समर्था ।)

विशाखा—(संस्कृतेन ।)

बिधत्ते कंसारिः सखि परमहंसालिषु रतिं
मनोहंसेन्द्रं ते कथमपि न निर्मोच्यति ततः ।

कैसा ? क्योंकि—तुम्हारा भ्रू गुच्छ रूपी कालिय नाग अपने कुटिल लपेटों से मुझे लपेट रहा है । कटाक्ष रूपी धेनुक मेरे ऊपर प्रहार करने का उपक्रम कर रहा है । वेणी रूपी प्रलम्ब हठपूर्वक मेरी शक्ति को छीन रहा है । इस प्रकार यहाँ पहले मेरे द्वारा जीते गये भी कालिय प्रभृति असुर इस समय तुम्हारी सेवा करते हुए मुझ को जीत लिए हैं ॥ ४२ ॥

विमर्श—पहले श्री कृष्ण ने कालिय, धेनुक और प्रलम्ब नामक असुरों को पराजित किया था । वे ही सम्प्रति कृष्ण से बदला लेने के लिए राधा के भ्रूगुच्छ आदि के रूप में आकर कृष्ण को पराजित कर रहे हैं । इस श्लोक में कृष्ण ने राधा के भ्रूगुच्छ पर कालिय नाग का, कटाक्ष पर धेनुक का और वेणी पर प्रलम्ब नामक असुर का आरोप किया है ।

ललिता—कृष्ण इसकी बल शालिता कहाँ है जो कि अपने धन को भी तुम से छुड़ा नहीं पाती ।

विशाखा—(संस्कृत में)

हे सखि, कंस का शत्रु यह कृष्ण श्रेष्ठ हंसों की पंक्तियों में (भक्त श्रेणियों में) स्नेह करता है, अतः तुम्हारे मन रूपी हंसराज को कभी भी नहीं छोड़ेगा । तुम

बधानामुं सद्यस्त्वमपि भुजवल्लीविलसितैः
शठे कः क्षेमार्थी सुमुखि नहि शाठ्यं घटयति ॥४३॥

राधिका—(साभ्यसूयम् ।) पावे विसाहिए, तुमं वि ललिदाए विसलदाए मारुदेण दूसिदासि । (पापे विशाखे, त्वमपि ललिता विषलताया मारुतेन दूषितासि ।)

कृष्णः—सखि ललिते, स्वप्रसादामृते काममदत्तावगाहनया कथमद्यापि तटस्थीकृतोऽस्मि राधया ।

ललिता—कण्ह, मुञ्च चातुरीवित्थारम् । ण क्खु चन्दाअली विअ झत्ति वाअमेत्तएण सुलहप्पसादा अम्ह पिअसही । (कृष्ण, मुञ्च चातुरीविस्तारम् । न खलु चन्द्रावलिरिव झटिति वाङ्मात्रेण सुलभप्रसादास्मत्प्रियसखी ।)

कृष्णः—कथं सुलभस्ते सखीप्रसादः ।

ललिता—सेआसंताणेण । (सेवासंतानेन ।)

कृष्णः—(सानन्दम् । राधां पश्यन् ।)

भी शीघ्र ही अपनी भुजलता के विलासों से इसे बाँध लो । हे सुमुखि, कल्याण का अभिलाषी ऐसा कौन व्यक्ति है जो शठ के प्रति शठता नहीं करता है ? ॥ ४३ ॥

राधिका—(क्रोधपूर्वक) दुष्ट विशाखे, तुम भी विषलता ललिता की हवा से दूषित हो गयी हो ? ।

कृष्ण—सखि ललिते, अपनी प्रसन्नता के अमृत में स्वेच्छया स्नान नहीं करने देने वाली राधा के द्वारा मैं अब भी क्यों तटस्थ बनाया गया हूँ ? (अर्थात् राधा अब तक मुझ पर प्रसन्न क्यों नहीं हो रही है ?)

ललिता—कृष्ण, अधिक चतुरता मत दिखाओ । मेरी प्रिय सखी चन्द्रावली की भाँति केवल वचन से ही प्रसन्न होने वाली नहीं है ।

कृष्ण—तुम्हारी सखी की प्रसन्नता किस प्रकार सुलभ है ?

ललिता—सेवा की परम्परा द्वारा ।

कृष्ण—(आनन्दपूर्वक राधा को देखते हुए)

किं चन्दनेन कुचयो रचयामि चित्र-
मुत्तंसयामि कवरीं तव किं प्रसूनैः ।
अङ्गानि लङ्गिमतराङ्गि करेण किं वा
संवाहयाम्यतनुखेदकराण्यितानि ॥ ४४ ॥

राधिका—(सलीलमपक्रम्य । साङ्गुलितर्जनम्) पामरि, सुमरीस्ससि ओसरे। ता एसा घरं गच्छन्ती जिम्हाणं तुम्हाणं हत्थादो अप्पाणं मोआवइस्सम् । (पामरि, स्मरिष्यस्यवसरे । तदहं गृहं गच्छन्ती कुटिलानां युष्माकं हस्तत आत्मानं मोचयिष्यामि ।)

ललिता—(पटाञ्चलमाकृष्य ।) सहि राहि, याहि न घरं परहत्थे पत्थिदम्हि णिअहंसे । अइ बहिरे, हिरण्णं देसि । कुदो अञ्चले गण्ठिम् । (सखि राधे, याहि न गृहं परहस्ते प्रस्थितास्मि निजहंसे । अयि बधिरे, हिरण्यं ददासि । कथमञ्चले ग्रन्थिम् ।)

राधिका—मुञ्च मुञ्चाञ्चलम् । इदो गदुअ अज्जिअं विण्णविस्सम् । (मुञ्चाञ्चलम् । इतो गत्वार्यां विज्ञापयिष्यामि ।)

हे सुन्दरि, क्या चन्दन से तुम्हारे स्तनों पर चित्र बनाऊँ, क्या फूलों से तुम्हारे केशभार को सजाऊँ अथवा अत्यधिक क्लेश युक्त तुम्हारे अंगों का हाथ से मालिश कर दूँ ? ॥ ४४ ॥

राधिका—(लीलापूर्वक दूर हट कर । अंगुली उठाकर धमकाती हुई) दुष्टे, समय पर याद करोगी । तो घर जाती हुई मैं तुम लोगों के हाथ से अपने को मुक्त करूँगी

ललिता—(साड़ी का छोर (आँचल) खींचकर)

सखि राधे, घर नहीं जाओ (क्योंकि) अपने हंस (प्रियतम) के हाथ में चली हूँ । अरी बहिरी, सोना दे रही हो (तो) आँचल में गाँठ क्यों (दे रही हो) (अर्थात् हे राधे, हम लोग प्रियतम कृष्ण से मिलने आये हैं । तुमने अपना हृदय उसे दे दिया है । अब तुम्हारा घर जाना उचित नहीं है ।)

राधिका—आँचल छोड़ो छोड़ो । यहाँ से जाकर आर्या को बता दूँगी ।

(नेपथ्ये)

हन्त णच्चिणि ललिदे, कहिं दे पिअसही राहिआ । (हन्त नर्त्ति ललिते, कुत्र तव प्रियसखी राधिका ।)

ललिता—हन्त, एसा अज्जिआ मुहरा इध ज्जेव्व आअच्छदि । (हन्त, एषा आर्या मुखरा इत एव आगच्छति ।

(प्रविश्य ।)

कृष्णः—(सशङ्कम् ।) ततो दवीयान्भवामि । (इति तथा स्थितः ।)

मुखरा—(पुरो दृष्टिं निक्षिप्य साशङ्कमात्मगतम् ।) जो क्खु दूरदो कोवि णीलिमपुञ्जो मरगअत्थम्भं विडम्बन्तो दिट्ठिं मे आअट्ठइ, णूणं सो एसो कण्हो भवे । जं अउव्वं किं पि सोरब्भं पसप्पइ । (इति कृष्णान्तिकमनुसर्पति ।) (यः खलु दूरतः कोऽपि नीलिमपुञ्जो मरकतस्तम्भं विडम्बयन्दृष्टिं मे आकर्षति, नूनं स एष कृष्णो भवेत् । यदपूर्वं किमपि सौरभ्यं प्रसर्पति ।)

कृष्णः—आर्ये-(इत्यर्धोक्ते ।)

मुखरा—(सकपटाक्रोशम् ।) को क्खु अज्जेति खुलखुलवेदि । (कः खल्वार्येति खुडखुडायते ।)

(नेपथ्य में)

अरी नतिनी ललिते, तुम्हारी प्रियसखी राधिका कहाँ है ?

ललिता—हाय, यह आर्या मुखरा इधर ही आ रही है ।

कृष्ण—(शंकापूर्वक) तो दूर हो जाता हूँ । (दूर हट कर खड़े रहते हैं)

(प्रवेश करके)

मुखरा—जो कोई नीलिम समूह दूर से मरकत के खँभे की विडम्बना (अनुकरण) करता हुआ मेरी दृष्टि को खींच रहा है, अवश्य ही वह यह कृष्ण ही होगा । क्योंकि कोई विलक्षण सुगन्धि फैल रही है ।

(यह कह कर कृष्ण के समीप जाती है)

कृष्ण—आर्ये-(इतना आधा कहने पर)

मुखरा—(कपट पूर्वक क्रोध से) कौन 'आर्ये' ऐसा बोल रहा है ?

कृष्णः—आर्ये मुखरे, सुखं वर्धसे।

मुखरा—मोहण, जाव तुह वंसिआए मुअत्तणं ण संवुत्तं ताव कुदो अम्हाणं सुहम्। (मोहन, यावत्तव वंशिकाया मुग्धत्वं (मूकत्वं) न संवृत्तं तावत्कुतोऽस्माकं सुखम्?)

कृष्णः—आर्ये, किं तेऽपराध्यति वंशी।

मुखरा—पुच्छ इमाओ सव्वगोउलवालिआओ जाओ कण्णसीमं पविसत्तम्मि वंसिआफुक्कारम्भे वारंवारं णिवारिज्जन्तीओ वि वणे धाअन्ति। (पृच्छ इमाः सर्वगोकुलबालिका याः कर्णसीमां प्रविशति वंशिकाफूत्कारारम्भे वारंवारं निवार्यमाणा अपि वने धावन्ति।)

कृष्णः—(विहस्य।) मुखरे, सत्यं यथार्थनामासि।

मुखरा—मोहण, पदोसे तुज्झ एत्थ पवेसो मं सङ्काउलं करेदि। (मोहन, प्रदोषे तवात्र प्रवेशो मां शङ्काकुलां करोति।)

कृष्णः—मुखरे, कृतमत्र शङ्कया। यदद्य पौर्णमास्या मे वर्णितं तवात्र चत्वराङ्के चङ्क्रमीति काप्यद्भुता हरिणीति।

कृष्ण—आर्ये मुखरे, सुख से बढ़ रही हो? (कुशल है?)

मुखरा—मोहन, जब तक तुम्हारी मुरली चुप नहीं होती तब तक हम लोगों को सुख कहाँ?

कृष्ण—आर्ये, वंशी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

मुखरा—गोकुल की इन बालिकाओं (गोपियों) को पूछो, जो कि तुम्हारी वंशी के बजाने की आवाज कान में पड़ते ही बार-बार रोकने पर भी जंगल में दौड़ पड़ती हैं।

कृष्ण—(हँसकर) सचमुच तुम्हारा नाम सार्थक है।

मुखरा—मोहन, सायंकाल तुम्हारा यहाँ आना मुझको शंका से व्याकुल बना रहा है।

कृष्ण—मुखरे, यहाँ शंका मत करो। क्योंकि पौर्णमासी ने मुझे यह बताया है कि यहाँ तुम्हारे आँगन में कोई विचित्र हरिणी (मृगी) विहार करती है।

मुखरा—णाअर पहादे पेच्छिस्ससि णं दाणिं साहेहि। (नागर, प्रभाते प्रेक्षिष्यसे। एनामिदानीं साधय।)

कृष्णः—हन्त वृद्धे गड्डरविषाणकठोरे, विश्रब्धमास्यताम्। एषोऽहं व्रजामि। (इति शाखिनामन्तर्दधाति।)

मुखरा—ललिदे, सच्चं गदो कण्हो। (ललिते, सत्यं गतः कृष्णः।)

ललिता—अध इम्। (अथ किम्)।

कृष्णः—(स्वगतम्।) घूर्णाकुलेयं जरती। तदत्र तूष्णीमेत्य राधापटमाकर्षयामि। (इति तथा करोति।)

मुखरा—(चक्षुषी विकास्य साक्रोशम्।) धट्ठि ललिदे, अग्गदो एसो पीदम्बरो कण्हो राहीसाडिअअञ्चलं आअड्ढन्तो विअ दीसइ। ता कीस तुमं मं पदावेसि। (धृष्टे ललिते, अग्रत एष पीताम्बरः कृष्णो राधाशाटिकाञ्चलमाकर्षन्निव दृश्यते। तत्कथं त्वं मां प्रतारयसि।)

(कृष्णः सशङ्कं किंचिदपसर्पति।)

ललिता—(स्वगतम्।) रत्तिअन्धिअं णं वुड्ढिअं वञ्चेमि। (प्रका-

मुखरा—चतुर, इसे प्रातः काल देखना। अभी जाओ।

कृष्ण—अरी भेंड़ के सींग के समान कठोर बूढ़े, विश्वास पूर्वक बैठो। यह मैं जाता हूँ। (वृक्षों के बीच छिप जाते हैं)

मुखरा—ललिते, सचमुच कृष्ण चला गया?

ललिता—और क्या।

कृष्ण—(अपने आप) यह बूढ़ी नींद से व्याकुल है। इसलिए यहाँ चुपचाप राधा की साड़ी खींचता हूँ। (छिपकर राधा की साड़ी खींचते हैं)

मुखरा—(दोनों आँखें फैलाकर क्रोध से) ढीठ ललिते, आगे से ही पीताम्बरधारी कृष्ण राधा की साड़ी को खींचता हुआ सा दीख रहा है। तो तुम मुझे धोखा क्यों दे रही हो?

(कृष्ण शंका पूर्वक कुछ पीछे हट जाते हैं)

ललिता—(अपने आप) रात में अन्धी इस बूढ़ी को ठगती हूँ। (प्रकट।

दाम् । सक्रोधमभिनीय । संस्कृतेन ।) (सक्रोधमभिनीय । संस्कृतेन ।)

मुधा शङ्कापन्ने जरति कुरुषे यामुनतटे
तमालोऽयं चामीकरकलितमूलो निवसति ।
समीरप्रेङ्खोलादतिचटुलशाखाभुजतया
वयस्याया येन स्तनवसनमास्फालितमभूत् ॥ ४५ ॥

मुखरा—(स्वगतम् ।) अवगदं ण कहिद । (प्रकाशम् ।) वच्छे, घुम्माअत्तम्हि । ता घरं गदुअ सुविस्सम् । (इति निष्क्रान्ता ।) (अवगतं न कथयति । वत्से, घूर्णाकुलास्मि । तस्माद्गृहं गत्वा स्वप्स्यामि ।)

विशाखा—हला राहि, कण्हस्स मुहमण्डलुम्मीलिदं घम्मजलबिन्दुजालं णिअणाडिअअञ्चलेण अवणेहि । (हला राधे, कृष्णस्य मुखमण्डलोन्मीलितं घर्मजलबिन्दुजालं निजशाटिकाञ्चलेनापनय ।)

राधिका—(सभ्रूभङ्गम् ।) विसाहे, तुमं जेव अवणेहि, जा क्खु आकोमारं इमस्सिं कज्जे गहीददिक्खासि (विशाखे, त्वमेवापनय, या खल्वाकौमारमस्मिन्कार्ये गृहीतदीक्षासि ।)

क्रोध दिखाकर । संस्कृत में)

हे अन्धी बूढ़ी, तुम व्यर्थ सन्देह करती हो । यमुना के किनारे स्वर्ण निर्मित जड़ वाला यह तमाल वृक्ष रहता है, जिसने हवा के झोंके से अति चंचल शाखा रूपी भुजा से इस सखी के स्तनप्रदेश के वस्त्र को (आँचल को) हिलाया है ॥ ४५ ॥

मुखरा—(मन ही मन) सच नहीं कहती है । (प्रकट) बेटी, नींद से परेशान हूँ । अतः घर जाकर सोऊँगी । (यह कहकर चली जाती है)

विशाखा—सखि राधे, कृष्ण के मुखमण्डल पर निकलते पसीने की बूँद के समूह को अपनी साड़ी के छोर से पोंछ दो ।

राधिका—विशाखे, तुम्हीं पोंछ दो न, जो कि बचपन से ही इस काम में दीक्षा पा चुकी हो ।

विशाखा—राधे, कण्ठट्ठिदा दे रङ्गणमालिआ भणादि । मा कुप्प । तुमं वि तह दिक्खाविहाणे कारिज्जन्तसंकल्पासि । (राधे, कण्ठस्थिता ते रङ्गणमाला भणति । मा कुप्य । त्वमपि तत्र दीक्षाविधाने कार्यमाणसंकल्पासि ।)

कृष्णः—(रङ्गणमालां दृष्ट्वा सश्लाघम् ।)

शङ्के चिरात्किमपि रङ्गणपुष्पसङ्घः
पुण्यं पुरा परमतीर्थवरे व्यधत्त ।
यस्मान्ममाप्यसुलभे मदिराक्षि साक्षा-
दङ्गीचकार तव वक्षसि सङ्गसौख्यम् ॥ ४६ ॥

राधिका—हला विसाहे, जा क्खु मह कण्ठादो बलेण आअड्ढिअ णीदा तुए अणग्घा गुञ्जाअली सा दाणीं समप्पीअदु । एसा सुक्खा अप्पणो रङ्गणमालिआ गेण्हीअदु । (हला विशाखे, या खलु मम कण्ठतो बलेनाकृष्य नीता त्वयानर्घा गुञ्जावली सेदानीं समर्प्यताम् । एषा शुष्का आत्मनो रङ्गणमाला गृह्यताम् ।)

विशाखा—गोउलाणन्द, गुञ्जाहारकिदे मह कुप्पदि पिअसही । (गोकुलानन्द, गुञ्जाहारकृते मह्यं कुप्यति प्रियसखी ।)

विशाखा—राधे, गले में विराजमान तुम्हारी वनमाला कह रही है । "क्रोध मत करो । तुम भी इस कार्य में दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय करने वाली हो" ।

कृष्ण—(वनमाला को देखकर श्लाघापूर्वक) मुझे यह सन्देह है कि इस वनमाला ने पहले बहुत दिनों तक श्रेष्ठ तीर्थ में पुण्य किया है जिससे हे सुनयने, मुझको भी आसानी से नहीं मिलने वाले तुम्हारे वक्षःस्थल के संगम सुख को प्रत्यक्ष प्राप्त किया है ॥ ४६ ॥

राधिका—सखि विशाखे बलपूर्वक मेरे गले से खींच कर तुमने जिस अमूल्य गुञ्जावली को ले लिया है, उसे अभी मुझे लौटा दो । अपनी यह सूखी वनमाला ले लो ।

विशाखा—हे गोकुल के आनन्ददाता, प्रिय सखी राधा गुञ्जाहार के लिए मुझ पर नाराज होती है ।

कृष्णः—राधे, संनिधेहि। तव कण्ठे गुञ्जावलीमादधामि। (इत्युपसर्पति।)

राधिका—(सस्मितमात्मगतम्।) गुञ्जाहारसमप्पणमिसेण राहिककञ्चुअअञ्चलं पडसदि कण्हो। (गुञ्जाहारसमर्पणमिषेण राधाकञ्चुकाञ्चलं स्पृशति कृष्णः।)

(राधिका सभ्रूविक्षेपं परावर्तते।)

विशाखा—हला राहे, जं लद्धुं उक्कण्ठेसि तं क्खु लद्धासि। (हला राधे, यं लब्धमुत्कण्ठितासि तं किं खलु लब्धासि।)

राधिका—(बिम्बाधरं संदश्य।) धिट्ठे, चिट्ठ चिट्ठ। (इति लीलारविन्देन तोडयति।) (धृष्टे, तिष्ठ तिष्ठ।)

विशाखा—(विहस्य।) स्वअमासङ्किणि, मा कुप्प। कुप्प। गुञ्जाहारं पुच्छेमि। (स्वयमशङ्किनि, मा कुप्य। गुञ्जाहारं पृच्छामि।)

कृष्ण :—

क्व तपस्तथा ममास्ते लीलाम्बुजहतिमवाप्नुयां येन।
मां चञ्चलेन ताडय लोचनकमलाञ्चलेनापि॥ ४७॥

कृष्ण—राधे, समीप आओ। तुम्हारे गले में गुञ्जावली को पहनाता हूँ। (समीप जाते हैं)

राधिका—(मुस्कराकर मन ही मन)
गुञ्जाहार लौटाने के बहाने कृष्ण राधा की चोली का छोर छूता है।

(राधिका भौंहे टेढ़ी कर लौट जाती है)

विशाखा—सखि राधे, जिसको पाने के लिए इतनी उतावली हो, क्या उसे पा गयी?

राधिका—(ओठ काटकर) ढीठ ठहरो ठहरो। (यह कह कर कमल से मारती है)

विशाखा—(हँसकर) अरी खुद शंका करने वाली क्रोध मत करो। मैं तो गुञ्जाहार के विषय में पूछती हूँ।

कृष्ण—मेरी वैसी तपस्या कहाँ कि मैं लीला-कमल की मार खा सकूँ। मुझको तो चञ्चल नेत्र कमल के छोर (कटाक्ष) से भी मारो॥ ४७॥

ललिता—

हरिणो समप्पिअ तणुं किविणासि कधं दरावलोअम्मि ।
दिण्णे चिन्तारअणे ण संपुडम्मि ग्गहो जुत्ती ॥५५॥

(हरये समर्प्य तनुं कृपणासि कथं दरावलोके ।
दत्ते चिन्तारत्ने न संपुटे आग्रहो युक्तः ॥)

राधिका—ललिदे, एव्वं जप्पन्ती गुरुलोएसु मा क्खु इमं जणं अवरद्धं करेहि । (ललिते, एवं जल्पन्ती गुरुलोकेषु मा खल्विदं जनमपराद्धं कुरु ।)

विशाखा—सहि, कीस सङ्कसि । णं भअवदी जेव्व एत्थ समाहाणदक्खा । (सखि, कथं शङ्कसे । ननं भगवत्येवात्र समाधानदक्षा ।)

ललिता—(सहर्षमात्मगतम् ।) दिट्ठिआ पिअसहि हसिदपिङ्गितरङ्गेण कण्हं आलिङ्गदि । (दिष्ट्या प्रियसखी हसितापाङ्गतरङ्गेण कृष्णमालिङ्गति ।)

विशाखा—(संस्कृतेन ।) ललिते पश्य पश्य ।

शशी व्योमोत्सङ्गं शशिनमभितः कान्तिलहरी

ललिता—हरि (कृष्ण) को अपना शरीर समर्पित करके जरा देखने में क्यों कृपण हो । चिन्तामणि को दे देने पर सम्पुट में आग्रह उचित नहीं है ॥ ४८ ॥

(अर्थात् जब कृष्ण पर अनुरक्त हो तो उन्हें भर आँख देखने में हिचक क्यों रही हो ?)

राधिका—ललिते, इस प्रकार बोलती हुई तुम गुरुजनों में इस व्यक्ति को अपराधी मत बनाओ ।

विशाखा—सखि, शंका क्यों करती हो ? भगवती पौर्णमासी ही यहाँ पर इसका समाधान करने में निपुण हैं ।

ललिता—(खुशी से अपने आप) सौभाग्य से प्यारी सखी (राधा) प्रसन्न नेत्र के प्रान्त भाग (कटाक्ष) से कृष्ण का आलिंगन कर रही है ।

विशाखा—(संस्कृत में) ललिते, देखो देखो । चन्द्रमा ने आकाश की

पुरोवृन्दारण्यं सुमुखि सहसा कान्तिलहरीम् ।
हरिर्वृन्दारण्यं हरिमपि किलेयं तव सखी
सखीं प्रेम्णः पूरो निजसुपमयामण्डयदयम् ।। ४९ ।।

ललिता—हद्धी हद्धी । विसाहे, पेक्ख ससिकन्तमणिपसूदेहिं जलपूरेहिं सूरपूअणवेईपुरदो किदाइं विलुप्पीअन्ति अलेवणमण्डलाइं । ता एहि । णं पुप्फकेआरिअं णेम्ह । (हा धिक् हा धिक् । विशाखे, पश्य शशिकान्तमणिप्रसूतैर्जलपूरैः सूर्यपूजनवेदीपुरतः कृतानि विलुप्यन्त आलेपनमण्डनानि । तदेहि । एतान्पुष्पकेदारिकां नयामः ।)

(इत्युभे निष्क्रान्ते ।)

कृष्णः—प्रिये, नेदानीमपि वाम्याद्विरामस्ते । (इत्यञ्चलं गृह्णाति ।)

राधिका—मुञ्चेहि मुञ्चेहि । सहीओ मं आआरेन्ति । (मुञ्च मुञ्च । सख्यौ मामाह्वयतः ।)

कृष्णः—कठोरे, मय्यत्र माङ्गीकुरु भङ्गुरताम् ।

राधिका—(सस्मितम् ।) देइ सरस्सइ, वन्दिज्जसि जं सच्चा ज्जेव

गोद को, कान्तिलहरी ने चन्द्रमा को, वृन्दावन ने कान्तिलहरी को, हरि ने वृन्दावन को, तुम्हारी प्रिय सखी राधा ने हरि को और प्रेम के इस प्रवाह ने राधा को अपनी शोभा से विभूषित किया है ।। ४९ ।।

ललिता—हाय हाय, विशाखे, देखो । चन्द्रकान्तमणि से निकले हुए जल प्रवाहों से सूर्यपूजनवेदिका के आगे आलेपनमण्डन मिट रहे हैं अतः आओ । इन जल प्रवाहों को फूलों की क्यारी में ले चलें ।

(यह कह कर दोनों चली जाती हैं)

कृष्ण—प्रिये, तुम अभी भी विमुखता से दूर नहीं हुई हो ?

(यह कह कर आँचल पकड़ते हैं)

राधिका—छोड़ो छोड़ो । सखियाँ मुझे बुला रही हैं ।

कृष्ण—कठोरे, मुझमें वक्रता स्वीकार न करो (मेरे प्रति सरल बनो) ।

राधिका—(मुस्कान के साथ) देवि सरस्वति, वन्दना करती हूँ कि तुम

पञ्अडासि। (देवि सरस्वति, वन्यसे सत्यैव प्रकटासि।)

कृष्णः—(किंचिद्विहस्य।)

पद्मिन्यास्ते सुमुखि परमप्रेमसौरभ्यपूरो
दूरोत्सर्पी मदवधि मुदा कृष्णभृङ्गेण भेजे।
आक्रान्तोऽयं तव नवमुखाम्भोजमाध्वीकपान-
प्रत्याशाभिस्तदवधि रुवन्संभ्रमी बम्भ्रमीति ॥ ५० ॥

किंच।

मुक्तानामुपलभ्यमेव कुचयोः सालोक्यमालोक्य ते
हित्वा संगमहंसमस्तसुहृदां कैवल्यमासेदिवान्।
वैषम्यं तिलमप्यनाश्रितवतोः सान्द्रामृतस्यन्दिभि-
र्मां पूर्णं कुरु तन्वि तूर्णमनयोः सायुज्यदानोत्सवैः ॥५१ ॥

सचमुच ही प्रकट हो गयी हो।

कृष्ण—(कुछ मुस्कुरा कर)

हे सुमुखि, कमलिनी रूपी तुम्हारे परम स्नेह के सुगन्ध-प्रवाह की, जो कि मुझ तक दूर से प्रवाहित होने वाला है, जब से कृष्ण रूपी भौंरे ने आनन्द से सेवा की है, तब से तुम्हारे नवीन मुख-कमल के मधु को पीने को अभिलाषाओं से गुञ्जन करता हुआ चक्कर काटनेवाला यह आक्रान्त भौंरा घूम रहा है ॥ ५० ॥

और भी—

तुम्हारे स्तनों पर मुक्ताओं (मुक्तामाओं) के लिए प्राप्त करने योग्य सालोक्य रूप मुक्ति को देखकर मैंने सभी मित्रों की संगति को छोड़कर कैवल्य-अकेलापन (मोक्ष) को प्राप्त किया है। तिल भर भी विषमता का आश्रय नहीं लेने वाले इन दोनों कुचों के बीच सघन अमृत की वर्षा करनेवाले सायुज्यदान रूप आनन्दोत्सवों से मुझे शीघ्र ही पूर्ण करो। (अर्थात् मुझको यथाशीघ्र आलिंगन का अवसर प्रदान करो) ॥ ५१ ॥

(राधिका लज्जते ।)

कृष्णः—प्रिये, पश्य पश्य ।

अपां पत्युः पुष्टीकरणरसपाकः कुमुदिनी-
कदम्बानामङ्गज्वरहरणशीतौषधिघटः ।
मृगाङ्कोऽयं कोकीपरिषदभिचाराध्वरधुरा-
पुरोधाः कालिन्दीपरिसरपरिष्कारमकरोत् ॥ ५२ ॥

तदेतां वासन्तिककान्तिमण्डलमण्डितमण्डलस्य चन्द्रमसश्चन्द्रिका-चक्रचुम्बितां विचरावो निकुञ्जचन्द्रशालिकाम् । (इति निष्क्रान्तौ ।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

(इति राधासङ्गो नाम तृतीयोऽङ्कः ।)

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में वैष्णव दर्शन की सालोक्य और सायुज्यमुक्ति का संकेत किया गया है ।

(राधिका लज्जा का अभिनय करती है ।)

कृष्ण—प्रिये, देखो देखो ।

जलों के स्वामी समुद्र को पुष्ट करने में रसायन, कुमुदिनी समूह के शारीरिक ज्वर को दूर करने में शीतल औषधि का घड़ा, तथा चकवी-समूह द्वारा सम्पादित मारक यज्ञ का भारवाहक पुरोहित रूप इस चन्द्रमा ने यमुना तट को परिष्कृत कर दिया है । (अर्थात् यमुना के किनारे चाँदनी बिछ गयी है) ॥

अतः वासन्तिक छटा-समूह से सुशोभित मण्डल युक्त चन्द्रमा की चन्द्रिका-पंक्ति से युक्त कुञ्ज की चौबारा (सबसे ऊपरी कमरा) में चलें ।

(यह कह कर दोनों जाते हैं)

(इस प्रकार सभी चले जाते हैं)

'राधा संग' नामक तृतीय अङ्क समाप्त ।

चतुर्थोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति नान्दीमुखी ।)

नान्दीमुखी—भणिदम्हि ललिदाए—'हला णान्दीमुहि, गोमण्डले गोट्ठं पइट्ठे एरिह कण्हो तुवरन्तो गोअद्धणाहिमुहं पत्थिदो। ता तुमं तत्थ गदुअ सुअलं विण्णवेहि, जधा एसो ओसरे णिअवअस्सस्स राहिआं सुमरावेदि' त्ति । (परिक्रम्य ।) कधं एत्थ पउमा आअच्छइ । (भणितास्मि ललितया—'सखि नान्दीमुखि, गोमण्डले गोष्ठं प्रविशति सति कृष्णस्त्वरमाणो गोवर्धनाभिमुखं प्रस्थितः । तत्त्वं तत्र गत्वा सुबलं विज्ञापय, यथैषोऽवसरे निजवयस्यस्य राधिकां स्मारयति' इति । कथमत्र पद्मा आगच्छति ।)

(प्रविश्य)

पद्मा—हला णान्दीमुहि, कामं कुसलासि । ता कंपि उवाअं कधेहि जेण उव्विग्गं चन्दाअलीं आसासेमि । (सखि नान्दीमुखि, कामं कुशलासि । तत्कमप्युपायं कथय येनोद्विग्नां चन्द्रावलीमाश्वासयामि ।)

नान्दीमुखी—किं से उव्वेअकालणम् । (किमस्या उद्वेगकारणम् ।

(तदनन्तर नान्दीमुखी प्रवेश करती है)

नान्दीमुखी—ललिता ने मुझे कहा है—"सखि नान्दीमुखि, गोशाला में गायों के समूह के प्रवेश करने पर कृष्ण शीघ्रता से गोवर्धन की ओर गये हैं। अतः तुम वहाँ जाकर सुबल को सूचित करो जिससे वह समय पर अपने मित्र को राधिका की याद दिलावे''। (आगे बढ कर) यहाँ पद्मा कैसे आ रही है !

(प्रवेश करके)

पद्मा—सखि नान्दीमुखि, तुम बहुत होशियार हो अतः कोई उपाय बताओ जिससे उद्विग्न चन्द्रावली को आश्वासन दूँ ।

नान्दीमुखी—इसके उद्वेग का क्या कारण है ?

पद्मा—हला, जाणासि ज्जेव्व तुमं जधा पदोसे सव्वं क्खु गोउलं विब्भमेण कण्हो पच्चहं रञ्जेदि। (हला, जानास्येव त्वं यथा प्रदोषे सर्वं खलु गोकुलं विभ्रमेण कृष्णः प्रत्यहं रञ्जयति।)

नान्दीमुखी—अध इम्। (अथ किम्।)

पद्मा—संपदं दाव एत्थ दक्खिणे गोट्ठद्धे इमस्स गन्धो वि दुल्लहो। (सांप्रतं तावदत्र दक्षिणे गोष्ठार्धेऽस्य गन्धोऽपि दुर्लभः।)

नान्दीमुखी—हला, मा दूणेहि। (संस्कृतेन।) (हला, मा दूना भव।)

दृष्टं विम्बितधातुचित्ररचनं शैव्या ललाटं मया
श्यामाकुन्तलचामरं च विलुठद्वन्यस्रजोड्डामरम्।
गुञ्जाहारलतार्धमञ्जुरधुना भद्राशुलान्तस्तथा
तथ्यं विद्धि स नागरीगुरुरभूद्गोवर्धनस्यातिथिः॥ १॥

(नेपथ्ये।)

पद्मा—सखि, जानती ही हो, जिस प्रकार कृष्ण अपने विलास से सायंकाल समस्त गोकुल को प्रतिदिन रञ्जित (आनन्दित) करते हैं।

नान्दीमुखी—और क्या ?

पद्मा—इस समय तो दक्षिण गोशाला में इसका गन्ध भी दुर्लभ है।

नान्दीमुखी—सखि! दुःखी मत हो। (संस्कृत में) मैंने शैव्या के ललाट को धातुरस की चित्ररचना से युक्त देखा है। और श्यामा के गिरती हुई वनमाला से ऊपर उठते हुए केशभाग को देखा है। गुञ्जाहार की लता से अर्धभाग में भद्रा के सुन्दर स्कन्ध देश को देखा है। तथ्य यह जान लो कि वह नागरी गुरु (गोपियों का प्रिय) कृष्ण इस समय गोवर्धन का अतिथि बना है॥ १॥

विमर्श—कृष्ण ने केवल राधा का ही उपभोग नहीं किया है अपितु शैव्या चन्द्रावली प्रभृति गोपियों का भी उपभोग किया है। इसीलिए कृष्ण के आलिंगन चिह्न उन सबों के शरीरावयवों में स्पष्ट देखे गये हैं। अतः राधा की ही भांति चन्द्रावली आदि गोपियों में भी कृष्ण की आसक्ति है।

(नेपथ्य में)

(नेपथ्ये ।)

कृत्वा वंशीमखिलजगतीगीतसंगीतभङ्गी-
साङ्गीभावप्रथमवसतिं सङ्गिनीं वामपाणौ ।
एष प्रेम्णा व्रजति नयनानन्दनो नन्दसूनु-
र्मन्दं गोवर्धनशिखरिणः कन्दरामन्दिराय ॥ २ ॥

नान्दीमुखी—पउमे, तुमं इमिणा वुत्तन्तेण चन्दाअलिअं सुहावेहि । अहं सुअलं अणुसरिस्सम् । (इति निष्क्रान्ता ।) (पद्मे, त्वमनेन वृत्तान्तेन चन्द्रावलीं सुखय । अहं सुबलमनुसरिष्यामि ।)

पद्मा—(पुनः पश्यन्ती ।) एसा करालाए अज्जिआए चित्तं अनुवट्टन्ती वणदेअदा वुन्दा चन्दाअलिअं सच्छलं णिवारेदि । (एषा करालाया आर्यायाश्चित्तमनुवर्तमाना वनदेवता वृन्दा चन्द्रावलीं सच्छलं निवारयति ।)

(नेपथ्य में)

सम्पूर्ण संसार में गाये गये सुन्दर गीतों की भंगिमा में अंगिभाव के प्रथम निवास मुरली को बाँयें हाथ में संगिनी बना कर नेत्रों को आनन्दित करने वाला यह नन्दनन्दन कृष्ण गोवर्धन पर्वत के गुफा भवन में प्रेम से जा रहा है ॥ २ ॥

विमर्श—संसार में गाये जाने वाले गीत के जितने प्रकार हैं, उन सबों का एकमात्र प्रथम निवास कृष्ण की वंशी है। उसी वंशी से निकल कर संगीत की समस्त विधाएं संसार में गायी जाती हैं। वंशी का गीत प्रधान और सर्वाङ्गीण है। अन्यत्र गाये गये गीत तो अंगहीन हैं।

नान्दीमुखी—पद्मे, तुम इस समाचार से चन्द्रावली को सुख पहुँचाओ। मैं सुबल का अनुसरण करूँगी।

पद्मा—(फिर देखती हुई) कराला (चन्द्रावली की नानी) आर्या के मन का अनुवर्तन करती हुई यह वनदेवता वृन्दा चन्द्रावली को छल पूर्वक रोकती है।

किं राधेव दुरन्तमिच्छसि बलादुन्मादमालम्बितुं
मुग्धे मा नय माननीयजरतीवाक्यं बहिर्मा व्रज ।
एष स्मेरविलोचनाञ्चलरुचा चापल्यमुल्लासय-
न्नायाति व्रजसुन्दरीगणमनोमाणिक्यहारी हरिः ॥ ३ ॥

(प्रविश्य ।)

चन्द्रावली—(औत्सुक्यं समन्तादवलोक्य ।) कधं वुन्दाए अलीअं व्व व्याहरीअदि । कुदो एत्थ कह्णो । (इति खेदं नाटयति ।) (कथं वृन्दयालीकमिव व्याह्रियते । कुतोऽत्र कृष्णः ?)

पद्मा—(उपसृत्य । संस्कृतेन)

न संतापं स्वान्ताद्व्वयसि कथं दावविषमं
घनश्वासैः किं वा मलिनयसि बिम्बाधरमपि ।
वनान्तान्केकाभिः सखि शिखरिकन्दे मुखरय-

क्या राधा की भाँति परिणाम में दुःखदायी उन्माद का बलपूर्वक सहारा लेना चाहती हो ? मुग्धे, माननीय वृद्धा की बात मानो । बाहर मत जाओ । विकसित नेत्रों के प्रान्तभाग की कान्ति से चपलता को बढ़ाता हुआ, गोकुल की सुन्दरियों के समूह के मनरूपी माणिक्य को चुराने वाला यह हरि आ रहा है ॥ ३ ॥

पक्ष में व्यंग्यार्थ—मुग्धे, वृद्धा की बात न मानकर बाहर निकलो और गोपीमानस चोर कृष्ण का कण्ठहार बनो ।

(प्रवेश करके)

चन्द्रावली—(उत्सुकतापूर्वक चारों ओर देखकर) वृन्दा झूठ सी क्यों बोल रही है ? यहाँ कृष्ण कहाँ है ? (दुःख का अभिनय करती हैं)

पद्मा—(समीप आकर संस्कृत में)

अग्नि के समान भयंकर संताप को अपने अन्तःकरण से दूर क्यों नहीं करती । अथवा अत्यधिक उच्छ्वासों से बिम्ब के समान लाल अपने अधरोष्ठ को मलिन क्यों कर रही हो ? हे सखि, पर्वत की कन्दरा में मयूर की

न्सखीस्थल्योः कन्याएयभजदुपशल्यं यदुपतिः ॥ ४ ॥

चन्द्रावली—(विलोक्य ।) कधं पिअसही पउमा । (इति गाढमालिङ्गय ।) अवि णाम अक्खलिदं भणिदा । (कथं प्रियसखी पद्मा । अपि नामास्खलितं भणिता ।)

पद्मा—अध इम् । (अथ किम् ।)

(ततः प्रविशति सुबलेनानुगम्यमानः कृष्णः ।)

कृष्णः—पश्य पश्य ।

अकलिततापस्तरणेरस्तशिरोवीथिभिस्तिरोधनात् ।
अस्फुटतिमिरविजृम्भः प्रथयति तोयं निशारम्भः ॥ ५ ॥

सुबल.—वअस्स, अज्ज गोदोहणं वि अणवेक्खिअ सलालसो वि किंति एत्थ लद्धोसि । (वयस्य, अद्य गोदोहनमप्यनपेक्ष्य सलालसोऽपि किमित्यत्र लब्धोऽसि ।)

कृष्णः—सखे, मयूरं वर्णयता केनचित्प्रियां चन्द्रावलीं स्मारि-

ध्वनियों से वन प्रदेश को मुखरित करता हुआ यदुपति-कृष्ण सखी चन्द्रावली के गाँव के समीप आया है ॥ ४ ॥

चन्द्रावली—(देखकर) क्या प्रियसखी पद्मा है ।

(यह कह कर गाढ़ आलिंगन करके)

क्या तुमने ठीक कहा है ?

पद्मा—और क्या ?

(उसके बाद सुबल से अनुगम्यमान कृष्ण प्रवेश करते हैं ।)

कृष्ण—कृष्ण देखो, देखो ।

अस्ताचल के मार्गों से सूर्य के छिप जाने से अकलित ताप वाला निशारम्भ—सायंकाल जिसमें अन्धकार का विस्तार अधिक स्पष्ट नहीं हुआ है, जल को बढ़ा रहा है ॥ ५ ॥

सुबल—सखे, आज गोदोहन की भी परवाह न कर लालसा-युक्त होकर भी यहाँ क्यों मिले हो ?

कृष्ण—मित्र, मयूर का वर्णन करते हुए किसी ने चन्द्रावली की याद दिलायी

तोऽस्मि तद्विलोकनाय लालसेयम्।

सुबलः—केरिसं मोरवण्णणम्। (कीदृशं मयूरवर्णनम्।)

कृष्णः—

उन्मादेन पुरतः शिखण्डिना ताण्डवे पृथुनि मण्डलीकृताम्।
पश्य निन्दितमहेन्द्रकार्मुकां कृष्णचन्द्रचलचन्द्रकावलीम् ॥६॥

सुबलः—तदो आअट्ठणं वंशीकलं उल्लासेहि। (तदाकर्षणं वंशीकलमुल्लासय।)

(कृष्णः वक्त्रे वेणुं विन्यस्यति।)

चन्द्रावली—(निशम्य। सघूर्णम्।) सव्वदा सुव्वन्तीवि अस्सुदअरी विअ विम्हावेदि दुम्मुही मुरली। (सर्वदा श्रूयमाणाप्यश्रुतचरीव विस्मापयति दुर्मुखी मुरली।)

कृष्णः—सखे सुबल, अद्य चन्द्रावलीप्रसादे त्वया ममानुकूलेन भवितव्यम्।

सुबलः—अध इम्। (अथ किम्।)

है, (अतः) उसको देखने की यह अभिलाषा है।

सुबल—कैसा मयूर-वर्णन ?

कृष्ण—नृत्य में उन्मत्त मयूरे के द्वारा मण्डलाकार बनायी गयी, इन्द्र-धनुष को तिरस्कृत करने वाली कृष्ण-चन्द्र की चंचल चन्द्रकपंक्ति को सामने देखो ॥ ६ ॥

सुबल—तो आकृष्ट करने वाली मुरली की तान छेड़ो।

(कृष्ण तिरछे होकर मुरली टेरते हैं)

चन्द्रावली—(सुनकर चक्कर खाती हुई)

निरन्तर सुनी गयी भी दुष्ट मुरली बिना सुनी हुई की भाँति अचरज में डालती है।

कृष्ण—मित्र सुबल, आज चन्द्रावली को प्रसन्न करने में तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिए।

सुबल—और क्या ? (अवश्य।)

पद्मा—हला, पेक्ख। एसो वेणुसण्णाए तुमं तुवरावेदि गोउलेन्दणन्दणो। (हला, पश्य। एष वेणुसंज्ञया त्वां त्वरयति गोकुलेन्द्रनन्दनः।)

चन्द्रावली—(विलोक्य। संस्कृतेन।)

सखि मुरलि विशालच्छिद्रजालेन पूर्णा
लघुरतिकठिना त्वं ग्रन्थिला नीरसासि।
तदपि भजसि शश्वच्चुम्बनानन्दसान्द्रं
हरिकरपरिरम्भं केन पुण्योदयेन ॥ ७ ॥

कृष्णः—(पुरो दृष्ट्वा। सानन्दम्।) सखे, सेयं मम लोचनेन्दीवरचन्द्रिका चन्द्रावली। (इति सादरमुपेत्य।) प्रिये,

चन्द्रस्तव मुखबिम्बं चन्द्रा नखराणि कुण्डले चन्द्रौ।
नवचन्द्रस्तु ललाटं सत्यं चन्द्रावली त्वमसि ॥ ८ ॥

(चन्द्रावली लज्जते।)

पद्मा—सखि, देखो, यह नन्दनन्दन कृष्ण मुरली के इशारे से तुम्हें शीघ्रता करा रहा है।

चन्द्रावली—(देखकर संस्कृत में)

सखि मुरलि, तुम विशाल छिद्रजाल से पूर्ण हो। हल्की हो, अति कठोर, मोटी और नीरस भी हो। फिर भी निरन्तर स्पर्श सुख से सघन हरि के हाथ के आलिंगन को किस पुण्य के उदय से प्राप्त करती हो ! (अर्थात् श्रीकृष्ण के स्पर्श करने योग्य न होकर भी तुम सदा उनके हाथ को सुशोभित करती हो, यह तुम्हारे किसी पुण्यविशेष का ही फल हो सकता है) ॥ ७ ॥

कृष्ण—(सामने देखकर। आनन्द से) मित्र, वह यह मेरे नेत्र कुमुदिनी की चन्द्रिका चन्द्रावली है। (आदर से समीप जाकर) प्रिये, तुम्हारा मुखबिम्ब चन्द्र है। नख चन्द्र हैं। दोनों कुण्डल चन्द्र हैं। तुम्हारा ललाट भी नूतन चन्द्र है। (अतः)तुम सचमुच ही चन्द्रावली (चन्द्रों की पंक्ति) हो ॥ ८ ॥

विमर्श—चन्द्रावली शब्द का अर्थ है चन्द्रों की पंक्ति। चन्द्रावली नाम की गोपी में अनेक चन्द्रों की स्थिति के संकेत से उसके नाम की सार्थकता सिद्ध होती है। (चन्द्रावली लजाती है)

कृष्णः—प्रिये, दुष्टदानवदमनाभिनिवेशात्त्वन्मुखचन्द्रमप्रेक्षमाणस्य यातयामा भवन्त्योऽपि न यातयामा भवन्ति ममामूर्यामिन्यः।

चन्द्रावली—सुन्दर भमरस्स विअ णवणवाणुसारिणी दे पइदी कधं चिरासङ्गणीरसासु पउमिणीसु अहिरमदु। (सुन्दर, भ्रमरस्येव नवनवानुसारिणी ते प्रकृतिः कथं चिरासङ्गनीरसासु पद्मिनीष्वभिरमताम्।)

कृष्णः—प्रिये चन्द्रावलि, प्रतिपदालोके त्वं सर्वेषां नवनवासि। तदद्य निर्वापय विरहोत्तापं परिष्वङ्गरसेन।

पद्मा—पिअसहीविरहेण कुदो तुम्ह तावुप्पत्ती। (प्रियसखीविरहेण कुतस्तव तापोत्पत्तिः।)

सुबलः—अइ, मा क्खु एव्वं भण। एसो चन्दाअलीविरहेण संतत्तो सीअलाए जलधाराए कच्छे देहं खिक्खविअ सतिण्णो चओरो विअ एदं ज्जेव्व चन्दाअलीअं सव्वदो पेच्छइ वअस्सो। (अयि, मा खल्वेवं भण। एष चन्द्रावलीविरहेण संतप्तः शीतलाया जलधारायाः कच्छे (क्षे) देहं निक्षिप्य सतृष्णश्चकोर इवैतामेव चन्द्रावलीं सर्वतः पश्यति वयस्यः।

कृष्ण—प्रिये, दुष्ट असुरों के दमन कार्य में व्यस्त रहने के कारण तुम्हारे मुखचन्द्र को नहीं देखने वाले मेरे लिए ये रातें बीत जाने पर भी नहीं बीत रही हैं।

चन्द्रावली—सुन्दर, भौंरे की भाँति नये नये फूलों का अनुगामी तुम्हारा स्वभाव बहुत आसंग से नीरस कमलिनी में किस प्रकार रमण करे।

कृष्ण—प्यारी चन्द्रावलि, प्रतिपदा तिथि के प्रकाश में (प्रतिक्षण-दर्शन में) सबों की अपेक्षा तुम नयी हो। इसलिए आज आलिंगन रस से मेरे वियोग-संताप को शान्त करो।

पद्मा—प्यारी सखी के वियोग से तुम्हें कहां से संताप उत्पन्न हुआ है?

सुबल—अरी, ऐसा मत कहो। चन्द्रावली के वियोग से सन्तप्त यह मित्र शीतल जलधारा के कक्ष में देह को फेंककर (डुबोकर) प्यासे चकोर के समान चारों ओर से इसी चन्द्रावली को देखता है। (अर्थात् चकोर की भाँति कृष्ण चन्द्रावली की ओर ही टकटकी लगाये रहता है।)

कृष्णः—प्रिये, श्रूयताम्।

विपिनान्तरे मिलन्ती मधुररसा शीतलस्पर्शा।
अमृतमयी त्वद्विरहे समजनि मम तापनुत्तये राधा॥ ९॥

(इति वर्णभ्रमम्।) धारा धारा।

चन्द्रावली—(साभ्यसूयम्।) गच्छ। राहं ज्जेव सेवेहि। (गच्छ। राधामेव सेवस्व।)

कृष्णः—प्रिये, धारेत्यवदम्।

चन्द्रावली—जादं कधं दोण्णं वण्णाणं विवरीदत्तणम्। (जातं कथं द्वयोर्वर्णयोर्विपरीतत्वम्।)

कृष्णः—प्रिये, द्वयोर्वर्णयोः कर्णयोर्वा विपरीतत्वमित्यस्मिन्नस्ति विचारः।

चन्द्रावली—(रोषादर्धं मुखमानमय्य।) अइ दानसोण्ड, अलं एदाए अवहित्थाए। अज्ज अप्पणो मणहारिणो सुवण्णजुअलस्स विण्णा-

---

कृष्ण—प्रिये, सुनो।

जंगल के बीच में मिलती हुई मधुर रसवाली तथा शीतल स्पर्शवाली अमृत मयी राधा तुम्हारे विरह में मेरे सन्ताप को दूर करने के लिए उत्पन्न हुई है॥९॥

(यह कहकर घबराहट से) धारा धारा।

(कृष्ण ने यहाँ पर धारा के स्थान में राधा कह दिया। काव्यशास्त्र में इसे ही गोत्रस्खलन कहा गया है)

चन्द्रा—(ईर्ष्यापूर्वक) जाओ, राधा को ही भजो।

कृष्ण—प्रिये, मैंने 'धारा' ऐसा कहा है।

चन्द्रावली—दोनों अक्षरों में विपरीतता (उलटापन) कैसे हुई?

कृष्ण—प्रिये, दोनों अक्षरों में अथवा दोनों कानों में विपरीतता हुई है, इस पर विचार करना है। अर्थात् मेरे कहने में उलटा हुआ है अथवा तुम्हारे सुनने में, यही विचारणीय है।

चन्द्रावली—(क्रोध से आधा मुँह को झुका कर)

हे दानवीर भाव छिपाने की आवश्यकता नहीं। आज अपने सुन्दर सुवर्णमय

सादो साहु माहुरीपूरिदकण्णम्हि किदा। (अयि दानशौण्ड, अलमेतयात्र-हितयया। अथात्मनो मनोहारिणः सुवर्णयुगलस्य विन्यासात्साधु माधुरीपूरितकर्णास्मि कृता।)

कृष्णः—

यथार्थेयं वाणी तव चकितसारङ्गनयने
सुवर्णालंकारो मधुरयति यत्ते श्रुतियुगम्।
मुखेन्दोरन्तस्ते बहिरपि सुवर्णच्युतिरियं
मम श्रोत्रद्वन्द्वं नयनयुगलं चाकुलयति ॥ १० ॥

पद्मा—हला, अप्पणो अदिट्ठं सुमरन्ती मा खिज्जेहि। जुत्ता राहाणुरत्तस्स इमस्स राहाणाममयी संकधा। (हला, आत्मनोऽदृष्टं स्मरन्ती मा खिद्यस्व। युक्ता राधानुरक्तस्यास्य राधानाममयी संकथा।)

चन्द्रावली—(निश्वस्य।) सहि पउमे, एवं णेदम्। (सखि पद्मे, एव-मेतत्।)

कृष्णः—प्रिये, बाढमनाशङ्कनीयमेवेदम्। यतः।

तस्य षोडशकलस्य षोडशी वल्लभा स्फुरति या नभस्तले।

कुण्डल द्वय के विन्यास से पक्ष में राधा इस सुन्दर अक्षरद्वय के उच्चारण से मेरे कान अच्छी तरह मधुरता से पूर्ण हो गये है।

कृष्ण—हे डरे हुए मृग के नेत्रों के समान नेत्रवाली, तुम्हारा यह कथन सत्य है, क्योंकि सोने से बनी आभूषण तुम्हारे दोनों कानों को मधुर बना रहा है। तुम्हारे मुखचन्द्र के भीतर और बाहर से भी सुवर्ण (सुन्दर अक्षर) का यह स्खलन मेरे दोनों कानों तथा आँखों को आकुल कर रहा है ॥ १० ॥

पद्मा—सखि, अपने अदृष्ट (भाग्य) का स्मरण करती हुई तुम दुःखी मत हो। राधा में अनुरक्त इसकी राधा नामसे युक्त बातचीत उचित ही है।

चन्द्रावली—(सांस लेकर) सखि पद्मे, ऐसा है।

कृष्ण—प्रिये, इस बात की आशंका बिल्कुल नहीं करनी चाहिए क्योंकि—उस सोलह कलावाले (चन्द्रमा) की सोलहवीं प्रिया, जो आकाश में

राधया सुवदने कथं तया संगतिर्भुवि ममाद्य संभवेत् ॥११॥

पद्मा–चउसट्ठिकलासालिणो दे ण क्खु सावि सोलहकलस्स वल्लहा दुल्लहा। (चतुःषष्टिकलाशालिनस्ते न खलु सापि षोडशकलस्य वल्लभा दुर्लभा।)

कृष्णः—(सप्रश्रयं पद्मामवलोक्य।)

चन्द्रावलीवदनपुष्करसङ्गिगण्ड-
चन्द्रावलीकृतरतर्ककलङ्किताङ्गौ।
शङ्काकुलोऽत्र कलयन्कमलायताक्षि
शं काकुलोलहृदयः प्रविशामि नाहम् ॥ १२ ॥

चन्द्रावली—(सव्याजप्रसादम्।) देअ, णं क्खु गोउलजणजीअण-

स्फुरित होती है, उस राधा के साथ इस पृथिवी पर हमारी संगति आज कैसी संभव हो सकती है? ॥ ११ ॥

विमर्श—षोडश कलासम्पन्न चन्द्रमा की षोडशी कला का नाम राधा है। वह आकाश में अपनी प्रभा बिखेरती है। कृष्ण पृथिवी पर रहने वाले हैं अतः दोनों का संगम स्थान भेद के कारण असंभव है।

पद्मा—चौसठ कला से युक्त तुम्हारे लिए सोलह कला वाले उसकी प्रिया भी दुर्लभ नहीं है।

' सोलहवीं कला चौसठ कला के ही अन्तर्गत है)

कृष्ण—(विनम्रता पूर्वक पद्मा को देखकर) हे कमललोचने, चन्द्रावली के मुखरूपी, आकाश के संपर्क को पाने वाले कपोलस्थलरूपी दो चन्द्रमा को जो कि झूठे तर्क से कलंकित अंगवाले हैं, यहाँ देखता हुआ, शंका से आकुल तथा दीनता से चञ्चल हृदय वाला मैं कल्याण में प्रवेश नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १२ ॥

विमर्श—राधा में कृष्ण की आसक्ति की शंका से चन्द्रावली का गण्डस्थल क्रोध से लाल हो गया है अतः उसके मिलन में शंकालु हृदय कृष्ण चन्द्रावली के संयोगसुख से वंचित हो रहे हैं।

चद्रावली—(बहानापूर्वक प्रसन्नता)

देव, गोकुलवासियों के जीवन स्वरूप तुम्हारे शुभदायक गुण को कौन

मूदस्स दे सव्वसुहकारिदागुणं का क्खु हदबुद्धिआ ण सहदि। ता णिप्फलेण संकोएण मा सादङ्को होहि। (देव, नूनं खलु गोकुलजनजीवनभूतस्य तव सर्वशुभकारितागुणं का खलु हतबुद्धिर्न सहते। तस्मान्निष्फलेन सङ्कोचेन मा सातङ्को भव।)

कृष्णः—(स्वगतम्।) गरिष्ठामपि मन्युमुद्रां धीरेयं मुखमाधुर्येण निह्नुते। (प्रकाशम्।) प्रिये, कृतमनेन गौरवविषोद्गारेण। रोषोक्तिमार्द्वीकमेव वरं वरिष्टम्।

चन्द्रावली—गोउलाणन्द, तुम्ह पुरदो मुहं दंसेदुं ण पहवामि। जं पगब्भं वाहरन्ती अवरद्धम्हि ता घरं गमिस्सम्। (गोकुलानन्द, तव पुरतो मुखं दर्शयितुं न प्रभवामि। यत्प्रगल्भं व्याहरन्त्यपराद्धास्मि तस्माद् गृहं गमिष्यामि।)

कृष्णः—(सानुनयम्।) प्रिये प्रसीद प्रसीद। बद्धोऽयमञ्जलिः।

चन्द्रावली—सुहअ, उज्जुअं चिअ आहरन्तीं कीस मं अलिअं संकसि। ता अणुजाणेहि मं भद्दआलीदंसणस्स। (इति पद्मया सह निष्क्रान्ता।)

हतबुद्धि सहन नहीं करती। अतः व्यर्थ संकोच आतंकित मत हो।

कृष्णः—(अपने आप) क्रोध की गूढ़तर मुख मुद्रा को भी धीर स्वभाव वाली यह चन्द्रावली मुख की मधुरता से छिपाती है (प्रकट) प्रिये, प्रशंसा के इस विषमय उद्गार की आवश्यक्ता नहीं। क्रोधपूर्ण कथन का मधु ही बहुत अच्छा है। (अर्थात् तुम्हारे प्रशंसापरक कथन में विष जैसा तीखापन है और क्रोधपूर्ण उक्ति में मधु जैसा मीठापन। अतः मेरे लिए प्रशंसा की अपेक्षा तुम्हारी भर्त्सना ही श्रेष्ठ है।)

चन्द्रावली—गोकुल के आनन्ददाता, तुम्हारे आगे मैं अपना मुँह नहीं दिखा सकती, क्योंकि ढिठाई से बोलती हुई मैंने अपराध किया है। अतः घर जाऊँगी।

कृष्ण—(प्रार्थनापूर्वक) प्रिये, प्रसन्न हो प्रसन्न हो, मैं हाथ जोड़ता हूँ।

चन्द्रावली—सुभग, कोमल सरल (सीधी) बात करती हुई मुझ पर व्यर्थ क्यों सन्देह करते हो ? अतः मुझे भद्रकाली के दर्शन करने की आज्ञा दो। (यह

(सुमग, कथं व्याहरन्ती किं मामलीकं गच्छसे । तदनुज्ञापय मां भद्रकालीदर्शनार्थम् ।)

कृष्णः—सखे, महानुभावामेतां मच्चित्तमहाकाशचन्द्रावलीमपि बलीयस्तमःकन्दलीभिरवस्कन्दितामालोक्य निरालोकोऽस्मि ।

सुबलः—पिअवअस्स, किंति एव्वं भणासि । सा क्खु अदक्खिणा ण दिट्ठा । (प्रियवयस्य, किमित्येवं भणसि । सा खल्वदक्षिणा न दृष्टा ।)

कृष्णः—सखे, बाढं दुरूहा महीयसां प्रकृतिः । यथेदानीम्

न्यविशत नयनान्ते कापि सारल्यनिष्ठा
वचसि च विनयेन स्तोत्रभङ्गी न्यवात्सीत् ।
अजनि च मयि भूयान्संभ्रमस्तेन तस्या
व्यवृणुत हृदि मन्युं सुष्ठु दाक्षिण्यमेव ॥ १३ ॥

तदेहि मनोहारिणि, तस्मिन्केशरकुञ्जे निविश्य चन्द्रावलीसंगमो-

कह कर पद्मा के साथ चली जाती है)

कृष्ण—सखे, मेरे चित्तरूपी आकाश में इस प्रभावशालिनी चंद्रपंक्ति को बलवान् मानरूपी राहु समूहों से ढँकी हुई देखकर मैं प्रकाशरहित (निराश) हो गया हूँ ।

सुबल—मित्र, ऐसा क्यों कहते हो । वह प्रतिकूल नहीं नजर आयी (अर्थात् वह तुम्हारे अनुकूल ही थी)

कृष्ण—मित्र, महान् लोगों का स्वभाव दुर्बोध होता है । क्योंकि इस समय—

(चन्द्रावली के) नेत्र के कोने में सरलता की किसी निष्ठा ने प्रवेश किया । वचन में विनययुक्त प्रशंसा की भंगिमा ने निवास किया । इससे मेरे हृदय में बहुत अधिक घबराहट उत्पन्न हुई । उसके हृदय में अनुकूलता ने ही क्रोध को अच्छी तरह से दूर कर दिया है । (अर्थात् मेरे प्रति उसके स्नेहभाव ने हृदय के क्रोध को दबाया है अतः वह अनुकूल नजर आती है) ॥ १३ ॥

इसलिए आओ, उस मनोहर केसर-कुञ्ज में प्रवेश कर चन्द्रावली से मिलने का उपाय करूँगा । (यह कह कर आगे बढ़कर) मित्र, बकुलपंक्ति से सुन्दर

पायमङ्गीकरोमि । (इति परिक्रम्य ।) सखे, सेयं वकुलावलिमञ्जुला निकुञ्जवीथी । पश्य पश्य ।

स्फुरति सरो दक्षिणतः सव्ये वापी समन्ततः कुल्याः ।
इति केशराटवीयं प्रमदं नीराधिका कुरुते ॥ १४ ॥

सुबलः—(स्वगतम् ।) लद्धो मए ओसरो । (प्रकाशम् ।) वअस्स, सराहिआ ज्जेव्व तुह पमदं कुरइ किंति णीराहिआ त्ति भणासि । (लब्धो मयावसरः । वयस्य, सराधिकैव तव प्रमदं करोति । किमिति नीराधिकेति भणसि ।)

कृष्णः—(सुबलमालिङ्गय ।) सखे, सत्यं ब्रवीषि । तदद्य राधिका यथेमां केशरनिकुञ्जलक्ष्मीमलंकरोति तथा मद्गिरा संदिश्यतां ललिता ।

सुबलः—तह त्ति । (इति निष्क्रान्तः ।) (तथेति ।)

(ततः प्रविशति पद्मा मधुमङ्गलश्च ।)

मधुमङ्गलः—पउमे, सुदं मए अज्ज वअस्सेण चाडुआरिणा अणुणीदा वि चन्दावली ण पसण्णा । (पद्मे, श्रुतं मयाद्य वयस्येन चाटुकारिणा

यह वही निकुञ्ज का मार्ग है । देखो देखो । दाँयी ओर से सरोवर बह रहा है । बाँयी ओर मे वापी और सभी ओर से बनावटी सरितायें हैं । इस प्रकार बकुल-वृक्ष की यह अटवी जल से परिपूर्ण होकर आनन्द कर रही है ॥ १४ ॥

सुबल—(मन ही मन) मुझे अवसर मिल गया है । (प्रकट) सखे, राधिका से युक्त अटवी ही तुम्हें आनन्दित कर रही है । नीराधिका-राधिकारहित, ऐसा क्यों कहते हो ?

कृष्ण—(सुबल को गले लगा कर) मित्र-सच कहते हो । अतः जिस प्रकार राधिका आज इस केसरकुञ्ज को सुशोभित करे, वैसा मेरी ओर से ललिता को संदेश दे दो ।

सुबल—वैसा ही होगा (यह कह कर चला जाता है)

(उसके बाद पद्मा और मधुमंगल प्रवेश करते हैं)

मधुमंगल—पद्मे, मैंने सुना है कि आज चाटुकार मित्र कृष्ण द्वारा

अनुनीतापि चन्द्रावली न प्रसन्ना।)

पद्मा—अध इं (अथ किम्।)

मधुमङ्गलः—णूणं वअस्सो वि विसण्णो वट्टइ। ता जुत्ता दोण्णं संगमे अम्हाणं सहआरिदा। (नूनं वयस्योऽपि विषण्णो वर्तते। तद्युक्ता द्वयोः संगम आवयोः सहकारिता।)

पद्मा—अज्ज, अदो ज्जेव्व मए अणुसरिदोसि। (आर्य, अत एव त्वं मयानुसृतोऽसि।)

मधुमङ्गलः—(पुरो दृष्ट्वा।) पउमे, पेक्ख एसो पिअवअस्सो छप्पद-मेत्तसहाओ केसरकुण्डगे किंपि मन्तेदि। (पद्मे, पश्यैष प्रियवयस्यः षट्-पदमात्रसहायः केसरकुञ्जे किमपि मन्त्रयते।)

पद्मा—अज्ज, लदाजालेहिं अन्तरिदा भविअ सुणम्ह किं एसो भणदित्ति। (आर्य, लताजालैरन्तरितौ भूत्वा शृणुवः किमसौ भणतीति।)

(इति तथा स्थितौ।)

कृष्णः—(राधां स्मरन्। सोत्कण्ठम्।)

प्रसरति यद्भ्रूचापे श्लथज्यमकरोत्स्मरो धनुः पौष्पम्।

मनायी जाने पर भी चन्द्रावली प्रसन्न नहीं हुई है।

पद्मा—और क्या?

मधुमंगल—निश्चय ही मित्र भी दुःखी है। इसलिए दोनों के मिलन-कार्य में हम दोनों की सहायता उचित है।

पद्मा—आर्य, इसीलिए मैंने आपका अनुसरण किया है।

मधुमंगल—(सामने देखकर) पद्मे, देखो। एकमात्र भौंरा ही जिसका सहायक है, ऐसा यह प्रिय मित्र केसरकुञ्ज में कुछ बोल रहा है।

पद्मा—आर्य, लतासमूह में छिपकर सुनें कि यह क्या बोलता है? (यह कह कर दोनों लतासमूह में छिपकर सुनते हैं)

कृष्ण—(राधा को याद करते हुए उत्सुकतापूर्वक)

जिसके भ्रूचाप (भ्रूलतारूपी धनुष) के फैलने पर (चलने पर) कामदेव ने

मधुरिममणिमञ्जूषा भूषायै मे प्रिया सास्तु ॥ १५ ॥

मधुमङ्गलः—पउमे, एसो उक्कण्ठाए तुज्झ पिअसहीं च्चेअ वण्णेदि। ता एहि। तुरिअं गदुअ णं समाणेम्ह। (पद्मे, एष उत्कण्ठया तव प्रियसखीमेव वर्णयति। तदेहि। त्वरितं गत्वैनां समानयावः।)

पद्मा—अज्ज सुट्ठु णिट्टङ्किदं सुणम्ह जं बहुवल्लहो एसो। (आर्य, सुष्ठु निष्टङ्कितं शृणुवः यद्बहुवल्लभः एषः।)

कृष्णः—(पुनः सौत्सुक्यम्।)

सा मुखसुषमा निर्जितराकाचन्द्रा वलीलसन्मध्या।

(इत्यर्धोक्ते।)

मधुमङ्गलः—पउमे, अलं इदं इमादो परेण सुदेण तूण्णं गच्छम्ह। (पद्मे, अलमिदमितः परेण श्रुतेन तूर्णं गच्छावः।)

पद्मा—जुत्तं कवेसि। (युक्तं कथयसि।)

अपने फूलों के धनुष की डोरी को ढीला कर लिया, वह मेरी प्यारी (राधा) मेरे अलंकार के लिए मधुरिमा की मणिपेटिका हो ॥ १५ ॥

मधुमंगल—पद्मे, यह उत्कण्ठा से तुम्हारी सखी (चन्द्रावली) का ही वर्णन कर रहा है। अतः आओ, शीघ्र जाकर इसको (चन्द्रावली को) मना कर ले आवें।

पद्मा—आर्य, ठीक से इसकी सारी बात सुनें क्योंकि यह बहुत प्रिया वाला व्यक्ति है। (अर्थात् कृष्ण की प्रेमिकाएँ बहुत सी हैं, न मालूम किसका वर्णन कर रहा है!)

कृष्ण—(पुनः उत्कंठा से)

मुख की शोभा से जीत लिया है पूर्णिमा के चन्द्रमा को जिसने, ऐसी तथा त्रिवली से सुशोभित मध्यभाग (उदर) वाली (इतना आधा कहने पर) [श्लोक सं० १६ का पूर्वार्ध]

मधुमंगल—पद्मे, इससे अधिक सुनने की जरूरत नहीं, हम लोग शीघ्र चलें।

पद्मा—ठीक कहते हैं।

(इत्युभौ जवेन दूरं परिक्रामतः ।)

कृष्णः—

मुहुर्गाधास्यति राधा मदुरसि रसिका किमात्मानम् ॥१६॥

पद्मा—अज्ज, एव्वं भणामि । माणिणीए पिअसहीए सअं समाअमेण लाहवं होदि । ता परावट्टिअ कण्हं विण्णवेहि । (आर्य, एवं भणामि । मानिन्याः प्रियसख्याः स्वयं समागमेन लाघवं भवति । तत्परावृत्य कृष्णं विज्ञापय ।)

मधुमङ्गलः—सोहणं मन्तेसि । (इति कृष्णान्तिकमासाद्य ।) पिअवअस्स, पच्छण्णेण भविअ सव्वं दे आअण्णिदं मए उक्कण्ठावअणं । ता आणवेहि । तं ज्जेव्व तुज्झ वल्लहं तुरिअं समाणेमि । (शोभनं मन्त्रयसि । प्रियवयस्य, प्रच्छन्नेन भूत्वा सर्वं ते आकर्णितं मयोत्कण्ठावचनम् । तदाज्ञापय । तामेव तव वल्लभां त्वरितं समानयामि ।)

कृष्णः—(सश्लाघमालिङ्ग्य ।) सखे, मदनुग्रहेण शीघ्रमानय ।

(मधुमङ्गलः परिक्रम्य पद्मया सह निष्क्रान्तः ।)

कृष्णः—अहो परमोत्कण्ठानां प्रेम्णामुत्कण्ठाकारित्वम् ।

(दोनों वेग से दूर चले जाते हैं)

कृष्ण—वह अनुरागमयी राधा क्या मेरे वक्षःस्थल में अपने को बार-बार रक्खेगी ? (अर्थात् राधा मेरे हृदय में सदा रहेगी ?) ॥ १६ ॥

पद्मा—आर्य, ऐसा कहती हूँ । मानिनी प्यारी सखी के स्वयं समागम से लाघव होता है । (मान घटता है) इसे लौट कर कृष्ण को सूचित करो ।

मधुमंगल—ठीक कहती हो । (कृष्ण के समीप जाकर) प्रिय मित्र, मैंने छिपकर तुम्हारी उत्कण्ठाभरी सारी बातें सुन ली हैं । अतः आज्ञा दो । मैं तुम्हारी उसी प्रियतमा को शीघ्र ले आता हूँ ।

कृष्ण—(प्रेम से आलिंगन करके) मेरे आग्रह से शीघ्र ले आओ । (मधुमंगल पद्मा के साथ चला जाता है)

कृष्ण—अहा, अत्यन्त उत्कण्ठायुक्त प्रेम में उत्सुकता बढ़ाने की विलक्षण क्षमता है ।

भ्रमरेऽपि गुञ्जति निकुञ्जकोटरे
मनुते मनस्तु मणिनूपुरध्वनिम् ।
अनिलेन चञ्चति तृणाञ्चलेऽपि तां
पुरतः प्रियामुपगतां विशङ्कते ॥ १७ ॥

(ततः प्रविशति पद्मामधुमङ्गलाभ्यां संगता चन्द्रावली ।)

चन्द्रावली—हला पउमे, किं एसो वउलकुडङ्गो दीसइ । (हला पद्मे, किमेष बकुलकुञ्जो दृश्यते ।)

पद्मा—अघ इम् । ता तूरणं एहि । (इति परिक्रामति ।) (अथ किम् । तत्तूर्णमेहि ।)

कृष्णः—(नूपुररवमाकर्ण्य ।) हन्त, भूरिशो भ्रामितोऽस्मि भ्रमरीझङ्कारैः । तदलं वृथा प्रत्युद्गमसंभ्रमेण । (इत्युद्वेगं नाटयन् ।)

पुरःफलायामाशायां जनः कामं विडम्ब्यते ।

कुञ्ज के कोटर (खोखर) में भ्रमर के गुञ्जन करने पर मेरा मन मणि-नूपुर की आवाज़ समझ लेता है और वायु के द्वारा तृण के अग्रभाग के हिलने पर सामने आयी उसी प्रिया की शंका कर लेता है ॥ १७ ॥

विमर्श—कृष्ण को स्नेहाधिक्य के कारण प्रियतमा के आगमन की इतनी उत्कण्ठा है कि उन्हें भ्रमर के गुञ्जार में उसके नूपुर की ध्वनि का और पत्ते के हिलने पर प्रियाके सामने आ जाने का भ्रम हो जाता है । प्रतीक्षारत प्रेमी की यह अवस्था स्वाभाविक है)

(उसके बाद पद्मा और मधुमंगल के साथ चन्द्रावली प्रवेश करती है)

चन्द्रावली—सखि पद्मे, क्या यह केसर का कुञ्ज दीख रहा है ?

पद्मा—और क्या, तो शीघ्र चलो । (यह कहकर आगे बढ़ती है)

कृष्ण—(पायल की आवाज़ सुनकर)

हां, भ्रमरी के झंकारों से पूरी तरह धोखा खाया हूँ । अतः घबड़ाकर बेकार उठने की आवश्यकता नहीं । (यह कहकर उद्वेग का अभिनय करते हुए)

समीपवर्ती फलवाली आशा में मनुष्य पर्याप्त धोखा खाता है। मेघ के आरंभ के

आसन्ने हि घनारम्भे द्विगुणं रौति चातकः ॥ १८ ॥

(पुनरुत्कर्णो भवन् ।) कथमभ्यर्णे भूषणशिञ्जितं श्रूयते । (इत्युद्ग्रीविकां दत्त्वा । ससंभ्रमम् ।) सत्यमसौ मिलिता मे प्रेयसी । (इति तरसा चन्द्रावलीपार्श्वमागत्य ।)

हृद्भृङ्गजङ्गमलता मङ्गलभा राधिका मयोन्मुदिता ।

(इत्यर्धोक्ते ।)

(चन्द्रावली सेर्ष्यं मधुमङ्गलमालोकते ।)

मधुमङ्गलः—सहि चन्दाअलि, मङ्गलभारेण अधिआसि त्ति पिअवअस्सो तुमं वण्णेदि । (सखि चन्द्रावलि, मङ्गलभारेणाधिकासीति प्रियवयस्यस्त्वां वर्णयति ।)

कृष्णः—(सवैलक्ष्यमात्मगतम् ।) हन्त, कथमनेन चन्द्रावलिरेवाभिसारिता । भवतु । वटुनोक्तेनैव निर्वाहयामि । (प्रकाशम् ।)

समीप होने पर चातक दूनी आवाज करता है ॥ १८ ॥

(फिर कान खड़ा करके) समीप में ही आभूषण की कैसी आवाज सुनाई पड़ रही है ? (गर्दन उठाकर । घबराहट से) सचमुच ही मेरी प्यारी मिल गयी । (यह कह कर तेजी से चन्द्रावली के समीप आकर)

हृदयरूपी भ्रमर की हिलती हुई लता, (और) मंगलदायिनी कान्ति से युक्त राधा मुझसे आनन्दित हुई ।

(इतना आधा कहने पर) [श्लो० सं० १९ का पूर्वार्ध]

(चन्द्रावली ईर्ष्यापूर्वक मधुमंगल को देखती है)

मधुमंगल—सखि चन्द्रावलि, 'मंगल के भार से अधिक बढ़ी हो', ऐसा तुम्हारा वर्णन प्रिय मित्र करते हैं ।

[मधुमङ्गल ने 'मंगलभा राधिका' कृष्ण के इस वाक्यांश को 'मंगलभाराधिका' ऐसा कह कर 'कल्याण-भार' से बढ़ी हुई अर्थ करके 'राधिका' इस नाम को छिपा लिया है, जिससे चन्द्रावली का संदेह दूर हो जाता है ।]

कृष्ण—(विस्मयपूर्वक अपने आप) हाय क्या यह चन्द्रावली को ही के

सुहृदनुरागवितन्द्रा चन्द्रावलिरञ्जसालम्भि ॥ १९ ॥

(चन्द्रावली सलज्जं कृष्णकण्ठे वैजयन्तीं विन्दस्यति ।)

कृष्णः— सानन्दम् ।)

एकं प्रयाति परिचर्य चकोरराजी
चन्द्रं प्रिये निजमनोरथपूरपूर्तिम् ।
चन्द्रावली किमु ममाक्षिचकोरयोस्त्वं
प्रीतिं द्वयोरपि न धास्यसि सेव्यमाना ॥ २० ॥

मधुमङ्गलः—(सगर्वम् ।) भो वअस्स, दिट्ठा तुए मज्झ विलक्खणविअक्खणदा । जो क्खु अणन्तगुणसालिणावि तुए मोआइदुं ण पारिदो सो पिअसहीए माणगण्ठी णअगुणधारिणा मोआविदो । (भो वयस्य, दृष्टा त्वया मम विलक्षणविचक्षणता । यः खल्वनन्तगुणशालिनापि त्वया मोचयितुं न पारितः स प्रियसख्या मानग्रन्थिर्नवगुणधारिणा मया मोचितः ।)

कृष्णः—वयस्य, त्वमुद्दण्डकुसुमकोदण्डविलासषाड्गुण्ये महासां-

आया है ? अच्छा, बटु—मधुमङ्गल के कथन का ही निर्वाह करता हूँ । (प्रकट) मित्र के प्रेम से आलस्य रहित चन्द्रावली को ही पा गया हूँ ॥ १९ ॥

(चन्द्रावली लज्जापूर्वक कृष्ण के गले में वैजयन्ती माला पहनाती है ।)

कृष्ण—(आनन्दपूर्वक) प्रिये, एक चन्द्रमा की सेवा करके चकोरपंक्ति अपने मनोरथ को पूर्ण करती है । चन्द्रश्रेणी तुम मुझसे सेवा पाकर मेरे दो नेत्र चकोर में प्रेम क्यों नहीं धारण करोगी ? (अर्थात् चकोरसमूह केवल एक चन्द्रमा की सेवा करके सफल मनोरथ होता है । इधर तुम चन्द्रसमूह होकर मेरी सेवा से मेरे दो नेत्र चकोर को भी क्या सफल मनोरथ नहीं कर सकती ?) ॥ २० ॥

मधुमंगल—(गर्व से) मित्र, तुमने मेरी अद्भुत होशियारी देख ली । प्यारी सखी के मान की जो गाँठ अनन्त गुणवाले तुम्हारे द्वारा नहीं खुल सकी, वह नौ गुण को धारण करने वाले मेरे द्वारा खुल गयी है ।

(अर्थात् चन्द्रावली के मान को मैंने चुटकी बजाते दूर कर दिया है ।)

कृष्ण—सखे, तुम उद्धत कामदेव के षड्गुणों के मध्य में संधि और विग्रह

धिविग्रहिकोऽसि ।

पद्मा—अज्ज, पुरो पफुल्लाइं मल्लीपुप्फाइं पप्फुरन्ति । ता एहि । इमाइं गेण्हम्ह । (आर्य पुरः प्रफुल्लानि मल्लीपुष्पाणि प्रस्फुरन्ति । तदेहि । इमानि गृह्णीव ।)

(इत्युभौ निष्क्रान्तौ ।)

कृष्णः—(स्वगतम् ।) कुञ्जेऽस्मिन्नागतमात्रां राधां तर्कयामि । तदन्यतः प्रस्थास्ये । (प्रकाशम् ।) प्रिये, पुरस्तान्नातिदूरे नागरङ्गोचिता नागकेसराटवी । तदत्रैवानुसरावः ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

(ततः प्रविशति ललितया सह संकथयन्ती राधा ।)

राधा—हला, पेक्ख पेक्ख । अन्धआरेहिं घोलिदं सव्वं दिसामुहम् । (हला, पश्य पश्य । अन्धकारैर्घोरितं सर्वं दिङ्मुखम् ।)

ललिता—पिअसहि, तिमिराहिसारोचिदेहिं सामलप्पसाहणेहिं मण्डिदो तुए किं क्खु अप्पा । (प्रियसखि, तिमिराभिसारोचितैः श्यामलप्रसाधनैर्मण्डितस्त्वया किं खल्वात्मा ।)

राधिका—अघ इम् । (अथ किम् ।)

कराने में नियुक्त महान संधि-विग्रहिक हो ।

पद्मा—आर्य, सामने चमेली के खिले हुए फूल नजर आ रहे हैं । तो चलें इन्हें हम दोनों चुनें । (दोनों चले जाते हैं)

कृष्ण—(मन ही मन) इस कुञ्ज में राधा आयी होगी, ऐसा अनुमान करता हूँ । अतः दूसरी ओर चलें । (प्रकट) प्रिये, आगे समीप में ही नागरंग से युक्त नागकेसर का जंगल है । तो हम लोग यहीं पर चलें ।

(यह कह कर दोनों चले जाते हैं ।)

(उसके बाद ललिता से बात करती हुई राधा प्रवेश करती है)

राधा–सखि, देखो देखो । सभी दिशामुख अन्धकारों से व्याप्त हो गया है ।

ललिता—अन्धकार में अभिसार के उपयुक्त श्यामल (काले रंग के) प्रसाधनों से क्या तुमने अपने को सुसज्जित कर लिया है ?

राधिका—और क्या !

ललिता—(विलोक्य । सस्मितम् । संस्कृतेन ।)

धम्मिल्लोपरि नीलरत्नरचितो हारस्त्वया रोपितो
विन्यस्तः कुचकुम्भयोः कुवलयश्रेणीकृतो गर्भगः ।
अङ्गे कल्पितमञ्जनं विनिहिता कस्तूरिका नेत्रयोः
कंसारेरभिसारसंभ्रमभरान्मन्ये जगद्विस्मृतम् ॥ २१ ॥

राधिका—हला, मुञ्चेहि परिहासं । तुरिअं उद्देसेहि केसरकुण्डगमग्गम् । (हला, मुञ्च परिहासम् । त्वरितमुद्दिश केशरकुण्डमार्गम् ।)

ललिता–इदो इदो पिअसही । (इति पुरस्क्रामन्ती ससाङ्कम् । संस्कृतेन ।) (इत इतः प्रियसखी ।)

तिमिरमसिभिः संवीताङ्ग्यः कदम्बवनान्तरे
सखि मुररिपुं पुण्यात्मानः सरन्त्यभिसारिकाः ।
तव तु परितो विद्युद्वर्णास्तनुद्युतिसूचयो

ललिता–(देखकर मुस्कानपूर्वक संस्कृत में)

रोमराजि के ऊपर तुमने नीलरत्न के बने हार को रख लिया है। दोनों कुचकलशों पर कुवलयसमूह से बने गर्भग का विन्यास किया है। अंग में अञ्जन और नेत्रों में कस्तूरी को लगाया है। इस प्रकार कंस शत्रु कृष्ण से मिलने की हड़बड़ी में तुमने संसार को ही भुला दिया है ऐसा मैं समझती हूँ ॥ २१ ॥

राधिका--सखि, हँसी छोड़ो। शीघ्र ही केसरकुञ्ज का मार्ग बताओ।

ललिता—इधर, इधर प्यारी सखी। (आगे बढ़ती हुई शंकापूर्वक। संस्कृत में)

हे सखि, अन्धकाररूपी लेपनद्रव्यों से अलंकृत (लिप्त) अंगोंवाली पुण्यात्मा अभिसारिकायें कदम्बवन के मध्य में मुरारि कृष्ण के समीप जाती हैं। तुम्हारी तो सब ओर से बिजली के समान रंगवाली शरीर-कान्तिरूपी ये सूइयाँ गाढ़ अन्धकारों को भी बेध रही हैं। (अर्थात् जिस प्रकार घने बादलों के बीच बिजली

हरि हरि घनध्वान्तान्येताः स्ववैरिणि भिन्दते ॥२२॥

राधिका—अलं इमिणा उवालम्भेण। पेक्ख पच्चासण्णो वउलकुण्डगो। (इति संभ्रमादुपसृत्य सपरामर्शम्। संस्कृतेन।) (अलमनेनोपालम्भेन। पश्य प्रत्यासन्नो वकुलकुञ्जः।)

विदूरान्न घ्राणं मदयति मुरारेः परिमलो
न कुञ्जोऽयं तस्य स्फुरति नखरद्योतिनिकरैः।
ततः शङ्के कस्मिन्नपि रहसि वल्लीवलयिते
परीहासाकाङ्क्षी प्रियसखि निलीनस्तत्र सखा ॥२३॥

ललिता—हला, एहि। वामदो कदम्बकुण्डगं विइणम्ह। (हला, एहि। वामतः कदम्बकुञ्जं विचिन्मः।)

राधिका—(तथा कुर्वती।) अइ छइल्ल, दिट्ठोसि दिट्ठोसि। कीस अङ्गेहि अङ्गाइं संगोवेसि। (इति समन्तान्मृगयति।) (अयि विदग्ध, दृष्टोऽसि दृष्टोऽसि। कस्मादङ्गैरङ्गानि संगोपयसि।)

कौंध जाती है उसी प्रकार तुम्हारी शरीर-शोभा अन्धकारों के बीच छिटक जाती है।) ॥ २२ ॥

राधिका—इस उलाहना की आवश्यकता नहीं। देखो, केसर का कुञ्ज समीप है। (सहसा समीप पहुँचकर संस्कृत में) कृष्ण का सुगन्ध दूर से नाक को आनन्दित नहीं कर रहा है। यह कुञ्ज उनके नखों के कान्तिसमूह से प्रकाशित नहीं हो रहा है। अतः हे प्यारी सखि, मैं समझती हूँ कि तुम्हारा मित्र किसी एकान्त लताकुञ्ज में परिहास की इच्छा से छिप गया है ॥ २३ ॥

ललिता—सखि आओ। बायीं ओर से कदम्बकुञ्ज को देखें।

राधिका—अरे चतुर, देख लिया, देख लिया। अंगों से अंगों को क्यों छिपा रहे हो ?

(सभी ओर खोजती है)

ललिता—सहि, मुञ्च मग्गणग्गहम्। एहि। केलिकुञ्जकप्पणं कुणम्ह। (सखि, मुञ्च मार्गणाग्रहम्। एहि। केलिकुञ्जकल्पनं कुर्मः।)

राधिका—(संस्कृतेन।)

रचय बकुलपुष्पैस्तोरणं केलिकुञ्जे
कुरु वरमरविन्दैस्तल्पमिन्दीवराक्षि।
उपनय शयनान्तं साधु माध्वीकपात्रीं
सहचरि हरिरद्य श्लाघतां कौशलं ते ॥२४॥

ललिता—(तथा कृत्वा) हला, पेक्ख। कण्हो विलम्बेदि। ता कुञ्जं पविसिअ णं पडिवालेम्ह। (हला, पश्य। कृष्णो विलम्बते। तत्कुञ्जं प्रविश्यैनं प्रतीक्षेवहि।)

राधिका—(परिक्रम्य। उद्वेगं नाटयन्ती। संस्कृतेन।)

रुद्धः क्वापि सखीहितार्थपरया शङ्के हरिः पद्मया
प्राप्तः कुञ्जगृहं यदेष न तमीयामेऽप्यतिक्रामति।

ललिता—सखि, खोजने का आग्रह छोड़ो। आओ, केलिकुञ्ज की रचना करें।

राधिका—(संस्कृत में)

हे कमललोचने, केसर के फूलों से वञ्चित केलिकुञ्ज में बन्दनवार (शोभाद्वार) बनाओ। कमल के फूलों से सुन्दर शय्या की रचना करो और शय्या के समीप ठीक से सुरापात्र ले जाओ। हे सहचरि आज कृष्ण तुम्हारी कुशलता की प्रशंसा करें॥ २४॥

ललिता—(वैसा करके) सखि, देखो। कृष्ण देर कर रहे हैं। तो कुञ्ज में ही प्रवेश करके उनकी प्रतीक्षा करें।

राधिका—(आगे बढ़कर। उद्वेग का अभिनय करती हुई। संस्कृत में) सखी (चन्द्रावली) की हितसाधना में लगी पद्मा ने कृष्ण को कहीं रोक लिया है क्योंकि यह कृष्ण अन्धकारपूर्ण रात्रि के पहर बीत जाने पर भी कुञ्जगृह में नहीं

पौलोमीरतिबन्धुदिङ्मुखमसौ हा हन्त संतर्पय-
न्नुन्मीलत्यभिसारलुब्धरमणीगोत्रस्य शत्रुः शशी ॥२५॥

(इत्युभे निष्क्रान्ते ।)

(ततः प्रविशति कृष्णः ।)

कृष्णः—(समन्तादवलोक्य ।)

आसङ्गः कुमुदाकरेषु शिथिलो भृङ्गावलीनामभू-
द्वीक्षन्ते निजकोटराङ्कितममी क्षोणीरुहं कौशिकाः ।
संकोचोन्मुखतां प्रयाति शनकैरौत्तानपादेर्द्युतिः
किं भानुर्ननु पूर्वपर्वततटीमारोढुमुत्कण्ठते ॥ २६ ॥

आया है। हा! कष्ट है, अभिसार-लोलुप रमणी-जाति का शत्रु यह चन्द्रमा इन्द्र-प्रिया पूर्व दिशा को ठीक से तृप्त करता हुआ उदित हो रहा है ॥ २५ ॥

विमर्श—गोपिकाएं कृष्ण के समीप अभिसार के लिये उद्यत हैं। अभिसार-क्रिया अन्धकार में ही संभव है किन्तु चन्दोदय हो रहा है। चन्द्रप्रकाश अभिसार कर्म का बाधक है। चन्द्रमा इन्द्रप्रिया प्राची का स्पर्श करने के कारण स्वयं अभिसाररत होकर भी गोपियों के अभिसार में बाधा डाल रहा है। यह आश्चर्य की बात है। तभी 'यामेऽप्यतिक्रामति' इस कथन से यह प्रतीत होता है कि वैशाख-पूर्णिमा के बाद ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि है। अतः तीन घड़ी बिताकर चौथी घड़ी में चन्द्रोदय हो रहा है। कृष्ण के ठीक समय पर आने में विलम्ब होने से ही अभिसार-वेला समाप्त होने जा रही है।

(यह कह कर दोनों चली जाती हैं)

(उसके बाद कृष्ण प्रवेश करते हैं।)

कृष्ण—(सभी ओर देख कर)

कुमद से भरे सरोवरों में भ्रमर-समूह का अनुराग शिथिल हो गया है। ये उल्लू अपने अपने घोसलों से अङ्कित वृक्ष को देख रहे हैं। ध्रुवनक्षत्र की कान्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। तो क्या सूर्य पूर्वाचल के तट प्रदेश पर आरूढ होने के लिए उत्सुक हो रहा है? ॥ २६ ॥

(इति परिक्रम्य ।) न जाने नवीनविप्रलम्भेन संभृतनिर्भरसंरम्भा किं नाम प्रतिपत्स्यतेऽद्य राधा । (विमृश्य ।) भवतु । केसरेण नागकेसरं प्रतिपादयिष्ये तदमूनि नागकेसराणि विचिनुयामि । (इति तथा कृत्वा पुरोऽनुसर्पन् ।)

कपटी स लताकुटीमिमां सखि नागादधुनापि माधवः ।
इति जल्पपरीतया तया बलमदीर्घा गमिता कथं तमी ॥२७॥

(परिक्रम्य । बकुलकुञ्ज पश्यन् । सविषादम् ।)

ताम्बूलं घनसारसंस्कृतमदः क्षिप्तं पुरो राधया
हारी हन्त हरिन्मणिस्तबकितो हारोऽयमुत्सारितः ।
पौष्पी चेयमुदारसौरभमयी चूडा नखैः खण्डिता
तस्याः शंसति विप्रलम्भजनितं कुञ्जोऽयमन्तः क्लमम् ॥२८॥

(इत्यग्रतो गत्वा) इयमेव राधायाः सूर्याराधनवेदिका । तदस्याः पार्श्वमासादयामि । (इति परिक्रामति ।)

(यह कह कर आगे बढ़ कर) प्रथम वियोग के कारण अत्यधिक क्रुद्ध राधा न जाने आज क्या समझेगी । (विचारकर) अच्छा, केसर से नागकेसर का प्रतिपादन करूँगा इसलिए इन नागकेसरों को चुनता हूँ । (ढूँढ़ता हूँ) (वैसा करके आगे नहीं बढ़ते हुए)

"हे सखि, वह छली माधव अभी भी इस लताकुञ्ज में नहीं आया" इस प्रकार कहती हुई राधा ने दुःख से बढ़ी हुई यह रात कैसे बितायी होगी ? ॥२७॥

(आगे बढ़कर केसरकुञ्ज को देखते हुए विषादपूर्वक) राधा ने कपूर-मिश्रित इस पान को सामने फेंक दिया है । मरकतमणियों से गुच्छीकृत इस सुन्दर हार को उतार दिया है । पुष्पों से बनी प्रशस्त सुगन्धि से युक्त यह चोटी (जूड़ा) भी नखों से तोड़ डाली गयी है । हाय, यह कुञ्ज उस राधा के वियोगजन्य आन्तरिक क्लेश को कह रहा है ॥ २८ ॥

(यह कह कर आगे जाकर) सूर्य की पूजा करने की राधा की यही वेदिका (चबूतरा) है । तो इसी के बगल में बैठता हूँ (यह कह कर घूमते हैं) ।

(ततः प्रविशति सखीभ्यामनुगम्यमाना राधा ।)

राधा—(पुरो विलोक्य ।) हला ललिदे, पेक्ख वेइआणेदिट्ठो सो तुज्झ छइल्लो । (हला ललिते, पश्य वेदिकानेदिष्ठः स तव नागरः ।)

ललिता—सहि, कञ्चणपडिमेव्व कठोरा होहि । (सखि, काञ्चनप्रतिमेव कठोरा भव ।

कृष्णः—पुरस्तादेषा सहपरिवारा प्रिया । तदिदमुट्टङ्कयामि । (इत्युपसृत्य ।) ललिते, साधु साधु । दृष्टं तव गरिष्ठमत्र दुर्मन्त्रतन्त्रचर्यायामाचार्यत्वम् । यदद्य भवत्या केसरनिकुञ्जवेद्यामहमुज्जागरव्रतदीक्षां परिग्राहितोऽस्मि ।

ललिता—(ससंरम्भम् । संस्कृतेन ।) अहो वैपरीत्यम् , अहो वैपरीत्यम् ।

केसरनिकुञ्जकुहरे कुहक वसन्ती सखी त्वया रहिते ।
श्रितनवपल्लवशयना त्रुटिमपि कल्पाधिकां मेने ॥ २६ ॥

(उसके बाद दो सखियों से अनुगम्यमान राधा प्रवेश करती है ।)

राधा—(सामने देखकर) सखि ललिते, देखो वेदिका के समीप तुम्हारा वह चतुर (कृष्ण) है ।

ललिता—सखि, सोने की मूर्ति के समान कठोर बनो ।

कृष्ण—सखियों के साथ सामने यह प्यारी राधा है ।

तो यह कहता हूँ (यह कह कर समीप जाकर) ललिते, बहुत अच्छा बहुत अच्छा । दुष्ट मंत्रों के तंत्र के आचरण में तुम्हारी महती आचार्यता देखी गयी । क्योंकि आज आपने केसरकुञ्ज की वेदी पर मुझे जागरणव्रत की दीक्षा दिलाई है । (अर्थात् इसी वेदी पर आज हमने तुम्हारी प्रतीक्षा में जागकर रात बितायी है)

ललिता—(क्रोधपूर्वक । संस्कृत में) कैसी उल्टी बात है, कैसी उल्टी बात है !

हे छली, तुमसे शून्य केसरकुञ्ज की गुफा में निवास करती हुई, नूतन किसलय की शय्या का सहारा लेने वाली सखी (राधा) ने एक क्षण को भी कल्प से अधिक माना ॥ २६ ॥

कृष्णः—(कपटेनाटोपं नाटयन् ।) अहो, दम्भभरारम्भेषु गाम्भीर्यमस्याः । (नागकेसराण्युद्धाट्य दर्शयन् ।)

अरतिं मम निशि पश्यन्नश्रुस्राव्यन्नागकेसरोऽप्यसकृत् ।
विगलन्मधुभिः कुसुमैरेभिर्नेत्रैरिवोदस्रैः ॥३०॥

ललिता–अम्महे धूत्तत्तणं, जं वउलवाइणा केसरेण दाणिं णागकेसरो विक्खावीअदि । (अहो धूर्तत्वम्, यद्बकुलवाचिना केसरेणेदानीं नागकेसरो विशाप्यते ।)

कृष्णः—(सव्याजनिर्वेदम् ।) ललिते, विश्राम्यतु तवेयं शब्दार्थस्यान्यथाकल्पनेन वचनचञ्चुता । अथ वा कस्ते दोषः । दृष्टदोषाभिरपि गौराङ्गीभिः सौहार्दमभिलष्यता मयैवापराद्धम् ।

विशाखा—को क्खु गोरङ्गीणं दिट्ठो तुए दोसो । (कः खलु गौराङ्गीणां दृष्टस्त्वया दोषः ।)

कृष्ण—(छल से अत्यधिक प्रतिभा दिखाते हुए) अहंकार के भार के प्रदर्शन में इसकी गम्भीरता विलक्षण है ।

(नागकेसरों को उघार कर दिखाते हुए)

रात में मेरे दुःख को देखता हुआ नागकेसर भी अश्रुस्रावी नेत्रों की भाँति मधु चुआने वाले इन फूलों से अनेक बार मुरझाया है । (अर्थात् मेरे दुःख से नागकेसर भी दुःखी है ॥ ३० ॥

ललिता—विलक्षण धूर्तता (चालाकी) है, जो कि बकुलवाची केसर को नागकेसर बताया जा रहा है ।

कृष्ण—(छल से वैराग्यपूर्वक) ललिते, शब्दार्थ की विपरीत कल्पना से तुम्हारी वचन-चातुरी शान्त हो ।

(अर्थात् शब्दों का उल्टा अर्थ लगाने वाली तुम चुप हो जाओ)

अथवा तुम्हारा क्या दोष है ? देखी गयी दोषवाली गोरी ललनाओं से मित्रता का अभिलाषी मैंने ही अपराध किया है । (अर्थात् तुम लोगों के दोष को जानते हुए भी तुमसे स्नेह बढ़ा कर मैंने ही गलती की है)

विशाखा—तुमने गोरी बालाओं का कौन सा दोष देखा है ?

कृष्णः—पश्य पश्य ।

नवरसधारिणि मधुरे धरणीसंतापहारिविस्फुरणे ।
विदधति न कृष्णमुदिरे गौर्यः क्षणरोचिषः स्थैर्यम् ॥२१॥

विशाखा—तस्सिं कुलिसकूडकठोरचेट्ठिदे ताणं कोमलाणं जुत्ता ज्जेव्व तधा पउत्ती। (तस्मिन्कुलिशकूटकठोरचेष्टिते तासां कोमलानां युक्ता एव तथा प्रवृत्तिः ।)

ललिता—विसाहे, सुणाहि कंपि गाहम् । (इति भृङ्गं दर्शयन्ती ।) (विशाखे, शृणु कामपि गाथाम् ।)

चम्पअलदं सिणिद्धं णअकञ्चणकन्तिकुसुमगोरङ्गी ।
मुञ्चिअ धावइ भमरो चवला च्चिअ सामला होन्ति ॥२२॥

(चम्पकलतां स्निग्धां नवकाञ्चनकान्तिकुसुमगौराङ्गीम् ।
त्यक्त्वा धावति भ्रमरश्चपला इव श्यामला भवन्ति ॥)

कृष्ण—देखो देखो ।

नवीन रस को धारण करने वाले, मधुर तथा वसुधा के कष्ट को दूर करने में समर्थ कृष्णमेघ में, पक्ष में—मेघ के समान श्याम कृष्ण में, स्वच्छ बिजलियाँ पक्ष में—गोरी गोपियाँ स्थिरता को पक्ष में—प्रेम को नहीं धारण कर रही हैं। (अर्थात् जिस प्रकार मेघों के बीच बिजली अस्थिर है उसी प्रकार मुझमें तुम्हारा स्नेह भी स्थिर नहीं है ॥ २१ ॥

विशाखा—वज्र के समान कठोर आचरण वाले उसमें उन कोमल बिजलियों का वैसा व्यवहार उचित ही है ।

पक्ष में—वज्र के समान कठोर कृष्ण के प्रति कोमल गोपियों की चंचल प्रवृत्ति युक्तिसंगत ही है ।

ललिता—विशाखे, कोई गाथा (प्राकृत भाषा में निबद्ध श्लोक) सुनो । (भौंरे को दिखाती हुई)

नवीन सुवर्ण-कान्ति के फूलों के समान गौर अंगों वाली स्निग्ध चम्पा की लता को छोड़ कर भौंरा दौड़ रहा है । मेघ-खण्ड बिजली के समान हो रहा है । अथवा मानो बिजली कृष्णवर्ण की हो रही है ॥ २२ ॥

कृष्णः—(स्मित्वा ।) सत्यं वाग्मिनामसि राज्ञी ।

ललिता—(अपवार्य ।) सुट्ठु णीसङ्केण वअणाडोवेण अणवरद्धं ज्जेव्व णं तक्केमि । (सुष्ठु निःशङ्केन वचनाटोपेनानपराद्धमेवैनं तर्कयामि ।)

कृष्णः—

वाम्याद्भवेन्न विरतिर्नवयौवनानां
वामभ्रुवामिति जनश्रुतिरव्यलीका ।
चाटूनि कर्तुमुचितानि विमुच्य खिन्नं
मां प्रत्युताद्य यदमूः परं जयन्ति ॥ २३ ॥

ललिता—(अपवार्य ।) हला, सच्चं उज्जाअरखिन्नो कण्हो । ता पसीद । (हला, सत्यमुज्जागरखिन्नः कृष्णः । तत्प्रसीद ।)

राधिका—(कृष्णमपाङ्गेनावलोक्य ।) मुद्धाणं वञ्चणकलाविअद्धोसि । (मुग्धानां वञ्चनकलाविदग्धोऽसि ।)

कृष्णः—(सानन्दम् ।) फुल्लकेसरकलापेनामुना धम्मिल्लश्रीस्त्वयात्त-

---

कृष्ण—(मुस्कुरा कर) सचमुच वक्ताओं की महारानी हो ।

ललिता—(राधा से चुपके से) शंकारहित सुन्दर बोली के विस्तार से इसको निर्दोष ही मानती हूँ । (अर्थात् निश्छल बोलचाल से यह अपराधी नहीं जान पड़ता)

कृष्ण—सुन्दर भौंहों वाली नवयुवतियों का प्रतिकूलता से विराग नहीं होता, यह किंवदन्ती झूठी नहीं है । क्योंकि—करने योग्य चापलूसी को छोड़कर ये युवतियाँ दुःखी मुझको और भी दुःखी बना रही हैं । (अर्थात् मनाने की अपेक्षा उल्टे मुझसे कटु बोल रही है) ॥ २३ ॥

ललिता—(राधा से चुपके-चुपके) सखि, सचमुच कृष्ण रात भर जगने के कारण खिन्न है । इसलिए प्रसन्न हो जाओ । (मान जाओ)

राधिका—(कृष्ण को कटाक्ष से देखकर) मुग्धाओं (भोलीभाली बालाओं) को छलने की कला में चतुर हो ।

कृष्ण—(आनन्दपूर्वक) खिले हुए इस केसरसमूह से तुम्हारी रोमावली की

क्रियताम् । वन्ध्यतां मा विन्दतु मम प्रयासः । (इति पुटिकामुद्घाट्य ।) प्रिये, पश्यामूनि सुगन्धीनामग्रेसराणि केसराणि यैरहं सद्यः सुवासितोऽस्मि ।

राधिका—(सनर्मस्मितम् ।) णूणं चन्दाअलीपरिमलेण वासिदोसि तुमम् । (नूनं चन्द्रावलीपरिमलेन वासितोऽसि त्वम् ।)

कृष्णः—प्रिये, पारिहासिकान्यपि ते वचांसि न कदाचिदपि व्यभिचरन्ति । यदद्य मदङ्गतश्चन्द्रावलीसौरभ्यमुदञ्चति ।

राधिका—(सेर्ष्यं परावृत्य ।) ललिदे, किं मुद्दिदकण्णासि । (ललिते, किं मुद्रितकर्णासि ।)

कृष्णः—(स्मित्वा ।) प्रिये, कथमक्षरसाम्यादक्षमासि । यदहं कर्पूरावलीं वर्णयामि ।

राधिका—(सस्मितम् ।) समप्पेहि पुप्फाइं । (समर्पय पुष्पाणि ।) (इति पटाञ्चलं प्रसारयति ।)

कृष्णः—(राधामुखं प्रेक्ष्य । स्वगतम् ।) हन्त, विभ्रममण्डितस्य

शोभा अलंकृत हो। मेरा प्रयास विफल नहीं हो। (ऐसा कहकर पुटिका को खोलकर) प्रिये, सुगन्धियों में श्रेष्ठ इन केसरों को देखो जिनसे मैं अभी सुगंधियुक्त हुआ हूँ।

राधिका—(व्यञ्जनापूर्ण मुस्कुराहटपूर्वक) तुम निश्चय ही चन्द्रावली के पराग (स्नेह) से सुगन्धित (प्रभावित) हुए हो।

कृष्ण—प्रिये, मजाक में भी कही गयी तुम्हारी बात कभी गलत नहीं होती क्योंकि आज मेरे अंगों से चन्द्रावली की सुगन्धि फैल रही है।

राधिका—(ईर्ष्यापूर्वक लौटकर) ललिते, क्या तुमने कानों को बन्द कर लिया है ?

कृष्ण—(मुस्कुरा कर) प्रिये, अक्षर की समता के कारण नाराज क्यों हो। क्योंकि मैं तो कर्पूरावली का वर्णन करता हूँ।

राधिका—(मुस्कुराहटपूर्वक) फूलों को हमें दो। (यह कहकर आँचल फैलाती है)

कृष्ण—(राधा का मुख देखकर। अपने आप) विलासयुक्त भ्रूधनुष की

चिल्लीकोदण्डस्य ताण्डवकला ।

विशाखा—(जनान्तिकम्) ललिदे, पेक्ख पेक्ख । संमोहणेण राहीए कडक्खवाणेण लक्खीकिदो पुप्फपुडिआए सद्धं अञ्चले दिण्णंपि वेणुं ण जाणादि कण्हो । (ललिते, पश्य पश्य । संमोहनेन राधायाः कटाक्षबाणेन लक्षीकृतः पुष्पपुटिकया सार्धमञ्चले दत्तमपि वेणुं न जानाति कृष्णः ।)

ललिता—(संस्कृतेन ।)

निद्रागमेऽपि सखि नन्दसुतस्य हर्तुं
यां शक्नुवन्ति न पराः पशुपालबालाः ।
धन्या कटाक्षकलया किल मोहयन्ती
तां राधिकाद्य पुरतो मुरलीं जहार ॥ ३४ ॥

राधिका—(अपवार्य । संस्कृतेन ।)

या निर्माति निकेतकर्मरचनारम्भे करस्तम्भनं

नृत्यकला विलक्षण है । (अर्थात् राधा की नाचती भौंहें हृदय में एक टीस उत्पन्न कर रही हैं)

विशाखा—(एकान्त में ललिता से) ललिते, देखो देखो ।

राधा के सम्मोहनकारी कटाक्षबाण से घायल कृष्ण फूलों की पुटिका (डोलची) के साथ आँचल में दी हुई मुरली को भी नहीं जानता है । (अर्थात् कृष्ण ने राधा के कटाक्ष-बाण का निशाना बन कर फूलों के साथ भूल से मुरली को भी आँचल में डाल दिया है)

ललिता—(संस्कृत में)

हे सखि, नींद के आ जाने पर भी नन्दपुत्र कृष्ण की जिस मुरली को चुराने में ग्वालबाल अथवा गोपियाँ असमर्थ हैं । उसी मुरली को अपनी कटाक्षकला से (कृष्ण को) मुग्ध करती हुई धन्य राधा ने सामने से ही हर लिया है । (अर्थात् जिस मुरली को चुराना कृष्ण के सोते रहने पर भी संभव नहीं था, उसी को राधा ने उसके जागते रहते ही चालाकी से ले लिया है) ॥ ३४ ॥

राधिका—(चुपके से । संस्कृत में)

जो मुरली घर के कार्य प्रारम्भ करने पर हाथों को रोक देती है । (अर्थात् मुरली

रात्रौ हन्त करोति कर्षणविधिं या पत्युरङ्कादपि ।
गौरीणां कुरुते गुरोरपि पुरो या नीविविध्वंसनं
धूर्ता गोकुलमङ्गलस्य मुरली सेयं ममाभूद्वशा ॥२५॥

(नेपथ्ये ।)

अरे कुरङ्गा, दिट्ठो तुम्हेहिं पिअवअस्सो । (अरे कुरङ्गाः, दृष्टो युष्माभिः प्रियवयस्यः ।)

कृष्णः—कथं मिलत्येष मधुमङ्गलः ।

(प्रविश्य माल्यहस्तः ।)

मधुमङ्गलः—सुदं सुबलमुहादो जं अज्ज णिउञ्जमज्झे राहिआ जागरिदा आसी । ता गदुअ णं पोच्छाहइस्सम् । (इत्युपसृत्य । संस्कृतेन ।) (श्रुतं सुबलमुखादद्य निकुञ्जमध्ये राधिका जागरितासीत् । तद्गत्वैनां प्रोत्साहयिष्यामि ।)

अविरलवनमालालंकृतस्निग्धमूर्तिः
स्फुरितकटककान्तिर्धातुभिर्मण्डिताङ्गः ।

की तान सुन कर गृहकार्य में संलग्न लोगों का हाथ रुक जाता है ।) जो रात में पति की गोद से भी खींच लेने का कार्य करती है । और जो गुरुजनों के समक्ष भी गोरी ललनाओं की नीवी (साड़ी की गाँठ) को भी शिथिल कर देती है । वही गोकुलानन्द कृष्ण की धूर्त मुरली आज मेरे वश में आ गयी है ॥ २५ ॥

(नेपथ्य में) अरे कुरंग, क्या तुम लोगों ने प्रियमित्र (कृष्ण) को देखा है ?

कृष्ण—क्या यह मधुमंगल आ रहा है ?

(हाथ में माला लिए प्रवेश करके)

मधुमंगल—सुबल के मुख से सुना है कि आज राधा निकुञ्ज में जागी हुई थी । तो जाकर इसको (कृष्ण को प्रोत्साहित करूँगा । यह कहकर) समीप जाकर संस्कृत में)

सखि राधे, सघन वैजयन्ती माला से सुशोभित स्निग्ध आकृतिवाला, पर्वत पक्ष में वनपंक्ति से अलंकृत, चमकते हुए वलय से युक्त, पक्ष में—स्पष्ट प्रतीयमान

अखिलभुवनतुङ्गो नेत्रभङ्ग्या विकृष्टः
कथमिव सखि राधे कृष्णशैलस्त्वयाभूत् ॥ ३६ ॥

(राधिका स्मयते ।)

कृष्णः—प्रिये, वेत्ति मे तमस्तमीसंभवं वयस्योऽयम् ।

राधिका—अज्ज, दंसिदं अज्ज सिणेहदक्खिण्णं जं कन्तारसिन्धु-संतारकोसल्लाइं सिक्खाविद्म्हि । (आर्य, दर्शितमद्य स्नेहदाक्षिण्यं यत्कान्तारसिन्धुसंतारकौशल्यानि शिक्षितास्मि ।)

मधुमङ्गलः—सहि, साहु अम्हे उवालहिज्जम्ह, जेहिं चलन्तीं पि वल्लीं तुमं तक्किअ वणे वसन्तेहिं सादङ्कं जाअरिदम् । तुम्हे क्खु सलाहिज्जइ, जाहिं पिअवअस्ससणाहं पि कुञ्जं अणिव्वन्वेण सुण्णं भणिअ घरे पविसन्तीहिं णिरादङ्कं सुत्तम् । (सखि, साधु वयमुपालभ्यामहे, यैश्चलन्तीमपि वल्लीं त्वां तर्कयित्वा वने वसद्भिः सातङ्कं जागरितम् । यूयं

मध्यभाग से युक्त, रंगों से विभूषित, पक्ष में—गैरिक आदि धातुओं से विभूषित सम्पूर्ण विश्व में श्रेष्ठ, पक्ष में—समस्त संसार से ऊँचा यह कृष्ण-पर्वत किस प्रकार तुम्हारी नेत्रभंगिमा (कटाक्ष) से आकृष्ट हुआ है ? (अर्थात् पर्वत के समान स्थिर इस कृष्ण को अपने भृकुटि-विलास से किस प्रकार तुमने विचलित किया है ?) ॥ ३६ ॥

(राधिका गर्व करती है)

कृष्ण—प्रिये, रात में उत्पन्न मेरे दुःख को यह मित्र जानता है ।

राधिका—आर्य, आज आपने प्रेम की अनुकूलता दिखा दी है क्योंकि जंगल के समुद्र को पार करने की कुशलता की शिक्षा मैंने पायी है ।

मधुमंगल—सखि हम लोगों को तुमने अच्छी उपालम्भ दी, जो हमलोग हिलती हुई लता को भी तुमको समझकर जंगल में निवास करते हुए रात भर जागते रहे । तुम लोग तो प्रशंसा के पात्र हो, जो प्रिय मित्र से युक्त भी कुञ्ज को बिल्कुल सूना समझ कर रात भर सोती रहीं ।

(अर्थात् तुम्हारी प्रतीक्षा में हम लोग जागते रहे और तुम लोग कुञ्ज को

खलु श्लाघ्यध्वे, याभिः प्रियवयस्यधनाथमपि कुञ्जमनिर्बन्धेन शून्यं मत्वा गृहे प्रविशतीभिर्निरातङ्कं सुप्तम्।)

राधिका—अज्ज, किं एव्वं भणासि। (इति संस्कृतेन।) (आर्य, किमेवं भणसि।)

निकुञ्जं कंसारेर्वत नखरचन्द्रावलिरुचि-
च्छटाग्रस्तं नाग्रे मुहुरपि यदा प्रेक्षितमभूत्।
तदा सद्यः प्रोद्यद्विधुहतकविक्रान्तिहतया
मया लब्धारण्ये क्लमनिवहपूर्णा परिणतिः॥ ३७॥

मधुमङ्गलः—अहो, कहं कुडङ्गसंगदा चन्द्राअली वि राहिआए दिट्ठत्थि। ता वञ्चणं मुञ्चिअ णं उक्करिसइस्सम्। (प्रकाशम्। संस्कृतेन।) (अहो, कथं कुञ्जसंगता चन्द्रावल्यपि राधया दृष्टास्ति। तद्वञ्चनं त्यक्त्वैनामुत्कर्षयिष्यामि।)

सूना समझ कर सोती रहीं। अतः वस्तुतः प्रशंसा के पात्र तो हमलोग हैं और उलाहना के पात्र तुम लोग।)

राधिका—आर्य, ऐसा क्यों कहते हैं?

(संस्कृत में) कंसरिपु कृष्ण की नखरूपी चन्द्रपंक्ति की सुन्दर शोभा से व्याप्त कुञ्ज को जब मैंने बार-बार नहीं देखा तब शीघ्र ही उदित होने वाले दुष्ट चन्द्रमा की विक्रान्ति (पराक्रम) से आहत मैंने दुख-समूह से पूर्ण परिणाम को प्राप्त किया है। (अर्थात् कृष्ण के अभाव में चन्द्रमा ने मुझे असह्य विरह-वेदना में डाल दिया है) ॥ ३७॥

मधुसंगल—हाय, कुञ्ज में विद्यमान चन्द्रावली को भी क्या राधा ने देख लिया है? तो धोखा छोड़कर इसे उत्कर्षित करूँगा।

विमर्श—राधा की पद्यमयी उक्ति में "नखरचन्द्रावलिरुचिच्छटाग्रस्तम्" इस पद का मधुमंगल ने 'क्रूर चन्द्रावली (गोपी) की सुन्दर छटा से युक्त' यह अर्थ समझा अतः राधा द्वारा चन्द्रावली के देखी जाने का उसे सन्देह हुआ।

क्रान्तेन ते वदनचन्द्रमनाकलय्य
कल्याणि गोकुलपुरन्दरनन्दनेन ।

चन्द्रावली—
(इत्यर्धोक्ते ।)

(कृष्णो भ्रूभङ्ग्या निवारयति ।)

(सर्वाः परस्परं साकूतमवलोकयन्ति ।)

मधुमङ्गलः—(स्वगतम् ।) हन्त हन्त, किदं मए बम्हणबडुओचिदं चावलम् । (हन्त हन्त, कृतं मया ब्राह्मणबटूचितं चापलम् ।)

कृष्णः—(विमृश्य ।) विभावरीभवं मे वपुषः कष्टं चापलद्धृक- एषोऽयं संवृत्तः । तदहमेव वाक्यं समापयामि । (इति स्मित्वा ।)

चन्द्रावलीनवलयनान्ततया किलास्य
सा दृश्यतः कथमपि क्षपिता क्षपेयम् ॥ ३८ ॥

मधुमङ्गलः—पिअवअस्स, सव्वण्णोसि । किंति मह हिअअट्ठिदं पदत्थं ण जाणिस्ससि । (प्रियवयस्य, सर्वज्ञोऽसि । किमिति मम हृदयस्थितं पदार्थं न ज्ञास्यसि ।)

(प्रकट । संस्कृत में) हे कल्याणि, तुम्हारे मुख चन्द्र को नहीं देखकर दुःखी नन्द-नन्दन कृष्ण ने चन्द्रावली—(इतना आधा कहने पर)

(कृष्ण भ्रूभंगिमा से रोकते हैं)

(सभी गोपियाँ रहस्यमय ढंग से परस्पर एक-दूसरे को देखती हैं)

मधुमंगल—हाय, हाय, मैंने ब्राह्मण के बालक के योग्य चपलता कर दी ।

कृष्ण—(सोचकर) रात में होकर मेरे शारीरिक कष्ट का विचार करके इसका मन्त्र बैठ गया है । अतः मैं ही वाक्य को पूरा करता हूँ । (यह कह कर मुस्कुराकर) चन्द्रमा के अदर्शन (लंघन) मेरी वाले इस (कृष्ण) की यह रात किसी तरह (चन्द्रमा को) देखते बीती है ॥ ३८ ॥
(अर्थात् एक टक चन्द्रमा को देखते ही इनकी रात बीती है)

मधुमंगल—मित्र, तुम सर्वज्ञ हो । (अतः) मेरे हृदय में विद्यमान पदार्थ को क्यों नहीं जानोगे !

ललिता—राहे, अज्ज वि संदिद्धासि। पेक्ख रतिविलासपिसुणाइं णाअरस्स चङ्गाइं अङ्गाइं। (इति सेर्ष्यम्। संस्कृतेन।) (राधे, अद्यापि संदिग्धासि। पश्य रात्रिविलासपिशुनानि नागरस्य चङ्गान्यङ्गानि।)

वाले गोकुलयौवतस्तनतटीदत्तार्धनेत्रादितः
कामं श्यामशिलाविलासिहृदयाच्चेतः परावर्तय।
विद्मः किं न हि यद्विकृष्य कुलजाः केलीभिरेष स्त्रियो
धूर्तः संकुलयन्कलङ्कततिभिर्निःशङ्कमुन्मुञ्चति ॥३९॥

राधिका—हद्धी हद्धी, सुट्ठ विडम्बिदम्हि। (हा धिक् हा धिक्, सुष्ठु विडम्बितास्मि।)

कृष्णः—प्रिये, मुधैव मां दूषयसि।

राधिका—(सोपालम्भम्। संस्कृतेन)

मुक्तान्तर्निमिषं मदीयपदवीमालोकमानस्य ते
जाने केसररेणुभिर्निपतितैः शोणीकृते लोचने।

ललिता—राधे, अभी भी सन्देह में पड़ी हो! रात के विलास की सूचना देनेवाले चतुर कृष्ण के मनोहर अंगों को देखो। (यह कह कर ईर्ष्यापूर्वक। संस्कृत में)

हे बाले, गोकुल की युवतियों के कुचप्रदेश पर दृष्टि डालने वाले, श्यामशिला के समान विलासी हृदय इस (कृष्ण) से अपने मन को लौटा लो। क्या हम लोग यह नहीं जानते हैं कि यह धूर्त क्रीडाओं द्वारा कुलीन स्त्रियों को आकृष्ट कर उन्हें कलंकसमूहों से व्याप्त करता हुआ निःशंक होकर उन्मुक्त (स्वेच्छाचारी) हो रहा है ॥ ३९ ॥

राधिका—हाय, हाय। मैं खूब धोखा खायी हूँ।

कृष्ण—प्रिये, मुझे व्यर्थ ही दोष दे रही हो।

राधिका—(उलाहनापूर्वक संस्कृत में)

अपलक दृष्टि से मेरे मार्ग को देखते हुए तुम्हारे दोनों नेत्र केशर की धूलि के गिरने से लाल हो गये हैं। और जंगल की ठंडी हवाओं से विम्ब के समान

शीतैः काननवायुभिर्विरचितो बिम्बाधरे च व्रणः
संकोचं त्यज देव दैवहतया न त्वं मया दूष्यसे ॥४०॥

कृष्णः—प्रिये, तवाधीनस्य मे संकोचोऽप्यलंकारायैव।

राधिका—साहीणो सव्वलोअविक्खादोसि। कधं ममाहीणो हुविस्ससि। (स्वाधीनः सर्वलोकविख्यातोऽसि। कथं ममाधीनो भविष्यसि।)

कृष्णः—तवाधीनो नाहमेव केवलोऽस्मि। किंतु ते मम दशावताराश्च। तथा हि।

चञ्चन्मीनविलोचनासि, कमठोत्कृष्टस्तनी संगता,
क्रोडेन स्फुरता तवायमधरः, प्रह्लादसंवर्धनः।

लाल अधर पर घाव लग गयी है। हे देव, संकोच को छोड़ दो। अभागिन मैं तुमको दोष नहीं दे रही हूँ। (अर्थात् मेरे भाग्य का दोष है तुम्हारा नहीं।) ॥ ४० ॥

विमर्श—रात में अन्य गोपियों के साथ काम-क्रीड़ा में जागने के कारण ही तुम्हारे नेत्र लाल हुए हैं और गोपियों के अनवरत चुम्बन की चोट से तुम्हारे अधर छिल गये हैं। तुम्हारा भेद खुल गया है अतः अब सकोच करना बेकार है। प्रस्तुत पद्य में कृष्ण पर राधा ने यह व्यंग्य किया है। इस व्यंग्यार्थ में राधा ने कृष्ण को दोष न देकर अपने भाग्य को ही दोष दिया है। भारतीय अलौकिक स्नेह जगत् में प्रेमिका द्वारा प्रियतम को दोष न देकर अपने भाग्य को ही दोष देने की विलक्षण परम्परा है।

कृष्ण—प्रिये, तुम्हारी अधीनता में मेरा संकोच भी भूषण ही के लिए है।

राधिका—तुम तो सारी दुनियाँ में स्वतंत्र रूप से प्रसिद्ध हो। मेरे अधीन कैसे बनोगे?

कृष्ण—तुम्हारे अधीन केवल मैं ही नहीं हूँ, अपितु मेरे दशो अवतार भी हैं। क्योंकि—

तुम चञ्चल मछली के समान नेत्रवाली हो, कछुए के समान कठिन अतएव उत्कृष्ट स्तनद्वय से युक्त हो। फरकते हुए क्रोडदेश (उदरभाग) से सुशोभित हो।

मध्योऽसौ बलिबन्धनो, मुखरुचा रामास्त्वया निर्जिता,
लेभे श्रीघनताद्य, मानिनि मनस्यङ्गीकृता कल्किता ॥४१॥

राधिका—हला ललिदे, आअण्णिदं तुए। (हला ललिते, आकर्णितं त्वया।)

ललिता—कण्ह, तुह ओदारा तुअम्मि ज्जेव वसन्ति, जं एदाणं

तुम्हारा यह अधर अत्यधिक आनन्द को बढ़ाने वाला है। मध्यदेश में त्रिवली का बन्धन है। अपने मुख की शोभा से तुमने सुन्दरियों को पराजित किया है। आज तुमने शोभा की सघनता को प्राप्त किया है और मन में मलिनता को भी स्वीकार किया है ॥ ४१ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में कृष्ण ने राधा के सौन्दर्य वर्णन के व्याज से अपने दशावतार का निर्देश किया है जो इस प्रकार है—

(१) मीनविलोचना—मत्स्यावतार।
(२) कमठोत्कृष्टस्तनी—कच्छपावतार।
(३) क्रोडेन संगता—वराहावतार। (क्रोड का वराह अर्थ भी होता है।)
(४) प्रह्लादसंवर्धनः—नृसिंहावतार।
(५) मध्योऽसौ बलिबन्धनः—वामनावतार।
(६) मुखरुचा रामाः निर्जिताः—राम, परशुराम और बलराम अवतार।
(७) परशुराम। (८) बलराम।
(९) श्रीघनता—बुद्धावतार (श्रीघन-बुद्ध)
(१०) कल्किता—कल्कि-अवतार।

इस प्रकार कृष्ण ने राधा के नेत्र में मत्स्य, स्तन में कच्छप, क्रोड में वराह, अधर में नृसिंह, त्रिवली में वामन, मुखकान्ति में राम, परशुराम और बलराम, श्रीघनता में बुद्ध और मन में कल्कि अवतार का निर्देश किया है। अतः राधा के समस्त अंगों में अपना अवतार श्लेष पद्धति में बताकर अपनी सर्वाङ्गीन अधीनता को कृष्ण ने स्वीकार किया है।

राधिका—सखि ललिते, तुमने सुन लिया?

ललिता—कृष्ण, तुम्हारे अवतार तुम्हीं में निवास करते हैं, क्योंकि इनके

चिह्नाइं दीसन्ति । (संस्कृतेन) (कृष्ण, तवावताराहस्त्वय्येव वसन्ति, यदेतेषां चिह्नानि दृश्यन्ते ।)

वन्यान्तर्गुरुचापलं, कठिनता, गोसंगतिः, पाणिजे
क्रौर्यं, दम्भरुचिः, सुचण्डिमधुरा, लङ्केशविध्वंसनम् ।
अश्रान्तोन्मदलौल्यमिष्टकदनं, निस्त्रिंशलीलोन्नति-
र्मीनेन्द्राद्यवतारतः स्फुटममी भ्राजन्ति भागास्त्वयि ॥४२॥

चिह्न दिखायी दे रहे हैं। (संस्कृत में) वनसमूह में अत्यधिक चंचलता, कठिनता, गायों की संगति, नखों की क्रूरता, कपट में रुचि, चण्डिमा-क्रोध की सुन्दर-समूहता, केशों की अतिशय आकर्षणशीलता, निरन्तर अहंकारजनित चपलता, सुहृदों को कष्टदायिता और तलवार के समान तीक्ष्ण लीला की उन्नति ये सब स्पष्ट रूप से मीनादि अवतार के चिह्न के रूप में विराजमान हैं ॥ ४२ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में ललिता ने भी श्लेषपद्धति से कृष्ण में दशों अवतार के चिह्नों का संकेत किया है जो इस प्रकार है—

वन्यान्तर्गुरुचापलम्—वन्यं वनसमूहः जलसमूहश्च। वन्य का अर्थ वन-समूह और जलसमूह दोनों होता है। अतः कृष्णपक्ष में वनसमूह और मत्स्य-पक्ष में जलसमूह अर्थ करने से मत्स्यावतार का संकेत मिलता है। क्योंकि जिस प्रकार कृष्ण वनसमूह में चंचल होकर विचरते हैं उसी प्रकार मछली भी जल-समूह में विचरती है। कठिनता से कूर्म का संकेत। कृष्ण कठोर हैं अतः उनकी यह कठोरता कच्छप अवतार का चिह्न है क्योंकि कछुआ कठोर होता है।

गोसंगतिः—कृष्ण पक्ष में गायों की संगति और वराह पक्ष में पृथिवी की संगति। क्योंकि गो का अर्थ गाय और पृथिवी दोनों हैं अतः गोसंगतिः वराह अवतार का चिह्न है।

पाणिजे क्रौर्यम्—पाणिजानां नखानां क्रौर्यम् क्रूरता—कृष्ण पक्ष में स्त्रियों के वक्षस्थ कुचादि में नखक्षत और नृसिंह पक्ष में हिरण्यकशिपु का वक्षोविदारण। अतः नृसिंहावतार का चिह्न। सुचण्डिमधुरा-क्रोधाग्रणी परशुराम का चिह्न। परशुराम भगवान् के आवेशावतार माने जाते हैं। लङ्केशविध्वंसनम्—

कृष्णः—(सस्मितम् ।) सखे, पश्य पश्य ।

ललिताजनि दुर्ललिता बभूव राधा दुराराधा ।
तप्ते मयि न च्छायां शशाक कर्तुं विशाखेयम् ॥ ४३ ॥

कृष्णपक्ष में—अलम्—अतिशयेन केशानाम् । विध्वंसनम्—आकर्षणम् । अर्थात् रतिक्रीडाप्रसंग में स्त्रियों का केशाकर्षण ।

रामपक्ष में—लंकेशस्य·रावणस्य विध्वंसनम् विनाशः । रावण का विनाश । रामावतार का चिह्न अश्रान्तोन्मदलौल्यम्—कृष्ण पक्ष में-अश्रान्तम्—अविरतम्, उन्मदेन-अहंकारेण लौल्यम् अर्थात् निरन्तर अहंकार से चंचल ।

बलरामपक्ष में—उन्मदेन-मदिराजनितमत्ततया-मदिरापान से उत्पन्न उन्मत्तता से चंचल । बलराम अवतार का चिह्न । इष्टकदनम्—कृष्ण पक्ष में-इष्टानां-सुहृदाम् अस्माकं गोपीनां, कदनं दुःखदायित्वम् । अर्थात् हम स्नेही गोपियों का दुखदायी ।

बुद्धपक्ष में-इष्टं यज्ञः तस्य कदनं विनाशनम् अर्थात् यज्ञ का विनाशक । बुद्ध ने वैदिक यज्ञों का विरोध किया था । निस्त्रिंशलीलोन्नतिः—कृष्ण पक्ष में—निस्त्रिंशस्य खड्गस्य इव तीक्ष्णया लीलया उन्नतिः यस्य । अर्थात् तलवार के समान तीक्ष्ण लीला से उन्नतिशील ।

कल्कि पक्ष में—खड्गधारी कल्किः । कल्कि अवतार का चिह्न । खड्ग लेकर भगवान ने कल्कि अवतार लिया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त चिह्न कृष्ण के शरीर में ही दशावतार के प्रतीक हैं ।

कृष्ण—(मुस्कुराहटपूर्वक) मित्र, देखो देखो ।

ललिता दुर्ललिता (कठोर) होकर उत्पन्न हुई । राधा की आराधना भी कठिन हो गयी । मेरे संतप्त होने पर यह विशाखा भी छाया (सहायता) नहीं दे सकी ॥ ४३ ॥

विमर्श—राधा की अनन्य सखी ललिता मुझे फटकार रही है । इतना ही नहीं वरन् मेरे विरुद्ध वह राधा को भरका रही है । उल्टा पाठ पढ़ा रही है । अतः ललिता का व्यवहार कठोर है । राधा तो सीधे मुँह बात भी नहीं करती । अतः

(इति बटोः करान्मल्लीदाम गृहीत्वा । सचाटुप्रणामम् ।)

स्रगियमुरुगुणा ते चित्तवीथीव राधे
शुचिरतिसुकुमारी काममामोदनी च ।
नखपदशशिरेखा धाम्नि पुष्णातु कान्तिं
तव कुचशिवमूर्ध्नि स्वर्धुनीविभ्रमेण ॥ ४४ ॥

(इति भ्रूसंज्ञया विशाखामनुकूलयन्माल्यमर्पयति ।)

मेरे बहुत मनाने पर भी उसकी अनुकूलता की आशा नहीं रही । यह दूसरी सखी विशाखा भी दुःख में मेरी सहायता नहीं कर रही है । जिस प्रकार शाखारहित वृक्ष से छाया की आशा व्यर्थ है, उसी प्रकार उपायशून्य इस विशाखा से सहायता की आशा नहीं की जा सकती ।

(यह कहकर मधुमंगल के हाथ से चमेली की माला लेकर । चापलूसी से प्रणामपूर्वक) ।

हे राधे, तुम्हारी चित्तवृत्ति के समान अत्यधिक गुणोंवाली यह माला, जो कि स्वच्छ सुकुमार तथा पर्याप्त सुगन्ध देनेवाली है, नखचिह्नरूपी चन्द्रपंक्ति के तेज में तुम्हारे स्तनरूपी शिव के शिर पर (अग्रभाग चूचुक पर) आकाशगंगा के ब्याज से शोभा को बढ़ावे । अर्थात् यह माला तुम्हारे कुचमण्डल को सुशोभित करे ॥ ४४ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में रूपक का बहुत सुन्दर निर्वाह हुआ है । माला पर आकाशगंगा का, कुच पर शिव का और नखपद पर चन्द्ररेखा का आरोप किया गया है ।

जिस प्रकार शंकर के मस्तक पर चन्द्रकिरण के प्रकाश में आकाशगंगा लहराती है उसी प्रकार तुम्हारे कुचाग्र पर नख-चिह्नों के प्रकाश में यह माला भी लहरावे । मैथिल कोकिल विद्यापति ने भी एक पद्य में राधा के स्तन पर शम्भु का आरोप किया है—

"त्रिवलि तरंग सितासित संगम उरज शंभु निर्मान ।"

(ऐसा कहकर भृकुटी के इशारे से विशाखा को मनाते (अनुकूल करते) हुए माला देते हैं ।)

विशाखा—(माल्यं निवेदयन्ती । संस्कृतेन)

यस्मिन्नेत्रसरोरुहाङ्गणभुवः प्राप्ते विदूरं मनाक्
सद्यस्ते निमिषोऽपि याति तुलनां तन्वङ्गि मन्वन्तरैः ।
वृन्दारण्यकदम्बमण्डपतटक्रीडाभराखण्डले
तस्मिन्काकुपरायणे तव कथं काम्यानि वाम्यान्यपि ॥४५॥

राधिका—(साभ्यसूयम् ।) अवेहि णिव्वुद्धिए, अवेहि । (अपेहि निर्बुद्धिके, अपेहि ।)

कृष्णः—

धूलिधूसरितचन्द्रकाञ्चलश्चन्द्रकान्तमुखि वल्लभो जनः ।
अर्पयन्मुहुरयं नमस्क्रियां भिक्षते तव कटाक्षमाधुरीम् ॥४६॥

ललिता—राहे, झत्ति कन्धरं परावट्टेहि । पुट्ठदो आआरेदि अज्जिआ । (राधे, झटिति कन्धरां परावर्तय । पृष्ठत आकारयत्यार्या ।)

विशाखा—(माला देती हुई । संस्कृत में)

हे कृशाङ्गि, नेत्रकमल की भूमि से (आँखों के सामने से) जिसके थोड़ी दूर भी चले जाने पर तुम्हारा एक क्षण भी मन्वन्तर के समान हो जाता है (जिसके वियोग में तुम एक क्षण भी बिताना नहीं चाहती) वृन्दावन के कदम्ब-कुञ्ज के तटवर्ती क्रीडासमूह के उस काकुपरायण (वक्रोक्तिनिपुण) इन्द्र में (यमुनातटवर्ती कदम्ब-कुञ्ज में रास रचाने में समर्थ कृष्ण में) तुम्हारी प्रतिकूलताएँ किस प्रकार अभिलाषा के उपयुक्त होंगी ! (अर्थात् कृष्ण के प्रति उदासीन होकर उससे संयोग-सुख की मनोकामना को पूर्ण नहीं कर सकती ।) ॥ ४५ ॥

राधिका—(क्रोधमिश्रित ईर्ष्या से) दूर हटो मूर्खे, दूर हटो ।

कृष्ण—हे चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर मुखवाली प्रिये, धूलि से धूसरित मोरपंख वाला यह प्रियजन पुनः नमस्कार करता हुआ तुम्हारे कटाक्ष की मधुरिमा की भीख माँग रहा है । (अर्थात् एक बार इस प्रणयिरसाप्लावित प्रेमी को तिरछी नजर से देख तो लो) ॥ ४६ ॥

ललिता—राधे, शीघ्र ही गर्दन घुमाओ, पीछे से आर्या पुकारती है ।

(राधिका तथा करोति ।)

(प्रविश्य ।)

मुखरा—(कृष्णं विलोक्य । संस्कृतेन)

वनासक्तं चेतः प्रणयति गृहाद्यो विरमयन्
वरेण्यं बन्धूनां प्रणयमपि विस्मारयति यः ।
महाधूर्तश्रेणीगुणगरिमविस्तारणपटोः
करोत्सङ्गे तस्य त्वमपि सरले पुत्रि पतिता ॥४७॥

मधुमङ्गलः—भो वअस्स, मारुदवाआलीकिदमुही तुम्ह वंशीव एत्थ-वुड्ढिआ पत्ता । ता एत्थ किं विलम्बेसि । (भो वयस्य मारुतवाचालीकृतमुखी तव वंशीवात्र वृद्धा प्राप्ता । तदत्र किं विलम्बसे ।)

कृष्णः—सखे, क मे वंशी ।

मधुमङ्गलः—सअं ज्जेव्व जाणासि कहं त्ति । (स्वयमेव जानासि कुत्रेति ।)

कृष्णः—स्फुटं राधिकयैव हृतेयम् । तदेनां विना कथं प्रस्थान-

(राधा पीछे घूमकर देखती है ।)

(प्रवेश करके)

मुखरा—(कृष्ण को देखकर संस्कृत मे)

अरी भोली बेटी, जो घर छुड़ाकर मन को वन में लगा देता है, जो प्रियजनों के श्रेष्ठ प्रेम को भी भुलवा देता है, महाधूर्तों के समूह के गुणों की महिमा को बढ़ाने में निपुण उस (कृष्ण) के हाथ में तुम भी पड़ गयी हो ! । अर्थात् कृष्ण धूर्तों का मुखिया है । उसके जाल में तुम्हें नहीं फँसना चाहिए ॥ ४७ ॥

मधुमंगल—हे मित्र, हवा से अधिक बोलनेवाली तुम्हारी मुरली की भाँति यह बूढ़ी आ गयी है । तो यहाँ देर क्यों कर रहे हो !

कृष्ण—सखे, मेरी मुरली कहाँ है ?

मधुमंगल—तुम स्वयं जानते हो कि कहाँ है !

कृष्ण—स्पष्ट ही राधिका ने मुरली चुरायी है अतः उसके बिना चलना

मुचितम् ।

मधुमङ्गलः—(सपरिहासम् ।) भो, इदं क्खु अम्हाणं गरुअं भाअधेअं जं इमाहिं मोहिणीहिं तुम चोरिअ ण संगोविदोसि । ता चिट्ठदु वराणी मुरलिया । अत्ताणं घेत्तूण पलाअम्ह । (भोः, इदं खल्वस्माकं गरिष्ठं भागधेयं यदेताभिर्मोहिनीभिस्त्वं चोरयित्वा न संगोपितोऽसि । तत्तिष्ठतु वराकी मुरलिका । आत्मानं गृहीत्वा पलायामहे ।)

कृष्णः—(सस्मितम् ।) रे वाचाट, तिष्ठ । (इति परिक्रम्य ।)

सुन्दरि बिन्दुच्युतके तव नैपुण्यं बभूव पुण्येन ।
शशिमुखि वशीकृताभूद्वंशी मम यत्त्वया त्वरया ॥ ४८ ॥

राधिका—(सभ्रूभङ्गम् ।) मुञ्चेहि णं भङ्गिए कलङ्कारोवणम् । का जाणादि तुम्ह वंशिअम् । (मुञ्चैनं भङ्गया कलङ्कारोपणम् । का जानाति त्वद्वंशिकाम् ।)

ललिता—(संस्कृतेन ।)

न काचिद् गोपीनां भवति परवित्तप्रणयिनी

कैसे उचित है ?

मधुमंगल—(मजाकपूर्वक) सखे, यह हम लोगों का सौभाग्य है कि इन मोहिनी स्त्रियों ने तुम्हें चुराकर नहीं छिपाया है । अतः मूढ़ वंशी रहे, हम तो अपने को लेकर भाग रहे हैं । (अर्थात् अब मुरली की चिन्ता न कर जान बचाकर भागने में ही बुद्धिमानी है ।)

कृष्ण—(मुस्कराकर) अरे मुँहफट, ठहरो (घूमकर) हे सुन्दरि अलंकार विशेष में पुण्यवश तुम्हारी निपुणता हुई । क्योंकि हे चन्द्रमुखि, शीघ्र ही मेरी वंशी तुम्हारे वश में हो गयी ॥ ४८ ॥

राधिका—(भौंहें टेढ़ी करके) बहाना से दोष देने की बात छोड़ो । तुम्हारी मुरली को कौन जानती है ?

ललिता—(संस्कृत में) गोपियों में दूसरे के धन का प्रेमी कोई नहीं होती है ।

सतीनामस्माकं न वद परिवादं ननु मुधा ।

(इत्यर्धोक्ते ।)

कृष्णः—सखि ललिते, प्रसीद । दर्शय सख्यौ दाक्षिण्यम् ।

ललिता—

अलं जल्पैरेभिर्व्रज निजनिकेतं द्रुतमितो

वयं किं संवृत्तास्तव कितव वेणोः प्रतिभुवः ॥ ४६ ॥

राधिका—(वृद्धामासाद्य ।) अज्जे, दिट्ठं तुए अप्पणो णत्तिणो चरित्तम्, जं एसो अम्हाणं चोरिआपरिवादं देदि । (आर्ये, दृष्टं त्वयात्मनो नप्तुश्चरित्रम्, यदेषोऽस्माकं चोरिकापरिवादं ददाति ।)

मुखरा—(ससंरम्भम् ।) रे कण्हड़ा, सच्चं मए विण्णादम्, जं णत्तिअं राहिअं मह तुमं विडम्बेदुं लद्धो सि । (रे कृष्ण, सत्यं मया विज्ञातम्, यन्नप्त्रीं राधां मम त्वं विडम्बितुं लब्धोऽसि ।)

मधुमङ्गलः—अइ णिट्ठुरसंसिणि णिव्वंसिए, वंसिअं हरिअ तुज्झ णत्तिणी तुमं दुग्गं लद्धा । (अयि निष्ठुरशंसिनि निर्वंशिके, वंशिकां हृत्वा तव नप्त्री त्वां दुर्गं लब्धा ।)

मुझ सती स्त्रियों को व्यर्थ दोष मत दो ।

(इतना आधा कहने पर)

कृष्ण—सखि ललिते, प्रसन्न हो जाओ । मुझ पर दया करो ।

ललिता—इन बातों को मत कहो । यहाँ से शीघ्र ही अपने घर चले जाओ । धूर्त, क्या हम लोग तुम्हारी वंशी के जामिन हुए हैं ? ॥ ४६ ॥

राधिका—(बूढ़ी के पास आकर) आर्ये, तुमने अपने नाती के चरित्र को देखा जो हमलोगों पर चोरी का दोष लगाता है ।

मुखरा—(क्रोधपूर्वक) अरे कृष्ण, मुझे यह ठीक ही गया है कि तुम मेरी नतिनी राधा को ठगने आये हो ।

मधुमंगल—अरी कठोर बोलने वाली, तुम्हारी नतिनी मुरली चुरा कर तुमको दुर्ग (केड) में ले जावेगी ।

कृष्णः—आर्ये मुखरे, सत्यमाह वयस्यः।

मुखरा—अइ राहिए, अवि किं सच्चं एदम्। (अयि राधे, अपि किं सत्यमिदम्।)

राधिका—अज्जिए, वुन्दावणे इन्धणाणं किं महग्घदा जादा, जं हत्थमेत्ता वंसकट्ठिआ अम्हेहिं हरिदव्वा। (आर्ये, वृन्दावन इन्धनानां किं महर्घता जाता, यद्धस्तमात्रा वंशकाष्ठिकास्माभिर्हर्तव्या।)

कृष्णः—(स्मित्वा।) हे पीते प्रचण्डदेवि, यदि वेणुं न जहर्थास्ततः कथं तद्वार्तायां स्मितकुड्मलोल्लासादुत्फुल्लकपोलान्दोलायितदृगन्तासि।

मुखरा—(साक्रोशम्।) चपल, अहिमण्णुणो सधम्मिणी तुज्झ वन्दणिज्जा, तहवि परिहसज्जइ। (चपल, अभिमन्योः सधर्मिणी तव वन्दनीया, तदपि परिहस्यसे।)

मधुमङ्गलः—मुहरे, एसो हं जण्णोववीअस्स सवामि। दिट्ठं मए पुहवीविलग्गसेहरेण अज्ज राहिआ वन्दिदा पिअवअस्सेण। (मुखरे, एषोऽहं यज्ञोपवीतस्य शपामि। दृष्टं मया पृथ्वीविलग्नशेखरेणाद्य राधिका वन्दिता प्रियवयस्येन।)

कृष्ण—आर्ये मुखरे, मित्र ठीक कहता है।

मुखरा—अयि राधे, क्या यह सच है?

राधिका—आर्ये, क्या वृन्दावन में लकड़ियों की कमी हो गयी है कि एक हाथ की बाँस की काठी चुरायेंगे।

कृष्ण—(हँसकर) हे प्रचण्ड देवि, यदि तुमने वंशी नहीं चुरायी है तो क्यों उस विषय में मुस्कुराहट की कली के उल्लास से विकसित कपोल से आन्दोलित (चंचल) कटाक्षवाली हो रही हो? (अर्थात् मुरली की बात चलने पर तुम मुस्कुरा क्यों रही हो?)

मुखरा—(क्रोधपूर्वक) चंचल, अभिमन्यु की धर्मपत्नी राधा तुम्हारी वन्दना के योग्य है, उससे भी मजाक करते हो।

मधुमंगल—मुखरे यह मैं जनेऊ की शपथ लेकर कहता हूँ। मैंने देखा है कि आज मित्र ने भूलुण्ठित मस्तक से राधा को नमस्कार किया है।

मुखरा—(सानन्दम् ।) तदो इमस्स धम्मो वड्ढिस्सदि । (तदैतस्य धर्मो वर्धिष्यते)

(सर्वे स्मितं कुर्वन्ति ।)

मुखरा—कण्हड, इमिणा तुज्झ चावलेण खिज्जिस्सदि वल्लवइन्दो णन्दो । ता गदुअ गोमण्डलं संभालेहि । (कृष्ण, अनेन तव चापलेन खेदयति वल्लवेन्द्रो नन्दः । तद्गत्वा गोमण्डलं संभालय ।)

कृष्णः—आर्ये, विना वेणुं विप्रकृष्टाया धवलावलेराकृष्टिर्दुर्घटा ।

ललिता—कण्ह, अवलावलीणो ति कीस उज्जुअं ण कधेसि । (कृष्ण, अबलावलीति कस्मादृजु न कथयसि ।)

कृष्णः—ललिते, वृद्धयाद्य सबला यूयम् । ततः कथमिदं कथयिष्यामि ।

मुखरा—(सरोषम् । संस्कृतेन)

नवीनाग्रे नप्त्री चटुल नहि धर्मात्तव भयं

न मे दृष्टिर्मध्येदिनमपि जरत्या पटुरियम् ।

मुखरा—(आनन्दपूर्वक) तब इसका धर्म बढ़ेगा ।

(सभी मुस्कुराते हैं)

मुखरा—कृष्ण, तुम्हारी इस चपलता से गोकुलेन्द्र नन्द दुःखी होंगे अतः जाकर गायों के समूह को ठीक से देखो ।

कृष्ण—आर्ये, मुरली के बिना दूर गयी हुई धौली गायों की पंक्ति को बुलाना मुश्किल है ।

ललिता—कृष्ण, "अबला की पंक्ति" सीधे ऐसा क्यों नहीं कहते हो ?

कृष्ण—ललिते, इस बूढ़ी के कारण अभी तुम लोग सबला हो, तो ऐसा कैसे कहूँ ?

मुखरा—(क्रोध से । संस्कृत में)

हे चञ्चल, आगे नवीन नतिनी (नाती) है । तुमको धर्म से डर नहीं है । दोपहर में भी मुझ बूढ़ी की यह दृष्टिपटु नहीं है । (वृद्धावस्था के कारण दिन में भी मुझे ठीक से दिखाई नहीं देता) हे नन्दपुत्र, यदि तुम दरवाजे के चबूतरे से

अलिन्दात्त्वं नन्दात्मज न यदि रे यासि तरसा
ततोऽहं निर्दोषा पथि कियति हंहो मधुपुरी ॥ ५० ॥

मधुमङ्गलः—(सरोषम् ।) दुम्मुहि वुड्ढिए, तुम्ह कंसदो किं अम्हे भाएम्ह, जं महुपुरं आसन्नं कहेसि । (दुर्मुखि वृद्धे, तव कंसात्किं वयं बिभीमः, यन्मधुपुरमासन्नं कथयसि ।)

मुखरा—(सव्याजम् ।) अरे, चिट्ठ । एसाहं णत्तिणिअं घेत्तूण राजसहं पत्थिदम्हि । (अरे, तिष्ठ । एषाहं नप्त्रीं गृहीत्वा राजसभां प्रस्थितास्मि ।)

(इति राधादिभिरनुगम्यमाना निष्क्रान्ता ।)

कृष्णः—सखे, समागच्छ । कालिन्दीकच्छमुपेत्य गवामुद्देशं करवावः ।

(इति परिक्रम्य । वलितग्रीवं पश्यन् । सोच्छ्वासम् ।)

मुद्रां धैर्यमयीं क्षणं विवृणुते तारल्यलक्ष्मीं (क्ष्वीं) क्षणं
सोपेक्षाः क्षणमातनोति भणितीरौत्सुक्यभाजः क्षणम् ।

तुरंत नहीं चले जाते तो निर्दोष मैं, कितना रास्ता है मथुरा का । (अर्थात् मथुरा जाकर और कंस से सब कुछ कह कर तुम्हें सजा दिलाऊँगी) ॥ ५० ॥

मधुमंगल—(क्रोधपूर्वक) कटुभाषिणि वृद्धे, क्या हम लोग तुम्हारे कंस से डरते हैं कि मथुरा को निकट बता रही हो ?

मुखरा—(बहाना बनाकर) अरे ठहरो, यह मैं नतिनी को लेकर राजसभा चल पड़ी हूँ । (राधा आदि को साथ लेकर चली जाती है)

कृष्ण—मित्र, आओ । यमुना के किनारे पहुँच कर गायों की खोज करो

(घूमकर टेढ़ी गर्दन से देखते हुए । उसाँस लेकर)

एक क्षण धैर्य की मुद्रा को ग्रहण करती है तो एक क्षण चंचलता की शोभा को । एक क्षण उपेक्षा भरी बोली का विस्तार करती है तो दूसरे क्षण उत्सुकता बढ़ाने वाला वचन कहती है । एक क्षण इधर शुद्ध दृष्टि से देखती है तो एक क्षण

शुद्धां दृष्टिमितः क्षणं प्रणयते प्रेङ्खत्कटाक्षां क्षणं
रोषेण प्रणयेन चाकुलितधी राधा द्विधा भिद्यते ॥५१॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति वेणुहरणो नाम चतुर्थोऽङ्कः ।

चंचल कटाक्ष करती है। इस प्रकार क्रोध और प्रेम से व्याकुल बुद्धिवाली राधा दो प्रकार से विभक्त हो रही है। अर्थात् क्रोध और स्नेह के बीच राधा का मन व्याकुल होकर डोल रहा है ॥ ५१ ॥

(सभी चले जाते हैं)

वेणुहरण नामक चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

पञ्चमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति पौर्णमासी ।)

पौर्णमासी—

स्नेहः शोककृशानोर्विनोदसदनं सदेति नातथ्यम् ।
स्निग्धाद्य राधिकायां यदहं तेनाशु दग्धास्मि ॥ १ ॥

(पुरोऽवलोक्य ।) केयं मधुमङ्गलसङ्गिनी मामभिवर्तते । (पुनर्निमाल्य ।)

अजनितशासनभङ्गा स्थिरजङ्गममण्डलैः स्ववने ।
निखिलप्राणिरुतज्ञा विन्दति पुरतः कथं वृन्दा ॥ २ ॥

(प्रविश्य ।)

वृन्दा मधुमङ्गलश्च—अम्ब, वन्दे ।

पौर्णमासी—स्वस्ति, युवाभ्याम् ।

(उसके बाद पौर्णमासी प्रवेश करती है ।)

पौर्णमासी—प्रेम (पक्ष में—तेल) शोकरूपी अग्नि के विनोद (पक्ष में—विस्तार) का सदा घर है, यह कथन झूठ नहीं है, क्योंकि आज मैं राधा में प्रेम करके शीघ्र जल गयी हूँ । (अर्थात् राधा के प्रति स्नेहाधिक्य ही मेरी चिन्ता का कारण है) ॥ १ ॥

(सामने देखकर)

मधुमंगल के साथ यह कौन मेरी ओर आ रही है ? (फिर देखकर) अपने वन में स्थावर और जंगम समूह जिसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते, जो समस्त प्राणियों की बोली को जानती है, क्या वह वृन्दा सामने से आ रही है ? ॥ २ ॥

(प्रवेश करके)

वृन्दा और मधुमंगल—अम्ब, प्रणाम करता हूँ ।

पौर्णमासी—तुम दोनों का कल्याण हो ।

वृन्दा—भगवति, कथं शोचन्त्यसि।

पौर्णमासी—वत्से, विदग्धपुंगवस्याङ्गसंगमलक्ष्माणि राधिकायामभिलक्ष्य मन्युमानभिमन्युः संप्रति मधुपुर्यां सकुटुम्बो वस्तुमुत्कण्ठते। तत्रापि तदम्बा तदीर्ष्याजम्बालावलीजृम्भायां कादम्बिनीभावमालम्ब्य राधामरालीमुद्वेजयति। तेनाद्य शोचामि।

वृन्दा—पौर्णमासीशुभाशीश्चन्द्रिकैव विघ्नान्धकारसंहारिणी।

मधुमङ्गलः—अज्जे, कहं राहोपरि तुज्झ वरिट्ठं पेम्मम्। (आर्ये, कथं राधोपरि तव वरिष्ठं प्रेम।)

पौर्णमासी—वत्स, सत्यपि भूरिणि प्रेमोदयकारणे तस्यामनन्यापेक्षि ममेदं प्रेम।

वृन्दा—युक्तमिदम्। यतः।

जगति किल विचित्रे कुत्रचिन्निश्चलात्मा

वृन्दा—देवि, चिन्ता क्यों करती हैं?

पौर्णमासी—बेटी, चतुरों में श्रेष्ठ (कृष्ण) के शरीर-सम्पर्क के चिह्नों को राधा में देखकर क्रुद्ध अभिमन्यु (राधा का पति) सम्प्रति अपने सम्बन्धियों के साथ मधुपुरी (मथुरा) में रहना चाहता है। वहाँ भी उसकी माँ जटिला राधा में ईर्ष्यारूपी कीचड़ राशि के बढ़ने पर मेघमाला के भाव का आश्रय लेकर राधारूपी हंसी को उद्विग्न करती है। इससे आज चिन्तित हूँ।

वृन्दा—पौर्णमासी (पूर्णिमा तिथि) को शुभाशीर्वादरूपी चन्द्रिका ही विघ्नरूपी अन्धकार को दूर करने वाली है।

मधुमंगल—आर्ये, राधा के ऊपर आपका अधिक प्रेम क्यों है?

पौर्णमासी—पुत्र, प्रेमोत्पत्ति के बहुत कारण रहने पर भी उस राधा के प्रति मेरा यह स्नेह स्वाभाविक है।

वृन्दा—यह उचित है। क्योंकि—

इस विलक्षण संसार में कहीं पर दृढ़ स्वरूप वाला किसी के प्रेम का बन्ध बिना उपाधि (कारण) का ही होता है। अर्थात् किसी के प्रति किसी के

भवति निरभिसंधिः कस्यचित्प्रेमबन्धः ।
विलसति समुदीर्णे कुम्भजे खञ्जनाली
कलितवति तथास्तं हन्त नाशं प्रयाति ।। ३ ।।

मधुमङ्गलः—केरिसं णिरहिसंधिणो पेम्मस्स चिण्हम् । (कीदृशं निरभिसंधिनः प्रेम्णश्चिह्नम् ।)

पौर्णमासी—

स्तोत्रं यत्र तटस्थतां प्रकटयच्चित्तस्य धत्ते व्यथां
निन्दापि प्रमदं प्रयच्छति परीहासश्रियं बिभ्रती ।
दोषेण क्षयितां गुणेन गुरुतां केनाप्यनातन्वती
प्रेम्णः स्वारसिकस्य कस्यचिदियं विक्रीडति प्रक्रिया ।।४।।

प्रेमोदय में किसी बाहरी कारण की आवश्यकता नहीं है। आन्तरिक कारण विशेष से ही स्वाभाविक प्रेम होता है। अगस्त नक्षत्र के उदित होने पर खञ्जन-पंक्ति सुशोभित होती है किन्तु उसके अस्त हो जाने पर वह खञ्जन पंक्ति छिप जाती है। (अगस्त नक्षत्र के साथ खञ्जन पंक्ति का साहचर्य स्वाभाविक ही है।) ।।३।।

मधुमंगल—अकारण प्रेम का चिह्न कैसा होता है ? जिस प्रेम में प्रशंसा तटस्थता-उदासीनता को प्रकट करती हुई चित्त की व्यथा को धारण करती है। निन्दा भी परिहास की शोभा ग्रहण करती हुई आनन्द देती है। (अर्थात् जहाँ स्तुति और निन्दा को प्रश्रय नहीं मिलता) दोष से क्षीणता और गुण से गुरुता को किसी प्रकार से विस्तार नहीं करती हुई, किसी स्वाभाविक प्रेम की प्रक्रिया क्रीड़ा करती है ।। ४ ।।

विमर्श—स्वाभाविक प्रेम में स्तुति और निन्दा पर ध्यान नहीं दिया जाता। उसमें दोष और गुण की बिना अपेक्षा किए ही प्रेम का परस्पर निर्वाह होता है। दोष के कारण क्षीणता अथवा गुण के कारण उसमें वृद्धि नहीं होती। इसके विपरीत सोपाधिक (सकारण) प्रेम में दोष से क्षीणता और गुण से गुरुता आती है। दोनों में यही अन्तर है।

मधुमङ्गलः—एव्वं रूव्वं क्खु दोणं राहामाहवाणं पेम्म। (एवं रूपं खलु तयो राधामाधवयोः प्रेम।)

पौर्णमासी—वत्स, किमुच्यते। माधुर्यसंसर्गिणो नैसर्गिकस्य परस्परवल्लभानां विदग्धमिथुनानां प्रेमशृङ्खलाबन्धस्य परमोत्कर्षरेखायां दृष्टान्तः किल राधामाधवयोर्भावामृतभूमा।

वृन्दा—भगवति, श्रूयताम्।

यष्टिं वष्टि न पाणिना कलयितुं भृङ्गे न सङ्गार्थितां
घत्ते धातुभिरङ्गमण्डनमयीं नाङ्गीकरोति क्रियाम्।
पर्णं वादयते न घूर्णितमनास्तीरे कृतान्तस्वसुः
क्लिनूरक्लाम्यति मुक्तविभ्रमगुणग्रामोऽद्य दामोदरः॥ ५॥

पौर्णमासी—(सखेदम्।) किमिदम्।

मधुमङ्गलः—ललिदा कौडिल्लेण। (ललिता कौटिल्येन।)

मधुमंगल—राधा और माधव में ऐसा प्रेम है?

पौर्णमासी—वत्स, क्या कहते हो। परस्पर प्रेम रखने वाले चतुर युगलों के (जोड़ियों के) माधुर्य से युक्त स्वाभाविक स्नेह परम्परा के बन्ध के अत्यधिक उत्कर्ष की पंक्ति में राधा और माधव का भावामृतरूपी भूमा (परमानन्द) उदाहरण है।

वृन्दा—देवि, सुनिए।

आज दामोदर (कृष्ण) हाथ से छड़ी को ग्रहण करने की कामना नहीं करते। पर्वत शिखर पर जाने की अभिलाषा भी नहीं करते। गैरिक आदि धातुओं से अपने अंगों को सजाने का कार्य भी नहीं करते और न तो यमुना के तीर पर वंशी ही बजाते हैं। किन्तु व्याकुल चित्त होकर विलास के समस्त प्रकार का परित्याग करके विशेष क्लान्त हो रहे हैं। अर्थात् विनोदी कृष्ण आज अत्यन्त खिन्न हैं॥ ५॥

पौर्णमासी—(दुःखपूर्वक) यह क्यों?

मधुमंगल—ललिता की कुटिलता से।

पौर्णमासी—नूनं ललितया हठानुवर्तितमाना वर्तते राधा ।

वृन्दा—अथ किम् ।

पौर्णमासी—न जाने क खल्वद्य ललितादयः ।

वृन्दा—तासामुद्देशाय मया सुबलः प्रेषितोऽस्ति ।

(प्रविश्य ।)

सुबलः—अज्जे, वन्देमि । (आर्ये, वन्दे ।)

पौर्णमासी—सुबल, क दृष्टा राधादयः ।

सुबलः—मुहराघरोवान्तवट्टिणो रसालस्स मूले । (मुखरागृहोपान्तवर्तिनो रसालस्य मूले ।)

पौर्णमासी—वत्स मधुमङ्गल, तूर्णमनुसृत्य राधिकामभिसारयन्त्यस्मि । तदेतया सूक्तिचन्द्रिकया त्वमानन्दय मुकुन्दम् ।

(मधुमङ्गलः सहर्षं निष्क्रान्तः ।)

वृन्दा—(जनान्तिकम् ।) सुबल, मया समर्पितं पद्यं त्वया किं नाम विशाखायां संचारितम् ।

पौर्णमासी—निश्चय ही ललिता के हठ से राधा ने मान किया है ।

वृन्दा—और क्या !

पौर्णमासी—न जाने ललिता आदि इस समय कहाँ हैं ।

वृन्दा—उन लोगों की खोज के लिए मैंने सुबल को भेजा है ।

(प्रवेश करके)

सुबल—आर्ये, प्रणाम करता हूँ ।

पौर्णमासी—सुबल, राधा प्रभृति को तुमने कहाँ देखा ?

सुबल—मुखरा के घर के समीपवर्ती आम्रवृक्ष के नीचे ।

पौर्णमासी—बेटा मधुमंगल, मैं राधा के समीप शीघ्र जाकर उसे अभिसार के लिये तैयार करती हूँ । अतः इस सुन्दर वचनरूपी चन्द्रिका से तुम कृष्ण को आनन्दित करो । (मधुमंगल सहर्ष जाता है ।)

वृन्दा—(एकान्त में सुबल से) सुबल, मेरे द्वारा समर्पित पद्य को क्या तुमने विशाखा के पास पहुँचा दिया है ?

सुबलः—अघ इं। (अथ किम्।)

पौर्णमासी—वृन्दे, यावत्प्रसाद्य प्रसाध्य च राधां संचारयामि तावद्युवाभ्यां पुरः कदम्बनिकुञ्जे विश्राम्यताम्।

(वृन्दा सुबलेन सह निष्क्रान्ता।)

पौर्णमासी—(परिक्रम्य।) कथं ललितेयमायाति।

(प्रविश्य।)

ललिता—भअवदि, तुम्ह सआसं गच्छन्ती म्हि। (भगवति, तव सकाशं गच्छन्त्यस्मि।)

पौर्णमासी—किमर्थम्।

ललिता—अज्जे, तेण धुत्तेण पुणो पुणो अवरज्झिदा पिअसही लाहवं अमणिअ सुट्ठु उक्कण्ठेदि। ता किं करिस्सम्। (आर्ये, तेन धूर्तेन पुनः पुनरपराद्धायिता प्रियसखी लाघवममत्वा सुष्ठूत्कण्ठयति। तत्किं करिष्यामि।)

पौर्णमासी—वत्से, मुञ्च मुधाकालुष्यम्। नापराध्यति माधवः। किंतु मधुमङ्गलप्रमादितैव वः खेदाय बभूव।

सुबल—और क्या !

पौर्णमासी—वृन्दे, जब तक मैं राधा को मनाकर और सजाकर भेजती हूँ तब तक तुम दोनों सामने कदम्ब कुञ्ज में विश्राम करो।

(वृन्दा सुबल के साथ चली जाती है।)

पौर्णमासी—(घूम कर) क्या यह ललिता आ रही है ?

ललिता—(प्रवेश करके) देवि, मैं आपके पास जा रही हूँ।

पौर्णमासी—किस लिए ?

ललिता—आर्ये, उस धूर्त के द्वारा बार-बार अपमानित होने पर भी प्यारी सखी राधा लघुता का ख्याल न कर बहुत उत्सुक हो रही है। तो मैं क्या करूँ ? (अर्थात् अपने सम्मान की उपेक्षा कर उससे मिलना चाहती है।)

पौर्णमासी—बेटी, व्यर्थ की कलुषता छोड़ो। माधव का दोष नहीं है। किन्तु मधुमंगल की असावधानी ही हम लोगों के लिए दुःखदायी हुई।

ललिता—(स्वगतम् ।) ममा वि एव्वं णन्दीमुहीए कथिदम् । (प्रकाशम् ।) अज्जे, पेक्ख एषा राही रसालस्य मूले कम्पन्ती किंपि जप्पदि । (ममाप्येवं नान्दीमुख्या कथितम् । आर्ये, पश्यैषा राधा रसालस्य मूले कम्पमाना किमपि जल्पति ।)

(ततः प्रविशति सानुतापं राधा ।)

राधा—(संस्कृतेन ।)

कर्णान्ते न कृता प्रियोक्तिरचना क्षिप्तं मया दूरतो
मल्लीदाम निकामपथ्यवचसे सख्यै रुषः कल्पिताः ।
क्षोणीलग्नशिखण्डशेखरमसौ नाभ्यर्थयन्नीक्षितः
स्वान्तं हन्त ममाद्य तेन खदिराङ्गारेण दंदह्यते ॥ ६ ॥

पौर्णमासी—पुत्रि, प्रच्छन्नमुपसृत्य शृणुवः प्रेमविलासम् ।

(इत्युभे तथा स्थिते ।)

ललिता—(मन ही मन) नान्दीमुखी ने हमें भी ऐसा ही कहा है । (प्रकट) आर्ये, देखिए । यह राधा आम्रवृक्ष के नीचे काँपती हुई कुछ बोल रही है ।

(उसके बाद दुःखी राधा प्रवेश करती है)

(संस्कृत में)

मैंने (कृष्ण के) कान के पास प्रिय वचन का विन्यास नहीं किया । चमेली की माला को दूर फेंक दिया । सदा हित की बात करने वाली सखी पर क्रोध किया और पृथिवी पर मोर मुकुट का स्पर्श कर प्रार्थना करते हुए इस कृष्ण को आँख उठाकर नहीं देखा । अतः आज मेरा हृदय खदिर के उस अंगार से अत्यधिक जल रहा है (अर्थात् जब कृष्ण मुझे मना रहा था तो मैंने उसकी उपेक्षा की किन्तु आज अपनी उसी गलती पर पछता रही हूँ । उसके विरह में मैं अत्यन्त कातर हो गयी हूँ) ॥ ६ ॥

पौर्णमासी—बेटी, छिपे रूप से पास जाकर हम लोग उसके प्रेमविलास को सुनें । (दोनों छिपकर सुनती हैं)

राधिका—(सचापलम् । पुनः संस्कृतेन)

धन्यास्ता हरिणीदृशः स रमते याभिर्नवीनो युवा

(पुनः सशङ्कम् ।)

स्वैरं चापलमाकलय्य ललिता मां हन्त निन्दिष्यति ।

(पुनः सौत्सुक्यम् ।)

गोविन्दं परिरब्धुमिन्दुवदनं हा चित्तमुत्कण्ठते

(पुनः सामर्षम् ।)

धिग्वामं विधिमस्तु येन गरलं मानाभिधं निर्ममे ॥ ७ ॥

ललिता—अदक्खिणे, चिट्ठ । सअं जेव कण्हं णिराकदुअ भृङ्गीए मे दूसेसि । (अदक्षिणे, तिष्ठ । स्वयमेव कृष्णं निराकृत्य भृङ्गया मां दूषयसि ।)

राधिका—(भृङ्गीमवेक्ष्य । संस्कृतेन)

कृमिरपि नमितात्मा हन्त वृन्दावनेऽस्मिन्

कलयति निजमौलौ बर्हमौलेर्निदेशम् ।

राधिका—(चञ्चलतापूर्वक पुनः संस्कृत में)

वे मृगनयनी सुन्दरियाँ धन्य हैं जिनके साथ वह नवीन युवक (कृष्ण) क्रीड़ा करता है । (फिर शंकापूर्वक) हाय, स्वच्छन्द चपलता को जानकर ललिता मेरी निन्दा करेगी । (फिर उत्सुकतापूर्वक) हा, चन्द्रमुख गोविन्द का आलिंगन करने के लिए मन उत्सुक (उतावला) हो रहा है । (फिर क्रोधपूर्वक) विपरीत ब्रह्मा को धिक्कार है जिसने मानसंज्ञक विष का निर्माण किया है । (अर्थात् (सम्प्रति 'मान' मेरे लिए विष बन गया है) ॥ ७ ॥

ललिता—प्रतिकूले, (मानिनी) ठहरो, स्वयं ही कृष्ण का निरादर करके भौंरी द्वारा मुझे दोष देती हो ।

राधिका—(भौंरी को देखकर । संस्कृत में)

कीट भी विनम्र भाव से इस वृन्दावन में शिर मोरमुकुट वाले (कृष्ण) के आदेश को शिर पर धारण करता है क्योंकि सुन्दर गुञ्जार करने वाली यह भौंरी

अनुनयति मुहुर्मां नेतुकामालिनीयं
यदमलमधुरोक्तिस्तस्य दृष्टिं शठस्य ॥ ८ ॥

पौर्णमासी—(सनर्मस्मितम् ।) निखिलमेव वृन्दाटवीप्राणिवृन्दं दूतीभूतमियं मन्यते महामानिनी ।

राधिका—(प्रेमावेशं नाटयन्ती । सचमत्कारम् ।) कथं एसो मं मोट्टिमं परिरद्धुं उवसण्णो कण्हो । (कथमेष मां बलात्कारेण परिरब्धुमुपसन्नः कृष्णः ।)

पौर्णमासी—गम्भीरानुरागविवर्तोऽयम्, यदस्यां माधवस्य विस्फुरणम् ।

राधिका—(सहुंकारं परावृत्य ।) हन्त भो वङ्ककलासालि, चन्दाअलीकोडचिरासङ्गभङ्गुरकुरङ्ग, अवेहि । एसो तुमं परिभविस्ससि मए । (हन्त भो वक्रकलाशालिन्, चन्द्रावलीक्रोडचिरासङ्गभङ्गुरकुरङ्ग, अपेहि । एष त्वं परिभविष्यसि मया ।)

(इति कर्णोत्पलं क्षिपन्ती । संस्कृतेन ।)

यमुनातीरकदम्बाः संप्रति मम हन्त साक्षिणो यूयम् ।

उस शठ के दर्शन पाने की अभिलाषा से (अथवा उस धूर्त के दृष्टिपथ में ले जाने की इच्छा से) मुझको बार बार मना रही है ॥ ८ ॥

पौर्णमासी—(मन्द हासपूर्वक) यह महागर्विणी (राधा) वृन्दावन के समस्त जीव-समूह को दूतीमय समझ रही है ।

राधिका—(प्रेम के आवेग का अभिनय करती चमत्कारपूर्वक) क्या यह कृष्ण बलपूर्वक मेरा आलिंगन करने के लिए समीप पहुँच गया है !

पौर्णमासी—प्रेम का यह विस्तार गम्भीर है । (अर्थात् स्नेह का रंग गाढ़ा हो गया है) क्योंकि इसमें माधव का चमत्कार है ।

राधिका—(हुंकार के साथ लौटकर) अरे टेढ़ी कलावाले, चन्द्रावली की गोद में बहुत देर तक क्रीड़ा करने वाले हे चञ्चल मृग, दूर हो जाओ (अन्यथा) यह तुम मेरे द्वारा अपमानित होगे । (कान का कर्णफूल फेंकती हुई । संस्कृत

एष बलान्मामबलां गोकुलधूर्तः कदर्थयति ॥ ९ ॥

पौर्णमासी—ललिते, परां कोटिमधिरूढा राधिकोत्कण्ठा। तदियं त्वरितमभिसार्यताम्।

ललिता—(परिक्रम्य।) हला राहि, एक्का ज्जेव्व किं मन्तेसि। (हला राधे, एकैव किं मन्त्रयसि।)

राधिका—(ललितामालोक्य। स्वगतम्।) कधं सच्चं जेव्व एक्कम्हि, जं कण्हो ण दीसइ। (इति औत्सुक्यम्।) हला ललिदे, (कथं सत्यमेवैकास्मि, यत्कृष्णो न दृश्यते। हला ललिते,)

परतणुपवेसविज्जा कहमिह सामेण कामिणा पढिदा।
मम हिअए माणग्गी पविसिअ णिव्वाविदो जेण ॥ १० ॥
(परतनुप्रवेशविद्या कथमिह श्यामेन कामिना पठिता।
मम हृदये मानाग्निः प्रविश्य निर्वापितो येन ॥)

(प्रविश्य।)

विशाखा—हला, सुबलहत्थादो लद्धा इअं पत्तिआ। (हला, सुबलहस्ताल्लब्धेयं पत्रिका।)

में) हे यमुना तीर के कदम्ब, इस समय तुम मेरे साक्षी हो। गोकुल का यह धूर्त बलपूर्वक मुझे तिरस्कृत कर रहा है ॥ ९ ॥

पौर्णमासी—ललिते, राधा की (प्रेमविषयक) उत्कण्ठा अन्तिम अवस्था तक पहुँच गयी है अतः शीघ्र ही इसे कृष्ण के पास ले जाओ।

ललिता—(आगे बढ़कर) सखी राधे, अकेली क्या सोच रही हो ?

राधिका—(ललिता को देखकर मन ही मन) क्या सचमुच मैं अकेली हूँ ? क्योंकि कृष्ण दिखायी नहीं दे रहा है। (प्रकट) सखी ललिते, दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की विद्या उस कामी कृष्ण ने कैसे सीखी है जिसने मेरे हृदय मे प्रविष्ट होकर मान की आग को बुझा दिया है ॥ १० ॥

(प्रवेश करके)

विशाखा—सखि, सुबल के हाथ से मैंने यह पत्रिका पायी है।

ललिता—(गृहीत्वा वाचयति)

मेध्योऽपि माधविकया मधुपो यदेष
क्षिप्तः स्वयं प्रचलता नवपल्लवेन ।
तस्याः खलु क्षतिरियं सुषमाक्षयेण
नन्दत्ययं तु विरुवन्नरविन्दिनीषु ॥ ११ ॥

राधिका—(सविषादम् । संस्कृतेन)

अजनि विमुखः शङ्के पङ्केरुहाक्षि विचक्षणो
मयि मधुरिपुर्दोषश्रेणीविहारवनश्रियाम् ।

ललिता—(लेकर पढ़ती है) माधवी ने हिलते हुए नूतन पल्लव के द्वारा दोषरहित भी इस भौंरे को यदि स्वयं हटा दिया है तो सुन्दरता के विनाश से यह माधवी की ही हानि है। यह भौंरा तो कमलिनियों में गुञ्जन करता हुआ आनन्द ही पाता है ॥ ११ ॥

विमर्श--भ्रमर के बिना माधवी की शोभा नहीं है किन्तु माधवी के बिना भी भ्रमर कमलिनी में गुनगुनाता ही रहता है। माधवी की शोभा इसी में है कि भ्रमर उस पर गुञ्जार करे। यदि माधवी अपने समीप आये भ्रमर को कम्पित पल्लव से दूर हटा देती है तो यह माधवी की शोभा ही कम हो जाती है। भ्रमर की कुछ भी हानि नहीं होती। वह तो कमलिनी का रसपान कर मस्ती में झूमता ही रहता है। ध्वनि है कि यदि राधा ने कृष्ण की उपेक्षा की है तो इसमें राधा की ही हानि है। कृष्ण तो चन्द्रावली प्रभृति गोपियों में आनन्द करता ही है। अतः राधा को कृष्ण का स्वागत करना चाहिये क्योंकि कृष्ण के साथ ही राधा के सौंदर्य की सार्थकता है।

राधिका—(विषादपूर्वक । संस्कृत में)

हे कमलनयने, चतुर मधुरिपु कृष्ण दोषपंक्ति के विहारवन की शोभावाली मुझमें विमुख हो गया है, ऐसी मुझे शंका है। इस को बिना प्राप्त किए, काँटों से

अकलितरसः सूचीविद्धो रजः प्रसरान्धधी-
र्न मधुपयुवा किं केतक्यां विरक्तिमुपैष्यति ॥ १२ ॥

(इति वैकल्यं नाटयति ।)

पौर्णमासी—नहि चन्द्रेण चन्द्रिकाया मोक्षः कदापि संभवति ।

विशाखा—हला, समास्सस । तुह उक्कण्ठिदं तक्किअ मए कण्हप-उत्तिं विण्णादुं णान्दीमुही पेसिदत्थि । (सखि, समाश्वसिहि । तव उत्कण्ठां तर्कित्वा मया कृष्णप्रवृत्तिं विज्ञातुं नान्दीमुखी प्रेषितास्ति ।)

(प्रविश्य ।)

नान्दीमुखी—(संस्कृतेन ।)

मृदुरपि निसर्गतस्त्वं कथमार्द्रे माधवे कठोरासि ।
अथवा नवनीतपुटी हिमद्रवे कक्खटा प्रेक्षि ॥ १३ ॥

राधिका—हला, अवि णाम सुहं वट्टदि माहवो । (सखि, अपि नाम शुभं वर्तते माधवः ।)

नान्दीमुखी—(संस्कृतेन ।)

बिंधा और पराग समूह से मूढ मधुप युवक क्या केतकी में विराग को नहीं प्राप्त करेगा ? (अर्थात् मेरा स्नेह न पाकर कृष्ण का मुझसे उदासीन होना स्वाभाविक है ।) ॥ १२ ॥

(यह कह कर विकलता दिखाती है)

पौर्णमासी—चन्द्रमा से चाँदनी की मुक्ति कभी भी नहीं हो सकती ।

विशाखा—सखि, धीरज धरो, तुम्हारी उत्कण्ठा का अनुमान कर मैंने कृष्ण की प्रवृत्ति (प्रेम व्यवहार) को जानने के लिए नान्दीमुखी को भेजा है ।

(प्रवेश करके)

नान्दीमुखी—(संस्कृत में) स्वभावतः कोमल भी तुम कोमल माधव में क्यों कठोर हो ? अथवा मक्खन का दोना बर्फ के गलने में कठिन ही दीखता है ॥१३॥

राधिका—सखि, माधव सकुशल तो है ?

नान्दीमुखी—(संस्कृत में)

क्षणमपि न सुहृद्भिर्नर्मगोष्ठीं विधत्ते
रचयति न च चूडां चम्पकानां चयेन।
परमिह मुरवैरी योगिवन्मुक्तभोग-
स्तव सखि मुखचन्द्रं चिन्तयन्निर्वृणोति ॥ १४ ॥

राधिका—(विशाखां परिष्वज्य। संस्कृतेन।)

भूयो भूयः कलिविलसितैः सापराधापि राधा
श्लाघ्येनाहं यदघरिपुणा बाढमङ्गीकृतास्मि।
तत्र क्षामोदरि किमपरं कारणं वः सखीनां
दत्तामोदां प्रगुणकरुणामञ्जरीमन्तरेण ॥ १५ ॥

(नेपथ्ये।)

गर्वोदग्राः कलमविकलं तन्वतामन्यपुष्टा

एक क्षण भी मित्रों के साथ नर्मगोष्ठी हास परिहासपूर्ण बैठक नहीं करते। चम्पा के फूलों से शिखा को भी सँवारते। किन्तु यहाँ मुरारि कृष्ण योगी की भाँति भोग का त्याग कर तुम्हारे मुखचन्द्र का चिन्तन करते हुए सुखी होते हैं। (अर्थात् समस्त क्रियाकलाप को छोड़कर केवल तुम्हारा ही ध्यान लगाए रहते हैं) ॥ १४ ॥

राधिका—(विशाखा का आलिंगन करके। संस्कृत में) बार-बार कलह के विलासों से अपराधिनी भी मैं राधा अघारि कृष्ण द्वारा प्रेमपूर्वक जो अंगीकृत हुई हूँ, उसमें हे कृशोदरि, मेरी सखियों के बढ़े हुए गुणों से युक्त आनन्द देनेवाली करुणा रूप मञ्जरी के अतिरिक्त दूसरा कारण क्या हो सकता है ?) अर्थात् राधा के प्रति विशाखा आदि सखियों की दयाभावना को देखकर ही कृष्ण उस पर कृपा करते हैं। राधा में कृष्ण की अनुकंपा का एकमात्र कारण सखियों का करुणाभाव ही है।) ॥ १५ ॥

(नेपथ्य में)

अहंकार से उन्मत्त कोयल अविकल भाव से कूकें। मृगलक्ष्नाएँ निर्विघ्न

निष्प्रत्यूहं मृगयुवतयः सस्यमास्वादयन्तु ।
सीमन्तिन्यो गृहनयमयीं शीलयन्तु प्रणालीं
धूर्तो वेणुर्विहरति करे नाद्य पीताम्बरस्य ॥ १६ ॥

राधिका—(वंशीमुद्वास्य । सोपालम्भम् ।)

सद्वंशतस्तव जनिः पुरुषोत्तमस्य
पाणौ स्थितिर्मुरलिके सरलासि जात्या ।
कस्मात्त्वया सखि गुरोर्विषमा गृहीता
गोपाङ्गनागणविमोहनमन्त्रदीक्षा ॥ १७ ॥

विशाखा—हला, अचरिआ इअं वंशी, जं मारुदाहिमुहीकिदा सअं सद्दाएदि । (सखि, आचार्येयं वंशी, यन्मारुताभिमुखीकृता स्वयं शब्दायते ।)

राधिका—सहि, परिक्खिस्सम् । (इति तथा करोति ।) (सखि, परीक्षिष्ये ।)

होकर हरी-हरी घास का स्वाद लें। स्त्रियाँ गृहनीति से युक्त परंपरा का आचरण करें। (क्योंकि) आज धूर्त मुरली पीताम्बर कृष्ण के हाथ में क्रीड़ा नहीं कर रही है ॥ १६ ॥

राधिका—(वंशी को निकालकर उलाहनापूर्वक)

हे मुरलि, उत्तम वंश से (बाँस से) तुम्हारी उत्पत्ति हुई है। पुरुषश्रेष्ठ कृष्ण के हाथ में तुम्हारा निवास है तुम जाति से सीधी हो। (फिर भी) हे सखि, तुमने गोपियों के समूह को मुग्ध करने वाले मंत्र की विषम दीक्षा किस गुरु से पायी है ? ॥ १७ ॥

विशाखा—सखि, यह मुरली आचार्या है जो कि वायु की ओर कर देने पर स्वयं बजने लगती है।

राधिका—सखि, परीक्षा लूँगी । (यह कहकर मुरली को हवा की ओर करती है)

विशाखा—सुणिज्जउ महुरा काअली। ललिदं वरेहिमाहुणोदु कण्हस्स परिवारः। (श्रूयतां मधुरा काकली। ललितं वरमाश्रृणोतु कृष्णस्य परिवारः।)

(प्रविश्य।)

वृन्दा—(प्रच्छन्नम्।) भगवति, न कदापि वंशी देयेति श्रुतं मया ललिताद्दुर्मन्त्रितम्।

पौर्णमासी—वत्से, युक्तिमायत्यां करिष्यामि।

(प्रविश्य।)

जटिला—णूणं इदो कण्हेण मिलिदं जं मुरली वादिदा। (विलोक्य।) अच्चो, कहं वासहाणवीहत्थे कण्हस्स वंशी। ता णिण्हुदं गदुअ णं गेहिस्सम्। (इति सक्रोधमुपसृत्य सामर्षम्।) अयि दुव्विणीदगोआलपुत्तिए मुञ्च मुरलिअम् (इत्याकृष्य गृह्णाति।) (नूनमितः कृष्णेन मिलितं यन्मुरली वादिता। अहो, कथं वार्षभानवीहस्ते कृष्णस्य वंशी। तन्निभृतं गत्वा एनां ग्रहीष्यामि। अयि दुर्विनीतगोपालपुत्रिके, मुञ्च मुरलिकाम्।)

ललिता—(अपवार्य।) हद्धी, पमादो। कधं वुड्ढिआ अतक्किदं मुरली आअड्ढिदा। (हा धिक्, प्रमादः। कथं वृद्धया अतर्कितं मुरली आकृष्टा।)

विशाखा—मधुर ध्वनि सुनिए। कृष्ण का परिवार ललित श्रेष्ठ ध्वनि सुने।

(प्रवेश करके)

वृन्दा—(छिपकर) देवि, वंशी कभी न दी जाय, ललिता की ऐसी कुमन्त्रणा मैंने सुनी है।

पौर्णमासी—बेटी, आगे उपाय करूँगी।

जटिला—(प्रवेश करके) निश्चय ही यहाँ कृष्ण ने मुरली बजायी है। (देखकर) अहो वृषभानु की पुत्री राधा के हाथ में मुरली कैसे? तो चुपचाप जाकर इसे पकड़ूँगी।

(यह कह कर एकाएक समीप जाकर क्रोधपूर्वक) अरी दुष्ट गोपिके, मुरली छोड़ दो। (खींचकर मुरली छीन लेती है)

ललिता—(एकान्त में) हाय, भूल हुई। बूढ़ी ने अचानक कैसे मुरली ले ली!

जटिला—णं क्खु भअवदीए पौर्णमासीए दंसइस्सम्, जा मज्झ भणिदं ण पत्तिआएदि। (एनां खलु भगवत्यै दर्शयिष्यामि, या मम भणितं न प्रत्येति।)

पौर्णमासी—पुत्रि वृन्दे, महत् कष्टमापतितम्। पश्य जटिलाममोटजदिशं प्रयाति।

वृन्दा—भगवति, मा चिन्तय। क्षिप्रमसौ मुरलीं लुण्ठयामि। (इति निष्क्रान्ता।)

ललिता—(सभयमनुसृत्य।) अज्जे कीस अलीअं सङ्कसि, जं एसा कालिन्दीकूलम्हि अम्हेहिं लद्धा। (आर्ये, कस्मादलीकं शङ्कसे, यदेषा कालिन्दीकूलेऽस्माभिर्लब्धा।)

जटिला (सरोषम्।) चवले दुम्मन्तिणि, चिट्ठ चिट्ठ। (चपले दुर्मन्त्रिणि, तिष्ठ तिष्ठ।)

(प्रविश्य।)

सुबलः—अज्जे जडिले, पेक्ख दहिलम्पडा मक्कडी तुज्झ घरं पविसइ। (आर्ये जटिले, पश्य दधिलम्पटा मर्कटी तव गृहं प्रविशति।)

जटिला—इसे मैं देवी पौर्णमासी को दिखाऊँगी, जो मेरे कथन पर विश्वास नहीं करती।

पौर्णमासी—बेटी वृन्दे, अत्यधिक दुःख उपस्थित हो गया। देखो, जटिला मेरी कुटी की ओर जाती है।

वृन्दा—देवि, चिन्ता न करें, मैं तुरत मुरली को लूट लेती हूँ।

(यह कह कर चली जाती है)

ललिता—(भयपूर्वक पीछे चलकर) आर्ये, व्यर्थ सन्देह क्यों करती हो? क्योंकि यह मुरली तो हमलोगों ने यमुना के किनारे पायी है।

जटिला—दुष्टबुद्धि सिखाने वाली चंचले ठहरो।

(प्रवेश करके)

सुबल—आर्ये जटिले, देखो, दही खाने वाली वानरी तुम्हारे घर में घुस रही है।

जटिला—(साचिग्रीवमालोक्य ।) सुवल, सच्चं कहेसि । मक्खणचोरिणी एसा मक्कडी । (इति परावृत्य धावन्ती निष्क्रान्ता ।) (सुवल, सत्यं कथयसि । नवनीतचौरिण्येषा मर्कटी ।)

पौर्णमासी—नूनं वृन्दया प्रेरितास्ति कक्खटीयं नाम जरन्मर्कटी ।)

सुबलः—णन्दीमुहि, पेक्ख । पक्खित्तेण वेणुणा मूढजडिलाए मक्कडी ताडिदा । (नान्दीमुखि, पश्य । प्रक्षिप्तेन वेणुना मूढजटिलया मर्कटी ताडिता ।)

पौर्णमासी—(सहर्षम् ।) दिष्ट्या मुरलीमादाय कक्खटीयं कदम्बमधिरूढा ।

(सर्वाः प्रहर्षं नाटयन्ति ।)

(प्रविश्य ।)

जटिला—हद्धी वच्छ सुवल, हत्थादो मे मुरली गदा । ता तुज्झ णिम्मञ्छणं जामि । समप्पेहि मे वंसिअम् । (हा धिक् वत्स सुवल, हस्तान्मे मुरली गता । तस्मात्तव निर्मन्थनं यामि । समर्पय मे वंशिकाम् ।)

सुबलः—अज्जे, जहत्थणामा एसा कक्खटी केअलं तुज्झ वहिणी-

जटिला—(गर्दन टेढ़ी करके देखकर) सुबल, ठीक कहते हो । यह वानरी मक्खन चुराने वाली है ।

(यह कह कर दौड़ती हुई चली जाती है)

पौर्णमासी—निश्चय ही वृन्दा ने कक्खटी नाम की इस बूढ़ी वानरी को प्रेरित किया है ।

सुबल—नान्दीमुखी, देखो, मूर्ख जटिला ने वंशी फेंक कर वानरी को मारा है ।

पौर्णमासी—(प्रसन्नतापूर्वक) भाग्य से यह वानरी वंशी लेकर कदम्बवृक्ष पर चढ़ गयी । (सभी प्रसन्नता का अभिनय करते हैं)

(प्रवेश करके)

जटिला—हाय कष्ट, वत्स सुबल, मेरे हाथ से मुरली चली गयी अतः तुम्हारे पास आई हूँ । मेरी मुरली दे दो ।

सुबल—सार्थक नामवाली यह वानरी केवल तुम्हारी बहिन के पुत्र विशाल से

पुत्तादो विसालादो भाएदि। ता गोवड्डणसिङ्गे खेलन्तं णं गदुअ अब्भत्थेहि। (आर्ये, यथार्थनामा एषा कक्खटी केवलं तव भगिनीपुत्राद्विशालाद्बिभेति। तद्गोवर्धनशृङ्गे खेलन्तमेनं गत्वाभ्यर्थय।)

(जटिला निष्क्रान्ता।)

पौर्णमासी—दिष्ट्या व्याजेन जरतीं दूरमपसार्य धूर्तोऽयं भ्रूविभ्रमेण ललितां त्वरयति।

ललिता—(नेत्रप्रान्तं कूणयन्ती।) हला राहि, एहि। वेणुं मग्गम्हे। (हला राधे, एहि। वेणुं मार्गयावः।)

राधिका—(स्वगतम्।) दिट्ठिआ अहिसारेदि मम्। (दिष्ट्याभिसारयति माम्।)

(प्रविश्यापटीक्षेपेण।)

मुखरा—विशाखे, अहिमण्णू संदिसइ—अज्ज जोइसिआणं उपदेसेण मए गोमङ्गला णाम चण्डी पूअणीज्जा। ता पूअणोपहारं घेतूण तुमं चेचरुक्खस्स तले राहिअं लम्भय त्ति। (विशाखे, अभिमन्युः संदिशति—अद्य ज्यौतिषिकाणामुपदेशेन मया गोमङ्गला नाम चण्डी पूजनीया। तत्पूजनोपहारं गृहीत्वा त्वं चैत्यवृक्षस्य तले राधिकां लम्भयेति।)

डरती है अतः गोवर्धन की चोटी पर खेलते हुए उसके पास जाकर प्रार्थना करो।

(जटिला चली जाती है)

पौर्णमासी—संयोगवश बहाना से बूढ़ी को दूर हटाकर यह धूर्त भ्रूविलास द्वारा ललिता को शीघ्रता करने का इशारा कर रहा है।

ललिता—सखि राधे, आओ। हम दोनों वंशी ढूँढ़ें।

राधिका—(मन ही मन) सौभाग्य से मुझको कृष्ण के पास ले जाती है।

(सहसा बिना पर्दा हटाये प्रवेश करके)

मुखरा—विशाखे, अभिमन्यु संदेश देता है—आज ज्योतिषियों के उपदेश से मुझे गोमंगला नामक चण्डी की पूजा करनी है। अतः पूजा का सामान लेकर तुम चैत्य वृक्ष के नीचे राधिका को ले आओ।

राधिका—(सखेदमपवार्य ।) हन्त, दुद्देअस्स पाडिउल्लम् । (इति ललितामुखमीक्षते ।) (हन्त, दुर्दैवस्य प्रातिकूल्यम् ।)

ललिता—हला सच्चणामा एसो अहिमण्णु । ता गदुअ पूअणोवहारं संपादेम्ह । (हला, सत्यनामा एषोऽभिमन्युः । ततो गत्वा पूजनोपहारं संपादयामः ।)

(इति सर्वा निष्क्रान्ताः ।)

पौर्णमासी—(सुबलमनुसृत्य सव्यथम् ।) वत्स, दुःसमाधानेयं गतिरुपस्थिता । तदद्य वृन्दया सह गत्वा समाश्वस्यतां त्वया पाटवेन पुण्डरीकाक्षः । मया तु प्रामाणिकपुरंध्रीणां गोष्ठीमासाद्य जटिलाकौटिल्यं वर्णयिष्यते । (इति निष्क्रान्ता ।)

सुबलः—(परिक्रम्य ।) एषा तमालतले डाहिणहत्थे गहीदवंसिआ वुन्दा चिट्ठइ । (एषा तमालतले दक्षिणहस्ते गृहीतवंशिका वृन्दा तिष्ठति ।)

(प्रविश्य ।)

राधिका—(दुःखपूर्वक एकान्त में ललिता से) हाय, दुर्भाग्य की प्रतिकूलता । (यह कह कर ललिता का मुँह देखती है ।)

ललिता—सखि, अभिमन्यु सार्थक नामवाला है (अर्थात् क्रोधी है) अतः चलकर पूजन सामग्री ही एकत्रित करते हैं ।

(यह कह कर सभी चली जाती हैं ।)

पौर्णमासी—(सुबल का अनुसरण करके खेदपूर्वक)

वत्स, जिसका समाधान कठिन है, ऐसी अवस्था उपस्थित हो गयी है । अतः अभी तुम वृन्दा के साथ जाकर चतुराई से कृष्ण को धीरज बँधाओ । मैं भी प्रतिष्ठित स्त्रियों की गोष्ठी (बैठक) में जाकर जटिला की कुटिलता का बखान करूँगी ।

(चली जाती है)

सुबल—(घूमकर) तमाल वृक्ष के नीचे दाहिने हाथ में मुरली लिए यह वृन्दा बैठी है ।

(प्रवेश करके)

वृन्दा—भोः सुवल, विलोकितसर्वार्थास्मि । तदलं तद्वार्तया ।

सुवलः—वुन्दे, तुरिअं एहि । वेणुं जेव्व उवहरम्ह । (वृन्दे, त्वरितमेहि । वेणुमेवोपहरावः ।)

(इत्युभौ परिक्रामतः ।)

सुवलः—वुन्दे, महुमङ्गलेण वड्ढिदुक्कण्ठो पिअवअस्सो मग्गं जेव्व पेक्खन्तो चिट्ठइ । ता ण जाणे अकिदत्थाणं अम्हाणं तत्थ गमणे का तस्स दसा भवे । (वृन्दे, मधुमङ्गलेन वर्धितोत्कण्ठः प्रियवयस्यो मार्गमेव पर्यवेक्षमाणस्तिष्ठति । तन्न जानेऽकृतार्थानामस्माकं तत्र गमने का तस्य दशा भवेत् ।)

वृन्दा—सुवल, सत्यं ब्रवीषि । पश्यायं पुंनागतरोरुपकण्ठे समुत्कण्ठते कंसारिः ।

सुवलः—वुन्दे, भणामि । चिन्तेहि जुत्तिम् । (वृन्दे, भणामि । चिन्तय युक्तिम् ।)

वृन्दा—(विमृश्य ।) सुवल, गोविन्दस्य क्षणविनोदाय चिन्तितोपायास्मि । तदेहि । तन्निष्पत्तये वेशं भजावः ।

वृन्दा—हे सुवल, मैंने सब कुछ देख लिया है अतः उस विषय में बात करने की आवश्यकता नहीं ।

सुवल—वृन्दे, जल्दी आओ । मुरली को ही उपहार के रूप में दें ।

(यह कह कर दोनों घूमते हैं)

सुवल—वृन्दे, मधुमंगल के द्वारा बढ़ायी गयी उत्कण्ठावाले प्रिय मित्र राह देख रहे हैं । अतः हम लोगों के वहाँ पर निष्फल होकर जाने पर न जाने उनकी कैसी दशा होगी ?

वृन्दा—हे सुवल, ठीक कहते हो देखो, यह प्रिय मित्र कृष्ण पुंनागवृक्ष के समीप उत्सुक हो रहे हैं ।

सुवल—वृन्दे, मैं कहता हूँ । उपाय सोचो ।

वृन्दा—(सोचकर) कृष्ण के तात्कालिक विनोद के लिए मैंने उपाय सोच लिया है । तो आओ उसकी सिद्धि के लिए हम लोग वेश बदल लें ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

(ततः प्रविशति मधुमङ्गलेनोपास्यमानः कृष्णः ।)

कृष्णः—(सौत्सुक्यम् ।)

राधा पुरः स्फुरति पश्चिमतश्च राधा
राधाधिसव्यमिह दक्षिणतश्च राधा ।
राधा खलु क्षितितले गगने च राधा
राधामयी मम बभूव कुतस्त्रिलोकी ॥ १८ ॥

मधुमङ्गलः—पिअवअस्स, भअवदीए अहिसारिदं दाणिं ज्जेव पेक्खिस्ससि राहिअम् । (प्रियवयस्य, भगवत्याभिसारितामिदानीमेव प्रेक्षिष्यसे राधिकाम् ।)

कृष्णः—

करेणान्तस्तुष्टया सललितमवष्टभ्य ललिता-
कराङ्गुष्ठं राधा भृशमभिसरन्ती सरभसम् ।
किमद्य स्मेराक्षी स्मरपरिमलोल्लासिवलय-

(यह कह कर दोनों जाते हैं ।)

(उसके बाद मधुमंगल के साथ कृष्ण प्रवेश करते हैं ।)

कृष्ण—(उत्कंठापूर्वक) राधा सामने और पीछे से प्रकट हो रही है । बायीं तथा दायीं ओर से भी राधा ही है । पृथिवी तथा आकाश में राधा ही है । मेरे लिए समस्त त्रिभुवन राधामय कैसे हो गया है । (अर्थात् मैं समस्त विश्व को राधामय समझ रहा हूँ) ॥ १८ ॥

मधुमंगल—प्रिय मित्र, भगवती पौर्णमासी द्वारा भेजी गयी राधा को आप इसी समय देखेंगे ।

कृष्ण—आन्तरिक संतोष से ललिता के सुन्दर अँगूठे को हाथ से पकड़ कर अत्यधिक विलासपूर्वक अभिसार करती हुई, प्रफुल्ल नयनों वाली तथा कामदेव के विलास से उल्लसित पहुँची (आभूषण विशेष) की आवाज वाली राधा

ध्वनिमाँ निमंस्यत्यनुपमचमत्कारचटुलम् ॥ १९ ॥

मधुमङ्गलः—भो, मा उत्तम्मस्स । कङ्कणक्कणक्कारो सुव्वइ । (भोः, मा उत्ताम्यस्व । कङ्कणझणत्कारः श्रूयते ।)

(नेपथ्ये ।)

हला ललिदे, पेक्ख । सो एसो पुण्णाअरुक्खो दीसइ । (पुनस्तत्रैव) सहि राहे, धिट्ठभमरजम्पिदं पेक्ख णम् । ता क्खणं इध ज्जेव्व चिट्ठम्ह । (हला ललिते, पश्य । स एष पुंनागवृक्षो दृश्यते । सखि राधे, धृष्टभ्रमरजल्पितं पश्यैनम् । तत्क्षणमिहैव तिष्ठावः ।)

मधुमङ्गलः—(सचापलम् ।) भो पिअवअस्स, वामदो किं ण पेक्खसि । एसा ललिदाए सद्धं राहिआ समाअदा । (भोः प्रियवयस्य, वामतः किं न पश्यसि । एषा ललितया सार्धं राधिका समागता ।)

कृष्णः—(सोत्कण्ठम् ।) दिष्ट्या साक्षादद्य मदीक्षणयोः सौख्यं विस्तार्यते सख्या ।

मधुमङ्गलः—(सगर्वम् ।) भो, कीस ण वित्थारिदव्वं जत्थ अहं विअड्ढो दूदो म्हि । (भोः, कस्मान्न विस्तारयितव्यं यत्राहं विदग्धो दूतोऽस्मि ।)

क्या आज मुझको विलक्षण चमत्कार से सुन्दर बनायेगी ? अर्थात् क्या आज राधा ललिता के साथ मेरे पास अभिसार करेगी ॥ १९ ॥

मधुमंगल—मित्र, उतावले न हों । कंगन का झंकार सुनाई पड़ रहा है ।

(नेपथ्य में)

सखि ललिते, देखो । वह यह पुंनाग का वृक्ष दिखायी दे रहा है । (फिर वहीं पर) सखि राधे, ढीठ भौंरे के गुञ्जन से युक्त इसको देखो । तो एक क्षण यहीं पर ठहर जायँ ।

मधुमंगल—हे मित्र, बायीं ओर क्यों नहीं देखते ? ललिता के साथ यह राधा आ गयी है ।

कृष्ण—(उत्सुकतापूर्वक) भाग्य से मेरे दोनों नेत्रों के आनन्द को आज सखी बढ़ा रही है ।

मधुमंगल—(गर्व से) अरे, क्यों न विस्तार हो जहाँ मैं चतुर दूत हूँ ।

कृष्णः—सखे, पुरःस्थयोरपि मत्प्रियचोरव्यलीकता नाद्याप्यवधारिता। यदाभ्यां न संनिधीयते।

मधुमङ्गलः—पिअवअस्स, सुट्ठु पसण्णं राहीं जाणाहि। जं साडिअञ्चलझम्पिदा मुरली झलक्कइ। (प्रियवयस्य, सुष्ठु प्रसन्नां राधां जानीहि। यत्शाटिकाञ्चलाच्छादिता मुरली झलकति।)

कृष्णः—(सस्नेहम्।)

विधुरेति दिवा विरूपतां शतपत्रं वत शर्वरीमुखे।
इति केन सदा श्रियोज्ज्वलं तुलनामर्हति मत्प्रियाननम्॥२०॥

(इति सकौतुकमनुसर्पति।)

(नेपथ्ये।)

वारिसहाणइ लच्छी इअं पुरो राहणी समुग्गमइ।

कृष्ण—सखे, सामने विद्यमान भी मेरी प्रिया राधा और ललिता की प्रीति अभी भी निश्चित नहीं जान पड़ती क्योंकि वे दोनों समीप नहीं आ रही हैं।

मधुमंगल—प्रिय सखे, राधा को खूब प्रसन्न समझो। क्योंकि साड़ी के आँचल से ढँकी मुरली झलक रही है।

कृष्ण—(प्रेमपूर्वक) चन्द्रमा दिन में विरूपता (मलिनता) को प्राप्त करता है और कमल सायंकाल संकुचित हो जाता है, तो सदा शोभायुक्त मेरी प्रियतमा का मुख किससे तुलना के योग्य है? (अर्थात् चन्द्रमा और कमल की आंशिक शोभा सर्वांश शोभासम्पन्न प्रियामुख की तुलना नहीं कर सकती)॥ २०॥

(उत्सुकता से समीप जाते हैं)

(नेपथ्य में)

सामने वृषराशि में स्थित सूर्य की लालिमायुक्त शोभा प्रकट हो रही है। पक्ष में—वृषभानु की पुत्री राधा क्रोधयुक्त दिखायी पड़ रही है। हे चन्द्रसमूह

चन्दाअलीकुडुम्बअचओर मा धाअ सुप्पसहम् ॥ २१ ॥

(वार्षभानवी लक्ष्मीरियं पुरो रागिणी समुद्गच्छति ।

चन्द्रावलीकुटुम्बचकोर मा धाव सुप्रसभम् ॥)

मधुमङ्गलः—ललिदे, भमिदासि । ण क्खु चओरो । पेक्ख एसो रहङ्गीरमणो, जेण वारिसहाणइ लच्छी कामिज्जइ । (ललिते, भ्रान्तासि । न खलु चकोरः । पश्यैष रथाङ्गीरमणः, येन वार्षभानवी लक्ष्मीः काम्यते ।)

(नेपथ्ये पुनरन्यतः ।)

भो कण्ह, सुणाहि । (भोः कृष्ण, शृणु ।)

मधुमङ्गलः—(विलोक्य सशङ्कम् ।) एसा डाहिणे विसालस्स बहिणी सारङ्गी णाम बालिआ । (एषा दक्षिणे विशालस्य भगिनी सारङ्गी नाम बालिका ।)

परिवार के चकोर, पक्ष में-चन्द्रावली नामक गोपी में आसक्त कृष्ण, हठपूर्वक मत दौड़ो ॥ २१ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में समासोक्ति द्वारा सूर्य, लक्ष्मी और चकोररूप अप्रस्तुत वृत्तान्त द्वारा राधा-कृष्ण रूप प्रस्तुत वृत्तान्त की व्यञ्जना है कृष्ण राधा की ओर आकृष्ट होकर उसके पास पहुँच रहे हैं । चन्द्रावली में उनकी आसक्ति का आभास पाकर राधा क्रुद्ध-सी नजर आ रही है । चन्द्रावली में आसक्त कृष्ण का राधा के प्रति आकर्षण अनुचित है, इसी तथ्य की ओर संकेत है । चकोर चन्द्रमा की चाँदनी का ही पान करता है सूर्यकिरण का नहीं । राधा वृषभानु की पुत्री है । इसके प्रति कृष्ण का झुकाव उचित नहीं ।

मधुमंगल—ललिते, भूल कर रही हो । यह चकोर नहीं है । देखो, यह तो चकवाक (चक्रयुक्त विष्णु कृष्ण) है, जो वृषराशि में विद्यमान सूर्य शोभा पक्ष में—राधा की कामना करता है ।

(नेपथ्य में पुनः दूसरी ओर से)

हे कृष्ण, सुनो ।

मधुमंगल—(देखकर शंकापूर्वक) दाहिनी ओर विशाल की बहिन सारंगी नाम की बालिका है ।

कृष्णः—सखे, मा शङ्किष्ठाः। सुष्ठु बालिकेयम्।

(प्रविश्य।)

सारङ्गी—भो कण्ह, सुणाहि। वुड्ढिआ मुहला भणादि—कीस तुए मम णत्तिणी अलीअं दूसिज्जइ। जं तुम्ह वंसिआ अम्हेहिं कक्खलिआहत्थे दिट्ठा, ता मा णोहि णं ति। (भोः कृष्ण, शृणु। वृद्धा मुखरा भणति—कस्मात्त्वया मम नप्त्री मिथ्या दूष्यते। यत्तव वंशिकास्माभिः कक्खटिकाहस्ते दृष्टा, तस्मान्मा....मेनामिति।)

कृष्णः—सारङ्गिके, विज्ञापय मुखरां यदहं लब्धमुरलीकोऽस्मि।

(नेपथ्ये।)

हला पच्छण्णा होहि। (सखि, प्रच्छन्ना भव।)

सारङ्गी—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य। सेर्ष्यम्।) हला राहिए, चेत्तरुक्खस्स तले तुमं विदुदि आआलेदि मे भादुओ। ता तत्थ किंति ण गदासि। (हला राधिके, चैत्यवृक्षस्य तले त्वां······आकारयति मम भ्राता। तस्मात्तत्र किमिति न गतासि।)

कृष्ण—मित्र, शंका मत करो। यह अच्छी लड़की है।

(प्रवेश करके)

सारङ्गी—हे कृष्ण, सुनो। बूढ़ी मुखरा कहती है—"मेरी नतिनी को तुम झूठा कलंक क्यों देते हो? हम लोगों ने तो तुम्हारी मुरली को बन्दरी के हाथ में देखा है। अतः इसको नहीं दूषित करो" (राधा को वंशी चुराने का दोष न लगाओ)

कृष्ण—सारङ्गिके, मुखरा को सूचित कर दो कि मुझे मुरली मिल गयी है।

(नेपथ्य में)

सखि, छिप जाओ।

सारंगी—(नेपथ्य की ओर देख कर। ईर्ष्यापूर्वक)

सखि राधिके, चैत्यवृक्ष के नीचे मेरा भाई तुमको जोर से बुला रहा है। तो वहाँ क्यों नहीं गयी हो?

(नेपथ्ये ।)

हदासे साहासारङ्गमुहि सारङ्गिए, तुमंपि दुदिआ जडिला संवुत्ता। ता वुड्ढसद्दूलस्स तुण्डकोडरे पडेहि । (हताशे शाखासारङ्गमुखि सारङ्गिके, त्वमपि द्वितीया जटिला संवृत्ता । तस्माद् वृद्धशार्दूलस्य तुण्डकोटरे पत ।)

सारङ्गी—(सामर्षम् ।) ललिदे, उल्लङ्घिअ मं जेव्व तुमं तज्जसि। ता अहं गदुअ माउसिआए जडिलाए विण्णविस्सम् । (इति निष्क्रान्ता) (ललिते, अपराधं कृतवती मामेव त्वं तर्जयसि । तदहं गत्वा मातृस्वसे जटिलायै विज्ञापयिष्यामि ।)

मधुमङ्गलः-(सावज्ञम् ।) जादु णाम वालिआपलावे कस्स वीसम्भो । (जातु नाम बालिकाप्रलापे कस्य विश्रम्भः ।)

(नेपथ्ये ।)

सहि राहे, मुञ्च मुञ्च । सुणाहि संकिदेण किं भणेदि ललिदा । (सखि राधे, मुञ्च मुञ्च । शृणु संस्कृतेन किं भणति ललिता ।)

(पुनर्नेपथ्ये ।)

किं तस्करीं युवतिमानधनस्य वंशी-
मङ्के करोषि विकिर त्वरया विदूरे ।
एषा प्रयातु वनिताम्बरतस्कराय

(नेपथ्य में)

वानर के समान मुँहवाली अभागिन सारंगिके, तुम भी दूसरी जटिला हो गयी अतः बूढ़े सिंह के मुँह में गिरो ।

सारङ्गी—(क्रोधपूर्वक) ललिते, अपराध करके तुम मुझको इस तरह फटकारती हो तो मैं जाकर मौसी जटिला को सूचित कर दूँगी । (चली जाती है)

मधुमङ्गल—(उपेक्षापूर्वक) लड़की के बकवास में कौन विश्वास करे ।

(नेपथ्य में)

सखि राधे, छोड़ो छोड़ो । सुनो, ललिता संस्कृत में क्या कहती है ? (फिर नेपथ्य में) क्या युवती के मानरूपी धन को चुरानेवाली इस वंशी को गोद में लेती हो ? इसे शीघ्र ही दूर फेंक दो । यह स्त्रियों के वस्त्र को चुराने वाले (कृष्ण) के

योग्येन सङ्गमिह गच्छतु वस्तु योग्यम् ॥ २२ ॥

कृष्णः—(स्मित्वा ।) सखे, पश्येयमञ्चलाद्वंशीं बलादिवाकृष्य पुरस्ताच्चिक्षेप । तदिमां गृहाण ।

(मधुमङ्गलस्तथा करोति ।)

(नेपथ्ये दूरतः ।)

अम्मा, सारङ्गीए असच्चं ण भणिदम् । (अम्मा, सारङ्गया असत्यं न भणितम् ।)

कृष्णः—(सव्ययम् ।) सखे, पश्य । पुरो निष्ठुरेयमुपस्थिता जरती ।

मधुमंगलः—हन्त, साअणकसणभुअङ्गीव कूरमुही एसा रोसावेसेण लट्ठिं खिवन्ती परुसं गज्जइ जडिला । (हन्त, श्रावणकृष्णभुजङ्गीव क्रूरमुख्येषा रोषावेशेन लकुटीं क्षिपन्ती परुषं गर्जति जटिला ।)

(नेपथ्ये ।)

भो दुकुलाङ्गारधूमलेह, पचहं वञ्चेसि दाणिं का पउत्ती । (भो द्विकुलाङ्गारधूमलेख, प्रत्यहं वञ्चयसीदानीं का प्रवृत्तिः ।)

मधुमङ्गलः—हद्धी । कअलीव्व कम्पइ राहिआ । (हा धिक् । कदलीव कम्पते राधा ।)

पास जाय । योग्य वस्तु के साथ ही योग्य का मिलन हो । अर्थात् जो जैसा है, उसको उसी के पास जाना चाहिए ॥ २१ ॥

कृष्ण—(हँसकर) मित्र, देखो, इसने बलपूर्वक आँचल से मुरली को खींच कर सामने फेंक दिया है । अतः इसको ले लो । (मधुमङ्गल वंशी उठा लेता है) (नेपथ्य में) अरी माँ, सारंगी ने झूठ नहीं कहा है ।

कृष्ण—(खेदपूर्वक) मित्र, देखो—सामने यह कठोर बूढ़ी आ गयी ।

मधुमङ्गल—हाय, श्रावण की काली सर्पिणी की भाँति क्रूर यह जटिला क्रोध के आवेग से लकुटी को फेंकती हुई गरज रही है ।

(नेपथ्य में)

दोनों कुलों के अङ्गार के हे धूमरेख, प्रतिदिन धोखा देते हो इस समय क्या करना चाहते हो ?

मधुमङ्गल—हाय, राधा कदली की तरह काँप रही है ।

(नेपथ्ये ।)

अज्जे, पसीद । ण क्खु अम्हे अवरज्झाम्ह । (आर्ये, प्रसीद । न खलु वयमपराध्यामः ।)

मधुमङ्गलः—पेक्ख राहिअं हत्थे गेण्हिअ ललिदाए समं पत्थिदा वुड्ढिआ । (पश्य राधिकां हस्ते गृहीत्वा ललितया समं प्रस्थिता वृद्धा ।)

कृष्णः—(सखेदम् ।) सखे, न जाने किमद्य प्रतिपद्यते कठोरेयं जटिला । तदुपसृत्य तत्त्वमवधार्यताम् ।

(मधुमङ्गलो निष्क्रान्तः ।)

कृष्णः—(निःश्वस्य ।)

व्यक्तिं गते मम रहस्यविनोदवृत्ते
कष्टो लघिष्ठहृदयस्तरसाभिमन्युः ।
राधां निरुध्य सदने विनिगूहते वा
हा हन्त लम्भयति वा यदुराजधानीम् ॥ २३ ॥

(प्रविश्य ।)

मधुमङ्गलः—भो पिअवअस्स, अच्चरिअम् । णूणं राहिआ कंपि

(नेपथ्य में)

आर्ये, प्रसन्न हो । हमलोगों का अपराध नहीं है ।

मधुमंगल—देखो, राधा को पकड़ कर ललिता के साथ बूढ़ी चल पड़ी ।

कृष्ण—(दुःखपूर्वक) मित्र ! यह कठोर जटिला आज न जाने क्या करती है अतः समीप जाकर सही बात का पता लगाओ ।

(मधुमंगल चला जाता है ।)

कृष्ण—(साँस खींच कर)

मेरी एकान्त क्रीड़ा की बात के खुल जाने पर क्षुद्र हृदयवाला क्रूर अभिमन्यु शीघ्र ही राधा को रोककर घर में बन्द कर देता है अथवा कंस की राजधानी मथुरा पहुँचाता है ॥ २३ ॥

मधुमंगल—(प्रवेश करके) प्रियमित्र, आश्चर्य है । निश्चय ही राधिका

विज्जं जाणई। (भोः प्रियवयस्य, आश्चर्यम्। नूनं राधिका कामपि विद्यां जानाति।)

कृष्णः—कथ्यतां कीदृशी विद्या।

मधुमङ्गलः—कुलवुड्ढाहीरिमण्डले णिविट्ठाए भअवदीए अग्गदो विक्कोसन्ती जडिला राहिअं णीदा। (कुलवृद्धाभीरिमण्डले निविष्टाया भगवत्या अग्रतो विक्रोशन्ती जटिला राधिकां नीता।)

कृष्णः—ततस्ततः।

मधुमङ्गलः—तदो दिट्ठं मए सिणेहेण विक्खुहिदासु तासु सव्वासु राहिआओगुण्ठणं उत्सारिअ हसन्तो सुअलो संवुत्तो (ततो दृष्टं मया स्नेहेन विक्षुभितासु तासु सर्वासु राधिकावगुण्ठनं उत्सार्य हसन्सुबलः संवृत्तः।)

कृष्णः—(स्मित्वा।) ततस्ततः।

मधुमङ्गलः—तदो हासकोलाहले उवरदे रुट्ठाहिं सव्वाहिं णिब्भच्छिदा लज्जाए णदमुही जडिला पलाइदा। (ततो हासकोलाहले उपरते रुष्टाभिः सर्वाभिर्निर्भर्त्सिता लज्जया नतमुखी जटिला पलायिता।)

कृष्णः—कथ्यताम्। तयोर्द्वितीया कथमभूत्।

कोई विद्या जानती है।

कृष्ण—कहो, कैसी विद्या ?

मधुमंगल—कुलवृद्धा गोपियों की गोष्ठी में उपस्थित भगवती पौर्णमासी के समक्ष चिल्लाती हुई जटिला राधा को ले गयी।

कृष्ण—उसके बाद ?

मधुमंगल—तब मैंने देखा कि स्नेहवश उन गोपियों के अत्यधिक क्षुब्ध हो जाने पर राधिका की घूँघट हटाकर हँसता हुआ सुबल नजर आया। (अर्थात् राधिका के वेष में सुबल ही था)।

कृष्ण—(मुस्कुराकर) उसके बाद ?

मधुमङ्गल—उसके बाद की हँसी के शोरगुल कम हो जाने पर क्रुद्ध गोपियों की फटकार से लज्जित जटिला मुँह छुपाए भाग गयी।

कृष्ण—कहो, उन दोनों में दूसरी (ललिता) क्या हुई ?

मधुमङ्गलः—राहिआए कण्णे पढिदेण वि मन्तेण पढमं जेव्व सा वुन्दा किदा। (राधिकया कर्णे पठितेन केनापि मन्त्रेण प्रथममेव सा वृन्दा कृता।)

कृष्णः—सखे, न राधिकायाः खल्वियं विद्या। किंतु तामभिमन्युना समाहृतामवधार्य मद्विनोदाय यद्वृन्दया प्रणीतमिदं कौतूहलम्।

मधुमङ्गलः—(साट्टहासम्।) भो, सच्चं विअ कहेसि। दिट्ठं मए पुणोवि वुन्दाए। णिम्मिदराहावेसो सुअलो मुहराघरे पविट्ठो। (भोः, सत्यमिव कथयसि। दृष्टं मया पुनरपि वृन्दया निर्मितराधावेषः सुबलो मुखरागृहे प्रविष्टः।)

(नेपथ्ये।)

दधाना मध्याह्नज्वलदरुणकान्तप्रतिमया
वपुस्तुल्यं गण्डस्थलतुलितकारण्डवरुचिः।
कृशाङ्गीयं निद्रापरिमलदरिद्राक्षिकमला
सखीबाधां राधा हरिविरहखिन्ना प्रथयति ॥२४॥

मधुमंगल—राधिका के द्वारा कान में पढ़े गये किसी मंत्र से वह पहले ही वृन्दा बना दी गयी थी।

कृष्ण—मित्र, यह विद्या राधा की नहीं है। अपितु उसको अभिमन्यु के द्वारा अपहृत जानकर मेरे विनोद के लिए वृन्दा ने ही इस कौतुक की रचना की है।

मधुमंगल—(अट्टहासपूर्वक) अरे, लगता है, ठीक कहते हो। मैंने फिर देखा कि वृन्दा के द्वारा राधा का वेष धारण करनेवाला सुबल मुखरा के घर में घुस गया।

(नेपथ्य में)

मध्याह्नकालिक जलते हुये सूर्यकान्तमणि के आकार के समान शरीर धारण की हुई, बकविशेष की कान्ति के समान कपोलवाली दुबली निद्रा के गन्ध से भी शून्य आँखवाली कृष्ण के वियोग से दुःखित राधा सखियों का कष्ट बढ़ा रही है ॥२४॥

कृष्णः—(सदृष्टिक्षेपम् ।) सखे, दिष्ट्या कीरेणामुना समाश्वासितोऽस्मि ।

मधुमङ्गलः—णूणं वुन्दाभासिदं अणुकरेदि कीरो । (नूनं वृन्दाभाषितमनुकरोति कीरः ।)

कृष्णः—सखे, द्रष्टुमिच्छामि तादृशौ वृन्दासुवलौ । ततस्त्वर्यताम् ।

(मधुमङ्गलो वंशीं कृष्णकरे निक्षिप्य परिक्रामति ।)

कृष्णः—सुविच्युतां वंशीमुपलब्धोऽस्मि । तदेनां पूरयामि ।

(इति तथा करोति ।)

मधुमङ्गलः—(क्षणमुत्कर्णो भवन् । संस्कृतेन ।)

मनोहारी कोऽपि प्रतिमुखविसारी मृदुतया
विरावोऽयं वर्यां श्रवणपरिचर्यां रचयति ।
ततः कर्णोत्तंसीकृतचटुलवंशी कलरुति-
निरातङ्का शङ्के मिलति कलविङ्कावलिरितः ॥ २५ ॥

कृष्ण—(आँख उठाकर देखते हुए) मित्र, भाग्य से इस शुक ने मुझे भरोसा दिया है।

मधुमंगल—यह शुक अवश्य ही वृन्दा की बात को दुहराता है।

कृष्ण—मित्र, मैं उस प्रकार राधा और ललिता वेष में सुबल और वृन्दा को देखना चाहता हूँ अतः जल्दी करो।

(मधुमंगल कृष्ण के हाथ में मुरली देकर घूमता है)

कृष्ण—बहुत देर से खोयी हुई मुरली को पाया हूँ। तो इसे बजाता हूँ।

(मुरली बजाते हैं)

मधुमंगल—(एक क्षण कान खड़ा करते हुए संस्कृत में) चारों ओर फैलने वाला कोमलता से सुन्दर वंशी का यह शब्द कान की उत्तम सेवा कर रहा है। अर्थात् कान को सुख पहुँचा रहा है। इसलिए उत्तम शब्द करनेवाली निर्भय चटक-पंक्ति ने मानो कान पर श्रेष्ठ वंशी रख लिया है अर्थात् उसका शब्द वंशी के शब्द की भाँति प्रतीत हो रहा है उसी से यह शब्द मिल रहा है यह मैं समझता हूँ ॥ २५ ॥

(पुनर्विलोक्य ।) ही ही । सद्दसाधम्मेण पदारिदो म्हि । कङ्कणसिञ्जिदं क्खु एदम् । (ही ही । शब्दसाधर्म्येण प्रतारितोऽस्मि । कङ्कणसिञ्जितं खल्वेतत् ।)

राधिका—

अमिअं पिअसि सुमहुरं वमसि रुअं विस्समोहणं विसमम् ।
तुज्झ ण दूसणमधवा मुरलि जदो दारुणासि किदा ॥२६॥

(अमृतं पिबसि सुमधुरं वमसि रुतं विश्वमोहनं विषमम् ।
तव न दूषणमथवा मुरली यतो दारुणासि कृता ॥)

ललिता—हला, पुरदो पुण्णाअस्स मूले कण्हो रेहदि । (हला, पुरतः पुंनागस्य मूले कृष्णो राजते ।)

मधुमङ्गलः—(विलोक्य । सहर्षम् ।) दूरे मग्गणिज्जो अत्थो कहं सअं जेव्व हत्थे उवत्थिदो । (इति परावृत्य ।) पिअवअस्स, पेक्ख । वुन्दाए सद्धं सुबलो तुज्झ संणिहिं लद्धो । (दूरे मार्गणीयोऽर्थः कथं स्वयमेव हस्त उपस्थितः । प्रियवयस्य, पश्य । वृन्दया सार्धं सुबलस्तव संनिधिं लब्धः ।)

कृष्णः—(सस्नेहमालोक्य ।) हन्त, प्रियसख्यौ प्रविष्टा मे दृष्टिः प्रकाममामोदते (इति परिक्रम्य ।) भो सखीनां शिखामणे, तरसा

(फिर देखकर) हा, हा, शब्द की समानता से हम धोखा खा गये । यह तो कंगन की आवाज है ।

राधिका—अति मधुर अमृत का पान करती हो किन्तु संसार को मोह लेने वाले कठोर शब्द उगलती हो । अरी मुरली, इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है क्योंकि तुम दयाहीन (पक्ष में—लकड़ी की) बनायी गयी हो ॥ २६ ॥

ललिता—सखि, सामने पुंनाग वृक्ष के नीचे कृष्ण दिखायी पड़ रहे हैं ।

मधुमंगल—(देखकर प्रसन्नतापूर्वक) दूर में खोजने योग्य वस्तु स्वयं कैसे हाथ में आ गयी ? (लौटकर) प्रिय सखे, देखो । वृन्दा के साथ सुबल तुम्हारे समीप आ गया ।)

कृष्ण—(स्नेहपूर्वक देखकर) अहा, प्रिय मित्र की ओर लगी मेरी दृष्टि अत्यधिक आनन्दित हो रही है । (घूमकर) हे मित्रों के चूडामणि, वेग से

संनिधीयताम् ।

राधिका— (सस्मितमपवार्य ।) हला ललिदे, मं क्खु सुअलं जेव्व जाणादि दे वअस्सो । (हला ललिते, मां खलु सुबलमेव जानाति तव वयस्यः)

कृष्णः— सखे मधुमङ्गल, पश्य संविधानकस्य सौष्ठवं यदसौ साक्षादमतो राधिकेव सवयस्या प्रतिभाति ।

ललिता—हला राहिए, परिफुल्लो एसो सुरवल्लहो । (हला राधे, परिफुल्ल एष सुरवल्लभः ।)

मधुमंगलः—(सेर्ष्यम् ।) ठग्गिणि वुन्दे, अज्ज वि किंति अम्हाणं पुरदो राही राहीति भणासि । सुअल त्ति उज्जुअं कहेहि । (ठगिनि वृन्दे, अद्यापि किमित्यस्माकं पुरतो राधा राधेति भणसि । सुबलेति ऋजु कथय ।)

कृष्णः—सखे, मालमेवं ब्रवीः । प्रकामं राधाभिधानं धिनोति माम् । तदनेनाहूसप्यामन्त्रयिष्ये । (इति संनिधाय ।) सखि राधे, परिष्वजस्व माम् । क्षणमहं तदेव प्रियाभिमर्शसौख्यमनुभवामि ।

ललिता—(राधां पृष्ठतः कृत्वा ।) णाअर, तत्थ गदुअ सुअलं जेव्व

समीप आ जाओ ।

राधिका—(मुस्कुराहट के साथ ललिता से) सखि ललिते, तुम्हारा मित्र मुझे सुबल ही समझता है ।

कृष्ण—हे मित्र मधुमंगल, वेषविन्यास की सुन्दरता तो देखो कि यह सुबल सामने से सखी के साथ साक्षात् राधा ही प्रतीत हो रहा है ।

ललिता—सखि राधे यह पुंनाग विकसित हो गया है ।

मधुमंगल—(ईर्ष्यापूर्वक) धोखेबाज वृन्दे, अभी भी हमारे आगे राधा राधा यह क्यों बोल रही है ? सीधे 'सुबल' ऐसा कहो ।

कृष्ण—मित्र, ऐसा न कहो । 'राधा' यह नाम मुझे बहुत प्रसन्न कर रहा है । तो मैं भी इसको 'राधा' इसी नाम से पुकारूँगा । (यह कह कर समीप जाकर) सखि राधे, मेरा आलिंगन करो एक क्षण प्रिया के उसी स्पर्शसुख का अनुभव करूँ ।

ललिता—(राधा को पीछे करके) नागर, वहाँ जाकर सुबल का ही

आलिङ्गेहि। अलं इमिणा दम्भमुद्दापउएण। (नागर, तत्र गत्वा तूर्णमेवालिङ्गय। अलमनेन दम्भमुद्राप्रयोगेण।)

मधुमङ्गलः—(सरोषम्।) वुन्दे, तुमं पइदिएवि णूणं ललिदा संवुत्ता, जं पज्जुस्सुअं पिअवअस्सं वारेसि। (वृन्दे, त्वं प्रकृतितोऽपि नूनं ललिता संवृत्ता, यत्पर्युत्सुकं प्रियवयस्यं वारयसि।)

(प्रविश्य।)

वृन्दा—सखि राधे, त्वद्भुजवल्लरीस्पर्शकामोऽयं पुरस्तात्पुंनागः। तदेनं दोहददानेनोत्फुल्लय।

मधुमङ्गलः—(सविस्मयम्।) वअस्स, दिट्ठं वुन्दाए इन्दजालम्। (इति सकौतुकमवेक्ष्य।) इन्दजालिणि वुन्दे, घणाइदी वि धूमलेहा विअड्ढसारङ्गं आकड्ढिदुं णारिहदि। (वयस्य, दृष्टं वृन्दाया इन्द्रजालम्। इन्द्रजालिनि वृन्दे, घनाकृतिरपि धूमलेखा विदग्धसारङ्गमाक्रष्टुं नार्हति।)

वृन्दा—आर्य, तडिदामकण्ठीयं कादम्बिनी प्रतीयताम्।

आलिंगन करो। इस ढोंग मुद्रा के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। (अर्थात् यहाँ तुम्हारी बहानेवाजी नहीं चलेगी।)

मधुमंगल—(क्रोधपूर्वक) वृन्दे, तुम अवश्य ही स्वभाव से भी ललिता बन गयी हो, जो कि उत्कंठित भी प्रिय मित्र को मना कर रही हो।

(प्रवेश करके)

वृन्दा—सखि राधे, तुम्हारी भुजलता के स्पर्श का अभिलाषी यह पुंनाग सामने है। तो इसको दोहद (फूल लगने के लिए औषधि) देकर विकसित करो। (तुम्हारे आलिंगन का अभिलाषी कृष्ण सामने है। इसका मनोरथ पूर्ण कर इसे प्रसन्न करो।)

मधुमंगल—(आश्चर्यपूर्वक) मित्र, यह वृन्दा का मायाजाल है।

(यह कह कर कुतूहल के साथ देखकर)

जादूगरनी वृन्दे, सघन आकारवाली धूमपंक्ति चतुर चातक को नहीं लुभा सकती।

वृन्दा—आर्य, बिजलीरूपी यह माल्यकण्ठी (माला धारण की हुई राधा) मेघमाला सी प्रतीत हो।

कृष्णः—(निभाल्य । सविस्मयम् ।) कथं सत्यमेवानया रङ्गणमालिकया दुस्त्यजकण्ठीयं प्रिया मे वार्षभानवी ।

मधुमङ्गलः—अइ देइ वुन्दे, पसीद । मा क्खु बुद्धिं मोहेहि । जं राहा चेचरुक्खमूले पत्थिदा । (अयि देवि वृन्दे, प्रसीद । मा खलु बुद्धिं मोहय । यद्राधा चैत्यवृक्षमूले प्रस्थिता ।),

कृष्णः—(राधामालोक्य ।)

तवानुकारात्सुबलं दिदृक्षुणा मया त्वमाप्ता पुरतः सुदुर्लभा ।
सादृश्यतः काचमिवाभिलष्यता प्रेमाग्रभूमिर्वणिजा हरिन्मणिः ॥२७॥

राधिका—चिट्ठ । विण्णादो सि । (तिष्ठ । विज्ञातोऽसि ।)

ललिता—

जलइ सही मह राहा मन्दा जं होइ णीलिणीराआ ।

कृष्ण—(देखकर विस्मयपूर्वक) क्या सचमुच ही इस माला से मेरी प्रिया राधा दुरत्यजकंठी है ।

(अर्थात् माला धारण करने से अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती हुई राधा का आलिंगन कैसे छोड़ा जा सकता है ?)

मधुमंगल—हे देवि वृन्दे, प्रसन्न हो जाओ । मेरी बुद्धि को मोहित मत करो । क्योंकि राधा चैत्यवृक्ष के नीचे गयी है ।

कृष्ण—(राधा को देखकर)

तुम्हारे वेष में सुबल को देखने का अभिलाषी मैंने अत्यन्त दुर्लभ तुमको सामने उसी प्रकार पा लिया है जिस प्रकार आकार की समता से काँच का अभिलाषी व्यापारी मरकतमणि को पा जाता है ॥ २७ ॥

राधिका—ठहरो, जान लिए गये ।

ललिता—मेरी सखी राधा जल रही है क्योंकि नीलरंग है अर्थात् कृष्ण वर्ण के कृष्ण के अनुराग में पगी है जिसका रंग जल्दी छूटता नहीं है । हे कृष्ण तुम धन्य हो, आनन्द मना रहे हो क्योंकि तुम हल्दी के रंग हो । (अर्थात्

कण्ह तुमं णन्दसि जं धण्णो हालिद्दराओ सि ॥ २८ ॥

(ज्वलति सखी मम राधा मन्दा यद्भवति नीलिनीरागा ।
कृष्ण त्वं नन्दसि यद्धन्यो हारिद्ररागोऽसि ॥)

कृष्णः—

रोहिण्याधरशोभया विहरसे ज्येष्ठासि वामभ्रुवां
वाण्या राजसि चित्रया परिजनेष्वार्द्रां धियं यच्छसि ।
राधे त्वं श्रवणोत्तरेति परितस्तारोदयोल्लासिनी
नाश्लेषार्पणदीक्षिते मयि कथं दाक्षिण्यमातिष्ठसि ॥ २९ ॥

तुम पीलिमायुक्त गोरी राधा में अनुरक्त हो जिसका रंग हल्का होने के कारण छूट सकता है ॥ २८ ॥

विमर्श—यहाँ पर राधा को 'नीलिनीरागा' और कृष्ण को 'हारिद्रराग' कहने का गूढ़ आशय यह है—काला रंग न तो शीघ्र पकड़ता ही है और न पकड़ लेने पर छोड़ता है। हल्दी का रंग आसानी से पकड़ता भी है और आसानी से छूट भी जाता है। राधा नील रंग की अनुरागिणी है और कृष्ण पीत वर्ण के अनुरागी। राधा का अनुराग जल्दी छूट नहीं सकता अतः वह दुःखी है। कृष्ण की विरहाग्नि में जल रही है। परन्तु राधा के प्रति कृष्ण का अनुराग हल्का है अतः अन्य गोपियों के स्नेह में राधा की परवाह न कर आनन्द मनाता रहता है। अथवा राधा काले रंग के समान गाढ़ी है जो एक बार कृष्ण में लग कर उससे छूटना नहीं चाहती। अतएव दुःखी है। कृष्ण हल्दी रंग के समान हल्के हैं जो अन्य गोपियों के सान्निध्य में राधा को भूलकर भी सुखी है।

कृष्ण—हे राधे, तुम अधर की शोभा से लोहित-लाल रंग वाली हो। सुन्दरियों में श्रेष्ठ हो। सुन्दर वाणी से सुशोभित हो। परिजनों में सुखद बुद्धि देती हो। (अच्छी सलाह देती हो) तुम्हारे दोनों कान उत्तम हैं। मुक्ताओं के उल्लास को पूर्णरूप से बढ़ानेवाली हो तो आलिंगन क्रिया में निपुण मेरे प्रति तुम अनुकूलता क्यों नहीं ग्रहण करती हो ? ॥ २९ ॥

वृन्दा—

मुधा मानोन्नाहाद् ग्लपयसि किमङ्गानि कठिने
रुषं धत्से किं वा प्रियपरिजनाभ्यर्थनविधौ ।
प्रकामं ते कुञ्जालयगृहपतिस्ताम्यति पुरः
कृपालक्ष्मीवन्तं चटुलय दृगन्तं क्षणमिह ॥२०॥

कृष्णः—

निष्ठुरा भव मृद्वी वा प्राणास्त्वमसि राधिके ।
अस्ति नान्या चकोरस्य चन्द्रलेखां विना गतिः ॥ २१ ॥

राधा—सच्चं माइणं वि तुमं मोहणो सि । (इति सखेदं क्रन्दति ।)
(सत्यं मायिनामपि त्वं मोहनोऽसि ।)

ललिता—(संस्कृतेन ।)

धारा बाष्पमयी न याति विरतिं लोकस्य निर्मित्सतः
प्रेमास्मिन्निति नन्दनन्दनरतं लोभान्मनो मा कृथाः ।

वृन्दा—अरी कठोर राधे, मान को बढ़ाकर अपने अंगों को व्यर्थ क्यों कष्ट दे रही हो ? अथवा प्रियजन (कृष्ण) के प्रणय याचना करने पर क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारे कुञ्जभवन का स्वामी (कृष्ण) सामने पर्याप्त दुःखी हो रहा है अतः क्षणभर के लिए यहाँ दया की सीमा से युक्त कटाक्ष को चंचल करो । (अर्थात् तुम्हारे विरह में दुःखी कृष्ण पर अपनी कृपादृष्टि डालो ।) ॥२०॥

कृष्ण—हे राधिके, कठोर बनो अथवा कोमल । तुम तो मेरे प्राण हो चन्द्रलेखा के बिना चकोर की दूसरी गति नहीं है ॥ २१ ॥

राधा—तुम सचमुच मायावियों के भी मोहक हो ।

(यह कह कर फफक कर रोती है)

ललिता—(संस्कृत में) "इस कृष्ण में अनुराग करने के इच्छुक मनुष्य की अश्रुधारा रुकती नहीं है, यह जानकर लोभ से नन्दतनय कृष्ण में मन मत लगाओ ।" इस प्रकार बहुत मना करने पर भी हे चंचले, अपनी दोनों

इत्थं भूरि निवारितापि तरले मद्वाचि साचीकृत-
भ्रूद्वन्द्वा नहि गौरवं त्वमकरोः किं नाद्य रोदिष्यसि ॥३२॥

(कृष्णः करारविन्देन राधिकाश्रुबिन्दूनपहारयति ।)

राधिका—मुद्धजणे वि वक्कं ववहरन्तो कीस ण लज्जसि । (मुग्धजनेऽपि वक्रं व्यवहरन्कस्मान्न लज्जसे ।)

कृष्णः—

स्मरक्रीडालुब्धः पशुपरमणीषु स्फुटमहं
तथाप्यक्ष्णोर्वर्तिस्त्वमसि मम दिव्याञ्जनमयी ।
तपाद्याः किं भृङ्गं पृथुलऋतुलक्ष्मीर्न भजते
रसोल्लासादेनं तदपि हि मधुश्रीर्मदयति ॥ ३३ ॥

वृन्दा—सखि, यथार्थं वक्ति वनमाली ।

भौंहों को टेढ़ी करके मेरे वचन को महत्त्व नहीं दिया तो आज क्यों नहीं रोओगी । (मेरी बात न मानने का फल तुम्हें मिल रहा है) ॥ ३२ ॥

(कृष्ण अपने करकमल से राधा के अश्रुकणों को पोंछते हैं)

राधा—भोले-भाले व्यक्ति के प्रति भी टेढ़ा व्यवहार करते हुए तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आती ?

कृष्ण—गोपियों में काम-क्रीडा करने का मैं स्पष्ट ही लोभी हूँ फिर भी तुम मेरी आँखों के लिए दिव्य अञ्जनयुक्त वर्तिका हो । क्या ग्रीष्म आदि ऋतुओं की शोभा भ्रमर की सेवा नहीं करती ? फिर भी वसन्त की शोभा रस के उल्लास से इस भ्रमर को आनन्दित ही करती है ।

(अर्थात् अन्य गोपियाँ भी मेरा मनोविनोद करती हैं, तुम सबमें श्रेष्ठ हो अतः अपनी शोभा से तुम भी मेरे आनन्द को बढ़ाओ । क्योंकि अन्य ऋतुओं की सेवा को स्वीकार करके भी भौंरा वसन्त-शोभा से और अधिक आनन्द पाता है) ॥ ३३ ॥

वृन्दा—सखि, वनमाली (कृष्ण) सच कहता है ।

कृष्णः—प्रिये, त्वया सहचर्या वनविहारमङ्गीकर्तुमिच्छामि ।

वृन्दा— तेनाहं सखि वृन्दमपधापयामि। (इति परितः पश्यन्ती ।)

स्मितं वितनु माधवि प्रथय मल्लि हासोद्गमं
मुदा विकस पाटले पुरटयूथि निद्रां त्यज ।
प्रसीद शतपत्रिके भज लवङ्गवल्लि श्रियं
दधार सह राधया हरिरयं विहारस्पृहाम् ।। ३४ ।।

मधुमङ्गलः—ही ही । कहं कन्तारजक्खिणीए वाआमात्तएण उप्फुल्लीकिअं वल्लीमण्डलम् । (ही ही कथं कान्तारयक्षिण्या वाचामात्रेणोत्फुल्लीकृतं वल्लीमण्डलम् ।)

कृष्णः—सखे, चित्तमामोदयन्ति पुष्पामोदवत्यो वीरुधः ।

मधुमङ्गलः—वअस्स, तुह्माणं सव्वाओ चित्तं आमोदेन्ति लदा । मम उण एक्का हेमजूही ज्जेव, जा गोकुलेसरीए सक्किअं गव्वधियं धारेइ । (वयस्य, युष्माकं सर्वाश्चित्तमामोदयन्ति लताः । मम पुनरेका हेमयूथ्येव, या गोकुलेश्वर्या संस्कृतं गर्वायतमिव स्तवकं (?) धारयति ।)

कृष्ण—प्रिये, मैं तुम्हारे साथ वनविहार करना चाहता हूँ ।

वृन्दा—सखि, तो मैं वृन्दावन को प्रेरित करती हूँ ।

(यह कह कर चारो ओर देखती है ।)

हे माधवि, मुस्कान फैलाओ, हे चमेली, हँसी के उद्गम को प्रकट करो । हे पाटले, आनन्द से फूलो, हे जूही, निद्रा छोड़ो, हे कमलिनी, प्रसन्न होओ, हे लवङ्गलते शोभा को ग्रहण करो । इस कृष्ण ने राधा के साथ विहार करने की अभिलाषा प्रकट की है ।। ३४ ।।

मधुमंगल—अहा, किस प्रकार वनदेवता ने वचनमात्र से लतासमूह को प्रफुल्लित कर दिया है ।

कृष्ण—मित्र फूलों की सुगंधि से युक्त वृक्ष मन को आनन्दित कर रहे हैं ।

मधुमंगल—मित्र, आपके मन को सभी लतायें आनन्दित कर रही हैं । मुझको तो एक हेमजूही ही, जो कि गोकुलेश्वरी के संस्कारयुक्त गोगुच्छ की भाँति गुच्छा को धारण करती है ।

ललिता—(स्मित्वा ।) अज्ज, तदो क्खु पअडिदा दे रसण्णदा । (आर्य, ततः खलु प्रकटिता ते रसज्ञता)

मधुमङ्गलः—(सेर्ष्यम् ।) वअस्स, पेक्ख । इमाओ रत्ता अवि वङ्कक्किसुअलइआओ गोइआ विअ मं ण सुहवेदि । (वयस्य, पश्य । एता रक्ता अपि वक्रकिंशुकलतिका गोपिका इव मां न सुखयन्ति ।)

ललिता—वुन्दे, एदे बल्लआ विअ पेक्खीअन्तु जवात्थवआ, जा क्खु लोअणलोहणिज्जा वि णामोदं वित्थारेन्ति । (वृन्दे, एते बल्लवा इव प्रेक्ष्यन्तां जवास्तबकाः, ये खलु लोचनलोभनीया अपि नामोदं विस्तारयन्ति ।)

मधुमङ्गलः—(सरोषम् ।) जाणम्हि तुम्हाणं गोइआणं कम्म जाओ रसकुम्भं वि दिढं णिम्मन्थिअ सिणेहं कड्ढन्ति । (जानामि युष्माकं गोपिकानां कर्म या रसकुम्भमपि दृढं निर्मथ्य स्नेहं कर्षन्ति ।)

वृन्दा—(स्मित्वा ।) सखि ललिते,

ये दण्डपाशभाजः स्फुटं वहन्तो मनः शिलाकल्पम् ।
कान्तारमाश्रयन्ते तेभ्यो वः क्षेममुल्लसतु ॥ ३५ ॥

कृष्णः—(स्मित्वा ।) वृन्दे, ज्ञातं ज्ञातम् । बुद्धिं मूर्च्छयता कुचि-

---

ललिता—(मुस्कुराकर) आर्य, इससे आपकी रसिकता प्रकट हो गयी है ।

मधुमंगल—(ईर्ष्यापूर्वक) मित्र, देखो । यह लाल होने पर भी टेढ़ी पलाशलता गोपी की भाँति मुझको सुख नहीं पहुँचाती है । (गोपियाँ अनुरक्त होकर भी प्रतिकूलता के कारण सीधे मुँह बात नहीं करतीं ।)

ललिता—वृन्दे, गोप के समान (विद्यमान) जवाकुसुम के इन गुच्छों को देखो, जो नेत्र को लुभाने वाले होकर भी आनन्द को नहीं बढ़ा पाते ।

मधुमंगल—(क्रोधपूर्वक) मैं तुम गोपियों के कार्य को जानता हूँ जो रस के घड़े को भी दृढ़ता से मथ कर स्नेह को निकाल लेती हैं ।

वृन्दा—(मुस्कराकर) सखि ललिते, दण्डपाश पक्ष में–लाठी और रस्सी को धारण करने वाले जो लोग पत्थर के समान कठोर हृदय को लिए जंगल का सहारा लेते हैं उन लोगों का कल्याण हो ॥ ३५ ॥

कृष्ण—(मुस्कराकर) वृन्दे, समझ गया समझ गया । बुद्धि को मूर्च्छित

कालोभेन गोपिकाञ्चलग्राहिणी त्वं कृतासि ।

(नेपथ्ये ।)

कस्तूरिकेव दुरवच्छदसंगमेयं
गोपीततिर्मदमयी किल पिच्छिला च ।
दाक्षिण्यतस्तनुभृतामनुरञ्जनोऽयं
वासन्तवायुरिव हन्त मुरान्तकारी ॥ ३६ ॥

कृष्णः—(पृष्ठतो दृष्टिं क्षिपन् ।) साधु भो कीरराज, साधु ।

मधुमङ्गलः—पिहङ्गपुङ्गअ, चउद्दहविज्जाविअक्खणो दीहाउ होहि । (विहङ्गपुंगव, चतुर्दशविद्याविचक्षणो दीर्घायुर्भव ।)

करने वाले क्षीर-विकार के लोभ द्वारा तुम गोपियों के आँचल को पकड़ने वाली बनायी गयी हो ।

(नेपथ्य में)

गोपियों की यह मदमाती श्रेणी कस्तूरी के समान कठिनाई से प्राप्त होने योग्य है । अनुकूलता से प्राणियों को आनन्दित करने वाला मुरविनाशक यह कृष्ण दक्षिण दिशा से आकर लोगों को आनन्दित करने वाले वसन्तकालिक पवन के समान है ॥ ३६ ॥

विमर्श—कस्तूरी-मृग की नाभि में छिपी रहती है, अतः उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं है । वासन्तिक पवन सबके लिये सुलभ तथा आनन्ददायक होता है । गोपीसमूह की उपमा कस्तूरी से और कृष्ण की उपमा वासन्तिक पवन से देने का आशय यह है कि जिस प्रकार अत्यन्त आवृत कस्तूरी का पता लगाना और उसको पाना कठिन है, उसी प्रकार अत्यन्त रहस्यमयी गोपियों के मन का भाव समझना और उनका सम्पर्क पाना कठिन है । और जिस प्रकार वसन्त का पवन सबको सुलभ और आनन्दप्रद है उसी प्रकार कृष्ण भी सबों के लिए अपने अनुकूल व्यवहार से सुलभ तथा सुखदायक हैं ।

कृष्ण—(पीछे की ओर आँख फेर कर) सुन्दर हे शुकराज सुन्दर ।

मधुमङ्गल—हे पक्षिश्रेष्ठ, चौदहों विद्याओं में निपुण (होकर) तुम दीर्घजीवी बनो ।

ललिता—हण्डे चण्डालकीर, पअण्डससाअणतुण्डराहुणो पाहुणो होदु दे पिण्डससी। (हण्डे चण्डालकीर, प्रचण्डशशादनतुण्डराहोः प्राघुणो भवतु ते पिण्डशशी।)

कृष्णः—सखे, तूर्णमस्मै समर्पय पाकिमानि दाडिमीबीजानि।

मधुमङ्गलः—भो विन्दावणविहप्पदए, दाडिमीबीअहिन्तोवि सुट्ठु कन्तं ललिदाए दन्तपन्तिं दे दाइस्सम्। (भो वृन्दावनबृहस्पते, दाडिमीबीजेभ्योऽपि सुष्ठु कान्तां ललिताया दन्तपङ्क्तिं ते दास्यामि।)

(पुनर्नेपथ्ये।)

चञ्चलसंज्झावण विअ मुहुत्तराअं तणोदि दे सामी।
वहइ सिणेहं राही केअलं णअणीअपुत्तीव्व ॥ ३७ ॥

(चञ्चलसंध्याघन इव मुहूर्तरागं तनोति ते स्वामी।
वहति स्नेहं राधा केवलं नवनीतपुत्रीव ॥)

ललिता—(सानन्दम्।) सहि सारिए, सोहग्गवदी होहि। जं

ललिता—अरे चाण्डाल शुक, तुम्हारा पिण्डरूपी चन्द्रमा भयंकर बाज-रूपी राहु का अतिथि बने।

कृष्ण—मित्र, शीघ्र ही इस सुग्गे को पके हुए अनार के दाने दो।

मधुमंगल—हे वृन्दावन के बृहस्पति, अनार के बीज से भी अधिक सुन्दर ललिता की दंत पंक्ति तुम्हें दूँगा।

(फिर नेपथ्य में)

संध्या के चंचल बादल के समान तुम्हारा स्वामी क्षणिक लालिमा-अनुराग को बढ़ाता है। और राधा मक्खन की पुत्री की भाँति केवल स्नेह-घी-प्रेम को ही धारण करती है। अर्थात् जिस प्रकार संध्याकालिक बादल की लाली क्षणिक होती है उसी प्रकार तुम्हारे स्वामी कृष्ण का अनुराग अस्थायी है। और जिस प्रकार मक्खन में घी स्थायी रूप से रहता है उसी प्रकार राधा का प्रेम भी दृढ़-और स्थायी है॥ ३७॥

ललिता—(आनन्दपूर्वक) सखि सारिके, सौभाग्यवती हो, क्योंकि

पच्चुत्तरेण णिज्जिदो तुए दुम्मुहो कीरो। (सखि सारिके, सौभाग्यवती भव। यत्प्रत्युत्तरेण निर्जितस्त्वया दुर्मुखः कीरः।)

कृष्णः--(स्वगतम्।) ध्रुवं वृन्दयेदमध्यापितकौशलं विहङ्गयोर्द्वन्द्वम्।

मधुमङ्गलः--(सक्रोधम्।) हञ्जे, भञ्जेमि दे तिक्खजप्पिणं चञ्चुपुडम्। (हण्डे, भनज्मि ते तीक्ष्णजल्पि चञ्चुपुटम्।)

(इति सव्याजं दण्डं क्षिपति।)

राधिका--हन्त, कधं उड्डीणं वावदूअं विहङ्गमिहुणम्। (हन्त, कथमुड्डीनं वावदूकं विहङ्गमिथुनम्।)

कृष्णः--(राधामवेक्ष्य।)

सेवन्ते तरुगेहिनः सुमनसां वृन्दैर्मधुस्यन्दिभि-
यंत्रोत्फुल्ललतावधूभिरभितः संगत्य भृङ्गातिथीन्।
संवीता पशुभिस्तथा खगकुलैः खेलद्भिरव्याहतं
न स्यात्कस्य सुकण्ठि सेयमधिकानन्दाय वृन्दाटवी ॥३८॥

उत्तर देकर तुमने दुर्मुख सुग्गे पर विजय पायी है।

कृष्ण--(अपने आप) ये दोनों पक्षी अवश्य ही वृन्दा की शिक्षा से प्राप्त कुशलता से युक्त हैं।

मधुमङ्गल--नीच सारिके, मैं तुम्हारे तीखे बोलने वाले चोंच को तोड़ता हूँ। (यह कह कर डंडा फेंकता है।)

राधिका--हाय, किस प्रकार दोनों खूब बोलनेवाले पक्षी उड़ गये।

कृष्ण--(राधा को देखकर) जहाँ वृक्षों पर रहने वाले पक्षिगण मधुवर्षी पुष्प समूहों से विकसित लता वधुओं से चारों ओर से मिलने वाले भ्रमररूपी अतिथियों की सेवा करते हैं और जो स्वच्छन्द भाव से खेलते हुए पशुओं तथा पक्षियों से व्याप्त हैं हे सुकण्ठि, वह यह वृन्दावन किसे अधिक आनन्द न देगा! (अर्थात् यह वृन्दाटवी सबको सुख पहुँचाने वाली है) ॥ ३८ ॥

अथवा

हरिणीर्विडम्बयसि नेत्रखेलया
ललितैर्लतापिकवुलं कलोक्तिभिः ।
शिखिनश्च कुन्तलकलापविभ्रमै-
रिति ते पुरः किमिव मे वनश्रिया ॥ ३९ ॥

वृन्दा—पश्य पश्य ।

विरतोर्मिरियं सुनीरजा धृतशुद्धोज्ज्वलसत्त्वसंततिः ।
स्फुटकृष्णरुचिर्यमादृता मुनिगोष्ठीव चकास्ति भानुजा ॥४०॥

कृष्ण—प्रिये, पश्य पश्य ।

अथवा—तुम नेत्र की क्रीड़ा से हरिणी की, ललित सुन्दर वचनों से कोकिलसमूह की और केश-कलाप के विलासों से मयूरों की विडम्बना कर रही हो। अतः तुम्हारे समक्ष वन की शोभा से हमें क्या प्रयोजन है ? (वन की शोभा तो तुम्हीं प्रकट कर रही हो।) ॥ ३९ ॥

वृन्दा—देखो, देखो।

शान्त लहरों वाली, गोष्ठीपक्ष में—काम-क्रोधादि से रहित, सुन्दर कमलों से सुशोभित, पक्ष में—रजोगुण रहित, मत्स्यमकरादि जीवसमूह को धारण करने वाली, पक्ष में-सत्त्वगुणसम्पन्न, स्पष्ट काली कान्ति वाली, पक्ष में—कृष्ण में रुचि रखने वाली, यमराज से समादृत, पक्ष में—अहिंसादि से सम्मानित, यह यमुना मुनिगोष्ठी की भाँति शोभित हो रही है ॥ ४० ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में पूर्णोपमाऽलंकार है। यमुना की उपमा मुनिगोष्ठी से दी गयी है। इस पूर्णोपमा के द्वारा कृष्ण के प्रति राधा के आक्रोश की समाप्ति और अनुकूलता (मान भंग) भी ध्वनित हो रही है। क्योंकि भानुजा पद श्लिष्ट है जिसका अर्थ सूर्यतनया यमुना और वृषभानुपुत्री राधा भी होता है।

कृष्ण—प्रिये, देखो देखो।

स्मितरुचिविराजितं ते मुखमिव नीराजयत्यधीराक्षि ।
नीरजबान्धवदुहितुर्नीरजराजी मरुद्भ्रमिता ॥ ४१ ॥

वृन्दा—(परिक्रम्य । नीरजान्याहृत्य च ।) पुण्डरीकाक्ष, स्तोकोत्फुल्लमिदं गृहाण लीलापुण्डरीकम् । तथावतंसोचितं कोकनदद्वन्द्वम् ।

कृष्णः— (सहर्षमादाय ।) वृन्दे, रक्तोत्पले राधाकर्णयोराधानेन श्रियं लभताम् । (इति तथा कृत्वा । सकौतुकम् ।) हन्त, पुण्डरीककोषे चञ्चरीको वर्त्तते ।

वृन्दा—

मधुपः कमलेन सार्द्धमुद्यन्मकरन्देन मुकुन्दमाससाद ।

मुस्कान की कान्ति से सुशोभित और चंचल नेत्रों वाले तुम्हारे मुख की कमलबन्धु सूर्य की पुत्री यमुना के पवन से प्रेरित (अतएव) हिलती हुई कमल-पंक्ति मानो आरती उतार रही है ॥ ४१ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षाऽलंकार है । यमुना में विकसित कमल पवन के हल्के झोंके से हिल रहे हैं, वायु से आन्दोलित कमलों पर आरती उतारने की सम्भावना प्रकट की गयी है । कमल हिल क्या रहे हैं, मानो राधा के मुख की आरती उतार रहे हैं । आरती उतारते समय थाली को हिलाने की क्रिया होती है ।

वृन्दा—(घूमकर और कमलों को लेकर) पुण्डरीकाक्ष, कुछ खिले हुए इस लीला कमल को लो । ये दोनों लाल कमल आभूषण के योग्य हैं ।

कृष्ण—(प्रसन्नतापूर्वक लेकर) वृन्दे, ये लाल कमल राधा के कानों को अलंकृत कर सुशोभित हों ।

(राधा के कानों में कमल पहनाकर । कुतूहल से)

अहा, कमल कोष में भौंरा है ।

वृन्दा—कमल के साथ रहने वाले भौंरे ने प्रकट होने वाले पुष्परस के कारण मुकुन्द-श्रीकृष्ण को प्राप्त किया है । क्योंकि रसयुक्त कमलों में, पद्म में

-सरसेषु विनिर्मितो हि सङ्गः परमानन्दमरोन्नतिं तनोति ॥४२॥

कृष्णः—प्रिये, पश्य पश्य ।

अस्मिन्मदीयकरसङ्गिनि पुण्डरीक-
कोशे क्षणं किल विलम्ब्य शिलीमुखोऽयम् ।
कर्णावलम्बि तव कोकनदं प्रपेदे
कं वा बलान्न हि हरत्यनुरागलक्ष्मीः ॥ ४३॥

(राधिका संभ्रमं नाटयन्ती भुजलतां क्षिपति ।)

कृष्णः—(स्फुटं विहस्य ।)

कर्णोत्तंसितरक्तपङ्कजजुषो भृङ्गीपतेर्भङ्क्रिया-
भ्रान्तेनाद्य दृगञ्चलेन दधती भृङ्गावलीविभ्रमम् ।
त्रासान्दोलितदोर्लतान्तविचलच्चूडाझणत्कारिणी

भक्तों में प्राप्त संगति परम आनन्द-समूह की उन्नति को बढ़ाती है। (भगवद् भक्तों की संगति परम सुख पहुँचाती है) ॥ ४२ ॥

कृष्ण—प्रिये, देखो देखो ।

मेरे हाथ में विद्यमान इस कमल-कोश में एक क्षण रुककर यह भौंरा तुम्हारे कानों में लटकने वाले रक्त कमल के पास चला गया है। क्योंकि प्रेम-लक्ष्मी किसे बलपूर्वक नहीं हर लेती है ? (अर्थात् सभी प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं) ॥ ४३ ॥

(राधिका घबड़ाकर अपनी भुजा को झटकारती है)

कृष्ण—(जोर से हँसकर)

हे राधे, कान के आभूषण बने रक्तकमलों में रहने वाले भ्रमर के गुञ्जार से चञ्चल दृगञ्चल से भ्रमर-समूह के विलास को धारण करती हुई, डर से हिलती हुई दोनों भुजलताओं के बीच गतिशील चूड़ामणियों के झङ्कार को उत्पन्न

राधे व्याकुलतां गतापि भवती मोदं ममाधास्यति ॥४४॥

राधिका—(सत्रासं चेलाञ्चलमुदञ्चयन्ती ।) कधं अज्जवि ण चलदि धिट्ठो । (कथमद्यापि न चलति धृष्टः ।)

कृष्णः—

मधुराक्षि सुधाथ संभ्रमेण क्षिप चेलाञ्चलमञ्जसा न भूयः ।
पिबत श्रवणोत्पलोद्गतं ते मधुपोऽयं मधुमङ्गलं कृशाङ्गि ॥४५॥

मधुमङ्गलः—भो वअस्स, कीस वम्हणं मं महुवेण विवाएसि । (इति दण्डेन भ्रमरं ताडयति ।) (भो वयस्य, कस्माद् ब्राह्मणं मां मधुपेन विपाययसि ।)

राधिका—(सश्लाघम् ।) अज्ज, पिअंकरो ममासि संवुत्तः । (आर्य, प्रियंकरो ममासि संवृत्तः ।)

मधुमङ्गलः—कहं महुसूअणो तक्कालं जेव्व तिरोहिदो, जं कुदो वि ण लक्खीअदि । (कथं मधुसूदनस्तत्कालमेव तिरोहितः, यत्कुतोऽपि न लक्ष्यते ।)

करने वाली तुम व्याकुल होकर भी मुझे आनन्द देती हो । अर्थात् भ्रमर के डर से घबड़ाई हुई तुम्हें देखकर मुझे अपूर्व आनन्द मिल रहा है ॥ ४४ ॥

राधिका—(डर से वस्त्र के छोर को झाड़ती हुई)

अभी भी यह ढीठ क्यों नहीं चला जाता ?

कृष्ण—हे सुनयने, डरने से कोई लाभ नहीं (डरना बेकार है) अपनी साड़ी के पल्ले को फिर न झाड़ो । हे कृशाङ्गि यह भौंरा तुम्हारे कान के आभूषण रूप कमल से उत्पन्न मधुमङ्गल का पान करे ॥ ४५ ॥

मधुमंगल—हे मित्र, मुझ ब्राह्मण को तुम भौंरा द्वारा क्यों पान करवा रहे हो ? (यह कह कर डंडे से भौंरा को मारता है)

राधिका—(स्नेह से) आर्य तुम मेरी भलाई करने वाले हो गये ।

मधुमंगल—मधुसूदन (भ्रमर) तुरत कैसे छिप गया, क्योंकि कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रहा है ।

राधिका—(सव्यामोहम् ।) हद्धी हद्धी । कहिं गदो महुमहणो ।
(इति संस्कृतेन) (हा धिक् हा धिक् । कुत्र गतो मधुमथनः !!)

समजनि दवाद्वित्रस्तानां किमार्तरवो गवां
मयि किमभवद्वैगुण्यं वा निरङ्कुशमीक्षितम् ।
व्यरचि निभृतं किं वा दूतिः कयाचिदभीष्टया
यदिह सहसा मामत्याक्षीद्वने वनजेक्षणः ॥ ४६ ॥

(कृष्णः संज्ञया सर्वान्निवार्य स्मितं करोति ।)

राधिका—हन्त । (संस्कृतेन ।)

वासन्तीभिरयं न मे कचभरः कंसारिणोत्तंसित-
स्तस्योरस्थलचुम्बिचम्पकमयैर्नागुम्फि माल्यं मया ।
मल्लीभिश्च निरर्गलं परिहसन्नायं बलात्ताडितः
प्रारम्भेऽद्य वनोत्सवस्य विरहच्छद्मोदयः प्रोदगात् ॥४७॥

राधिका—(बेचैनी से) हाय, हाय, मधुसंहारक (कृष्ण) कहाँ गया ?
(संस्कृत में)

क्या वन की आग से डरी हुई गौओं का आर्तनाद उत्पन्न हुआ अथवा क्या मुझ से कोई गलती हो गयी या क्या उसने मेरी निरङ्कुशता देखी है। अथवा क्या किसी गोपी ने उसे एकान्त में बुलाया है, जिससे इस वन में सहसा कमलनयन कृष्ण ने मुझे छोड़ दिया है ॥ ४६ ॥

(कृष्ण इशारे से सबको मना करके मुस्कुराते हैं)

राधिका—हाय । (संस्कृत में)

श्रीकृष्ण ने मेरी इस केशराशि को वासन्तिक फूलों से नहीं सजाया । उसके वक्षस्थल के स्पर्श करनेवाले चम्पक पुष्पों से मैंने माला नहीं बनायी । निरर्थक परिहास करता हुआ यह (कृष्ण) मल्लिका-पुष्पों की मार नहीं खा सका । (प्रणयकुपिता नायिका नायक को फूलों से मारती है, यह प्रसिद्धि है) आज वसन्तोत्सव के प्रारम्भ में वियोग और छलना ही प्रकट हो गयी ॥ ४७ ॥

वृन्दा—(अपवार्य ।) काममन्धकारिणी प्रेमबन्धकन्दली या खलु विस्पष्टमपि नानुसंधापयति ।

राधिका—सहि वुन्दे, रक्खेहि मम् । (इति त्रासं नाटयन्ती ।) (सखि वृन्दे, रक्ष माम् ।)

सप्पा सप्पइ भिङ्गपन्तिमिसदो काली रसालाङ्कुरे
रत्तासोअसिरे विरेहइ तधा पुप्फच्छलादो सिही ।
सिङ्गे केसुअसाहिणो अ कलिआदम्भेण संभेदिणी
मं भेत्तुं कुसुमाउहस्स वलइ कूराद्धचन्दावली ॥४८॥

(सर्पी सर्पति भृङ्गपङ्क्तिमिषतः काली रसालाङ्कुरे
रक्ताशोकशिरसि विराजति तथा पुष्पच्छलाच्छिखी ।
शृङ्गे किंशुकशाखिनश्च कलिकादम्भेन संभेदिनी
मां भेत्तुं कुसुमायुधस्य वलते क्रूरार्धचन्द्रावली ॥)

(वसन्तोत्सव का प्रारंभ जहाँ संयोग शृङ्गार के विलासमय वातावरण से होना चाहिए था, वहाँ वियोग और छल-प्रपञ्च का विषम उपन्यास उपस्थित हो गया है ।)

वृन्दा—(एकान्त में) स्नेह-बन्ध का समूह पर्याप्त अन्धा बना देता है, जिससे स्पष्ट चीज भी दिखायी नहीं पड़ती ।

राधिका—सखि वृन्दे मेरी रक्षा करो ।

(यह कह कर भय का अभिनय करती हुई)

आम के बौर (मंजरी) पर भ्रमर-समूह के व्याज से काली साँपिन चल रही है । लाल अशोक के ऊपरी भाग में फूलों के बहाने आग विद्यमान है । और पलाश वृक्ष के शिखर पर कली के छल से मुझे विदीर्ण करने के लिए कामदेव की क्रूर अर्ध चन्द्रावली (इस नाम का अस्त्र विशेष) साहस कर रहा है । (अर्थात् कृष्ण के वियोग में व्याकुल मुझे भ्रमर-पंक्ति में सर्पिणी, अशोक-पुष्प में आग और पलाश-कलिका में कामदेव की क्रूर अर्ध चन्द्रावली की प्रतीति हो रही है ।) ॥ ४८ ॥

(इति वैवश्यं नाटयति ।)

कृष्णः—(संभ्रमादभ्युपेत्य पाणिं गृह्णन्नुच्चैः ।) सुकुमारि, किमकाण्डे कातरासि । यतः ।

त्वन्मुखलक्ष्मीग्लपिता चन्द्रावलिरिह बिभेति पूर्णापि ।
प्रणयाद्ये तव कर्तुं किमर्धचन्द्रावली क्षमते ॥ ४९ ॥

राधिका—(सधैर्यं लज्जां नाटयन्ती स्वगतम् ।) कधं अच्छिलग्गं ज्जेव्व हारिदं मणन्ती खिण्णम्हि । (कथमक्षिलग्नमेव हारितं मन्यमाना खिन्नास्मि ।)

कृष्णः—प्रिये, पश्य पश्य ।

परिणतवरबीजस्पर्धिदन्तोरुभासः
कुसुममुपहसन्त्यास्तन्वि दन्तच्छदेन ।
फलविजयिकुचायास्त्वद्भयाद्दाडिमीयं
मृदुलपवनदोलादम्भतः कम्पतेऽद्य ॥ ५० ॥

(यह कह कर विवशता दिखलाती है)

कृष्ण—(सहसा समीप पहुँच कर हाथ पकड़ते हुए उच्च स्वर से) सुकुमारि, असमय में दुःखी क्यों हो ? क्योंकि—

तुम्हारी मुख-शोभा से दुःखी पूर्ण चन्द्रावली भी यहाँ डर रही है तो प्रेम के प्रारंभ में आधी चन्द्रावली तुम्हारा क्या कर सकती है ? ॥ ४९ ॥

राधिका—(धैर्यपूर्वक लज्जा का अभिनय करती मन ही मन) नेत्र के समक्ष विद्यमान को ही अपहृत समझ कर मैं दुःखी क्यों हूँ ?

कृष्ण—प्रिये, देखो देखो।

हे तन्वि, पके हुए प्रशस्त बीजों से स्पर्धा करते हुए दाँतों की श्रेष्ठ कान्ति वाली, कोमलता में अधर के द्वारा फूलों का उपहास करने वाली और स्तनद्वय से फल को जीतने वाली तुम्हारे भय से यह दाडिमी (अनार) मन्द पवन के आन्दोलन के बहाने काँप रही है ॥ ५० ॥

विमर्श—दाडिम वृक्ष पर राधा ने सौन्दर्य-संग्राम में अपने शोभन अंगों

वृन्दा—सखि, निर्वर्णय तव कर्णिकोचितकोरकं कर्णिकारमनुम्।

राधिका—

णअकण्णिआरकुसुमे मसलो रसलोहणिच्चलो भोदि।

(नवकर्णिकारकुसुमे मधुलो रसलोभनिश्चलो भवति।)

कृष्णः—

काञ्चनमञ्चनिविष्टो रसराजोऽयं शरीरीव॥ ५१॥

राधिका—पेक्ख पेक्ख। (संस्कृतेन।) (प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व।)

द्वारा विजय पायी है अतः विजित दाडिम वृक्ष भय से काँप रहा है। यद्यपि दाडिम वृक्ष पवन के झोंके खाकर हिल रहा है किन्तु कृष्ण ने राधा से डर कर काँपने की बात कही है। विजेता के समक्ष विजित भय से काँपता है यह स्वाभाविक बात है। राधा की विजय का प्रकार इस प्रकार है—राधा ने अपने दन्तपंक्ति की शोभा से बीज, अधर से फूल और कुचकलश से फल को जीता है। अर्थात् राधा के ये तीनों अंग दाडिम वृक्ष के उपर्युक्त तीनों चीजों से अधिक सुन्दर और श्रेष्ठ हैं।

वृन्दा—सखि आभूषण के उपयुक्त कलीवाले इस कर्णिकार—वनचम्पा के वृक्ष को देखो।

राधिका—नवीन वनचम्पा के फूल में भौंरा रस के लोभ से निश्चल हो रहा है। (पूर्वार्ध)

कृष्ण—स्वर्ण-मञ्च पर बैठा हुआ यह (भ्रमर) मानो मूर्तिमान रसराज (शृङ्गार रस) लग रहा है॥ ५१॥

विमर्श—प्रस्तुत श्लोक का पूर्वार्द्ध राधा की उक्ति और उत्तरार्ध की कृष्ण की उक्ति है। पीले रंग के वनचम्पा-पुष्प पर बैठा हुआ श्याम वर्ण का भौंरा शरीरधारी शृङ्गार रस सा प्रतीत हो रहा पर बैठे श्याम भ्रमर पर स्वर्ण-मञ्च पर बैठे रसराज की उत्प्रेक्षा की गयी है। साहित्य शास्त्र में शृङ्गार रस का वर्ण श्याम माना गया है। इस उत्प्रेक्षा में कवि की अलंकार-योजना का विलक्षण चमत्कार दृष्टिगोचर होता है।

राधिका—देखो देखो। (संस्कृत में)

उद्धुरमरन्दमत्ता रुद्धे सारेण गन्धविसरेण ।
इह सुन्दर मल्लिगणे रोलम्बा हन्त गुञ्जन्ति ॥ ५२ ॥

(कृष्णः 'उद्धुरमरन्द—' इत्यादि पठति ।)

वृन्दा—

पीतातिसूक्ष्मशिखरा चम्पककलिकेयमाभाति ।

कृष्णः—

मानवतीहृन्मथिनी हैमी कामस्य शक्तिरिव ॥ ५३ ॥

मधुमङ्गलः—भो वअस्स, एसा कामस्स सत्ती ण होइ। पेक्ख जडिलाखित्ता सा हरिआलगोरी लउडिआ। (भो वयस्य, एषा कामस्य शक्तिर्न भवति। पश्य जटिलाक्षिप्ता सा हरितालगौरी लकुटिका।)

(प्रविश्य ।)

जटिला—अरे जम्ह बम्हण, एत्थ लगुडी मए विसुमरिदा। (अरे कुटिल ब्राह्मण, अत्र लगुडी मया विस्मृता।)

राधिका—(अपवार्य । सभयम् ।) सहि, परित्ताहि परित्ताहि। एसा

हे सुन्दर, यहाँ उत्कट पुष्परस से मतवाले भौंरे श्रेष्ठ गन्ध-समूह से युक्त मल्लिका-समूह में गुञ्जन कर रहे हैं ॥ ५२ ॥

(कृष्ण 'उद्धुर मरन्द' इत्यादि श्लोक पढ़ते हैं)

वृन्दा—पीले अग्रभागवाली यह चम्पक-कली सुशोभित हो रही है। (पूर्वार्ध)

कृष्ण—मानिनी स्त्रियों के हृदय को मथने वाली कामदेव की सुनहली शक्ति की भाँति ॥ ५३ ॥

(उत्तरार्ध)

मधुमंगल—हे मित्र, यह कामदेव की शक्ति नहीं है। देखो। जटिला के द्वारा फेंकी गयी वह छड़ी है।

(प्रवेश करके)

जटिला—अरे धूर्त ब्राह्मण, मैं यहाँ पर अपनी छड़ी भूल गयी हूँ।

राधिका—(भय से एकान्त में) सखि, बचाओ-बचाओ काली रात के

कालरत्तीव्व दारुणा वुड्ढी मं दिट्ठवदी। (सखि, परित्राहि परित्राहि। एषा कालरात्रीव दारुणा वृद्धा मां दृष्टवती।)

(इति ललिताबृन्दाभ्यां निष्क्रान्ता।)

कृष्णः—(अपवार्य।)

मम संगमामृतरसं न जिघृक्षति न च जिहासति प्रकटम्।
जटिलाव्याघ्रीचकिता तृषिता राधाकुरङ्गीयम् ॥ ५४ ॥

मधुमङ्गलः—भो सरमालाङ्गूलकुटिले, घेप्प अप्पणो जुट्ठिम्। (भो सरमालाङ्गूलकुटिले, गृहाणात्मनो लगुडीम्।)

जटिला—(यष्टिमादाय।) अरे सुअल, कीस तुमं वहुडिआवेसेण मं सदा विडम्बेसि। (अरे सुबल, कस्मात्त्वं वधूटिकावेशेन मां सदा विडम्बयसि।)

कृष्णः—(स्वगतम्।) दिष्ट्या सुबलतया ज्ञातमभूत्। (प्रकाशम्।

समान डरावनी इस बूढ़ी ने मुझे देख लिया है।

(यह कह कर राधा ललिता और वृन्दा के साथ चली जाती है)

कृष्ण—(स्वगत) जटिलारूपी व्याघ्री से डरी हुई प्यासी यह राधा रूपी हरिणी मेरे संयोगरूपी अमृत रस को न तो ग्रहण ही करना चाहती है और न स्पष्ट रूप से छोड़ना ही चाहती है। अर्थात् मुझमें राधा का अनुराग तो है किन्तु जटिला के भय से वह उसे प्रकट करने में असमर्थ हो रही है। प्रस्तुत पद्य में रूपक का पूर्ण निर्वाह हुआ है। इसमें जटिला पर व्याघ्री, राधा पर हरिणी और संयोग पर अमृतरस का आरोप किया गया है॥ ५४ ॥

मधुमंगल—अरी कुतिया की पूँछ के समान टेढ़ी जटिले, अपनी छड़ी पकड़ो।

जटिला—(छड़ी लेकर) अरे सुबल, पुत्रवधू (राधा) का वेश बनाकर तुम मुझे सदा क्यों ठगते रहते हो ?

कृष्ण—(मन ही मन)सौभाग्य से सुबल रूप में ज्ञात हुआ है (जटिला राधा को सुबल समझ रही है।)

सनर्मस्मितम् ।) जटिले, गुरुभ्यः शपमानोऽस्मि । राधिकैव साधयति । न खल्वसौ सुवलः ।

जटिला—रे धुत्तविअवखण, हं सव्वं परीक्खिदुं खमम्हि । ता अलं एत्थ ठग्गत्तणेण । (रे धूर्तविचक्षण, अहं सर्वं परीक्षितुं क्षमास्मि । तस्मादलमत्र ठगत्वेन ।)

(इति निष्क्रान्ता ।)

कृष्णः—सखे, समागच्छ । गोकुलमेव प्रविशावः ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति राधाप्रसादनो नाम पञ्चमोऽङ्कः ।

(प्रकट मुस्कुराकर) जटिले, गुरुजनों की शपथ ले रहा हूँ । राधा ही जाती है, यह सुबल नहीं ।

जटिला—अरे धूर्तराज, मैं सब कुछ जाँचने में समर्थ हूँ । अतः मुझे धोखा देने की कोशिश न करो । (यह कह कर चली जाती है)

कृष्ण—मित्र, आओ । हम लोग गोकुल ही चलें । (यह कह कर दोनों चले जाते है)

(इस प्रकार, रंगमञ्च से सभी चले गये)

राधा प्रसादन' नामक पञ्चम अङ्क समाप्त ।

षष्ठोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति जटिला ।)

जटिला—सुदं मए अज्ज पीअपडेण किदुत्तरीआ बहू घरे चिट्ठइ । ता गदुअ जहत्थं णिद्धारइस्सम् । (परिक्रम्य पश्यन्ती ।) कधं एसा विसाहा घुम्मिअ घुम्मिअ अलिन्दे पडइ । ता सद्दाइस्सम् । (इत्युपसृत्य ।) विसाहे, जादो एक्कपहरो तहवि घुम्मसि । (श्रुतं मयाद्य पीतपटेन कृतोत्तरीया वधूर्गृहे तिष्ठति । तद्गत्वा यथार्थं निर्धारयिष्यामि । कथमेषा विशाखा भ्रान्त्वा अलिन्दे पतति । तच्छब्दायिष्ये । विशाखे, जात एकप्रहरस्तथापि भ्रमसि ।)

(प्रविश्य ।)

विशाखा—(स्वगतम् ।) संपदं रासमहूसवगब्भासु कुदो णिद्दागन्धोवि अम्हाणम् । ता जुत्तं जेव्व घुम्मणम् । (इति हठाद् दृशौ विकाश्य । प्रकाशम् ।) अज्जे, अज्ज भअवदीए णिद्देसेण देअदाअदणे अम्हे दिण्णजाअरम्ह । (सांप्रतं रासमहोत्सवगर्भासु शर्वरीषु कुतो निद्रागन्धोऽप्यस्माकम् । तद्युक्तमेव भ्रमणम् । आर्ये, अद्य भगवत्या निदेशेन देवतायतने वयं दत्तजागराः स्मः ।)

(उसके बाद जटिला प्रवेश करती है)

जटिला—आज मैंने सुना है कि वधू (राधा) पीताम्बर चादर ओढ़कर घर में बैठी है । अतः जाकर सही बात का पता लगाऊँगी (घूमकर देखती हुई) यह विशाखा चक्कर खा-खाकर अलिन्द (घर का बाहरी द्वार प्रकोष्ठ) पर क्यों गिर रही है ? तो आवाज देती हूँ । (समीप जाकर) विशाखे, एक पहर हो गया फिर भी घूम रही हो ।

(प्रवेश करके)

विशाखा—(मन ही मन) इस समय रास के महोत्सव से भरी रातों में हम लोगों को नींद का लेश भी कहाँ ? तो घूमना उचित ही है । (यह कह कर बलात् आँखों को खोलती हुई प्रकट) आर्ये, आज भगवती (पौर्णमासी) के आदेश से हमलोग देवमन्दिर में बिल्कुल जागे हुए थे ।

जटिला—(स्वगतम् ।) अहो जेव्व पदोसे वहूए सेज्जा सुण्णा आसि । (प्रकाशम् ।) विसाहे, आआरेहि वहूअम् । (अत एव प्रदोषे वध्वाः शय्या शून्यासीत् । विशाखे, आकारय वधूम् ।)

विशाखा—हला राहे, इदो इदो । (सखि राधे, इत इतः ।)

(प्रविश्य ।)

राधिका—(चक्षुषी विमृज्य । सजृम्भम् ।) विसाहे, बाढं णिद्दाउलम्हि । (इति दृष्टिं दरोद्घाट्य सशङ्कं स्वगतम् ।) कधं इध जेव्व अज्जा । (विशाखे, बाढं निद्राकुलास्मि । कथमित एव आर्या ।)

जटिला—(राधां निर्वर्ण्य । स्वगतम् ।) हद्धी हद्धी । सच्चं ज्जेव्व एदं पीअम्बरम् । (हा धिक् हा धिक् । सत्यमेवेदं पीताम्बरम् ।)

राधिका—(जनान्तिकम् ।) हला, सुदं मए सारङ्गीमुहादो जं णिसीधे वुड्ढिआए तस्सिं विलासपुलिणे गदं आसि । ता णूणं म्हे तत्थ दिट्ठम्हि । (हला, श्रुतं मया सारङ्गीमुखान्निशीथे वृद्धया तस्मिन्विलासपुलिने गतमासीत्। तन्नूनं वयं तत्र दृष्टाः स्मः ।)

जटिला—(मन ही मन) इसीलिए सायंकाल वधू का बिछावन सूना था । (प्रकट) विशाखे, वधू को बुलाओ ।

विशाखा—सखि राधे, इधर से इधर से ।

(प्रवेश करके)

राधिका—(दोनों आँखों को पोंछ कर जम्हाई लेती हुई) विशाखे, मुझे नींद बहुत सता रही है । (यह कह कर आँख को थोड़ा खोलकर शंकापूर्वक मन ही मन) क्या आर्या इधर ही हैं ।

जटिला—(राधा को गौर से देखकर अपने आप) हाय, हाय, यह तो सचमुच पीताम्बर है ।

राधिका—(विशाखा से एकान्त में) सखि, मैंने सारङ्गी के मुख से सुना है कि आधी रात में बूढ़ी (जटिला) उस विलासतट पर गयी थी अतः वहाँ पर इसने हम लोगों को अवश्य ही देख लिया है ।

विशाखा—णहु णहु। जं कधिदं वुन्दाए तुमं घेत्तूण तिरोहिदे कण्हे तथा अम्हेसु दोसु सहीसु ससङ्कं तुह उद्देसस्स गदासु एसा वुड्ढी उवत्थिदा। (न खलु न खलु। यत्कथितं वृन्दया त्वां गृहीत्वा तिरोहिते कृष्णे तथावयोर्द्वयोः सख्योः सशङ्कं तवोद्देशाय गतयोः सतोरेषा वृद्धा उपस्थिता।)

राधिका—तदो कीस इअं कोहभअंकरीए मं पेक्खन्ती चिट्ठदि। (तदा कस्मादियं कोपभयंकरी मां पश्यन्ती तिष्ठति।)

जटिला—(सेर्ष्यम्।) मिच्छाजप्पिणि विसाहे, किं णाम अन्धासि तुमम्। (मिथ्याजल्पिनि विशाखे, किं नामान्धासि त्वम्।)

विशाखा—(राधां विलोक्य। सखेदम्। जनान्तिकम्।) अइ विलासविम्हले, किं क्खु इदम्। (अयि विलासविह्वले, किं खल्विदम्।)

राधिका—(स्वं वक्षो निरीक्ष्य ससंभ्रमम्।) हला, तुमं जेव्व सरणम्। (हला, त्वमेव शरणम्।)

विशाखा—(जटिलामवेक्ष्य। संस्कृतेन।)

मुदा क्षिप्तैः पर्वोत्तरलहृदयाभिर्युवतिभिः

विशाखा—नहीं, नहीं। वृन्दा ने कहा है कि तुमको लेकर कृष्ण के छिप जाने पर और हम दोनों सखियों के सशंकित होकर तुम्हें खोजने के लिए निकल जाने पर यह बूढ़ी आयी थी।

राधिका—तो क्रोध से भयंकर लगने वाली यह मुझे घूर कर क्यों देख रही है?

जटिला—(ईर्ष्यापूर्वक) झूठ बोलने वाली विशाखे, क्या तुम अन्धी हो?

विशाखा—(राधा को देखकर। दुःखपूर्वक एकान्त में राधा से) अरी विलास में विह्वल राधे, यह क्या है?

राधिका—(अपने वक्षस्थल को देखकर भय से)

सखि, तुम्हीं मेरी शरण हो। (अर्थात् तुम मुझे बचाओ।)

विशाखा—(जटिला को देखकर। संस्कृत में) आर्ये, उत्सव के कारण चंचल हृदयवाली युवतियों के द्वारा फेंके गये जल से पूर्ण हल्दी द्रवों से पीले हो

पयःपूरैः पीतीकृतमतिहरिद्राद्रवमयैः ।
दुकूलं दोर्मूलोपरि परिदधानां प्रियसखीं
कथं राधामार्ये कुटिलितदृगन्तं कलयसि ॥ १ ॥

जटिला—(सविस्रम्भम् ।) विसाहे, तुए ज्जेव्व चञ्चलाए मम पुत्त-घरं विणासिदम्, जं जोव्वणन्धाणं गोईणं मज्झे वहुडीअ णिज्जइ । (विशाखे, त्वयैव चञ्चलया मम पुत्रगृहं विनाशितम्, यद्यौवनान्धानां गोपिकानां मध्ये वधूटी नीयते ।)

विशाखा—अज्जे किं ति मं उवालहेसि । णं उवसण्णं दीवमालिआपव्वलच्छीं उवालहेहि, जाए सव्वं आबालवुड्ढं गोउलं ज्जेव्व उम्मादिदम् । (आर्ये, किमिति मामुपालभसे । इमामुपसन्नां दीपमालिकापर्वलक्ष्मीमुपालभस्व, यया सर्वमाबालवृद्धं गोकुलमेवोन्मादितम् ।)

जटिला—वत्से, सच्चं कहेसि । अज्ज रत्तिम्मि दिट्ठं मए सव्वाओ गोउलकिसोरीओ तत्थ पुलिणे उम्मत्तीभविअ किंपि किंपि चिट्ठन्दि ।

गये वस्त्र को अपने कंधों पर धारण करने वाली प्रिय सखी राधा पर कुटिल कटाक्ष क्यों डाल रही हो ? अर्थात् राधा के शरीरपर विद्यमान पीतवस्त्र कृष्ण का पीताम्बर नहीं है वरन् आमोद में गोपियों ने हल्दी रंग डालदिया उसी से इसके वस्त्र पीले पड़ गये हैं । तुम्हारा भ्रम निर्मूल है ॥ १ ॥

जटिला—(क्रोध से) विशाखे, तुम्हीं चंचला ने मेरे बेटे के घर को उजाड़ दिया है, क्योंकि तुम जवानी के मद में अन्धी गोपियों के बीच पुत्रवधू (राधा) को ले जाती हो ।

विशाखा—आर्ये, मुझे क्यों उलाहना देती हो । समीप आई हुई दीपमालिका पर्व की शोभा को उलाहना दो जिसने सभी आबाल-वृद्ध को ही मतवाला बना दिया है ।

जटिला—बेटी, ठीक कहती हो । आज रात में मैंने देखा कि सभी गोकुल-किशोरियाँ उस पुलिन पर उन्मत्त होकर कुछ कुछ चेष्टा कर रही हैं । (सभी पागल जैसी दिख रही थीं ।)

(वत्से, सत्यं कथयसि । अद्य रात्रौ दृष्टं मया सर्वा गोकुलकिशोर्यस्तत्र पुलिने उन्मत्तीभूय किमपि किमपि चेष्टन्ते ।)

(विशाखा सहभङ्गं राधिकामीक्षते ।)

जटिला—(सदैन्यम् ।) अइ विसाहे, पसीद पसीद । एसा अङ्गुलिसिहरं मुहे णिक्खिविअ अब्भत्थेमि । ता मइ एक्कं अणुग्गहं करेहि । (अयि विशाखे, प्रसीद । एषा अङ्गुलिशिखरं मुखे निक्षिप्य अभ्यर्थयामि । तन्मय्येकमनुग्रहं कुरु ।)

विशाखा—(सप्रश्रयम् ।) अज्जे, किंति एव्वं भणासि । णिकामं आणवेहि । (आर्ये, किमित्येवं भणसि । निकाममाज्ञापय ।)

जटिला—वच्छे, तुमं विसुद्धासि । ता कण्हहत्थादो रक्खेहि वहूडिअम् । (वत्से, त्वं विशुद्धासि । तत्कृष्णहस्ततो रक्ष वधूटिकाम् ।)

विशाखा—अज्जे णिच्चिन्ता होहि, जं ललिदा क्खु एत्थ दक्खा विअक्खणा अ । (आर्ये, निश्चिन्ता भव, यल्ललिता खल्वत्र दक्षा च ।)

जटिला—कहिं गदा ललिदा । (कुत्र गता ललिता ।)

(विशाखा तिरछी नजर से राधा को देखती है)

जटिला—(दीनतापूर्वक) अरी विशाखे, प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ । यह मैं अंगुलि-शिखर नख को मुँह में लेकर प्रार्थना करती हूँ अतः मुझ पर कृपा करो ।

विशाखा—(विनम्रतापूर्वक) आर्ये, ऐसा क्यों कहती हो, स्वेच्छापूर्वक आदेश दो ।

जटिला—बेटी, तुम विशुद्ध हो । (छल-प्रपञ्च नहीं जानती) अतः कृष्ण के हाथ से वधू (राधा) को बचाओ ।

विशाखा—आर्ये, चिन्ता न करें क्योंकि ललिता इस विषय में चतुर और चालाक है ।

जटिला—ललिता कहाँ गयी ?

विशाखा—पेक्ख । पउमाए समं इदो जेव्व एसा आअच्छदि । (पश्य । पद्मया सममित एवैषा आगच्छति ।)

जटिला—अहं उप्पलिआनिप्पादणस्स गमिस्सम् । (इति निष्क्रान्ता ।) (इयमुत्पलिकानिष्पादनाय गमिष्यामि ।

(प्रविश्य पद्मया सह ।)

ललिता—सहि पउमे, कुदो आअच्छसि । (सखि पद्मे, कुत आगच्छसि ।)

पद्मा—हला, कण्हस्स सआसादो । (सखि, कृष्णस्य सकाशात् ।)

ललिता—कहिं कण्हो । कुत्र कृष्णः ।)

पद्मा—मालतीवाटिआपेरन्ते । (मालतीवाटिकाप्रान्ते ।)

ललिता—किं कुणादि । (किं करोति ।)

पद्मा—महुमङ्गलदुदिओ विहरदि । (मधुमङ्गलद्वितीयो विहरति ।)

ललिता—(सपरिहासस्मितम् ।) हला, किं णाम संपूरिदाहिट्ठासि । (सखि, किं नाम संपूरिताभीष्टासि ।)

पद्मा—(विहस्य ।) मा अण्णधा संभावेहि । मए मालदीसेहरो

विशाखा—देखिए, पद्मा के साथ यह इधर ही आ रही है ।

जटिला—मैं गोबर का पिण्ड बनाने जाऊँगी । (यह कहकर जाती है)

(पद्मा के साथ प्रवेश करके)

ललिता—सखि पद्मे, कहाँ से आ रही हो ?

पद्मा—सखि, कृष्ण के पास से ।

ललिता—कृष्ण, कहाँ हैं ?

पद्मा—मालती के उद्यान के छोर पर ।

ललिता—क्या कर रहे हैं ।

पद्मा—मधुमंगल के साथ घूम रहे हैं

ललिता—(परिहासपूर्वक मुस्कुराकर) सखि, क्या तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो गयी ?

पद्मा—(हँस कर) दूसरी बात मत सोचो । मैंने मालती-फूल की एक माला

एक्को गरिठ्ठअ तस्स उवहारीकिदो। (स्मृतिमभिनीय।) हला कधिदं मे कण्हेण—'पद्मे, तुमं जधा संददं मालं समप्पेसि, एव्वं ललिदा वि से विचित्तधादुलच्छीम्। ता एसा से लेहपत्तिआ तुए तिस्सा हत्थे देआ' त्ति। (इति पत्रिकामर्पयति।) (मा अन्यथा संभावय। मया मालतीचित्वर एको अधिरुह्य तस्योपहारीकृतः। सखि, कथितं मे कृष्णेन—'पद्मे, त्वं यथा संततं मालां समर्पयसि, एवं ललितापि मे विचित्रधातुलक्ष्मीम्। तदेषा मम लेखपत्रिका त्वया तस्या हस्ते देया' इति।)

ललिता—(गृहीत्वा स्वगतम्।) कदा वि कण्हस्स मए धाउराओ ण समप्पिदोत्थि। ता एत्थ अवरेण केणावि रहस्सेण होदव्वम्। (इति प्रकाशं पत्रिकां वाचयति।) (कदापि कृष्णस्य मया धातुरागो न समर्पितोऽस्ति। तदत्रापरेण केनापि रहस्येन भवितव्यम्।)

'त्वया मुक्तगिरिः पाणौ नमातुच्छदपस्थितिः।
निधीयतामधीराक्षि रागिधातुपरिच्छदः॥ २॥

बनाकर उसको उपहार में दिया। हे सखि, कृष्ण ने मुझसे कहा—"पद्मे, जिस प्रकार तुम मुझे सदा माला देती हो, उसी प्रकार ललिता भी चित्रधातु की लक्ष्मी देती है। अतः इस मेरी इस लेखपत्रिका को उसके हाथ में दे देना।"

ललिता—(पत्रिका लेकर मन ही मन) मैंने कभी भी कृष्ण को धातुराग नहीं दिया है, तो यहाँ पर कोई दूसरा ही रहस्य होना चाहिये। (प्रकट रूप से पत्रिका पढ़ती हैं।) 'हे चञ्चलनयने, तुम मेरे हाथ में पर्वत के शिखरवर्ती धातुराग को दो॥ २॥

विमर्श—प्रस्तुत कूट पद्य में पद्य के रहस्य को छिपाने के लिए गूढ़ अर्थ का समावेश किया गया है। पद्य का गूढ़ार्थ इस प्रकार निकलना चाहिए—

'रागिधातुपरिच्छदः' यह अन्तिम चरण आठ अक्षरों का है। उसके दो विशेषण 'मुक्तगिरिः' और 'अतुच्छदपस्थितिः' साभिप्राय हैं। 'मुक्तगिरिः' का आशय है, जिसके द्वारा गिकार और रिकार छोड़ दिये गये हैं। और 'अतुच्छदपस्थिति का आशय है, जिसमें तुकार, छकार, पकार और दकार की स्थिति न हो।

(इति क्षणं विमृश्य स्वगतम्। राधा मम पाणौ निधीयताम्।) एव्वं संकेदेण इमिणा आणत्तम्। (प्रकाशम्।) सहि, तथा करिस्सम्। ता अग्गदो राहिअं आपुच्छिअ साहेहि। (एवं संकेतेनानेनाज्ञतम्। सखि, तथा करिष्यामि। तदग्रतो राधिकामापृच्छय साधय।)

पद्मा—(राधिकामुपेत्य सनर्मस्मितम्।) हला राहे दिट्ठिआ णिव्विवादं जादम्। जधा गोउलिन्दणन्दणेण अम्हाणं अंसुआइं अवहरीआइं तथा अम्हेहिं पि तस्स इदं पीदंसुअम्। (सखि राधे, दिष्ट्या निर्विवादं जातम्। यथा गोकुलेन्द्रनन्दनेनास्माकमंशुकान्यपहृतानि तथास्माभिरपि तस्येदं पीतांशुकम्।)

ललिता—(स्मित्वा।) अइ णिल्लज्जे, कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरिदं पिअसहीए उत्तरीअं पेक्खिअ किंति अणत्थं आसङ्कसि। (अयि निर्लज्जे, कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरितं प्रियसख्या उत्तरीयं प्रेक्ष्य किमित्यनर्थं आशङ्कसे।)

पद्मा—(सस्मितम्।) हला राहे, अणुजाणीहि मम्। तुरिअं सहित्थलीं गदुअ करहस्स लीलं गाअन्तो पिअसहीं चन्दाअलिअं सुहावइ-

---

अर्थात् उपर्युक्त अक्षरों के अभाव में 'नागिभावुपरिच्छदः' पद में केवल ग, धा ये दो अक्षर ही बच जाते हैं। अतः श्लोक के गूढ़ अर्थ द्वारा कृष्ण राधा को भेजने की बात लिख रहे हैं।

(एक क्षण विचार करके मन ही मन। मेरे हाथ में राधा को रखो।) इस प्रकार इस संकेत द्वारा उसने आदेश दिया। (प्रकट) सखि वही करूँगी। अतः सामने राधा को पूछ कर जाओ।

पद्मा—(राधा के समीप जाकर मन्द मुस्कुराहट से) सखि राधे, सौभाग्य से विवाद समाप्त हो गया। (क्योंकि) जिस प्रकार नन्दनन्दन कृष्ण ने हमलोगों के वस्त्रों को चुराया, उसी प्रकार हमलोगों ने भी इसके इस पीताम्बर को।

ललिता—(मुस्कराकर) अरी निर्लज्ज, कुङ्कुम-पङ्क से पीले किए प्रियसखि के इस उत्तरीय वस्त्र (चादर) को देखकर तुम अनर्थ की शंका क्यों करती हो ?

(अर्थात् राधा के शरीर पर कृष्ण का पीताम्बर नहीं है)

पद्मा—(मुस्कराकर) सखि राधे, मुझे जाने की आज्ञा दो। मैं शीघ्र

रसम् । (सखि राधे, अनुज्ञापय माम् । त्वरितं सखीस्थलीं गत्वा कृष्णस्य लीलां गायन्तीं प्रियसखीं चन्द्रावलीं सुखयिष्यामि ।)

विशाखा—(विहस्य ।) पउमे, धण्णाओ तुम्हे । जाहिं अदंसणे वि कण्हस्स विलासगीदीहिं णिअसही चन्दाअली सुहावीअदि । (पद्मे, धन्या यूयम् । याभिरदर्शनेऽपि कृष्णस्य विलासगीतैर्निजसखी चन्द्रावली सुखायते ।)

पद्मा—विसाहे, तुम्हेहिं कीस तथा ण किज्जइ । (विशाखे, युष्माभिः कस्मात्तथा न क्रियते ।)

विशाखा—अइ, कुदो अम्हाणं इदि संभाव्वेअम् । (अयि, कुतोऽस्माकमिति संभाव्यम्)

पद्मा—हला, कधं णत्थि । (सखि, कथं नास्ति ।)

विशाखा—मुद्धे, कण्हस्स णाममेत्ते पत्थुदे सही सहिआ विक्खुब्भदि । (मुग्धे, कृष्णस्य नाममात्रे प्रस्तुते सखी राधिका विक्षुभ्यति ।)

पद्मा—(स्वगतम् ।) सपक्खे पेमुक्करिसो इमाए विक्खाविदो । होदु । (प्रकाशम्) विसाहे, तुम्हे ज्जेव्व सुट्ठु सुहिणीओ । अम्हाणं क्खु कावि दुक्खदसा अणुवट्टदि । (स्वपक्षे प्रेमोत्कर्षोऽनया विख्यापितः ।

सखी चन्द्रावली के गाँव जाकर कृष्ण की लीला का गान करती हुई चन्द्रावली को सुखी बनाऊँगी ।

विशाखा—(हँसकर पद्मे, तुम लोग धन्य हो, जो कृष्ण के दर्शन न मिलने पर भी उसके विलास-गीतों से अपनी सखी चन्द्रावली को सुख पहुँचाती हो ।

पद्मा—तुम लोग वैसा क्यों नहीं करती हो ?

विशाखा—अरी, हम लोगों को ऐसा संभव कहा है ?

पद्मा—सखि, क्यों नहीं है ?

विशाखा—अरी भोली भाली, कृष्ण के नाम मात्र की चर्चा होने पर राधा क्षुब्ध हो जाती है ।

(अर्थात् नाममात्र की चर्चा से ही दुःखी होनेवाली राधा को गीत सुनने की शक्ति कहाँ है ?)

पद्मा—(मन ही मन) इसने अपने पक्ष में प्रेम के उत्कर्ष को प्रकट किया

भवतु । विशाखे, यूयमेव सुष्ठु सुखिन्यः । अस्माकं खलु कापि दुःखदशा अनुवर्तते ।)

ललिता—पउमे, ण क्खु तुम्हाणं किंपि दुक्खं संभाविअदि । (पद्मे, न खलु युष्माकं किमपि दुःखं संभाव्यते ।)

पद्मा—ललिदे, मा एव्वं भण । जं हारगण्ठणकेसपसाहणबिम्बाहररञ्जणपहुदीए चन्दाअलीए णेवच्छाइं सव्वदा कुणन्तीणं अम्हाणं दुक्खजालस्स अन्तो णत्थि । (ललिते, मैवं भण । यद्धारग्रथनकेशप्रसाधनबिम्बाधररञ्जनप्रभृतिभिश्चन्द्रावल्या नेपथ्यानि सर्वदा कुर्वन्तीनामस्माकं दुःखजालस्यान्तो नास्ति ।)

विशाखा—(विहस्य ।) हला पउमे, सच्चं तुम्हाणं बहूइं दुक्खाइं । अम्हाणं उण एक्कं ज्जेव्व । (सखि पद्मे, सत्यं युष्माकं बहूनि दुःखानि । अस्माकं पुनरेकमेव ।)

है । अच्छा । (प्रकट) विशाखे, तुम्हीं लोग खूब सुखी हो । हम लोगों का तो कोई दुःख की दशा पीछा कर रही है !

ललिता—पद्मे, तुम लोगों को किसी प्रकार का भी दुःख नहीं हो सकता ।

पद्मा—ललिते, ऐसा मत कहो । माला गूँथना, केश सँवारना और बिम्बफल के समान अधर को रँगना आदि कार्यों द्वारा सदा चन्द्रावली की वेशरचना करने वाली मेरे दुःखसमूह का अन्त नहीं ।

विमर्श—विशाखा ने कृष्ण के प्रति राधा के प्रेमाधिक्य की व्यञ्जना से दर्शाया था । पद्मा भी व्यञ्जना द्वारा ही कृष्ण के प्रति चन्द्रावली के स्नेहाधिक्य को बता रही है । पद्मा का आशय है कि चन्द्रावली के सौभाग्य से उसे दिन में अनेक बार कृष्ण का संयोग प्राप्त करने के कारण पद्मा को सदा चन्द्रावली का वेश विन्यास करना पड़ता है । राधा का वैसा सौभाग्य नहीं है क्योंकि उसे कृष्ण का संयोग कभी-कभी ही प्राप्त होता है अतः उसकी वेशरचना भी कभी-कभी ही होती होगी ।

विशाखा—(हँसकर) सखि पद्मे, सचमुच तुम लोगों को बहुत दुःख है । हम लोगों को तो एक ही दुःख है ।

पद्मा—हला, किं तम्। (सखि, किं तत्।)

विशाखा—पउमे, जा कावि मच्चदुल्लहा आआसतारा पप्फुरदि, तत्थ जादाहिलासस्स करसवि कालिन्दीकूलणन्दिणो समदस्स गन्धकलहिन्दस्स सव्वदा अब्भत्थणकदत्थणम्। (पद्मे, या कापि मर्त्यदुर्लभाकाशतारा प्रस्फुरति, तत्र जाताभिलाषस्य कस्यापि कालिन्दीकूलनन्दिनः समदस्य गन्धकलभेन्द्रस्य सर्वदाभ्यर्थनकदर्थनम्।)

ललिता—(स्मित्वा।) विसाहे, अण्णं पि एक्कं गरुअं दुक्खं तुए कधं विसुमरिदम्। (विशाखे, अन्यदप्येकं गुरु दुःखं त्वया कथं विस्मृतम्।)

विशाखा—ललिदे, किं तं सुमरावेहि। (ललिते, किं तत्स्मारय।)

ललिता—अइ उज्जुए, राहाए, पाअपल्लअम्मि जाव अराअस्स क्खणे क्खणे विरअणम्। (अयि ऋजुके, राधायाः पादपल्लवे यावकरागस्य क्षणे क्षणे विरचनम्।)

पद्मा—वह क्या ?

विशाखा—पद्मे, मनुष्य के लिए दुर्लभ जो कोई आकाशतारा चमकती है, उसको चाहने वाले तथा यमुना के तट-प्रदेश को आनन्दित करने वाले मस्त हाथी के बच्चे की (हम लोगों के प्रति) प्रार्थना करने का कष्ट।

विमर्श—विशाखा का आशय है—चन्द्रावली का संभोग कृष्ण के लिए आसानी से सुलभ हो सकता है किन्तु राधा का नहीं। राधा के दुर्लभ संभोग के लिए तो कृष्ण को निरन्तर राधा की सखियों की चिरौरी करनी पड़ती है फिर भी उसे कभी-कभी ही राधा का संभोग मिल पाता है। अर्थात् चन्द्रावली की सखियाँ कृष्ण की खुशामद करती रहती हैं जबकि कृष्ण राधा की सखियों का खुशामद करके तब कहीं राधा का संभोग पाते हैं।

ललिता—विशाखे, एक दूसरा बड़ा कष्ट तुम कैसे भूल गयी ?

विशाखा—वह क्या। याद दिलाओ।

ललिता—अरी भोली, राधा के चरण-किसलय में प्रति क्षण महावर का लगाया जाना।

विमर्श—ललिता का आशय है—राधा के चरणों में कृष्ण के बार-बार

विशाखा—(सहासम्।) अलीआसङ्किणि ललिदे, विरमेहि विरमेहि। कण्हस्स उत्तमङ्गे धादुराओ ज्जेव्व रेहदि, ण क्खु जावआणम्। (अलीकाशङ्किनि ललिते, विरम विरम। कृष्णस्योत्तमाङ्गे धातुराग एव राजते, न खलु यावकानाम्।)

राधिका—(सलज्जम्।) हला पउमे, इमाणं दुम्मुहीणं पलावं अणाअण्णिअ तुरिअं पिअसहीं चन्दाअलिं ज्जेव्व जाहि। (सखि पद्मे, आसां दुर्मुखीनां प्रलापमनाकर्ण्य तूर्णं प्रियसखीं चन्द्रावलीमेव याहि।)

पद्मा—जधा आदिसदि पिअसही। (इति निष्क्रान्ता।) (यथादिशति प्रियसखी।)

ललिता—(स्वगतम्।) एण्हिं कण्हस्स आणं करिस्सम्। (प्रकाशम्।) हला राहे, एहि। पुप्फं अवचिणिअ भअवन्तं सूरं पूएम्ह। (इदानीं कृष्णस्याज्ञां करिष्यामि। सखि राधे, एहि पुष्पमवचित्य भगवन्तं सूर्यं पूजयाम।)

राधिका—(स्वगतम्।) दिट्ठिआ हिअअट्ठिदो ज्जेव्व मे कामो इमाए उवणीदो, जं कण्हस्स दंसणं एत्थ संभवे। (प्रकाशम्।) जधा

प्रणाम करने से उसके पैरों का आलता छूट जाता है अतः उसे बार-बार रंगना पड़ता है।

विशाखा—(हँसकर) झूठी शंका करने वाली अरी ललिते, ठहरो, ठहरो, कृष्ण के मस्तक पर धातुराग ही शोभता है, महावर की लाली नहीं। (प्रणाम करते समय राधा के पैरों की लाली कृष्ण के मस्तक में लग जाती थी।)

राधिका—(लज्जापूर्वक) सखि पद्मे, इन कलमुंहियों के व्यर्थ बकवास को न सुनकर तुम शीघ्र ही प्रियसखी चन्द्रावली के पास ही चली जाओ।

पद्मा—प्रियसखी की जो आज्ञा। चली जाती है)

ललिता—(मन ही मन) अब कृष्ण के आदेश का पालन करूँगी। (प्रकट) सखि राधे, आओ, फूल चुनकर भगवान सूर्य की पूजा करें।

राधिका—(मन ही मन) सौभाग्य से इसने मेरे हृदय की अभिलाषा को ही उपस्थित किया है, जिससे यहाँ कृष्ण का दर्शन हो सके। (प्रकट)

हि रोअदि पिअसहीए। (इति निष्क्रान्ता) (दिष्टया हृदयस्थित एव मम कामोऽनयोपनीतः, यत्कृष्णस्य दर्शनमत्र संभवेत् । यथा ह्यभिरोचते प्रियसख्यै ।)

(ततः प्रविशति मधुमङ्गलेनोपास्यमानः कृष्णः ।)

कृष्णः—

तव स्तबकवल्लरीचटुलगन्धबन्दीकृत-
भ्रमद्भ्रमरझंकृतिप्लुतमुदग्रगुञ्जार्बुदम् ।
शरत्कृशकलिन्दजापुलिनवृन्दसंवर्धितं
परिस्फुरति चन्द्रकस्थगितमद्य वृन्दावनम् ॥ ३ ॥

(पुनर्निरूप्य । सानन्दम् ।)

शरदि मुखरिताशास्तारनादावलीभि-
र्वलदविचलनेत्राः पश्य वृन्दावनेऽद्य ।
विदधति रणरङ्गं वासिता सङ्गहेतोः
सरभसगुरुशृङ्गैः सङ्गवे पुंगवेन्द्राः ॥ ४ ॥

मधुमङ्गलः—(सर्वतो विलोक्य ।)

प्रियसखी की जैसी इच्छा । (यह कह कर चली जाती है ।)

(उसके बाद मधुमङ्गल से सेव्यमान कृष्ण प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—गुच्छों की मंजरियों के उत्तम सुगन्ध से बन्दी बनाए गये भ्रमणशील भौंरों के गुञ्जन से व्याप्त, करोड़ों श्रेष्ठ गुञ्जापुष्पों (घुँघची नामक पुष्पविशेष) से युक्त, शरत्काल में पतली पड़ गयी यमुना के तट-समूह से संवर्धित और मयूरपिच्छों (मोरपंखों) से आवृत यह वृन्दावन आज सुशोभित हो रहा है ॥३॥

(पुनः देखकर आनन्दपूर्वक)

देखो, अपनी ऊँची आवाजों से शरद ऋतु में दिशाओं को मुखरित करने वाले तथा चंचल नेत्रों से युक्त साँड़ आज वृन्दावन में ऋतुमती गायों के साथ सहवास के लिए बड़े-बड़े प्रबल सींगों से रणरंग (युद्धक्षेत्र) बना रहे हैं ॥४॥

मधुमंगल—(चारों ओर देखकर) हे मुकुन्द, तुम्हारे सम्पर्क से वृन्दावन

तुह संगमेण णूणं मुउन्द वुन्दाडई घणच्छाआ ।
उअ दम्भेण कुरण्टअभरस्स पीदम्बरं धरइ ॥ ५ ॥
(तव संगमेन नूनं मुकुन्द वृन्दाटवी घनच्छाया ।
उत दम्भेन कुरण्टकभरस्य पीताम्बरं धरति ॥)

कृष्णः—(स्वगतम् ।) किमद्य निष्टङ्कितसंकेतलेखार्थया पूर्णमनोरथीकरिष्येऽहं ललितया । हन्त, शारदमाधुरीसंदोहसंदानितापि वृन्दाटवीकक्षा खञ्जनाक्षी विप्रकर्षादानन्दबिन्दुमपि न मे संदधाति । तद्वेणुसंकेतं संचारयामि । (इति तथा कुर्वन् ।) ।

दिव्यो रथाङ्गि समयः सखि संगमस्य
जज्ञे वराङ्गि तरसा कुरु पक्षपातम् ।
अध्वानमर्धनयनेन विलोकमानः
शोकादयं सहचरस्तव रौरवीति ॥ ६ ॥

निश्चय ही मेघकान्ति सी लगती है । अथवा कटसरैया के व्याज से पीताम्बर को धारण करती है ॥ ५ ॥

विमर्श—सघन छायायुक्त वृन्दावन की शोभा श्यामवर्ण की है । उसमें पीले पीले कटसरैया के पुष्प हैं । श्रीकृष्ण श्यामवर्ण हैं और पीताम्बर को धारण किए हैं अतः कृष्ण के संयोग से वृन्दावन भी कृष्ण के स्वरूप की समता पा गया है ।

कृष्ण—(अपने आप) क्या आज संकेतात्मक लेख के द्वारा ललिता मेरी मनःकामना पूर्ण करेगी ? हाय, शरद् के माधुर्यप्रवाह से युक्त भी वृन्दाटवीकक्षा (लताकुञ्ज) खञ्जननयना राधा के वियोग से मुझे लेशमात्र भी आनन्द नहीं दे रही है । तो मुरली बजाकर संकेत करता हूँ (मुरली द्वारा राधा को आने का संकेत करता हूँ) (यह कहकर मुरली टेरते हैं) हे चकवी, संयोग का सुन्दर समय उपस्थित हुआ है, हे शोभनाङ्गि, शीघ्र ही उड़कर आओ । अधखुले नेत्र से राह देखता हुआ तुम्हारा यह सहचर चकवा शोक से क्रन्दन कर रहा है ॥ ६ ॥

मधुमङ्गलः—भो वअस्स, किं पदं अपूव्वं वादिदम्। (भो वयस्य, किमेतदपूर्वं वादितम्।)

कृष्णः—सखे, कुरङ्गीलोकनार्थं ममायमुद्यमः।

मधुमङ्गलः—सच्चं कधिदम्। किं तु एक्कं अक्खरं अण्णधा किअम्। (सत्यं कथितम्। किं त्वेकमक्षरमन्यथा कृतम्।)

कृष्णः—सखे, साधु विदितं कुरङ्गीलोचनार्थमेव।

(नेपथ्ये।)

पिबन्तीनां वंशीरवमिह गवां कर्णचुलुकैः
पयःपूरा दूराद्दिशि दिशि तथा शुश्रुवुरमी।
अकाले पुष्पद्भिस्तरुभिरभितः शोभितमिदं
यथा वृन्दारण्यं दधिमयनदीमातृकमभूत्॥ ७॥

विमर्श—राधा पक्ष में—हे राधे, मिलन का अनुपम अवसर आ गया है। मैं अपलक नयनों से तुम्हारी राह देख रहा हूँ। तुम शीघ्र ही मेरे पास आ जाओ।

मधुमंगल—मित्र तुमने कितना अपूर्व बजाया है।

कृष्ण—मित्र, हरिणी को देखने के लिए मैंने यह उपाय किया है।

मधुमंगल—मित्र, सच कहते हो, किन्तु एक अक्षर को बदल दिये हो। (कुरङ्गीलोकनार्थं की जगह (कुरङ्गीलोचनार्थं कहना चाहिए था।)

कृष्ण—मित्र, तुमने ठीक समझा है, कुरङ्गीलोचना के लिए ही। (मुरली बजाने का उद्योग किया है।)

(नेपथ्य मे)

यहाँ कानरूपी अञ्जलिपुटों से मुरली की ध्वनि का पान करती हुई गौओं के दूध की धारा ने दूर से प्रत्येक दिशा की इस प्रकार सेवा की कि असमय में खिलते हुए फूलों वाले वृक्षों से चारों तरफ सुशोभित होकर यह वृन्दावन दधिसिञ्चित प्रदेश बन गया है॥ ७॥

विमर्श—मुरली की तान सुनकर गौओं की दुग्धधारा तथा वृक्षों के

कृष्णः—सखे, दक्षिणतः पश्य पश्य।

तुङ्गस्ताम्रोरुशृङ्गः स्फुरदरुणखुरो रम्यपिङ्गेक्षणश्रीः
कण्ठव्यालम्बिघण्टो धरणिविलुठितोच्चण्डलाङ्गूलदण्डः।
सोऽयं कैलासपाण्डुद्युतिरतुलककुन्मण्डलो नैचिकीनां
चक्रे भाति प्रियो मे परिमलतुलितोत्फुल्लपद्मः ककुद्मी ॥८॥

(ततः प्रविशति सखीभ्यामनुगम्यमाना राधा।)

राधिका—(स्वगतम्।) जदो दिसादो वेणुसद्दो आअदो, सा दिसा मोहिदाए मए ण संभाविदा। (यतो दिशातो वेणुशब्द आयातः, सा दिशा मोहितया मया न संभाविता।)

ललिता—(सोत्प्रासस्मितम्।) हला राहिए, कीस अकण्डे हरिणकण्णी तुमं जादासि। (हलि राधे, कस्मादकाण्डे हरिणकर्णी त्वं जातासि।)

फूल एक साथ उत्पन्न हुए। उसके बाद फूलों के खट्टे रस के सम्पर्क से दूब जमकर दही बन गया। अतः वृन्दावन दधि से सींचा जाने वाला प्रदेश बन गया। नदी के जल से सींच कर खेती करने योग्य देशविशेष को नदीमातृक प्रदेश कहा जाता है। जहाँ सिंचाई का साधन नहीं होता और खेती केवल वर्षा के जल पर निर्भर करती है ऐसे देश-विशेष को देवमातृक प्रदेश कहा जाता है।

कृष्ण—मित्र, दाहिनी ओर देखो, देखो।

जिसके ताम्रवर्ण के ऊँचे विशाल सींग हैं, जिसके खुर चमकीले हैं, जो सुन्दर पिङ्गवर्ण की आँखों से सुशोभित है। जिसके गले में घण्टा लटक रहा है। जिसकी लम्बी पूँछ धरती पर लोट रही है। जिसकी कान्ति कैलास पर्वत के समान स्वच्छ है तथा जो विशाल कूबड़ मण्डल से युक्त है, वह पद्मगन्ध नामक मेरा यह प्रिय साँड़ अच्छी गायों के समूह में सुशोभित हो रहा है ॥ ८ ॥

(उसके बाद दो सखियों के साथ राधा प्रवेश करती है)

राधिका—(मन ही मन) जिस दिशा से मुरली की आवाज आयी, उस दिशा का मुझे मोहित हो जाने के कारण पता न लगा।

ललिता—(उपहासपूर्वक हँसकर) सखी राधे, अवसर के न आने पर भी तुम चौकन्ना क्यों हो गयी हो?

राधिका—ललिदे, किंति अप्पणो धम्मं परस्स अप्पेसि। सच्चं तुमं ज्जेव्व हरिणी, जं कलसद्देण हरिज्जन्ती दीससि। (ललिते, किमित्यात्मनो धर्मं परस्यार्पयसि। सत्यं त्वमेव हरिणी, यत्कलशब्देन ह्रियमाणा दृश्यसे।)

ललिता—राहे, तुमं क्खु हरिणी, जं रङ्गिणी णाम हरिणी तुम्ह सही। (राधे, त्वं खलु हरिणी, यद्रङ्गिणी नाम हरिणी तव सखी।)

राधिका—(स्वगतम्।) दिट्ठिआ एसा कावि सोरब्भधारावाडिआ ञ्दोदूदोव्व मं आअट्ठदि। (इति सत्वरं पुरः प्रयाति।) (दिष्ट्या एषा कापि सौरभ्यधारा वाटिका······मामाकर्षति।)

विशाखा—(स्मित्वा।) हला राहि, कीस तुमं भङ्गीव्व गन्धं सप्पसि (सखि राधे, कस्मात्त्वं भृङ्गीव गन्धं सर्पसि।)

राधिका—विसाहे अग्गदो फुल्लाइं कुसुमाइं दीसन्ति। ता एदाइं घेत्तूण तम्मित्तं पूअइस्सम्। (विशाखे, अग्रतो फुल्लानि कुसुमानि दृश्यन्ते। तदेतानि गृहीत्वा तन्मित्रं पूजयिष्ये।)

ललिता—सच्चं मित्तस्स अणुराअं तुमं तरलेदि। सो दाव गहण-

राधिका—ललिते, अपने धर्म को दूसरे में क्यों आरोपित करती हो! तुम्हीं सचमुच हरिणी हो क्योंकि सुन्दर शब्द से हरण की जाने वाली दीख रही हो। (मुरली की मधुरतान पर लुट रही हो)

ललिता—राधे, तुम हरिणी हो क्योंकि रङ्गिगी नाम की हरिणी तुम्हारी सखी है।

राधिका—(मन ही मन) सौभाग्य से यह कोई सुगन्ध की धारा उद्यान में मुझे आकृष्ट कर रही है। (शीघ्रता से आगे बढ़ती है)

विशाखा—(मुस्कराकर) सखि राधे, भँवरी के समान तुम गन्ध की खोज क्यों कर रही हो?

राधिका—विशाखे, सामने खिले हुए फूल दिखाई पड़ रहे हैं, तो इन्हें लेकर उस मित्र-(सूर्य) की पूजा करूँगी।

ललिता—सचमुच मित्र (प्रिय कृष्ण) का प्रेम तुम्हें चंचल कर रहा

चरस्स ज्जेव ण क्खु गअणचरस्स । (अयं मित्रस्यानुरागस्त्वां तरलयति ; स तावद् गहनचरस्यैव न खलु गगनचरस्य ।)

राधिका—(सप्रणयरोषम् ।) अइ अदक्खिणे, कमलवन्धुं कधेमि । (अय्यदक्षिणे, कमलवन्धुं कथयामि ।)

ललिता—सहि, कीस आआरं संगोवेसि । (सखि, कस्मादाकारं संगोपयसि ।)

विशाखा—ललिदे, सवत्तीभाएण ईसा च्चेअ संगोवेदि । ण उण पिअसही । (ललिते, सपत्नीभावेनेर्ष्यैव संगोपयति । न पुनः प्रियसखी ।)

राधिका—(सभ्रूभङ्गम् ।) अइ वामे, अत्तणो हिअअट्ठिदं अत्थं परमुण्डे कीस पाठेसि । ता तुवरेहि । जाणादि दूरे ज्जेव्व सो तुम्हाणं बिम्बाहरकण्डूखण्डणो । (अयि वामे, आत्मनो हृदयस्थितमर्थं परमुण्डे कस्मात्पातयसि । तत्त्वरय । जानाति दूर एव स युष्माकं बिम्बाधरकण्डूखण्डनः ।)

ललिता—राहे, आकोमारं अम्हाणं अक्खुडिदं कुलङ्गणाव्वदं बुन्दावणलदाओ ज्जेव्व जाणेन्ति । ता अत्तणो मुहेण किं कधइस्सम्ह । (राधे, आकौमारमस्माकमस्खलितं कुलाङ्गनाव्रतं वृन्दावनलता एव जानन्ति ।

है। और वह तो गहन-जंगल में विचरण करने वाले का ही है न कि आकाशचारी का। (अर्थात् तुम्हें चंचल करने वाला प्रेम विपिनविहारी कृष्ण का है, आकाशचारी सूर्य का नहीं।)

राधिका—(प्रेमपूर्ण क्रोध से) अरी निष्ठुरे, कमलबन्धु सूर्य के विषय में कहती हूँ।

ललिता—सखि, आकार को क्यों छिपा रही हो ? (अर्थात् कमलाबन्धु-विष्णु ऐसा कहो)

विशाखा—ललिते, सौत भाव के कारण ईर्ष्या ही छिपाती है, प्यारी सखी राधा नहीं।

राधिका—(भौंहे टेढ़ी करके) अयि वामे, अपने हृदय में विद्यमान अर्थ को दूसरे के मत्थे क्यों मढ़ती हो। तो जल्दी करो। तुम लोगों के बिम्बाधर की खुजलाहट को हटानेवाला दूर से ही जानता है।

ललिता—राधे, कुमारी अवस्था से ही हम लोगों के दृढ़ पातिव्रत धर्म

तदात्मनो मुखेन किं कथयिष्यामः ।)

राधिका—(विहस्य ।) अइ पइव्वदे, जाणेन्ति जाणेन्ति । तदो ज्जेव्व कप्पे तुह भुअवल्लिणो अङ्के संकमिदं दिठ्ठं मए मअरकुण्डलल्लञ्छणं तथा ज्जेव्व विसाहाए तत्थ तुलिओवरि क्खुडिदं सिहण्डकिरीडम् । (अयि पतिव्रते, जानन्ति जानन्ति । तत एव कल्पे तव भुजवल्लया अङ्के संक्रान्तं दृष्टं मया मकरकुण्डललाञ्छनम् । तथैव विशाखया तत्र तूलिकोपरि स्खलितं शिखण्डकिरीटम् ।)

ललिता—(स्मित्वा ।) परपरिवादिणि, अवेहि अवेहि । (परपरिवादिनि, अपेहि अपेहि ।)

विशाखा—राहे, कित्तियं झम्पिस्ससि । ण क्खु चन्दालोए चन्दकन्तसिला अप्पसिण्णा होदुं पहुवदि । (राधे, कियदाच्छादयसि । न खलु चन्द्रालोके चन्द्रकान्तशिला अप्रस्विन्ना भवितुं प्रभवति ।)

राधिका—(पुरो दृष्ट्वा सचमत्कारम् ।) ललिदे, तूण्णं अणुजाणेहि । पलाइस्सम् (इत्युत्कम्पते ।) (ललिते, तूर्णमनुज्ञापय । पलायिष्यामि ।)

ललिता—(सशङ्कम्)—राधे कोस भाएसि । (राधे, कस्माद् बिभेषि ।)

राधिका—(साभ्यसूयम्) अइ वङ्के, अलं इमिणा उज्जुअत्तणेण ।

का वृन्दावन की लताएँ ही जानती हैं । इसलिए मुँह से क्या कहूँ ?

राधिका—(हँसकर) अरी पतिव्रते, जानती हैं, जानती हैं । इसीलिए बिछावन पर तुम्हारी भुजलता के अङ्क में मैंने मकर कुण्डल के चिह्न को लगा देखा है । उसी प्रकार विशाखा के द्वारा गद्दे पर गिराये गये मोरमुकुट को देखा है ।

ललिता—दूसरे को कलंक देने वाली, दूर हटो, दूर हटो ।

विशाखा—राधे, कितना छिपाती हो ? चन्द्रमा के प्रकाश में चन्द्रकान्त-मणि नहीं पिघलेगा, ऐसी बात नहीं है ।

राधिका—(सामने देखकर चमत्कारपूर्वक) ललिते, शीघ्र अनुमति दो, मैं भागूँगी । यह कह कर काँपने लगती है)

ललिता—(शङ्कापूर्वक) राधे, क्यों डरती हो ?

राधिका—(ईर्ष्यापूर्वक) अरी कुटिले, अपना भोलापन रहने दो ।

णूणं इमस्स लम्पडस्स हत्थे पक्खेदुं मं दूरे आणीदासि। (अयि वक्रे, अलमनेन ऋजुकत्वेन। नूनमस्य लम्पटस्य हस्ते प्रक्षेप्तुं मां दूरे आनीतासि।)

ललिता—(निपुणं निभाल्य स्वगतम्।) णूणं दूरदो विलोइज्जन्तं तमालं ज्जेव्व इअं कण्हं मण्णेदि। (प्रकाशम्।) हुं, दाणिं कधं पला-इस्ससि। लद्धो मए ओसरो। (इति राधामाकर्षति।) (नूनं दूरतो विलोक्य-मानं तमालमेवेयं कृष्णं मन्यते। हुं, इदानीं कथं पलायिष्यसि। लब्धो मयावसरः।)

राधिका—(सकातर्यम्।) सहि विसाहे, परित्ताहि परित्ताहि। सरणाअदम्हि। (सखि विशाखे, परित्रायस्व परित्रायस्व। शरणागतास्मि।)

विशाखा—अइ पेम्मुम्भमिदे, कधं तिल्लोकं ज्जेव्व दे कण्हएदि। पेक्ख एसो पलासी, ण क्खु तुज्झ विलासी। (अयि प्रेमोद्भ्रान्ते, कथं त्रैलोक्यमेव ते कृष्णायते। पश्यैष पलाशी, न खलु तव विलासी।)

कृष्णः—कथं नेदानीमपि प्रत्यासन्ना तन्वङ्गी। तन्मुरलीमीरयामि। (इति तथा कुर्वन्।)

अयि सुधाकरमण्डलि मण्डय त्वमटवीं मृदुपादविसर्पणैः।

निश्चय ही इस धूर्त के हाथ में डालने लिए मुझे दूर ले आयी हो।

ललिता—(ठीक से देखकर मन ही मन) निश्चय ही दूर से दिखायी देने वाले तमाल को ही यह कृष्ण समझ रही है। (प्रकट) हूँ, अभी कैसे भागोगी? मुझे अवसर मिला है। (यह कह कर राधा को खींचती है।)

राधिका—(दीनतापूर्वक) सखि विशाखे, बचाओ, बचाओ। मैं तुम्हारी शरण में हूँ।

विशाखा—अरी प्रेम में पगली, क्या तुमको समस्त त्रिभुवन ही कृष्ण सा लग रहा है? देखो यह पलाशी (ढाक का पेड़) है, तुम्हारा विलासी (कृष्ण) नहीं।

कृष्ण—कृशाङ्गी राधा अब तक भी क्यों नहीं आयी है? तो मुरली टेरता हूँ। (मुरली बजाते हुए)

हे चन्द्रमंडलि पक्ष में हे राधे, अपने कोमल किरणों के प्रसारों से, पक्ष में—

उदयशैलतटीनिहितेक्षणो ननु चकोरयुवा परितप्यते ॥६॥

विशाखा—(स्वयं धैर्यमवष्टभ्य ।) हला राहे, कीस तुमं भमन्ती कलम्बं ओलम्बेसि । (सखि राधे, कस्मात्त्वं भ्रमन्ती कदम्बमवलम्बसे ।)

ललिता—सहि वंसिए, वारंवारं तुमं वन्देमि । जं उग्घाडिदरहस्सा तुए राही किदा । (सखि वंशिके, वारंवारं त्वां वन्दयामि । यदुद्घाटितरहस्या त्वया राधा कृता ।)

(राधिका सलज्जमवहित्थां नाटयति ।)

ललिता—(संस्कृतेन ।)

विशद्भिः कर्णान्ते तव विसृमरैरद्य मुरली-
कलैरूरुस्तम्भो गुरुरजनि रम्भोरु तरसा ।

कोमल चरणों के सञ्चारों से अटवी–वृन्दावन को सुशोभित करो । उदयाचल पर दृष्टि लगाये चकोर युवा दुःखी हो रहा है । (हे राधे, तुम शीघ्र आओ । कृष्ण तुम्हारी प्रतीक्षा में व्याकुल हो रहा है ।) ॥ ६ ॥

विमर्श—इस पद्य में समासोक्ति अलंकार है । यहां पर प्रस्तुत चन्द्रिका-चकोर-वृत्तान्त द्वारा अप्रस्तुत राधा कृष्ण वृत्तान्त की व्यञ्जना करायी गयी है । पद्य में 'सुधाकरमण्डलि' और मृदुपादविसर्पणैः' ये पद श्लिष्ट हैं जिनसे अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति होती है ।

विशाखा—(स्वयं धीरज धर कर) सखि राधे, घूमती हुई तुम कदम्ब का सहारा क्यों ले रही हो ।

ललिता—सखि मुरली, मैं बार-बार तुम्हारी वन्दना करती हूँ क्योंकि तुमने राधा के गुप्त भेद को प्रकट कर दिया है । (राधा लाज से आन्तरिक भावों को छिपाने का अभिनय करती है)

ललिता—(संस्कृत में हे रम्भोरु, तुम्हारे कानों में धीरे-धीरे प्रवेश करने वाली मुरली की मधुर तानों ने तुम्हारे जाँघरूपी खंभे को सहसा भारी बना दिया है । (अर्थात् मुरली की तान सुनकर तुम स्थिर हो गयी हो ।) नेत्रों की जलवर्षा के

विलुप्ताभूद् दृष्टिर्नयनजलवृष्टिव्यतिकरैः
प्रणीताभिर्यत्नात्तदलमवहित्थालहरिभिः ॥ १० ॥

विशाखा—ललिदे, को दाणिं अवहित्थाए ओसरो। (इति संस्कृतेन।) (ललिते, क इदानीमवहित्थाया अवसरः।)

त्रपाभिचरणक्रमे परमसिद्धिराथर्वणी
स्मरानलसमिन्धने सपदि सामिधेनीध्वनिः।
तथात्मपरमात्मनोरुपनिषन्मयी संगमे
विलासमुरलीभवा विरुतिरद्य वैरायते ॥ ११ ॥

सम्पर्क द्वारा विशेष प्रयत्न से बनायी गयी पर्याप्त भावगोपन की लहरियों से आँख शून्य हो गयी है। (अर्थात् मुरली की आवाज से मुग्ध और निश्चेष्ट मुझको कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता।) ॥ १० ॥

विशाखा—इस समय भाव गोपन का कौन अवसर है? (संस्कृत में) लज्जा की अभिचार-क्रिया में अथर्ववेद की परम सिद्धि, कामदेव की आग को जगाने में सामधेनी मंत्र-ध्वनि और जीवात्मा और परमात्मा को मिलाने में उपनिषद्मयी मुरली से उत्पन्न आवाज आज शत्रुता कर रही है ॥ ११ ॥

विमर्श—जिस प्रकार अभिचार-पशुबलि-प्रक्रिया की सिद्धि में अथर्ववेद, आग को प्रज्वलित करने में सामधेनीमंत्रपाठ और जीवात्मा-परमात्मा की एकता सिद्ध करने में 'तत्त्वमसि' आदि उपनिषद् वाक्य हैं, उसी प्रकार लज्जा को दूर करने, कामदेव को जगाने और गोप-गोपिकाओं को मिलाने में मुरली की तान सहायक है।

इस पद्य में मुरलीभवा विरुतिः उपमेय है। आथर्वणी सिद्धि, सामधेनी ध्वनि और उपनिषद ये उपमान हैं। इन तीनों उपमानों का उपमेय विरुति पर आरोप किया गया है। अतः यहाँ पर मालारूपक अलंकार है। यज्ञ में पशुबलि-क्रिया का निर्देश अथर्ववेद में किया गया है।

राधिका—(सक्षोभम् ।) सहि, सच्चं कहेसि । अम्हाणं वइरिणी संवुत्ता दारुणो वंसिआ । ता उवालइस्सम् । (इति संस्कृतेन ।) (सखि, सत्यं कथयसि । अस्माकं वैरिणी संवृत्ता दारुणा वंशिका । तदुपालप्स्यामि ।)

सूतिस्ते धनुषश्च वंशवरतो वन्दे तयोरन्तिमं
विद्धो येन जनस्तनुं विहरयन्नान्तश्चिरं ताम्यति ।
विद्धानां हृदि मारपत्रिविषमैर्ध्वानेषुभिर्नस्त्वया
क्रूरे वंशि न जीवनं न च मृतिर्घोराविरासीद्दशा ॥१२॥

कृष्णः—(पुरो विलोक्य सानन्दम् ।)

राधिका—(दुःखपूर्वक) सखि, ठीक कहती हो । यह कठोर वंशी हम लोगों का शत्रु बन गयी है । अतः इसे उलाहना दूँगी । (संस्कृत में)

अरी निष्ठुर मुरली, तुम्हारी तथा धनुष की उत्पत्ति श्रेष्ठ बाँस से हुई है। मैं उन दोनों में अन्तिम अर्थात् धनुष को प्रणाम करती हूँ क्योंकि उससे विद्ध होने पर मनुष्य अपने शरीर से मुक्त होकर बहुत दिनों तक आन्तरिक वेदना से सन्तप्त नहीं होता । किन्तु तुम्हारे द्वारा कामदेव के बाणों से भी अधिक तीखे ध्वनिरूपी बाणों से हृदय में आहत होकर हम लोग न तो जीते ही हैं और न मरते ही हैं । हम लोगों की भयंकर दशा दिख रही है । अर्थात् मुरली की तान हम लोगों को आन्तरिक वेदना दे रही है ॥ १२ ॥

विमर्श—धनुष की चोट खाकर मनुष्य का प्राणान्त हो जाता है । उसे अधिक समय तक आघातजन्य वेदना का अनुभव नहीं करना पड़ता है किन्तु मुरली-तान हृदय में चुभ कर शूल की भाँति असह्य पीड़ा देती है । इस आघात में प्राणान्त तो नहीं होता किन्तु वेदना असह्य होती है । वेदना की असह्यता के कारण धनुषाघात की अपेक्षा तान की मर्मस्पर्शी चोट कष्टकर है ।

कृष्ण—(सामने देखकर प्रसन्नतापूर्वक) यह हरिणी सामने घूम रही है

भविता सविधेऽत्र राधिका यदियं रिङ्गति रङ्गिणी पुरः ।
मृगलाञ्छनलेखयेव या मृगमूर्तिर्न तथा वियुज्यते ॥१३॥

(पुनर्निरूप्य ।) सखे, ज्ञातं ज्ञातम् । नासौ राधिकान्यङ्कुः । यदयं निरङ्को नेदीयानिन्दुः । (इति विस्मयमभिनीय ।)

अङ्कात्परित्यज्य पुरः कुरङ्गं शङ्के सुधांशुर्भुवमाससाद ।

(पुनर्निभाल्य ।)

आं ज्ञातमुत्फुल्लविलासवृन्दैरानन्दि राधावदनं चकास्ति ॥१४॥

(इत्यग्रे सरति ।)

मधुमङ्गलः—(सपरिहासम् ।) भो वअस्स, मा धाव । लहु जाहि । अहवा तुमं किंति दूसिज्जसि, जं धुत्तकिसोरीहिं दुट्ठमन्तेण उम्मादिदोसि । ता इमस्सि जोग्गे ओसरे तुमं णिवारिअ सिणेहस्स णिक्किदं करिस्सम् । (इति पाणिमादधाति ।) (भो वयस्य, मा धाव । लघु याहि । अथवा त्वं किमिति दूषिष्यसि, यो धूर्तकिशोरीभिर्दुष्टमन्त्रेणोन्मादितोऽसि ।

अतः राधा कहीं निकट ही होगी । क्योंकि जिस प्रकार मृगाकृति चन्द्रकला से अलग नहीं रह सकती उसी प्रकार यह हरिणी भी उस राधा से दूर नहीं रह सकती ॥ १३ ॥

(पुनः देखकर) सखे, समझ गया, समझ गया । यह राधिका की हरिणी नहीं है । क्योंकि कलंकरहित यह चन्द्रमा नजदीक में है । (यह कहकर अचरज प्रकट करते हुए)

गोद से हरिण को सामने छोड़कर मानो चन्द्रमा पृथिवी पर उतर आया है । (पुनः देखकर) अच्छा, मालूम हुआ । अत्यन्त स्पष्ट प्रतीयमान विलास समूहों से आनन्दित करने वाला राधा का मुख शोभित हो रहा है ॥ १४ ॥

(आगे बढ़ते हैं)

मधुमंगल—(परिहासपूर्वक) मित्र, दौड़ो नहीं, धीरे से जाओ । अथवा तुम क्या दोष दे सकोगे, जो धूर्त किशोरियों के गलत बहकावे में आकर उन्मत्त हो गये हो । अतः इस उपयुक्त अवसर पर तुम्हें रोक कर मैं प्रेम का मूल्य चुका-

तदस्मिन्योग्येऽवसरे त्वां निवार्य स्नेहस्य निष्कृतं करिष्यामि।)

कृष्णः—सखे, साधु चेष्टसे यदद्य राधिकोपसर्पणे कम्पेन कृतविघ्नस्य मे दत्तहस्तावलम्बोऽसि। (इति परिक्रम्य।)

इयमतितृषितं वरानुरागोज्ज्वलसुमनाः कमनीयपत्रलेखा।
मम वरतनुराचकर्ष चित्तं मधुपमशोकलतेव पुष्पिताग्रा ॥१५॥

राधिका—(कृष्णमपाङ्गेन विलोक्य। स्वगतम्। संस्कृतेन।)

नवमनसिजलीलाभ्रान्तनेत्रान्तभाजः
स्फुटकिसलयभङ्गीसङ्गिकर्णाञ्चलस्य।
मिलितमृदुलमौलेर्मालया मालतीनां
मदयति मम मेधां माधुरी माधवस्य ॥ १६ ॥

विशाखा—(विहस्य। संस्कृतेन।)

ऊँगा। (यह कह कर हाथ पकड़ता है)

कृष्ण—मित्र, ठीक करते हो क्योंकि आज राधा के समीप जाने में कम्पन से उत्पन्न विघ्न से युक्त मुझको हाथ का सहारा दिए हो। (यह कह कर घूमकर) श्रेष्ठ प्रेम के कारण सुन्दर मन वाली इस सुन्दरी ने मेरे अत्यन्त प्यासे चित्त को उसी प्रकार अपनी ओर खींच लिया है जिस प्रकार लाल-लाल सुन्दर फूलों, तथा पत्तों की पंक्ति से युक्त अशोक लता भ्रमर को खींच लेती है। अर्थात् जिस प्रकार अशोक लता भ्रमर को आकृष्ट करती है, उसी प्रकार राधा ने मेरे मन को आकृष्ट कर लिया है॥ १५॥

राधिका—(कृष्ण को कटाक्ष से देख कर। मन ही मन। (संस्कृत में) नवीन कामदेव की लीला से भ्रान्त नयन प्रान्तवाले, विकसित किसलय की भंगिमा में आसक्त कर्णदेश वाले और मालती-पुष्पों की माला से विभूषित मस्तक वाले कृष्ण की माधुरी मेरी धारणाबुद्धि को मदमस्त बना रही है। (बुद्धि की मदमस्ती में कृष्ण की शोभा को भूलना असंभव है॥ १६॥

विशाखा—(हँसकर। संस्कृत में)

वशीचक्रे कृष्णस्तव परिमलैरेव वलिभि-
र्विलासानां वृन्दं कथमिव मुधा कन्दलयसि ।
जये पाणौ दत्ते रणपटुभिरग्रेसरभटैः
स्वयं को विक्रान्तिं पुनरिह जिगीषुः प्रणयति ॥१७॥

राधिका—अइ दुम्मुहि, पत्तिअम्मि संकडे मं आरोविअ अज्जवि ण विस्सन्तासि । ता णिक्करहिअअं तुमं उज्झिअ अहं सिणिद्धपिअसहीं ललिदं सरणं पविसामि । (इति तथा कृत्वा संस्कृतेन ।) (अयि दुर्मुखि, संप्राप्ते संकटे मामारोप्याद्यापि न विश्रान्तासि । तन्निष्कृपहृदयां त्वामीज्झित्वा हं स्निग्धप्रियसखीं ललितां शरणं प्रविशामि ।)

अत्रायान्तं चलमपि हरिं लोकयन्ती बलिष्ठां
त्वामालम्ब्य प्रियसखि घने नास्मि कुञ्जे निलीना ।

ललिता—(सनर्मस्मितम् । संस्कृतेन ।)

अस्मान्मुग्धे हृदयनिहितादद्य पीताम्बराच्चे

तुम्हारे प्रकट गुणों वलि युक्त सुगन्धों से ही कृष्ण वश में कर लिए गये हैं । तुम अन्य विलासों के समूह को व्यर्थ क्यों प्रकट कर रही हो ? युद्ध-कुशल सेनापतियों द्वारा हाथ में विजय प्राप्त कर लेने पर कौन विजयाभिलाषी स्वयं संग्राम करने में स्नेह दिखाता है ? अर्थात् प्रणय-युद्ध में कृष्ण तुम्हारे एक ही विलास-विशेष से पराजित होकर वशीभूत हैं फिर दूसरे विलासों से उन्हें जीतने की आवश्यकता नहीं है । ॥ १७ ॥

राधिका—अरी मुँहफट, आए हुए संकट में मुझे फँसा कर तुम्हें अब भी चैन नहीं है । तो कठोर हृदय वाली तुमको छोड़कर मैं दयालु प्रियसखी ललिता की शरण में जाती हूँ । (ललिता के पास जाकर । संस्कृत में)

प्रिय सखि, यहाँ आते हुए चपल भी कृष्ण को देखती हुई मैं बलवती तुम्हारा सहारा पाकर सघन कुञ्ज में छिपी नहीं हूँ ॥ १८ ॥ पूर्वार्द्ध ।

ललिता—(मधुर हँसी के साथ । संस्कृत में) मुग्धे, हृदय पर विद्यमान इस

शक्तो नान्यः कुचपरिचये मत्पुरो मा व्यथिष्ठाः ॥१८॥

कृष्णः—(सानन्दम् ।) कल्याणि, काले लब्धासि । (इति राधामनुसर्पति ।)

ललिता—(साटोपं परिक्रम्य कृष्णं वारयन्ती) छइल्ल, ण हु एसा तुम्ह परिहासजोग्गा अम्हाणं पिअसही । ता अवेहि । (विदग्ध, न खल्वेषा तव परिहासयोग्या अस्माकं प्रियसखी । तदपेहि ।)

कृष्णः—(सस्मितम् ।) ललिते, नेदं गोष्ठाङ्गनम् । पश्य वृन्दाटवीकुक्षिरसौ । तन्नेह वः प्रभविष्णुता ।

ललिता—कण्ह, अस्साओ ताओ क्खु मुद्धिआवो जाओ तुअत्तो वि सुट्ठु भाएन्ति । एसम्हि पसिद्धा ललिदा । (कृष्ण, अस्मासु ताः खलु मुग्धिकाः याः त्वत्तोऽपि सुष्ठु बिभ्यति । एषास्मि प्रसिद्धा ललिता ।)

पीताम्बर के अतिरिक्त दूसरा आज तुम्हारे स्तन के परिचय में समर्थ नहीं है ॥ १८ ॥ उत्तरार्ध ।

विमर्श—यहाँ 'पीताम्बर' शब्द में कर्मधारय और बहुव्रीहि दोनों समास हैं अतः इसका अर्थ पीतवस्त्र और पीताम्बरधारी कृष्ण दोनों हैं । ललिता का ऊपरी भाव है कि इस पीतवस्त्र के अतिरिक्त दूसरा कोई भी तुम्हारे कुच प्रदेश का स्पर्श नहीं करेगा । आन्तरिक आशय है कि तुम्हारे हृदय में विराजमान कृष्ण आज तुम्हारे स्तनस्पर्श का सौभाग्य प्राप्त करेगा । अर्थात् आज तुम्हारा समागम कृष्ण के साथ अवश्यम्भावी है ।

कृष्ण—(आनन्दपूर्वक) कल्याणि, समय पर मिल गयी हो । (यह कह कर राधा के समीप पहुँचते हैं ।

ललिता—(रोष से घूम कर कृष्ण को रोकती हुई) विदग्ध, मेरी यह प्यारी सखी (राधा) तुम्हारे परिहास के योग्य नहीं है । अतः दूर हट जाओ ।

कृष्ण—(मुस्कराकर) ललिते, यह गोशाला का आँगन नहीं है । देखो, यह तो वृन्दावन का मध्यभाग है । अतः यहाँ पर तुम लोगों का प्रभुत्व नहीं है ।

ललिता—कृष्ण, हम लोगों में वे ही भोली भाली हैं जो तुमसे भी बहुत डरती हैं । मैं तो प्रसिद्ध ललिता हूँ । (अर्थात् मैं तुमसे डरने वाली नहीं हूँ ।)

(राधिका चकितापाङ्गेन कृष्णं विलोक्य कम्पं नाटयति ।)

ललिता—राहे, कीस सज्झसेण कम्पसि जं एसा जीअदि ललिदा । (राधे, कस्मात्साध्वसेन कम्पसे यदेषा जीवति ललिता ।)

राधिका—ललिदे, गहीदाइं वन्धूगपुप्फाइं । ता एहि । कालिन्दीतीरं गच्छम्ह । (ललिते, गृहीतानि बन्धूकपुष्पाणि । तदेहि । कालिन्दीतीरं गच्छामः ।)

कृष्णः—कठोरे, कथमाहृतबन्धुजीवा विदूरं गन्तुमुद्युक्तासि । (इति पन्थानमावृण्वन् ।)

परीतं भृङ्गेण स्फुटतरशिलाश्यामलरुचं
चलद्वेत्रं वंशव्यतिकरलसन्मेखलममुम् ।
अतिक्रम्योत्तुङ्गं धरणिधरमग्रे कथमित-
स्त्वया गन्तुं शक्या तरणिदुहितुस्तीरसरणिम् ॥१६॥

(राधा चंचल कटाक्ष से कृष्ण को देखकर काँपने का अभिनय करती है ।)

ललिता—राधे, इस ललिता के जीते जी तुम भय से क्यों काँप रही हो ?

राधिका—ललिते, बन्धूकपुष्पों (गुलदुपहरिया) को चुन लिया ? तो आओ, यमुना के किनारे पर चलें ।

कृष्ण—कठोरे, बन्धुजीव फूल को चुनकर (प्रियजन के जीवन को हरकर) दूर क्यों जाना चाहती हो ?

(यह कह कर रास्ता रोकते हुए)

शिखर से व्याप्त कृष्ण पक्ष में—भावविशेष से युक्त, शिलाओं से अधिक स्पष्ट, कृष्ण पक्ष में—शिला के समान श्याम कान्ति वाले, वंशवृक्ष समूह से शोभित मध्य भागवाले, कृष्ण पक्ष में—छोटी छोटी घंटियों से युक्त वंशी वाले, हिलते हुए वेंतों से युक्त, कृष्ण-पक्ष में—चंचल वेत्रवाले अत्यन्त ऊँचे पक्ष में—अत्यधिक उदार इस पर्वत को लाँघ कर—कृष्ण को छोड़कर यहाँ से आगे यमुना तट के पास तुम कैसे जा सकती हो ? अर्थात् यमुना तट पर जाने के मार्ग में पर्वत के रूप में कृष्ण बाधक हैं अतः उन्हें पार कर राधा का जाना असंभव है ॥ १६ ॥

राधिका—(वक्रं विलोक्य हुंकुर्वती।) णाअर, मम दोसो णत्थि। दाणिं एसा गोउलेसरिं अणुसरिस्सं। (नागर, मम दोषो नास्ति। इदानीमेषा गोकुलेश्वरीमनुसरिष्यामि।)

कृष्णः—राधे, किं विभीषिकया। कामं गम्यताम्। स्कन्धमूलस्थं पीतदुकूलमेव ममानुकूलम्। (इति राधां दिधीर्षति।)

राधिका—(भ्रुकुटीमाबध्य। संस्कृतेन।)

साध्वीनां धुरि धार्या ललितासङ्गेन गर्विता चास्मि।
हितमालपामि माधव पथि नाद्य भुजङ्गतां रचय ॥२०॥

कृष्णः—ललिते, किमश्रावि वाग्भङ्गिरस्याः। तदहं नापराध्यामि। (इति भुजद्वन्द्वमुन्नमयति।)

ललिता—(राधां पृष्ठतः कृत्वा।) कण्ह, सव्वलोअसलाहणिज्जगुणोवि तुमं गोउलिन्दस्स णन्दणोत्ति। ता णेहं दे दुःशीलत्तणं अम्हेसु

राधिका—(तिरछी देखकर हुँकार करती हुई) नागर, मेरा दोष नहीं है। (अर्थात् मुझे दोष नहीं देना) अब मैं इस समय यशोदा के पास जाऊँगी। (अर्थात् उनसे तुम्हारी शिकायत करूँगी)।

कृष्ण—राधे, डराने से क्या लाभ? तुम स्वेच्छा से जाओ। तुम्हारे कन्धे पर रखा पीताम्बर ही मेरे अनुकूल है। (अर्थात् पीताम्बर के कारण तुम नहीं जा सकती) (यह कह कर राधा को पकड़ना चाहते हैं)

राधिका—(भौंहें तान कर। संस्कृत में) हे माधव, मैं पतिव्रताओं में आगे गिनी जाने योग्य हूँ। पक्ष में—सुन्दरियों में श्रेष्ठ हूँ। ललिता के साथ से गर्वीली हूँ। पक्ष में—सुन्दर नेत्रादि से आपूर्ण हूँ। अतः मार्ग में कामुकता नहीं दिखाओ। पक्ष में—मुझे अपने भुजपाश में बाँध लो ॥ २० ॥

कृष्ण—ललिते, क्या तुमने इसकी वचन-भंगिमा सुन ली? तो मेरा अपराध नहीं है। (यह कहकर अपनी दोनों भुजाओं को उठाते हैं)

ललिता—(राधा को पीछे करके) कृष्ण, तुम समस्त प्रशंसनीय गुणों से युक्त होकर भी गोकुलस्वामी नन्द के पुत्र हो। इसलिए हम लोगों के प्रति तुम्हारा

जोग्गम्। (कृष्ण, सर्वलोकश्लाघनीयगुणोऽपि त्वं गोकुलेन्द्रस्य नन्दनोऽसि। तन्नेदं ते दुर्लीलत्वमस्मासु योग्यम्।)

मधुमङ्गलः—अइ गव्विदे, किंति वुन्दाअणं विद्धंसिअ तुम्हेहिं अम्हपिअवअस्सस्स पुप्फाइं हरिस्सन्ति। (अयि गर्विते, किमिति वृन्दावनं विध्वंस्य युष्माभिरस्मत्प्रियवयस्यस्य पुष्पाणि ह्रियन्ते।)

कृष्णः—सखे, तूर्णं गणयासां पुष्पाणि यथा तत्संख्यया कण्ठतो हारमणीनाहरामि।

मधुमङ्गलः—पिअवअस्स, किअं गणणं। ता रत्ताणं पुप्फाणं परिवट्टेण पउमराआइं गेण्ह। पण्डराणं उण हीरमोत्तिआइं। (प्रियवयस्य, कृतं गणनम्। तद्रक्तानां पुष्पाणां परिवर्तेन पद्मरागाणि गृहाण। पाण्डुराणां पुनर्हीरमौक्तिकानि।)

कृष्णः—सखे, पर्यालोचयम्। नामूनि पुष्पमूल्यतुल्यानि। ततः कतिभिरेव पर्याप्तिः।

मधुमङ्गलः—(सकाकुप्रपञ्चम्।) वअस्स, एसो अणुग्गहीदो बम्हणो अब्भत्थेदि। ता इमेहिं ज्जेव्व संतुट्ठो होहि। (वयस्य, एषोऽनुगृहीतो ब्राह्मणोऽभ्यर्थयति। तदेतैरेव संतुष्टो भव।)

यह दुर्व्यवहार उचित नहीं है।

मधुमंगल—अरी गर्वीली, वृन्दावन को उजाड़कर तुम लोग क्या मेरे मित्र के फूलों को चुरा लोगी?

कृष्ण—सखे, शीघ्र ही इन फूलों को गिन डालो जिससे उतनी ही संख्या में इनके गले से हार के मणियों को छीन लूँगा।

मधुमंगल—मित्र, मैंने गिन लिया है। अतः लाल फूलों के बदले में पद्मराग और सफेद फूलों के बदले में हीरा-मोतियों को ले लो।

कृष्ण—सखे, विचार करता हूँ। ये आभूषण फूलों के मूल्य के बराबर नहीं हैं तो कुछ से ही काम चलाना चाहिए।

मधुमंगल—मित्र, यह अनुगृहीत ब्राह्मण प्रार्थना करता है अतः इतने ही से संतुष्ट हो जाओ।

कृष्णः—यथा ब्रवीति वयस्यः।

ललिता—(विहस्य।) अज्ज, सामिणो जोग्गो ज्जेव्व अमाच्चोसि। (आर्य, स्वामिनो योग्य एवामात्योऽसि।)

विशाखा-(अलीकसंभ्रमम्।) कण्ह, दूरे चिट्ठेहि। (कृष्ण, दूरे तिष्ठ।)

कृष्णः—कुटिले, किमिति।

विशाखा—पेक्ख। संरम्भेण संगरंगमिदा चन्दहासं उल्लासेदि अम्हपिअसही राहा। (पश्य। संरम्भेण संगरं गमिता चन्द्रहासमुल्लासयत्यस्मत्प्रियसखी राधा।)

कृष्णः—(स्मित्वा।) मुग्धे, पश्य। अहं च प्रपञ्चितगाढरोमाञ्चकञ्चुकोऽस्मि। तदयत्नं रामारत्नं हरिष्यामि। (इति राधामनुसर्पति।)

ललिता—(संरम्भमभिनीय।) कण्ह, पेक्खामि दे साहसं। राहिआच्छाअं पि तुमं फंसेहि। (कृष्ण, पश्यामि ते साहसम्। राधायाश्छायामपि त्वं स्पृश।)

कृष्णः—सखे, नूनं ललितारूपेण महाभैरवीयं प्रादुर्भूता।

कृष्ण—मित्र की जैसी इच्छा।

ललिता—(हँसकर) आर्य, स्वामी के योग्य ही मंत्री हो।

विशाखा—(बनावटी गुस्से से) कृष्ण, दूर रहो।

कृष्ण—कुटिले, ऐसा क्यों ?

विशाखा—देखो, क्रोध के आवेश से (रस के उल्लास से) युद्ध में उतरी मेरी सखी राधा चन्द्रहास (तलवार) उठा रही है।

कृष्ण—(मुस्कराकर) मुग्धे, देखो। और मैं उठे हुए सघन रोम का कञ्चुक-कवच वाला हूँ। अतः अनायास ही ललना के रत्न को छीन लूँगा। (ललनारूप रत्न को हर लूँगा (राधा के समीप जाते हैं)

ललिता— (क्रोध दिखाकर) कृष्ण, तुम्हारे साहस को देख रही हूँ, राधा की छाया को भी तुम छू तो लो !

कृष्ण—मित्र, ललिता के रूप में यह निश्चय ही महा भैरवी उत्पन्न हुई है।

राधिका—हला, कल्लाणी होहि। (इति ललितां साकूतमालिङ्गति।) (हला, कल्याणी भव।)

कृष्णः—(जनान्तिकम्।) ललिते, विमुञ्च काठिन्यम्।

ललिता—उक्कोअं मे देहि। (उत्कोचं मे देहि।)

कृष्णः—(स्मित्वा।) ललिते, सत्यं ते ब्रवीमि राधामपि विप्रलम्भ्य सायमनङ्गसंगरे त्वामेव प्रतिवीरयिष्ये।

ललिता—(सरोषं परावृत्य।) अवेहि विदूसक, अवेहि। (अपेहि विदूषक, अपेहि।)

कृष्णः—कथयोत्कोचं यत्र ते तुष्टिः।

ललिता—णाअर, पुप्फमग्गणरङ्गेण वुन्दावणं भम्मन्ती दूमेदि मे सही। ता दिव्वपुप्फेहिं णं अलंकदुअ सुहावेहि। (नागर पुष्पमार्गणरङ्गेण वृन्दावनं भ्रमन्ती दूयते मे सखी। तद्दिव्यपुष्पैरेनामलंकृत्य सुखय।)

कृष्णः—(स्मित्वा।) यथाभिरोचते तुभ्यम्। (इति परिक्रम्य। दर्योरभटीं नाटयन्।) ललिते, बाढं विक्रुश्यताम्। न त्वां तृणाय मन्ये

राधिका—सखी, कल्याणी बनो। (साभिप्राय ललिता का आलिंगन करती है।)

कृष्ण—(एकान्त में ललिता से) ललिते, कठोरता छोड़ो।

ललिता—मुझे घूस दो।

कृष्ण—(हँसकर) ललिते, तुम्हें सच कहता हूँ। राधा को भी छोड़ कर सायंकाल कामदेव के संग्राम में तुम्हीं को प्रति योद्धा बनाऊँगा।

ललिता—(क्रोधपूर्वक पीछे लौटकर) दूर हो विदूषक दूर हो।

कृष्ण—घूस बताओ जिससे तुम्हें संतोष हो।

ललिता—नागर, फूलों की खोज के अनुराग से (कामदेव के अनुराग से) वृन्दावन में घूमती हुई मेरी सखी कष्ट उठा रही है। अतः दिव्य पुष्पों से इसको अलंकृत कर सुखी बनाओ।

कृष्ण—(हँसकर) तुम्हें जैसा अच्छा लगे। (यह कह कर घूमकर और नटी वृत्ति का अभिनय करते हुए)

(इति राधिकाहारस्पर्शाय करं प्रसारयति ।)

ललिता—(वामं विलोक्य । सस्मितम् ।) छइल्ल, सूरदेअपूआकिदे किदसिणाणं पिअसहीं अकिदसिणाणो क्खु तुमं मा छिवेहि । (विदग्ध, सूर्यदेवपूजाकृते कृतस्नानां प्रियसखीमकृतस्नानः खलु त्वं मा स्पृश ।)

कृष्णः—अयि मदान्धे, समन्तादुल्लासिनि प्रस्वेदाम्बुपूरे मयि कथं कृतमहाभिषेकं न पश्यसि ।

ललिता—(राधामन्तरयन्ती सधार्ष्ट्यम् ।) हला, उण्हकालतमाल-घोरेण वणखण्डेण इमस्स पअण्डदा दूसहा किदा । ता अम्हहारं रक्खिदुं खणं सोम्मा होम्ह । (हला, उष्णकालतमालघोरेण वनखण्डेनास्य प्रचण्डता दुःसहा कृता । तदस्मद्धारं रक्षितुं क्षणं सौम्या भवामः ।)

मधुमङ्गलः—हीही, णिज्जिदाओ गव्विदगोविआओ । (इति नृत्यति ।)
(हीही, निर्जिता गर्वितगोपिकाः ।)

राधिका—अइ मुद्धे ललिदे, भअवन्दस्स उवासणं तुए अज्ज किं विसुमरिदम् । (अयि मुग्धे ललिते, भगवदुपासनं त्वयाद्य किं विस्मृतम् ।)

ललिते, व्यर्थ नाराज होओ । मैं तो तुमको तिनके बराबर भी नहीं समझता । (यह कह कर राधा के हार को खींचने के लिए हाथ फैलाते हैं)

ललिता—तिरछी देखकर । (मुस्कुराहट के साथ) विदग्ध, सूर्यदेव की पूजा के निमित्त स्नान की हुई मेरी सखी को बिना स्नान किए तुम मत छूओ ।

कृष्ण—अरी मद से अन्धी, चारों तरफ से निकलने वाले पसीने के जल-प्रवाह से युक्त मुझमें किए गये महाभिषेक को क्यों नहीं देखती हो ?

ललिता—(राधा को छिपाती हुई ढिठाईपूर्वक) सखि, अत्यधिक काले तमालवृक्ष के समान घोर वनखण्ड से इसकी प्रचण्डता असह्य हो गयी है अतः हमलोगों के हार की रक्षा के लिए एक क्षण सौम्य हो जाँय । (अर्थात् हमलोग कठोरता छोड़ कर नरम हो जाँय ।)

मधुमंगल—हा, हा, अभिमानिनी गोपियाँ जीत ली गयीं । (यह कह कर नाचता है)

राधिका—अरी भोली ललिते, क्या आज तुम भगवान की उपासना भूल गयी ?

मधुमङ्गलः—देइ राहिए, केअलं तुम्हे ज्जेव्वं उवासणं कुरध त्ति मा गव्वाएव्व, जं अम्हेपि उवासणं करेम्ह। (देवि राधिके, केवलं यूयमेवमुपासनं कुरुतेति मा गर्वायध्वम्, यद्वयमप्युपासनं कुर्मः।)

विशाखा—अज्ज, कीदिसं तम्। (आर्य, कीदृशं तत्।)

मधुमङ्गलः—भोदि विसाहे, सुणाहि। गन्धपुप्फपुरस्सरं णिउञ्ज-वेदिआमज्झे उज्जाअरणभूइट्ठं तदेकग्गचित्तदाए कङ्कणाणं सद्दोवा-सणम्। (भवति विशाखे, शृणु। गन्धपुष्पपुरःसरं निकुञ्जवेदिकामध्य उज्जाग-रणभूयिष्ठं तदेकाग्रचित्ततया कङ्कणानां शब्दोपासनम्।)

(सर्वाः स्मयन्ते।)

मधुमङ्गलः—(सश्लाघम्। संस्कृतेन।)

आडम्बरोज्ज्वलगतिर्वरकुञ्जबद्धः
स्वैरी परिस्फुरितपुष्करचारुहस्तः।
धन्यासि सुन्दरि यया मृदुलं हसन्त्या
वन्दीकृतस्तरलवल्लवकुञ्जरोऽयम् ॥ २१ ॥

मधुमंगल—देवि राधिके, केवल तुम्हीं लोग भगवान् की पूजा करती हो, ऐसा अहंकार मत करो, क्योंकि हम लोग भी उपासना करते हैं।

विशाखा—आर्य, वह उपासना कैसी है ?

मधुमंगल—हे विशाखे, सुनो। गन्धपुष्प से युक्त निकुञ्ज की वेदी के बीच जागते हुए एकाग्रचित्त से कंकणों के शब्दों की उपासना।

(सभी हँसती हैं)

मधुमंगल—(श्लाघापूर्वक। संस्कृत में) शाहीढंग (ठाट-बाट) से प्रशस्त गतिवाले, श्रेष्ठ कुञ्ज में बँधे हुए, स्वेच्छाचारी, प्रस्फुटित लीला कमल से शोभित हाथ वाले इस चंचल गोप, हस्ती (कृष्ण) को कोमलता से हँसती हुई तुमने बन्दी बनाया है। अतः हे सुन्दरि, तुम धन्य हो ॥ २१ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में गोप (कृष्ण) के ऊपर कुञ्जर (हाथी) का आरोप किया गया है। अतः रूपक अलंकार है। सभी विशेषण प्रायः श्लिष्ट हैं

कृष्णः—प्रिये,

रुचिरसहचरीणां वीथिभिः सेव्यमाना
मदमृदुलमरालीरम्यलीलागतिश्रीः ।
शशिमुखि गतनिद्रं कुर्वती मामिदानीं
शरदिव भवतीयं लोकलक्ष्मीं तनोति ॥ २२ ॥

तदर्वाचीनेन हारिलावण्यशृङ्गारेण भवतीमलंकुर्वाणः शारदीं श्रियमवन्ध्ययामि ।

मधुमंगलः—(संस्कृतेन ।)

बलानुज कलापिनामवकलय्य कालज्ञतां

अतः कृष्ण और कुञ्जर ये दोनों अर्थ निकलते हैं। कृष्ण पक्ष में—आडम्बर का अर्थ है शाही ढंग। और कुञ्जर पक्ष में—गर्जन या चिंघाड़। कृष्ण पक्ष में—'परिस्फुरितपुष्करचारुहस्तः' इस पद का परिस्फुरितेन पुष्करेण—लीला कमलेन चारुः—शोभितो हस्तो यस्य' अर्थात् विकसित लीला कमल से शोभित है हाथ जिसका, यह अर्थ है। कुञ्जर पक्ष में—परिस्फुरितं पुष्करं—शुण्डमेव चारु-हस्तो यस्य अर्थात् 'हिलते हुए सूँड़ ही है हाथ जिसके', यह अर्थ है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में—'बन्दीकृतः' का अर्थ स्तावक अर्थात् स्तुतिकर्ता—प्रशंसक है और कुञ्जर पक्ष में—बद्धः कृतः अर्थात् बाँधा गया है।

कृष्ण—प्रिये,

सुन्दर सखियों की श्रेणियों से सेवा की जाने वाली, मद से कोमल हंसो की सुन्दर चाल के समान सुन्दर गतिवाली हे चन्द्रमुखि, इस समय मुझको सोने न देकर शरत्काल की भाँति यह तुम आँखों की शोभा बढ़ा रही हो। अर्थात् जिस प्रकार शरद ऋतु संसार की शोभा बढ़ाती है, उसी प्रकार तुम मेरे नयनों की शोभा बढ़ा रही हो ॥ २२ ॥ अतः नवीन सुन्दर शृंगार से तुम्हें सजा कर मैं शरत्कालीन शोभा को सार्थक करता हूँ।

मधुमंगल—(संस्कृत में) हे बलराम के छोटे भाई, मयूरों के समय पहचा-नने की निपुणता को देखकर मेरा मन अत्यधिक विस्मित हो रहा है, क्योंकि आज

मनः किल बलीयसी मम बिभर्ति विस्मेरताम् ।
यदद्य शरदागमे तव विलोक्य लीलोत्कतां
किरन्ति रुचिमण्डलीजुषममी शिखण्डावलीम् ॥२३॥

कृष्णः—सखे, साधु लक्षितं तन्मौलिकल्पनाय चन्द्रकानाहरामि (इति वटुना सह तथा करोति ।)

राधिका—सहि ललिदे, जत्थ दिण्णभारा अहं णिच्चिदम्हि, सा तुमं जइ सोम्मासि, तदो, जाव कण्हो दूरे गदो, ताव कङ्केल्लिकुडङ्गं पवेसिस्सम् । (इति तथा स्थिता ।) (सखि ललिते, यत्र दत्तभाराहं निश्चिन्तास्मि, सा त्वं यदि सौम्यासि, तदा यावत्कृष्णो दूरे गतः, तावत्कङ्केलिकुञ्जे प्रवेक्ष्यामि ।)

कृष्णः—सखे, निर्मितं प्रचलाकशलाकाभिः किरीटं खञ्जरीटनेत्रायाः सीमन्तसीमनि विन्याससौभाग्यमालम्बताम् । (इति परिक्रम्य ।) ललिते, क्व सा ते प्रियसखी ।

ललिता—अत्तणो घरं गदा । (आत्मनो गृहं गता ।)

शरद के आगमन पर तुम्हारी लीला करने की उत्सुकता देखकर ये मयूर शोभा-समूह से युक्त पंखश्रेणी को बिखेर रहे हैं ॥ २३ ॥

कृष्ण—मित्र, तुमने ठीक अन्दाज लगाया है । तो मुकुट बनाने के लिए पंखों को चुनता हूँ । (यह कहकर) वटुक मधुमंगल के साथ मोर पंख चुनते हैं ।)

राधिका—सखि ललिते, जिसको अपना भार सौंप कर निश्चिन्त हूँ, वह तुम यदि प्रसन्न हो तो जब तक कृष्ण दूर गया है, तब तक मैं अशोक कुञ्ज में प्रवेश करूँगी । (यह कह कर कुञ्ज में जाती है ।)

कृष्ण—मित्र, मयूर पंख की शलाकाओं से बना हुआ यह मुकुट खञ्जन-नयना (राधा) के जूड़ा में विन्यास सौभाग्य को प्राप्त करे । (घूम कर) ललिते, तुम्हारी वह प्यारी सखी कहाँ है ?

ललिता—अपने घर गयी ।

कृष्णः—निष्ठुरे, तिष्ठ। तूर्णमसौ ते धूर्त्ततागर्वमपहरामि। (इति समन्तात्पश्यन्। सहर्षम्।) वयस्य, पश्य। सहसेयमवाप्ता गौराङ्गी प्रिया। (इत्युपसर्पति।)

मधुमङ्गलः—(विहस्य।) भो वअस्स, चक्कवादेण तिणावट्टेण भमिदस्स दे अज्जवि णूणं भमो ण गदो। पेक्ख एसा पीदपराअपुञ्जपिञ्जरिदा थलणलिणी। (भो वयस्य, चक्रवातेन तृणावर्तेन भ्रमितस्य तेऽद्यापि नूनं भ्रमो न गतः। पश्यैषा पीतपरागपुञ्जपिञ्जरिता स्थलनलिनी।)

कृष्णः—(निरूप्य।) सखे, सत्यं ब्रवीषि। (इत्यन्यतो गत्वा।) भो सखे, पश्य कुङ्कुमाङ्गी निष्टङ्कितमिदानीमेव लब्धा। (इति दिधीर्षुः प्रधावति।)

मधुमङ्गलः—(सहस्ततालमुच्चैर्विहस्य।) भो वअस्स, एत्थ तुज्झ अवराहो णत्थि। किंतु पेम्मलहरीए ज्जेव्व। जाए सव्वा वुन्दाटई राहिआ णिम्मिदा। (भो वयस्य, अत्र तवापराधो नास्ति, किंतु प्रेमलहर्या एव, यया सर्वा वृन्दाटवी राधिका निर्मिता।)

कृष्णः—(सवैलक्ष्यं। विलोक्य।) कथमुत्फुल्लेयं सहचरी। (पार्श्वतो

कृष्ण—कठोरे, ठहरो। मैं शीघ्र ही तुम्हारी धूर्तता के अहंकार को चूर करता हूँ। (यह कह कर चारों ओर देखते हुए। प्रसन्नतापूर्वक) मित्र, देखो यह गोरे अंगों वाली प्रिया सहसा मिल गयी। (यह कहकर समीप जाते हैं)

मधुमंगल—(हँसकर) हे मित्र, बवंडर से चक्कर खा गये हो अतः अभी भी तुम्हारा भ्रम दूर नहीं हुआ है। देखो यह पीले परागपुञ्ज से पीली स्थलकमलिनी है।

कृष्ण—(ठीक से देखकर) मित्र, ठीक कहते हो। (दूसरी ओर जाकर) हे मित्र, देखो। कुङ्कुम के समान अंगवाली इस सुन्दरी को मैं इसी समय वेखटक पा गया हूँ। (पकड़ने की इच्छा से दौड़ते हैं)

मधुमंगल—(ताली बजाते हुए जोर से हँसकर) हे मित्र, यहाँ तुम्हारा अपराध नहीं है, अपितु प्रेमलहरी का ही, जिसने सम्पूर्ण वृन्दावन को राधा बना दिया है।

कृष्ण—(आश्चर्य से देखकर) क्या पीतझिण्टी नामक यह फूल खिल गया

विलोक्य ।) ललिताङ्गि ललिते, इतो वाम्यपर्वतादवरोहन्ती कान्तार-मितस्य ददस्व मे हस्तावलम्बम् ।

ललिता—(स्मित्वा ।) सुन्दर, विसाहं पुच्छेहि । एसा क्खु णं जाणादि । (इति संज्ञां नाटयति ।) (सुन्दर, विशाखां पृच्छ । एषा खल्वेनं जानाति ।)

कृष्णः—(सहर्षमपवार्य ।) सखे, पश्य विशाखायाः परोक्षं किंचित्तिरोऽवलम्बन्ती ललिता भ्रूसंज्ञया कदम्बकुञ्जं सूचयति । तदत्र नास्ति मनागपि संदिग्धता । (इति परिक्रम्य सदर्पस्मितम् ।) प्रिये, विलोकितासि । निर्गम्यताम् । (इत्युद्ग्रीविकां कृत्वा सहासम् ।) ललिते, साधु साधु । जातं तव धूर्तताललतिकायाः साफल्यमिदम् ।

मधुमङ्गलः—वअस्स, एसा मए ज्जेव लद्धा तुह राधा । (वयस्य, एषा मयैव लब्धा तव राधा ।)

कृष्णः—(सकौतुकम् ।) वयस्य, ललितेव कच्चिदविस्रम्भणीयभणितिर्नासि ।

मधुमङ्गलः—गाअत्तीए सवामि । (गायत्र्यै शपामि ।)

है ? (बगल से देखकर) अरी सुन्दरी ललिते, यहाँ वाम्यपर्वत पर से उतरती हुई तुम जंगल में आए हुए मुझको (कान्ता के साथ रतिसुख को प्राप्त किए हुए मुझको) हाथ का सहारा दो ।

ललिता—(मुस्करा कर) सुन्दर, विशाखा को पूछो । यह इसको जानती है । (इशारा करती है ।)

कृष्ण—(प्रसन्नता के साथ एकान्त में मधुमंगल से) मित्र, देखो विशाखा के परोक्ष में कुछ तिरछेपन का सहारा लिए ललिता भौंहों के इशारे से कदम्ब कुञ्ज की सूचना दे रही है । अतः यहाँ कुछ भी संदेह नहीं है । (घूमकर अहंकार पूर्ण मुस्कराहट के साथ) प्रिये, मैंने तुम्हें देख लिया । निकल जाओ (गर्दन ऊँचाकर हँसी के साथ) ललिते, सुन्दर-सुन्दर, तुम्हारी धूर्तताख्पी लता आज सफल हुई ।

मधुमंगल—मित्र, तुम्हारी इस राधा को मैंने ही पाया है ।

कृष्ण—(कुतूहल से) मित्र, ललिता के समान कहीं तुम झूठ तो नहीं कह रहे हो ?

मधुमंगल—गायत्री की शपथ लेकर कहता हूँ ।

कृष्णः—(सविस्मयम् ।) सखे, क सा दर्शय शीघ्रम् ।

मधुमङ्गलः—तुम्ह हत्थगदं जेव्व णं करेमि । ता देहि मे पारितोसिअम् । (तव हस्तगतामेवैनां करोमि तद्देहि मे पारितोषिकम् ।)

(कृष्णः सश्लाघं मालतीमालया मण्डयति ।)

मधुमङ्गलः—घेप्पिज्जउ एसा । (इति 'राधा' इति वर्णद्वयीभाजं पत्त्रलेखामर्पयति ।) (गृह्यतामेषा ।)

कृष्णः—(स्मित्वा ।) सखे, सत्यमनेनापि भवदर्पितेन तर्पितोऽस्मि । यतः ।

क्रमात्कन्याभच्णोः परिसरभुवं वा श्रवणयो-
मनागध्यारूढं प्रणयिजननामाक्षरपदम् ।
कमप्यन्तस्तोषं वितरदवलम्बादनुपदं
निसर्गाद्विश्वेषां हृदयपदवीमुत्सुकयति ॥ २४ ॥

कृष्ण—(विस्मयपूर्वक) मित्र, वह कहाँ है ? शीघ्र दिखाओ ।

मधुमंगल—मैं इसको तुम्हारे हाथों में लाकर देता हूँ । अतः मुझे पुरस्कार दो ।

(कृष्ण प्रेमपूर्वक मालती की माला से सुशोभित करते हैं)

मधुमंगल—इसे ग्रहण करो । (यह कह कर 'राधा' इस दो अक्षर वाली पत्रलेखा (पत्रिका) देता है) ।

कृष्ण—(मुस्करा कर) सखे, सचमुच तुम्हारे द्वारा दी गयी इस पत्रिका से भी सन्तुष्ट हूँ ।

क्योंकि—

क्रमशः नेत्रों के द्वारा देखे जाने पर अथवा कानों के समीप थोड़ा भी पहुँच जाने पर प्रियजन के नाम का अक्षर किसी आन्तरिक संतोष को देता हुआ अवलम्ब रूप से स्वभावतः सभी के हृदय को तुरन्त उत्कंठित करता है । (अर्थात् प्रियजन का नाम पढ़ने अथवा सुनने से आन्तरिक सुख मिलता है । वह सहारा होता है और सभी प्रेमियों के हृदय को शीघ्र उत्सुक बनाता है ।) ॥ २४ ॥

(इति परावृत्य दक्षिणतो विकसन्तमशोकमवलोक्य सविस्मयम् ।)

शङ्के संकुलितान्तराद्य निविडक्रीडानुबन्धेच्छया
कुञ्जे वञ्जुलशाखिनः शशिमुखी लीना वरीवर्ति सा ।
नो चेदेष तदङ्घ्रिसंगमविनाभावादकाले कथं
पुष्पामोदनिमन्त्रितालिपटलीस्तोत्रस्य पात्रीभवेत् ॥२५॥

(इति परिक्राम्यन्नुद्ग्रीविकया राधां दृष्ट्वा सानन्दम् ।) प्रिये, कथ्यतामिदानीं का वा वार्ता ।

राधिका—(सप्रणयेर्ष्यम् ।) तुअत्तो भएण ज्जेव्व पलाइदम्हि । एत्थ वि मं विडम्बेदुं लद्धोसि । (त्वत्तो भयेनैव पलायितास्मि । अत्रापि मां विडम्बयितुं लब्धोऽसि ।)

कृष्णः—(आत्मश्लाघनम् ।) दृष्टा मे पाटवारभटी । यतस्तिरोधानवि-

(यह कह कर लौटकर दायीं ओर खिलते हुए अशोक को देखकर अच-रज से)

मुझे शंका है कि आज चंचल हृदयवाली वह चन्द्रमुखी गाढ़ क्रीडा करने की अभिलाषा से अशोक वृक्ष के कुञ्ज में छिप कर बैठी है। अन्यथा यह (अशोक) उसके चरणों के सम्पर्क के अभाव में असमय में फूलों की सुगन्धि से आमन्त्रित भ्रमर के स्तोत्र का पात्र कैसे बनता ? ॥ २५ ॥

विमर्श—अशोक वृक्ष में ललनाओं के चरण-प्रहार से असमय में फूल खिलते हैं। अशोक-कुञ्ज में भौंरे फूलों पर मँडराते हुए मधुर गुञ्जन कर रहे हैं। अर्थात् गुञ्जन के छल से अशोक की उदारता का गुणगान कर रहे हैं। कृष्ण का अनुमान है कि इस कुञ्ज में राधा अवश्य है क्योंकि उसी के चरणस्पर्श से अस-मय में ही अशोक वृक्ष खिल उठा है जिसके फूलों पर भौंरे मस्ती से गुनगुना रहे हैं। (यह कह कर ऊँचे गर्दन से राधा को देखकर प्रसन्नतापूर्वक) प्रिये, कहो इस समय क्या बात है !

राधिका—(स्नेह-मिश्रित ईर्ष्या से) तुम्हारे डर से ही भाग आया हूँ। यहाँ भी तुम मुझको तंग करने के लिए आ गये हो।

कृष्ण—(अपनी प्रशंसा करते हुए) मेरी साहसपूर्ण चतुराई देख ली ? तो

द्यापहारेण निर्जिता यूयम् ।

ललिता—(संस्कृतेन ।) हन्त भो वाङ्मात्रजितकाशिन्,

अस्मिन्नेकसरोजसंभवकृतस्तोत्रोऽसि वृन्दावने
राधा भूरिहिरण्यगर्भरचितप्रत्यङ्गकान्तिस्तवा ।
हस्तोदस्तमहीधरस्त्वमसकृन्नेत्रान्तभङ्गिच्छटा-
कृष्टोच्चैर्धरणीधरा मम सखी तद्वीर माहंकृथाः ॥ २६ ॥

कृष्णः—ललिते, निलीने मयि विलोकिते नातथ्यं तव विकत्थनं भवतीनां विदांकरवाणि ।

सर्वाः—एव्वं होदु । (एवं भवतु ।)

कृष्णः-इयमुत्तरतश्चञ्चरीकसंचयरोचिरुल्लासिश्यामलपलाशगुलुच्छा दूरतस्तापिञ्छविच्छोली । तदेषा सवर्णतया सखीभावमापन्ना मामत्र संगोपयिष्यति । (इति सवयस्यो निष्क्रान्तः ।)

तुम लोगों को मैंने तिरोधान विद्या (छिपने की कला) के खुल जाने से जीत लिया है ।

ललिता—(संस्कृत में) अरे कथनमात्र से जीत का डींग हाकने वाले,

इस वृन्दावन में तुम्हारी स्तुति केवल एक ब्रह्मा ने की है, जबकी राधा के प्रत्येक अंग की शोभा की प्रशंसा बहुत से प्रजापति ने की है । तुमने गोवर्धन पर्वत को हाथ से एक बार उठाया है । इस सखी राधा ने कटाक्ष की छटा से अनेक बार धरणीधर—कृष्ण को आकृष्ट किया है । अतः हे वीर, अहंकार नहीं करो । (क्योंकि प्रत्येक बात में राधा तुमसे आगे है) ॥ २६ ॥

कृष्ण—ललिते, मेरे छिप जाने पर तुम लोगों की झूठी आत्म-प्रशंसा ज्ञात हो जायेगी । (अर्थात् मेरे छिप जाने पर तुम लोगों की हेकरी निकल जायेगी)

सभी—ऐसा ही हो ।

कृष्ण—उत्तर दिशा से भ्रमर-समूह की कान्तिवाली तथा लहराते श्यामल पलाश के समान गुच्छ वाली यह तमालपंक्ति दूर में विद्यमान है, जो एक रंग होने के कारण मित्रभाव से मुझको यहाँ छिपा लेगी । (मित्र के साथ चले गये)

ललिता—हला राहे, कण्हस्स अदंसणेण मा उत्तम्म। णं दिट्ठं जेव्व जाणेहि। ता विजुत्ता आसव्वदो उपसप्पम्ह। (हला राधे, कृष्णस्यादर्शनेन मोत्ताम्य। एनं दृष्टमेव जानीहि। तद्वियुक्ता आ सर्वत उपसर्पामः।)

राधिका—जधा भणादि पिअसही। (यथा भणति प्रियसखी।)

(इति तिस्रस्तथा कुर्वन्ति।)

राधिका—(उत्तरां वनलेखामासाद्य सविमर्शम्।) णूणं कण्हो एत्थ पत्तो हुविस्सदि जं मं पेक्खन्तो दक्खिणं पइट्ठो। (नूनं कृष्णोऽत्र प्राप्तो भविष्यति, यन्मां पश्यन्दक्षिणं प्रविष्टः।)

स हरिरिति भवतीभिः स्वान्तहारी हरिण्यो
हरिरिह किमपाङ्गातिथ्यसङ्गी व्यधायि।
यदनुरणितवंशीकाकलीभिर्मुखेभ्यः
सुखतृणकवला वः सामिलीढाः स्खलन्ति॥ २७॥

(पुरोऽभ्युपेत्य समन्तात्पश्यन्ती। संस्कृतेन।)

ललिता—सखी राधे, कृष्ण को नहीं देखने से दुःखी मत होओ। इसको देखा हुआ ही समझो उससे बिछुड़ कर हम लोग चारों ओर घूमें।

राधिका—प्यारी सखी की जैसी आज्ञा।

(तीनों सखियाँ चारों ओर घूमती हैं)

राधिका—(उत्तर दिशा की वनपंक्ति के पास पहुँच कर विचारपूर्वक) कृष्ण यहाँ अवश्य मिलेगा क्योंकि मुझको देखता हुआ वह दक्षिण में प्रविष्ट हुआ है।

हे हरिणियो, क्या तुम लोगों ने इधर उस मनोहारी कृष्ण को अपने नयन-प्रान्त का अतिथि बनाया है। क्योंकि उसके द्वारा बजायी गयी वंशी की मधुर तानों से तुम लोगों के मुखों से तृण के ग्रास आधे चबाए हुए गिर रहे हैं। (अर्थात् मुरली की मधुर तान सुनकर तुम लोग घास चबाना भूल गयी हो, तो क्या तुम लोगों ने कृष्ण को इधर कहीं देखा है?) ॥ २७॥

(सामने आकर चारो ओर देखती हुई संस्कृत में)

यद्‌गलितमरन्दं वर्तते शाखिवृन्दं
मिलति च यदलब्धप्रेमघूर्णा खगाली।
तदिह न हि शिखण्डोत्तंसिनी सा प्रविष्टा
निखिलभुवनचेतोहारिणी कापि विद्या ॥ २८ ॥

(इति सव्यतः परिक्रम्य । संस्कृतेन ।)

विघूर्णन्तः पौष्पं न मधु लिहतेऽमी मधुलिहः
शुकोऽयं नादत्ते कलितजडिमा दाडिमफलम्।
विवर्णा पर्णाग्रं चरति हरिणीयं न हरितं
पथानेन स्वामी तदिभवरगामी हरिरगात् ॥ २९ ॥

(पुरो गत्वा ।) एसा वामदो काली तमालाअली दीसइ। (इति सचिवंधरं निभाल्य । संस्कृतेन) (एषा वामतः काली तमालावली दृश्यते ।)

नैसर्गिकाण्यपि निरर्गलचापलानि
हित्वाद्य संकुलतनुः पुलकाङ्कुरेण।

चूँकि वृक्षसमूह से पुष्परस नहीं चू रहा है। स्नेह न पाकर पक्षिपंक्ति इधर-उधर चक्कर काट रही है। तो यहाँ पर मयूरपुच्छ को अलंकृत करने तथा समस्त भुवन के मन को हर लेने वाली वह कोई विद्या नहीं प्रविष्ट हुई है। (अर्थात् इस ओर कृष्ण नहीं आये हैं ? ॥ २८ ॥

(बाँयीं ओर घूम कर संस्कृत में)

चक्कर काटते हुए ये भौंरे फूल के रस को नहीं पी रहे हैं। यह शुक जडतावश अनारफल नहीं खा रहा है। यह दुःखी हरिणी हरी घास की फुलंगी को नहीं चर रही है। अतः श्रेष्ठ गज के समान गतिवाला स्वामी हरिकृष्ण इस मार्ग से गया है ॥ २९ ॥

(आगे बढ़कर) बायीं ओर काले रंग की यह तमालश्रेणी दिखायी पड़ रही है। (टेढ़े गर्दन से देखकर। संस्कृत में) स्वाभाविक चंचलता को भी छोड़ कर आज यह वानरीपंक्ति तमाल की शाखा से लिपट कर रोमांचित

दृष्टिं चिरेण परिरुध्य तमालशाखा
शाखामृगीततिरियं किमधस्तनोति ॥ ३० ॥

ता एसा मञ्जुला ताविञ्छणिउञ्जसालिआ पेक्खिदव्वा। (तदेषा मञ्जुला तापिच्छनिकुञ्जशालिका प्रेक्षितव्या।)

(प्रविश्य।)

कृष्णः—(स्वगतम्।) सत्यमस्याश्चित्तचत्वरसंगत्वरी प्रेमावलिरेव मदुद्देशदूती। यदलम्बितं विज्ञातभूयिष्ठोऽस्मि संवृत्तः। ततः स्थाणुरिव निश्चलस्तिष्ठामि। (इति तथा स्थितः।)

राधिका—(मूर्धानमानमय्य कृष्णं पश्यन्ती। सव्याजम्।) एत्थ कण्हो णत्थि। (अत्र कृष्णो नास्ति।)

कृष्णः—(स्वगतम्।) दिष्ट्या न दृष्टोऽस्मि।

राधिका—(सस्मितम्।) एसो णीलो मणिकीलो ज्जेव्व रेहदि। (एष नीलो मणिकील एव तिष्ठति।)

कृष्णः—नूनं घनान्धकारतो नाहं प्रत्यभिज्ञातः।

हो बहुत देर से नीचे की ओर अपनी आँखें क्यों फैला रही है ? ॥ ३० ॥

तो इस सुन्दर तमाल-कुञ्ज को देखना चाहिए।

(प्रवेश करके)

कृष्ण (मन ही मन) सचमुच इसके चित्तरूपी आंगन में संगमशील प्रेमावलि ही मेरे स्थान की सूचिका है। क्योंकि मेरी चतुराई अच्छी तरह से सबलोग जान गये हैं। इसलिए स्तम्भ के समान स्थिर होकर बैठता हूँ। (निश्चल होकर बैठते हैं)

राधिका—(शिर झुका कर कृष्ण को देखती हुई। व्याजपूर्वक) यहाँ कृष्ण नहीं है।

कृष्ण—(मन में) सौभाग्य से मैं देखा नहीं गया।

राधिका—(मुस्कराहट के साथ) यह तो नीलमणिकील ही है।

कृष्ण—सघन अन्धकार के कारण मैं निश्चय ही पहचाना नहीं गया।

राधिका—अम्हहे, उज्जलदा इन्दणीलकीलस्स ।

कृष्णः—(सहर्षमपवार्य ।)

रे ध्वान्तमण्डल सखे शरणागतोऽस्मि
विस्तारयस्व तरसा निजवैभवानि ।
अभ्याशमभ्युपगतापि मुहुर्यथा सा
नावैति मां नवकुरङ्गतरङ्गिनेत्रा ॥ ३१ ॥

राधिका—(स्मित्वा ।) अच्चरिअं अच्चरिअम् । इमस्स णीलोवलस्स अन्तराले पडिबिम्बिदा चन्दाअली लक्खीअदि ।

कृष्णः—(स्मितं कृत्वा स्वगतम् ।) कथं संविदाना खलु नर्मातनोति । (इत्युत्थाय । प्रकाशम् ।) प्रिये, सत्यमात्थ । यदयं त्वदास्यचन्द्रो मे हृद्वृत्तितरङ्गेषु बिम्बितश्चन्द्रावली बभूव ।

राधिका—अम्ह हे । कथं तुमं जेव्व । तदो णेदं अच्चरिअम् । (अहो । कथं त्वमेव । ततो नेदमाश्चर्यम् ।)

कृष्णः—विलासिनि, किमनेन विश्लेषसंपादेन केलिनर्मणा ।

राधिका—अहा, इन्द्रनीलकील की उज्ज्वलता अद्भुत है ।

कृष्ण—हे मित्र अन्धकारसमूह, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ । अपने ऐश्वर्य को शीघ्र फैलाओ । जिससे नवीन हरिण के समान चंचल नेत्रोंवाली यह राधिका पुनः समीप आकर भी मुझे न पहचाने ॥ ३१ ॥

राधिका—(मुस्करा कर) आश्चर्य है आश्चर्य, इस नीलमणि के बीच में चन्द्रावली भी प्रतिबिम्बित दिखायी पड़ रही है ।

कृष्ण—(मुस्करा कर मन ही मन) किस प्रकार जानती हुई विनोद बढ़ा रही है ! (उठ कर । प्रकट) प्रिये, तुमने ठीक कहा । क्योंकि तुम्हारा यह मुख चन्द्र मेरी चित्तवृत्तिरूपी लहरों में बिम्बित होकर चन्द्रावली हो गया है ।

राधिका—अहा ! क्या तुम्हीं हो, तब कोई अचरज की बात नहीं ।

कृष्ण—विलासिनि, वियोग उत्पन्न करनेवाली इस केलिक्रीडा से क्या लाभ ? तो आओ । मद के समान गन्धवान् पुष्पसमूह से पूर्ण शिखरवाले

त्पदेहि । दानगन्धिना कुसुमवृन्देन पूर्णमूर्धनि सप्तपर्णकुञ्जे क्षणं विश्रा-
मसौख्यमनुभवाम ।

(इति तथा स्थितौ ।)

ललिता—विसाहे, पेक्ख । कण्हेण संगदा पिअसही, जं तस्स पदेहिं संमिस्सिदाइं एदाए पदाइं दीसन्ति । (विशाखे, पश्य । कृष्णेन संगता प्रियसखी, यत्तस्य पदैः संमिश्रितान्येतस्याः पदानि दृश्यन्ते ।)

विशाखा—(पदाङ्काननुसृत्य संस्कृतेन ।)

प्रियसखि परिरम्भानाभिमुख्यानुबन्धा-
दसदृशविनिवेशान्नर्मलौल्योर्जितानि ।
इयमविषममन्दन्यासतो जल्पगोष्ठीं
पदततिरिह राधाकृष्णयोरातनोति ॥ ३२ ॥

कृष्णः—प्रिये, नातिदूरे कोमलोऽयं काञ्चीध्वनिरुदञ्चति । तत-स्तूष्णीं शृणुवः ।

विशाखा—हला, विल्थिण्णवल्लिमण्डलकुण्डलिदे वि वणखण्डे

सप्तपर्ण के कुञ्ज में कुछ देर विश्राम-सुख का अनुभव करें । (दोनों कुञ्ज में जाकर बैठते हैं ।)

ललिता—विशाखे देखो । प्रियसखी (राधा) कृष्ण से मिल गयी, क्योंकि उसके पैर के निशान के साथ इस राधा के पैर के निशान मिले हुए नजर आ रहे हैं ।

विशाखा—(पैर के निशान का अनुसरण करके संस्कृत में) हे सखि ललिते, आलिंगन में अनुपयुक्त इस तरह के असदृश उपवेशन से परिहासपूर्वक प्रेम प्रदर्शन ही हुआ है । यह पदचिह्न समुदाय आमने-सामने न पड़ने से राधा और कृष्ण की बातचीत का परिचय दे रहा है ॥ ३१ ॥

कृष्ण—प्रिये, समीप में ही करधनी की आवाज हो रही है । अतः चुपचाप सुनें ।

विशाखा—सखि, लतामण्डल से आच्छन्न भी इस वनखण्ड में प्यारी

पिअसहीए कधं कण्हो तुरिदं लद्धो । (सखि, विस्तीर्णवल्लिमण्डलकुण्डलितेऽपि वनखण्डे प्रियसख्या कथं कृष्णस्त्वरितं लब्धः ।)

ललिता—

गरुअं रमई जहिं जो ण तस्स सो होइ दुल्लहो भुवणे ।
मउलंतम्मिरसाले कलकण्ठी तक्खणं मिलई ॥२३॥

(गुरु रमते यत्र यः स(न) तस्य न(स) भवति दुर्लभो भुवने ।
मुकुलायमानरसाले कलकण्ठी तत्क्षणं मिलति ॥)

कृष्णः—प्रिये, प्रत्यासन्ने तव सख्यौ । तदुभे परिहसिष्यन्नन्तरितो भवामि । (इति तथा स्थितः ।)

ललिता—(परिक्रम्य पुरो राधामालोक्य च सहर्षम् ।) हला, कुदो सो णाअरो । (सखि कुतः स नागरः ।)

राधिका—(सस्मितम् ।) का क्खु तं जाणादि । (का खलु तं जानाति ।)

ललिता—(सनर्मस्मितं संस्कृतमाश्रित्य ।)

कचमुक्तावलिरपि ययो निर्गुणदशां

सखी राधा ने कृष्ण को शीघ्र कैसे पा लिया ?

ललिता—जहाँ जिसका गाढ़ अनुराग रहता है, वह उसके लिए संसार में दुर्लभ नहीं है । आम में बौर के लगते ही कोयल उसी क्षण मिलती है ॥ २३ ॥

विमर्श—कृष्ण में राधा का प्रगाढ़ प्रेम है अतः वह शीघ्र ही कृष्ण को पा गयी है । जहाँ स्वाभाविक अनुराग का विलास है वहाँ उनके मिलन में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती ।

कृष्ण—प्रिये, तुम्हारी दोनों सखियाँ समीप आ गयीं अतः इनसे मजाक करने के लिए छिप जाता हूँ । (यह कह कर छिप जाते हैं ।)

ललिता—(घूमकर और सामने राधा को देखकर खुशी से) सखि वह नागर कहाँ है ?

राधिका—(मुस्कराहट के साथ) उसे कौन जानती है ?

ललिता—(विनोदपूर्वक हँसती हुई संस्कृत में) अरी उदारहृदये, तुम्हारे बाल खुल गये हैं !, मुक्तावली भी टूट कर बिखर गयी है, तुम्हारे दोनों ओठों

विशुद्धं ते दन्तच्छदयुगमभूद्दान्तहृदये ।
अबन्धासीत्काञ्ची तदिव सखि युक्तासि हरिणा
सतीनां वः कृत्यं किमुचितमिदं गोकुलभुवाम् ॥ ३४ ॥

कृष्णः—(पुरोऽनुसृत्य ।) ललिते, नाहमपराध्यामि सख्यै । वने संगोपितोऽस्मि ।

ललिता—किंति पिअसहीए संगोवणिज्जो तुमम् । (किमिति प्रियसख्या संगोपनीयस्त्वम् ।)

कृष्णः—सुन्दरि, निजकन्दर्पकलाप्रागल्भ्यस्यापलापाय । (इत्यङ्गुल्या दर्शयन् ।) पश्य पश्य ।

कठोराग्रैर्भूयो व्रणमजनयद्वक्षसि नखै-

(चुम्बन के कारण) की लाली धुल गयी है । करधनी बन्धन की गाँठ से खुलकर सरक गयी है सखि, तुम कृष्ण से मिली हो । गोकुल में रहनेवाली तुम सती ललनाओं के लिए यह कार्य क्या उचित है ? अर्थात् नहीं ॥ ३४ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में अधिकतर पद्य श्लिष्ट हैं अतः कृष्ण-संयोग से मोक्ष अर्थ भी उपस्थित होता है । जिस प्रकार कृष्ण से संयोग होने पर उनके आलिंगन-चुम्बनादि से काञ्ची-स्खलनादि संभव है, उसी प्रकार कृष्ण अर्थात् परमेश्वर के साक्षात्कार होने पर संसारबन्धन के शिथिल होने से मोक्ष भी संभव है, किन्तु गोकुल में मोक्ष का विधान उचित नहीं है क्योंकि यह तो प्रेमभक्ति का क्षेत्र है । गोकुल में सगुण ब्रह्म की उपासना प्रेमभक्ति से की जाती है, निर्गुण ब्रह्म की उपासना ज्ञानयोग से नहीं ।

कृष्ण—(सामने आकर) ललिते, तुम्हारी सखी के प्रति मेरा अपराध नहीं है । मैं वन में छिपाया गया हूँ ।

ललिता—क्यों तुम प्यारी सखी के द्वारा छिपाने योग्य हो ?

कृष्ण—सुन्दरि, अपनी कामकला की प्रगल्भता को छिपाने के लिए । (यह कह कर अंगुली से दिखाते हुए) देखो, देखो ।

अपने कठोर नख की नोकों से बार-बार मेरे छाती में इसने घाव कर दिया

बलादाक्रामन्ती व्यकिरदपि मां पिच्छरचनाम् ।
विकृष्य च्छिन्नाङ्गीमकृत वनमालां च रुचिरा-
मिदानीं जानीते न किमपि पुरस्ते प्रियसखी ॥३५॥

राधा—(सापत्रपम् ।) हुं, अप्पणा कदुअ परं दूसेदुं पण्डिदोसि । (हुँ, आत्मना कृत्वा परं दूषयितुं पण्डितोऽसि ।)

(नेपथ्ये ।)

जटिला—फुडमञ्जरीहिं—(इत्यर्धोक्ते । (स्फुटमञ्जरीभिः ।)

राधिका—(सत्रासम् ।) अच्चाहिदं अच्चाहिदम् । भअंकरी वुड्ढिआ । ता तुरिअं पलाएम्ह । (इति सखीभ्यां सह निष्क्रान्ता ।) (अत्याहितमत्याहितम् । भयंकरी वृद्धा । तत्त्वरितं पलायामः ।)

(पुनर्नेपथ्ये ।)

विहूदिमन्तो पराअपुञ्जेण हरभत्ता विअ सरए फ्फुरन्ति सत्तच्छदप्पअरा । (विभूतिमन्तः परागपुञ्जेन हरभक्ता इव शरदि स्फुरन्ति सप्तच्छदप्रवराः ।)

है । बलपूर्वक झपटकर मेरे मोरपंख के मुकुट को बिखेर दिया, सुन्दर वैजयन्ती माला को, जो टूट गयी है, खींच कर यह प्यारी सखी तुम्हारे आगे कुछ नहीं जानती है । (अर्थात् सब कुछ करके भी अनजान बन बैठी है) ॥ १५ ॥

राधा—हूँ, अपने करके दूसरे को दोष देने में चतुर हो ।

(नेपथ्य में)

जटिला—विकसित मञ्जरियों से (इतना आधा कहने पर)

राधिका—(भयपूर्वक) अनर्थ, अनर्थ । डरावनी बूढ़ी । तो हम लोग शीघ्र भाग चलें । (दोनों सखियों के साथ चली गयी)

(फिर नेपथ्य में)

भस्म युक्त हर भक्त की भाँति परागपुञ्ज से युक्त श्रेष्ठ सप्तच्छद शरत काल में विकसित हो रहे हैं ।

कृष्णः—(सवैलक्ष्यम् ।) हन्त, सप्तपर्णं वर्णयता जटिलेति कटूद्गारेण बटुना कदर्थितोऽस्मि । तदग्रे सुहृन्मण्डलमेव प्रयामि ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति शरद्विहारो नाम षष्ठोऽङ्कः ।

—:o:—

कृष्ण—(आश्चर्य से) अरे, सप्तपर्ण का वर्णन करते हुए 'जटिला है' इस प्रकार कटु बोलने वाले मधुमंगल ने मुझे ठग लिया है । तो आगे मित्र-मण्डली में ही जाता हूँ । (यह कह कर चले जाते हैं) ।

शरद् विहार नामक षष्ठ अङ्क समाप्त ।

—:o:—

सप्तमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति वृन्दा ।)

वृन्दा—(समन्तादवलोक्य ।)

कदम्बाली जृम्भाभरपरिमलोद्गारिपवना
स्फुटद्यूथी यूथीकृतमधुपमानप्रणयिनी ।
नटत्केकिस्तोमा मृदुलयवसस्या मलिनभू-
स्तपान्तेऽद्य स्वान्तं मम रमयति द्वादशवनी ॥ १ ॥

(नेपथ्ये दृष्टिं निक्षिप्य ।) कथमसौ पौर्णमासी निजपर्णकुटीरोपान्तवाटिकायामभिमन्युना संकथयन्ती वर्तते। तदहं क्षणमत्रैव तिष्ठेयम् ।

(प्रविश्य तथाभूता पौर्णमासी ।)

पौर्णमासी—वत्साभिमन्यो, किमर्थं प्रातरेवाहमुपसादितास्मि । (तवाज्ञां ग्रहीतुम् ।)

तदनन्तर वृन्दा प्रवेश करती है ।

वृन्दा—(सभी ओर देखकर) (कहीं पर) प्रफुल्लित कदम्ब-पंक्ति के सौरभ को पवन बिखेर रहा है (तो कहीं पर) भौंरों के झुंड के मान को प्रेयसी जूही खिल रही है । (कहीं) मयूरी का समूह नाच रहा है और (कहीं) कोमल यव के पौधों से धरती श्यामला दिखायी पड़ रही है । इस प्रकार ग्रीष्म के अन्त में (वर्षा ऋतु में) आज वृन्दावन मेरे मन को आनन्दित कर रहा है ॥ १ ॥

(नेपथ्य में दृष्टि डाल कर) अपनी कुटिया के समीपवर्ती उद्यान में अभिमन्यु से बातें करती हुई क्या यह पूर्णिमा है ? तो एक क्षण मैं यहीं पर बैठ जाऊँ ।

(अभिमन्यु के साथ बातें करती पौर्णमासी प्रवेश करके)

पौर्णमासी—बेटा अभिमन्यु, प्रातः काल ही मेरे समीप क्यों आये हो ?

अभिमन्युः—तुम्ह आणं गहीदुम् । (तवाज्ञां ग्रहीतुम् ।)

पौर्णमासी—कस्मिन्नर्थे ।

अभिमन्युः—वारिसट्टाणवीए महुरापत्थाणे । (वार्षमानव्या मथुराप्रस्थाने ।)

पौर्णमासी—(सव्यथम् ।) कस्तत्र हेतुः ।

अभिमन्युः—दोण्हं राहामाहवाणं चापलं जेव्व । (द्वयो राधामाधवयोश्चापलमेव ।)

पौर्णमासी—वीर, केन तवेदं वर्णितम् ।

अभिमन्युः—पिअवअस्सेण गोवद्धणेण । (प्रियवयस्येन गोवर्धनेन ।)

पौर्णमासी—वत्साभिमन्यो, चतुरंमन्योऽपि त्वमनार्यबुद्धिरसि । येन भोजेन्द्रवल्लभस्य कौटिल्यचक्रेण विभ्रम्यसे ।

अभिमन्युः—अदिपसिद्धा एसा पउत्ती केण वा ण कहिज्जइ । (अतिप्रसिद्धैषा प्रवृत्तिः केन वा न कथ्यते ।)

पौर्णमासी—पुत्र, नूनं कर्णजपानामुपजापेन लुप्तविवेकोऽसि । तदाकर्णय ।

अभिमन्यु—तुम्हारी आज्ञा लेने के लिए ।

पौर्णमासी—किस विषय में ?

अभिमन्यु—राधिका के मथुरा चलने के सम्बन्ध में ।

पौर्णमासी—उसमें क्या कारण है ?

अभिमन्यु—राधा और माधव-इन दोनों की चंचलता ही ।

पौर्णमासी—वीर, तुमसे किसने यह कहा है ?

अभिमन्यु—प्रियमित्र गोवर्धन ने ।

पौर्णमासी—बेटा अभिमन्यु अपने को चतुर समझ कर भी तुम नीच बुद्धि हो जिससे कंस की कुटिलता के चक्र से चक्कर खा रहे हो ।

अभिमन्यु—अत्यधिक प्रसिद्ध इस प्रवृत्ति को कौन नहीं कहता है ? (बात फैल गयी है)

पौर्णमासी—बेटा, चुगलखोरों के बहकावे में आकर तुमने अवश्य अपने विवेक को खो दिया है । तो सुनो ।

अभिमन्युः—आणवेहि। (आज्ञापय।)

पौर्णमासी—वत्स, येन लावण्यगन्धलवलुब्धेन कंसशार्दूलेन स्वयमेव राधामृगी मृग्यते, तस्य दारुणस्य कंसशार्दूलस्य हस्तोपरि न्याय्यः कथमस्याः प्रक्षेपः।

अभिमन्युः—भअवदि, तत्थ का चिन्ता। सो क्खु कुसली होदु हिं सुहिसत्तमो गोवड्ढणो, जेण विज्जामाहुरीहिं माहुरिन्दो वसीकिओ। (भगवति, तत्र का चिन्ता। स खलु कुशली भवतु सुहृत्तमो गोवर्धनः, येन विद्यामाधुरीभिर्मथुरेन्द्रो वशीकृतः।)

पौर्णमासी—(सखेदम्। क्षणमनुध्याय।) हंहो धन्यानां मूर्धन्य गोविन्द, मातुर्मातुलेयोऽसि। कथमल्पायुषां गोकुलद्वेषिणां मण्डलपालितामालम्बसे। तदद्य कयापि मर्यादया त्वां पर्यापयितुमिच्छामि।

अभिमन्युः—आणवेदु तत्थहोदी। (आज्ञापयतु तत्रभवती।)

पौर्णमासी—वत्स, सा काचिन्मत्सरकलितापि किंवदन्ती यदि त्वया नातथ्यतया प्रतीयते, ततः स्वयमेव चक्षुषोरपरोक्षीकृत्य यथेष्टं चेष्टनीयम्।

अभिमन्यु—आज्ञा दो।

पौर्णमासी—बेटा, जो कंसरूपी सिंह सौन्दर्य के आस्वाद मात्र को पाकर स्वयं राधारूपी हरिणी को खोज रहा है, उस भयंकर कंस-सिंह के हाथ में इसे रख छोड़ना क्या न्यायोचित है।

अभिमन्यु—देवि, उसमें क्या चिन्ता है ! वह मेरा मित्र गोवर्धन सकुशल रहे जिसने अपनी विद्या की मधुरता से मथुराधीश कंस को वश में कर लिया है।

पौर्णमासी—(दुःख के साथ एक क्षण सोचकर)

अरे धन्य पुरुषों में श्रेष्ठ गोविन्द, (गोपालक) माता के मामा के पुत्र हो। तुम गोकुल के अभागे शत्रुओं के समूह में रहने वालों का सहारा क्यों ले रहे हो ! तो आज मैं तुम्हें किसी मर्यादा से सीमित करना चाहती हूँ।

अभिमन्यु—पूजनीया आप आदेश दें।

पौर्णमासी—बेटा, द्वेष के कारण मनगढ़न्त अफवाह यदि तुम्हें झूठ न मालूम पड़े तो तुम स्वयं आँखों से देखकर उचित उपाय करो।

अभिमन्युः—(सप्रश्रयम् ।) भअवदि, सिरोगहिदं दे णिदेसकुसुमम् । (भगवति, शिरोगृहीतं ते निदेशकुसुमम् ।)

पौर्णमासी—(सानन्दम् ।) सोमानन, गोमानत्र भूयाः ।

अभिमन्युः—भअवदि, अम्बा मं पुणो पुणो भणादि—पुत्त, चन्दाअलिचण्डिअच्चणेण गोअड्ढणो जहत्थणामा संवुत्तो । ता वहूडिया वि तत्थ दीक्खाविज्जदु त्ति । (भगवति, अम्बा मां पुनः पुनर्भणति—पुत्र, चन्द्रावलिचण्ड्यर्चनेन गोवर्धनो यथार्थनामा संवृत्तः । तस्माद्वधूरपि तत्र दीक्षायतामिति ।)

पौर्णमासी—मङ्गलमते, सर्वमङ्गलाराधने दीक्षितामविलम्बमेव वार्षभानवीं विद्धि ।

अभिमन्युः—भअवदि, अणुकम्पिदो म्हि । (इति निष्क्रान्तः ।) (भगवति, अनुकम्पितोऽस्मि ।)

वृन्दा—(परिक्रम्य ।) वन्दे भगवतीम् ।

पौर्णमासी—(विलोक्य शुभाशीर्भिरभिनन्द्य च ।) वत्से, कामं कृता-

---

अभिमन्यु—(विनम्रतापूर्वक) देवि, आपके आदेशपुष्प को मैंने शिरोधार्य किया ।

पौर्णमासी—(आनन्दपूर्वक) चन्द्रमुख, तुम्हारी गोसम्पत्ति बढ़े ।

अभिमन्यु—देवि, मेरी माता मुझे बार-बार कहती है—"पुत्र, चन्द्रावली के द्वारा चण्डी के पूजा से गोवर्धन का नाम सार्थक हुआ । इसलिए वधू राधा को भी इसमें दीक्षित कर दो" ।

पौर्णमासी—कल्याणमते, सर्वमङ्गला—चण्डी (सर्वमंगल कृष्ण) के आराधन कार्य में राधा को शीघ्र ही दीक्षित जान लो ।

अभिमन्यु—देवि, आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की । (यह कहकर चला गया)

वृन्दा—(घूमकर) भगवती को प्रणाम करती हूँ ।

पौर्णमासी—(देखकर और शुभाशीर्वादों में स्वागत करके) बेटी तुम

र्थासि। तदावेदय राधामाधवयोर्निकुञ्जकेलिमाधुरीम्।

वृन्दा—

सर्वस्वं प्रथमरसस्य यः प्रथीयान्
कंसारेरुदयति राधया विलासः।
वक्तुं को विरमति तं जनः समन्ता-
दानन्दस्तिरयति चेद् गिरां न वृत्तिम्॥ २॥

पौर्णमासी—(सानन्दम्। पुत्रि वृन्दे,

हरिरेष न चेदवातरिष्यन् मथुरायां मधुराक्षिराधिका च।
अभविष्यदियं वृथा विसृष्टिर्मकराङ्कस्तु विशेषतस्तदात्र॥ ३॥

तदद्य गोष्ठमध्ये तवोपसत्तिर्मां विस्मारयति।

वृन्दा—भगवति, त्वरते कोऽपि गरीयानर्थः। तदत्र ललिताम-

पूर्ण सफल हुई हो। अतः राधा और माधव की कुञ्जगत क्रीडामाधुरी का वर्णन करो।

वृन्दा—राधा के साथ कंसारि कृष्ण के महान विलास का, जोकि शृंगाररस का सर्वस्व है, कौन व्यक्ति वर्णन करने में थकता है। यदि आनन्द वाणी की प्रवृत्ति को रोक नहीं देता। (अर्थात् शृङ्गाररस के प्राण राधा व कृष्ण के क्रीडा-विलास का वर्णन करते लोग नहीं अघाते। केवल आनन्ददशा में वाणी का व्यापार रुक जाता है।)॥ २॥

पौर्णमासी—(आनन्दपूर्वक) बेटी वृन्दे, यदि मथुरा में यह कृष्ण सुनयना राधा अवतीर्ण नहीं होतीं तो सारी सृष्टि ही व्यर्थ हो जाती और विशेषकर कामदेव तो यहाँ सर्वथा बेकार हो जाता।

(अर्थात् इन दोनों का अवतार ने समस्त संसार और विशेषकर कामदेव को सफल बनाया है।)॥ ३॥

अतः गोष्ठ के बीच तुम्हारी उपस्थिति मुझे भुलावा दे रही है। (अर्थात् तुम्हारे आने से मैं आत्मविस्मृत हो रही हूँ)

वृन्दा—देवि, किसी विशेष प्रयोजन से शीघ्रता है। अतः यहाँ ललिता की

पेक्षमाणास्मि ।

पौर्णमासी—कीदृशोऽयम् ।

वृन्दा—पूर्वेद्युरादिष्टास्मि गोविन्देन । यथा—

आहर गौरीतीर्थे मधुरश्रियं तत्र रन्तुमिच्छामि ।
पद्मावलम्बिकरया प्रियया पद्मावतंसिकया ॥ ४ ॥

पौर्णमासी—युक्तमादिष्टं यदद्य सौभाग्यपूर्णिमा । तथा हि—

प्रसूनैरद्भुतैः कान्ता कान्तेन श्रावणीदिने ।
प्रसाधिता प्रसिद्धेन सौभाग्येन विवर्धते ॥ ५ ॥

ततः ।

वृन्दा—ततश्च तद्वृत्ते शारिकामुखतः सखीसंसदि संचारिते यथा-र्थवत्तर्कितराधार्थसिद्धिरपि पद्मा ललितां कटाक्षयन्ती हठादवादीत्—

अपेक्षा कर रही हूँ ।

पौर्णमासी—यह कैसा प्रयोजन है ?

वृन्दा—पिछले दिन गोविन्द-कृष्ण ने आदेश दिया है ।

यथा—

"गौरीतीर्थ में वसन्त की शोभा लाओ । (क्योंकि) वहाँ पर मैं पद्मा का सहारा लिए कमल के कर्णफूल वाली प्रिया (राधा) के साथ विहार करना चाहता हूँ" ॥ ४ ॥

पौर्णमासी—आदेश उचित है चूँकि आज सौभाग्य पूर्णिमा है । क्योंकि—श्रावण की पूर्णिमा तिथि में प्रिय के द्वारा अद्भुत फूलों से सजायी गयी प्रिया का प्रसिद्ध सौभाग्य बढ़ता है ॥ ५ ॥

उसके बाद ।

वृन्दा—तदनन्तर मैना के मुँह से सखी समाज में उस समाचार के फैल जाने पर वस्तुतः राधा के सफल मनोरथ होने का अनुमान कर लेने पर भी ललिता पर कटाक्ष करती हुई पद्मा ने सहसा यह कहा—

उत्फुल्लमूर्तेः समम्भुल्लसन्त्याश्चन्द्रावलेश्चन्द्रकमण्डलेन ।
म्लापयन्ति सौभाग्यभरप्रभाभिर्गर्वान्धगोपीवदनाम्बुजानि ॥६॥

पौर्णमासी—(विहस्य ।) ततस्ततः ।

वृन्दा—ततश्च स्मेरया दृष्टिमुद्रयैव तामधीरामवधीरयन्ती ललिता मया सह राधामुपसाद्य कल्ये प्रस्थानाय तामतिसंभ्रमं लम्भयामास । पश्य वृत्तेऽद्य यामे सेयं नाजगाम ।

(प्रविश्य ।)

ललिता—सहि वुन्दे, जुत्तं गव्वाइदं पउमाए । दाणिं जाणिदम् । तत्थ पत्थाणे कुदो अम्हाणं जोग्गदा । (सखि वृन्दे, युक्तं गर्वायितं पद्मया । इदानीं ज्ञातम् । तत्र प्रस्थाने कुतोऽस्माकं योग्यता ।)

पौर्णमासी—पुत्रि, कथमेवम् ।

ललिता—भअवदि, तुम्ह पुरदो अम्हाणं तिण्णदोहग्गसल्लेण किं उग्घडिदेण । (भगवति, तव पुरतोऽस्माकं तीक्ष्णदौर्भाग्यशल्येन किमुद्घाटितेन ।)

चन्द्रकमण्डल—कृष्ण के साथ उल्लसित होती हुई प्रसन्न आकृतिवाली चन्द्रावली के सौभाग्य समूह की छटाओं से अहंकार के कारण अंधी गोपियों के मुख कमल मुरझा जायेंगे ॥ ६ ॥

पौर्णमासी—(हँसकर) उसके बाद ?

वृन्दा—और तब प्रफुल्लित आँख के इशारे से ही उस चञ्चला की अवहेलना करती ललिता मेरे साथ राधा के समीप जाकर कल चलने के लिए शीघ्र उसको मेरे पास पहुँचा गयी । देखो, एक पहर बीत जाने पर भी वह अभी तक नहीं आयी है ।

(प्रवेश करके)

ललिता—सखि वृन्दे, पद्मा का अहंकार करना उचित है । अब मालूम हुआ । वहाँ जाने में हम लोगों की सामर्थ्य कहाँ ?

पौर्णमासी—बेटी, ऐसा क्यों ?

ललिता—देवि, आपके समक्ष अपनी असह्य वेदना को प्रकट करने से क्या काम ?

पौर्णमासी—वत्से, शुश्रूषुरस्मि। वर्ण्यताम्।

ललिता—(सास्रम्।) अज्जे, गोरपट्टसुत्तेण गण्ठिदा एक्का दिव्व-माला पिअसहीए कण्हस्स दिण्णा। सा अम्हेहिं पउमिआधम्मिल्ले तक्कालं ज्जेव्व दिट्ठा। (आर्ये, गौरपट्टसूत्रेण ग्रथितैका दिव्यमाला प्रियसख्या कृष्णाय दत्ता। साऽस्माभिः पद्माधम्मिल्ले तत्कालमेव दृष्टा।)

पौर्णमासी—स्थाने ग्लानिरियम्। बाढमसांप्रतमेतद् गोविन्दस्य।

वृन्दा—शान्तममङ्गलम्।

पौर्णमासी—वृन्दे, कथ्यतां किं नामेदम्।

वृन्दा—वर्णितं मे मनुष्यवाक्यया तया कक्खटिकया—कदम्ब-शाखाया मालामालम्ब्य कालिन्दीमवगाढे वनमालिनि संभ्रमृचे च केतकीपरागचक्रचण्डे मरुन्मण्डले पद्मा किलेमां जहार। मारुतस्तु मुधा कलङ्कं जगामेति।

ललिता—धुत्ते, मुञ्च णं वञ्चणम्। (धूर्ते, मुञ्चेदं वञ्चनम्।)

पौर्णमासी—बेटी, सुनना चाहती हूँ। बताओ।

ललिता—(आँसू बहाती हुई) आर्ये, श्वेतवस्त्र के सूत्र से एक दिव्यमाला गूँथ कर सखी (राधा) ने कृष्ण को समर्पित किया। उस माला को हम लोगों ने उसीसमय पद्मा के जूड़ा में देखा।

पौर्णमासी—यह तो लज्जा का उपयुक्त अवसर है। गोविन्द (कृष्ण) के लिए यह नितान्त अनुचित है।

वृन्दा—अमंगल शान्त हो।

पौर्णमासी—वृन्दे, कहो यह क्या है?

वृन्दा—मनुष्य की बोली बोलने वाली उस कक्खटिका (पक्षीविशेष) ने मुझे यह बताया—कदम्ब की डाल से माला लटका कर वनमाली कृष्ण के यमुना में स्नान के लिए उतरने पर तथा केतकी पुष्प के परागसमूह से वायुमंडल के उग्र होने पर पद्मा ने उस माला को चुरा लिया। वायु तो व्यर्थ ही कलंकित हुआ।

ललिता—धूर्ते, इस धोखेबाजी को छोड़ो।

वृन्दा—पुष्पमञ्जरीभ्यः शपे ।

ललिता—(विश्वस्य ।) हला, सच्चं सच्चम् । अम्ह पुरदो अप्पणो सोहग्गं विक्खेवेन्ती पउमिआ मालं विवरेदि । कण्हमित्ताणं अग्गदो उण णं संवरेदि । (हला, सत्यं सत्यम् । अस्मत्पुरत आत्मनः सौभाग्यं विख्यापयन्ती पद्मा मालां विवृणोति । कृष्णमित्राणामग्रतः पुनरेनां संवृणोति ।)

पौर्णमासी—पुत्रि ललिते, स्फुटमत्र पूर्णिमायां युष्माकमनुद्यमाय पद्मया तां छद्मचातुरीं प्रसार्य गौरीतीर्थं चन्द्रावली लम्भिता ।

वृन्दा—युक्तमाह भगवती । तदद्य गौरीतीर्थे राधिकोपनीतिः कल्याणी मे न प्रतिभाति ।

(प्रविश्य ।)

विशाखा—गोउलेस्सरीमुहादो अज्ज सोहग्गपुण्णिमं सुणिअ करालाए चन्दाअली अप्पभत्तुणो मल्लस्स पासे पत्थावीअदि । (गोकुलेश्वरीमुखतोऽद्य सौभाग्यपूर्णिमां श्रुत्वा करालया चन्द्रावली आत्मभर्तुर्मल्लस्य पार्श्वे प्रस्थाप्यते ।)

वृन्दा—फूल की मञ्जरियों का शपथ लेकर कहती हूँ ।

ललिता—(विश्वास करके) सखि, सच है सच है । हम लोगों के सामने अपने सौभाग्य को दिखाती हुई पद्मा माला को बाहर कर लेती है और कृष्ण के मित्रों के आगे इसे फिर छिपा लेती है ।

पौर्णमासी—बेटी ललिते, यहाँ स्पष्ट ही पूर्णिमा के दिन तुम लोगों को उद्योगशून्य (असफल) करने के लिए पद्मा ने उस छलपूर्ण चतुरता को फैलाकर चन्द्रावली को गौरीतीर्थ में पहुँचाया है ।

वृन्दा—देवी ने उचित कहा है । तो आज गौरीतीर्थ में राधा का जाना मुझे कल्याणदायक नहीं प्रतीत होता है ।

(प्रवेश करके)

विशाखा—गोकुलस्वामिनी (यशोदा) के मुँह से सौभाग्य पूर्णिमा को सुनकर कराला के द्वारा चन्द्रावली अपने स्वामी मल्ल के पास भेजी जा रही है ।

ललिता—(सहर्षम् ।) विसाहे, इट्ठदेओ सरोअणाहो दे पसीददु। ता तुवरीअदु। (विशाखे, इष्टदेवः सरोजनाथस्ते प्रसीदतु। त्वर्यताम्।)

पौर्णमासी—पुत्रि वृन्दे, कामप्यद्यतनीमभिमन्योर्दारुणां दुर्मन्त्रिमुद्रां राधायामावेद्य मयाप्यस्याः शङ्कापङ्कावलीसंक्षालनाय गौरीतीर्थे भवितव्यम्।

वृन्दा—भगवति, पूर्वेण गौरीतीर्थं लवङ्गकुञ्जस्य प्राङ्गणे सविशाखया राधया सार्धं साधयतु तत्रभवती। तावदावां माधवमासादयावः।

(पौर्णमासी विशाखया सह निष्क्रान्ताः।)

ललिता—(वृन्दया सह परिक्रम्य।) हला, पेक्खीअदु दाहिणे एसा दूरदो सेव्वाए समं जप्पन्ती पउमा। (हला, पश्यतु दक्षिणे एषा दूरतः शैव्यया समं जल्पन्ती पद्मा।)

वृन्दा—सखि, नासंगतं व्याहरेद्विशाखा। (इत्यग्रतो गत्वा सविमर्शम्।) सखि, परमौत्सुक्यसंभूतेन भूरिणा संभ्रमेण संभेदिते राधि-

---

ललिता—(प्रसन्नता से) विशाखे, भगवान् सूर्य तुम पर कृपा करें। तो शीघ्रता करो।

पौर्णमासी—बेटी वृन्दे, राधा के प्रति आज अभिमन्यु के किसी कष्टदायक दुष्ट विचार भाव को जानकर उसके शंकारूपी कीचड़-समूह को धोने के लिए मुझे भी गौरीतीर्थ जाना चाहिए।

वृन्दा—भगवति, गौरीतीर्थ के समीपवर्ती पूर्वदेश में विद्यमान लवङ्ग कुञ्ज के आँगन में विशाखा सहित राधा के साथ आप जाँय। तब तक हम दोनों (वृन्दा तथा ललिता) माधव के पास चलते हैं।

(पौर्णमासी विशाखा के साथ चली जाती है)

ललिता—(वृन्दा के साथ घूमकर) सखि, देखो, दायीं ओर दूर से शैव्या के साथ बात करती हुई पद्मा है।

वृन्दा—सखि, विशाखा का कहना झूठ न हो। (यह कह कर आगे बढ़कर विचारपूर्वक) सखि, अत्यधिक उत्सुकता से उत्पन्न पर्याप्त घबड़ाहट के

काविनयमनिर्धार्य तूर्णमावां विदूरमागते। तदत्र गङ्गापारे पौर्णमासीं क्षणं प्रतिपालयावः। (इति निष्क्रान्ते।)

(ततः प्रविशतः पद्माशैब्ये।)

पद्मा—सहि सेव्वे, मा क्खु दुम्मणा होहि। (सखि शैब्ये, मा खलु दुर्मना भव।)

शैव्या—पउमे, परमाहिट्ठस्स अलाहेण सलाहवं चित्तं समाधाउं ण क्खमाम्हि। (पद्मे, परमाभीष्टस्यालाभेन सलाघवं चित्तं समाधातुं न क्षमास्मि।)

(नेपथ्ये।)

पउमे, चन्दाअली आणिज्जउ गोअद्धणस्स पासम्मि झत्ति। णिव्वट्टइ वच्छा जह कुसुमेहिं सुणेवच्छा। (पद्मे, चन्द्रावली आनीयतां गोवर्धनस्य पार्श्वे झटिति। निर्वर्तते वत्सा यथा कुसुमैः सुनेपथ्या।)

शैब्या—पउमे, सुदं जं अज्जिआ कराला तं जेव्व जप्पगरलं पुणो उग्गिरदि। (पद्मे, श्रुतं यदार्या कराला तमेव जल्पगरलं पुनरुद्गिरति।)

कारण राधा की प्रार्थना पर ध्यान न देकर हम लोग शीघ्र बहुत दूर आ गये हैं। अतः यहाँ गंगा के पार में एक क्षण पौर्णमासी की प्रतीक्षा कर लें। (दोनों चली जाती हैं)

(उसके बाद पद्मा और शैव्या प्रवेश करती है)

पद्मा—सखि शैव्ये, दुःख न करो।

शैव्या—पद्मे, परम अभिलषित वस्तु के नहीं मिलने से उदास मन को समझाने में असमर्थ हूँ।

(नेपथ्य में)

पद्मे, चन्द्रावली को शीघ्र ही गोवर्धन के पास ले आओ। फूलों से बेटी सुन्दर वेष बना रही है। (फूलों से अपने को सजा रही है)

शैव्या—पद्मे, तुमने सुना। आर्या कराला फिर उसी विषतुल्य वचन को उगल रही है।

पद्मा—हला, अमिअं क्खु एदं, जं पिविअ ज्ववलद्धबलम्हि जादा। (हला, अमितं खल्वेतत्, यत्पीत्वा उपलब्धबलास्मि जाता।)

शैव्या—(सवैलक्ष्यम्।) हला, कधं विअ। (हला, कथमिव।)

पद्मा—मुद्धिए, गोअद्धणस्स गिरिणो पासे जेव्व तं गोरीतित्थम्। (मुग्धे, गोवर्धनस्य गिरेः पार्श्व एव तद्गौरीतीर्थम्।)

शैव्या—(सहर्षम्।) सअलत्थपण्डिदासि। ता उट्ठेहि। चन्दा अलिअं तत्थ णेम्ह। (सकलार्थपण्डितासि। तदुत्तिष्ठ। चन्द्रावलिकां तत्र नेष्यावः।)

पद्मा—पढमं जेअ चन्दाअली मए चालिदा। ता तुवरेहि। णं अणुसरम्ह। (प्रथममेव चन्द्रावली मया चालिता। तत्त्वरस्व। एनामनुसरावः।)

(इत्युभे परिक्रामतः।)

शैव्या—पउमे, गोरीकिदे जो क्खु संपादिदो सो कहिं उवहारो। (पद्मे, गौरीकृते यः खलु संपादितः स कुत्रोपहारः।)

पद्मा—महुमङ्गलहत्थे समप्पिदोत्थि। (मधुमङ्गलहस्ते समर्पितोऽस्ति।)

शैव्या—विवक्खउलस्स उक्करिसं तक्किअ उत्तमामि। (विपक्षकुलस्योत्कर्षं तर्कयित्वोत्ताम्यामि।)

पद्मा—यह तो अमृत है जिसे पीकर पुनः हम शक्ति प्राप्त कर लिए हैं।

शैव्या—(आश्चर्य से) सखि, किस प्रकार ?

पद्मा—अरी भोली, गोवर्धन पर्वत के पास ही वह गौरीतीर्थ है।

शैव्या—तुम सभी बातों में निपुण हो। तो उठो, चन्द्रावली को वहाँ ले चलें।

पद्मा—मैंने चन्द्रावली को पहले ही भेज दिया है। अतः जल्दी करो। हमलोग इसीका अनुरण करें (यह कह कर दोनों घूमती हैं)

शैव्या—पद्मे, गौरी के लिए बनाया गया वह उपहार कहाँ है

पद्मा—मधुमंगल के हाथ में सौंप दिया है।

शैव्या—विरोधी की उन्नति का अनुमानकर मुझे क्रोध आता है।

पद्मा—मा क्खु हत्तम्म। जं एताए मालाए दंसिदाए णिरज्झव-साओ किदो मए विवक्खपक्खो। (मा खल्वत्ताम्य। यदेतया मालया दर्शितया निरध्यवसायः कृतो मया विपक्षपक्षः।)

(शैव्या सहर्षं पद्मामालिङ्गति।)

पद्मा—

सोहग्गपूण्णिमाहे गोरीतीत्थम्हि फुल्लिदे महुणा।
अज्ज रमन्तीं हरिणा सुहेण चन्दावलीं पेक्ख॥ ७॥

सौभाग्यपूर्णिमायां गौरीतीर्थे फुल्लिते मधुना।
अद्य रममाणां हरिणा सुखेन चन्द्रावलीं पश्य॥

(नेपथ्ये 'सोहग्गपूण्णिमाहे' इत्यादि पठ्यते।)

शैव्या—(साद्भुतं विलोक्य।) हला, इमाए मुहं वङ्कीकदुअ बीअ-च्छसरेण पठन्तीए कक्खडिआए अम्हे उवहसिज्जम्ह। (हला, एतया मुखं वक्रीकृत्य बीभत्सस्वरेण पठन्त्या कक्खटिकया वयमुपहस्यामहे।)

पद्मा—(सस्मितम्।) दुट्ठे मक्कडि, तुण्डं दे खण्डिस्सम्। (दुष्टे मर्कटि, तुण्डं ते खण्डयिष्यामि।)

(नेपथ्ये।)

पउमिए, चिट्ठ चिट्ठ। सुण्णं तुज्झ घरं गदुअ णवणीआइं गिलिस्सम्। (पद्मे, तिष्ठ तिष्ठ। शून्यं तव गृहं गत्वा नवनीतानि गिलिष्यामि।)

पद्मा—क्रोध न करो। क्योंकि इस माला को दिखाकर मैंने विरोधपक्ष को उद्योगशून्य कर दिया है। (शैव्या प्रसन्नता से पद्मा का आलिंगन करती है)

पद्मा—सौभाग्य-पूर्णिमा के दिन गौरीतीर्थ के मधु से आपूर्ण होने पर आज श्री कृष्ण के साथ सुखपूर्वक विहार करती हुई चन्द्रावली को देखो॥ ७॥

(नेपथ्य में। सौभाग्यपूर्णिमायां'० इत्यादि पद्य पढ़ा जाता है)

शैव्या—(अचरज के साथ देखकर) सखि यह कक्खटिका (पक्षी-विशेष) मुँह टेढ़ाकर भयानक स्वर से पढ़ती हुई हम लोगों का मजाक उड़ा रही है।

पद्मा—दुष्टे मर्कटि, तुम्हारे चोंच को तोड़ डालूँगी। (नेपथ्य में) पद्मे, ठहरो, ठहरो। तुम्हारे सूने घर में जाकर मक्खन खा जाऊँगी।

शैव्या—हला, सच्चं सच्चं गिलिस्सदि जं एसा तं ज्जेअ पढन्ती धाविदा। (हला, सत्यं सत्यं गिलिष्यति यदेषा तमेव पठन्ती धाविता।)

पद्मा—मा चिन्तेहि। घरे अज्जिआ कराला चिट्ठदि। (इति परिक्रम्य संस्कृतेन।) पश्य पश्य। (मा चिन्तय। गृहे आर्या कराला तिष्ठति।)

साचीकृताङ्गमिह सव्यकरेण यष्टिं
विष्टभ्य वृत्तसरलामुपकक्षकूपम्।
तिष्ठन्नधो विटपिनः पशुवृन्दचारी
रारीति गीतिमधुना सुबलस्तनोति ॥ ८ ॥

शैव्या—(परिक्रम्य।) हला, पुव्वेण संकरिसणकुण्डं चन्दाअली दीसइ। (हला, पूर्वेण संकर्षणकुण्डं चन्द्रावली दृश्यते।)

पद्मा—(सहर्षं संस्कृतेन।)

अयं पुरः स्मेरमुखारविन्दः प्रयाणलीलाकृतकुम्भिनिन्दः।
कलेवरद्योतिहृताक्षितन्द्रश्चन्द्रावलीं विन्दति कृष्णचन्द्रः ॥९॥

शैव्या—सखि, सचमुच खा जायेगी क्योंकि उसी को पढ़ती हुई दौड़ी है।

पद्मा—चिन्ता न करो। घर में आर्या कराला बैठी है। (यह कह कर घूमकर संस्कृत में) यहाँ अपने अंगों को टेढ़ा करके, बायें हाथ से सीधी छड़ी का कक्षकूप के समीप सहारा लेकर वृक्ष के नीचे बैठा हुआ, पशुओं के बीच घूमने वाला यह सुबल 'रारी' इस गीति को इस समय (गाकर) फैला रहा है। (अर्थात् पेड़ के नीचे बैठकर सुबल गीत गा रहा है) ॥ ८ ॥

शैव्या—(घूमकर) सखि, पूरब की ओर संकर्षण कुण्ड पर चन्द्रावली दीख रही है।

पद्मा—(प्रसन्नतापूर्वक संस्कृत में)

सामने विकसित मुख कमल वाला, चलने में हाथी की चाल को भी मात देने वाला तथा शरीर की कान्ति से नेत्र के आलस्य को हरने वाला (शरीर शोभा से नेत्रों को आकृष्ट करने वाला) यह कृष्ण चन्द्रावली के समीप पहुँच रहा है ॥ ९ ॥

(ततः प्रविशति कृष्णश्चन्द्रावली च ।)

कृष्णः—(वर्त्मावरुध्य ।) प्रिये, दिष्ट्याद्य सौन्दर्यमकरन्दभृङ्गारा-चितासि ममाक्षिभृङ्ग्योः ।

चन्द्रावली—मुञ्च मग्गम् । जं गोरीतित्थं गदुअ कच्चाअणिअं अच्चिस्सम् । (मुञ्च मार्गम् । यद्गौरीतीर्थं गत्वा कात्यायनीमर्चिष्यामि ।)

कृष्णः— (सस्मितम् ।)

लब्ध्वं मामवलोक्य तन्वि पुरतो रोमालिरभ्युद्गता
नेत्रे पाद्यविधिं चरज्जलभरैः प्रीत्यार्पयांचक्रतुः ।
वक्षश्च स्खलदुत्तरीयमदिशद्दिव्यासनं संभ्रमा-
द्वामायास्तव दक्षिणः परिकरो दिष्ट्याद्य वृत्तो मयि ॥१०॥

(उसके बाद कृष्ण और चन्द्रावली प्रवेश करती है ।)

कृष्ण—(मार्ग रोक कर) प्रिये, आज सौभाग्य से सौन्दर्यरूपी पुष्प-रस को पीने के लिए मेरे नेत्र-रूपी भ्रमर की तुम झारी (पानपात्र) बन गयी हो ।

विमर्श—कृष्ण के नेत्र भ्रमर हैं । चन्द्रावली का सौन्दर्य मकरन्द है और चन्द्रावली पानपात्र (झारी) है । इस सुन्दर संयोग के उपस्थित होने पर कृष्ण छक कर चन्द्रावली का सौन्दर्य पान करना चाहते हैं ।

चन्द्रावली—रास्ता दो । क्योंकि मैं गौरीतीर्थ में जाकर कात्यायनी देवी की पूजा करूँगी ।

कृष्ण—(मुस्करा कर) हे कृशाङ्गि, मुझे सामने पाकर तुम्हारी रोमराजि उठ खड़ी हुई है । दोनों नेत्रों ने बहते हुए जल-प्रवाह से स्नेहपूर्वक पाद्यविधि की क्रिया पूरी की है । वक्षस्थल ने जहाँ से वस्त्र खिसक गये हैं, दिव्य आसन का संकेत किया है । इस प्रकार पहले विपरीत आचरण करने वाली तुम्हारी अनुकूलता इस समय सौभाग्य से मेरे प्रति अनुचर बन गयी है ।

(अर्थात् मेरे परोक्ष में तुम भले ही मुझसे विपरीत रही हो किन्तु मेरे आजाने पर तुम्हारे शरीर के प्रत्येक अवयव ने मेरा हार्दिक स्वागत किया है । अतः बनावटी क्रोध करने से क्या लाभ ?) ॥ १० ॥

सख्यौ—(उपसृत्य ।) सहि, सन्ति भूरिणो मग्गा । ता एकस्सिं णिरुद्धे णिरुद्धा ण होम्ह । (सखि, सन्ति भूरयो मार्गाः । तदेकस्मिन्निरुद्धे निरुद्धा न भवामः ।)

चन्द्रावली—(साचिग्रीवमालोक्य ।) हला, दिट्ठिआ तुम्हेहिं सहिदम्हि संवुत्ता । (हला, दिष्ट्या युष्माभिः सहितास्मि संवृत्ता ।)

कृष्णः—(स्वगतम् ।) कथमद्य राधामभिसिसारयिषोर्ममान्तिके चन्द्रावलिरुपस्थिता ।

पद्मा—(जनान्तिकम् ।) चन्दमुह, पउमावलम्बिकरए त्ति तुह मणोरधं सुणिअ छलेण मए चन्दाअली लम्भिदा । (चन्द्रमुख, पद्मावलम्बिकरयेति तव मनोरथं श्रुत्वा छलेन मया चन्द्रावली लम्भिता ।)

कृष्णः—(स्वगतम् ।) आं, ज्ञातम् । पद्ममण्डनमभिलष्यता मयैव दत्तान्तरासि । किं ते दूषणम् । (प्रकाशम् ।) सखि, प्रसिद्धैव पद्मायाः पद्मनाभपक्षपातिता ।

पद्मा—अदो तुरिदं गोरीतित्थं लम्भेहि चन्दाअलिअम् । (अतस्त्वरितं गौरीतीर्थं लम्भय चन्द्रावलीम् ।)

दोनों सखियाँ—(समीप आकर) सखि, बहुत से मार्ग हैं, तो एक के रुक जाने से हम लोग रुक नहीं सकते । (अर्थात् दूसरे मार्ग से चलें ।)

चन्द्रावली—(तिरछी देखकर) सखि, सौभाग्य से तुम लोगों का साथ मिल गया है ।

कृष्ण—(मन ही मन) राधा को अभिसार कराने के अभिलाषी मेरे पास आज चन्द्रावली कैसे आयी है ?

पद्मा—(एकान्त में कृष्ण से) चन्द्रमुख, पद्मा का सहारा लेने वाली के साथ, 'तुम्हारी इस अभिलाषा को जानकर मैंने छल से चन्द्रावली को यहाँ लाया है ।

कृष्ण—(मन ही मन) अच्छा, समझा । कमल के आभूषण की इच्छा वाले मेरे द्वारा ही तुम्हें अवसर मिला है । तुम्हारा क्या अपराध है ? (प्रकट) सखि, पद्मा का पद्मनाभ के प्रति पक्षपात करना प्रसिद्ध ही है ।

पद्मा—तो शीघ्र ही चन्द्रावली को गौरीतीर्थ ले जाओ ।

कृष्णः—(स्वगतम्।) चन्द्रावलेरागतिरेव राधिकोद्यमप्रतिबन्धिनी भूता। तदेनामेव निर्व्यलीकभावां तावत्प्रमोदयन्स्वं विनोदयामि। (प्रकाशम्।)

धृतपद्मोत्सवसंततिरलब्धदोषोदया सदा स्फुरति।
सखि कृष्णपक्षपूर्णं चन्द्रावलिरद्भुता त्वमसि॥ ११॥

(इत्यग्रे परिक्रम्य।) कुरङ्गाक्षि, पश्य काननस्य कमनीयताम्।

पद्मा—हला, एसो पुरदो सुरङ्गणामा कण्हस्स कुरङ्गो। जस्स घरिणी सा किदत्थि रङ्गिणी णाम कुरङ्गी। (हला, एष पुरतः सुरङ्गनामा कृष्णस्य कुरङ्गः। यस्य गृहिणी सा कृतास्ति रङ्गिणी नाम कुरङ्गी।)

कृष्णः—(सचकितं नेपथ्ये कर्णं दत्त्वा स्वगतम्।) नूनमागता राधा

कृष्ण—(मन ही मन) चन्द्रावली का आना ही राधिका के उद्योग में बाधक हो गया है। अतः तब तक निश्छल स्वभाव वाली इसी को आनन्दित करता हुआ मैं मनोविनोद करता हूँ। (प्रकट) हे सखि, तुमने पद्मा की उत्सव-परम्परा को ग्रहण किया है। तुममें किसी प्रकार का दोष नहीं है। सदा चमकती हो कृष्णपक्ष में पूर्ण हो अतः तुम विलक्षण चन्द्रावली हो॥ ११॥

विमर्श—इस पद्य में श्लेष द्वारा चन्द्रावली की सखी पद्मा और कमल अर्थ उपस्थित किए गये हैं। कृष्ण के विचार में चन्द्रमा की चाँदनी से चन्द्रावली गोपी की सभी बातें निराली हैं। यथा—चन्द्रावली-चाँदनी कमल के विकास को रोकती है। रात को निकलती है और शुक्लपक्ष में पूर्णता को प्राप्त करती है। यह चन्द्रावली उससे सर्वथा भिन्न काम करती है। चन्द्रावली गोपी के पक्ष में गृहीत अर्थ ऊपर दिखा गया है। यहाँ पर पद्म, दोष और कृष्णपक्ष शब्द श्लिष्ट हैं जिनके अर्थ क्रमशः पद्मा कमल, अपराध रात्रि तथा कृष्ण-पक्ष-श्रीकृष्ण हैं। पद्म का अर्थ पद्मा सखी, दोष का अर्थ अपराध और कृष्ण-पक्ष का अर्थ श्रीकृष्ण कर देने से विरोधाभास की छाया दूर हो जाती है।

पद्मा—सखि, सामने यह सुरंग नाम का कृष्ण का हरिण है जिसकी रंगिणी नामकी यह हरिणी स्त्री बनायी गयी है।

कृष्ण—(चकित भाव से नेपथ्य की ओर कान लगा कर मन ही मन)

यद्‌यं रुक्मिणीकण्ठध्वनिर्दूरोदश्रवि ।

पद्मा—कधं एसो कुरङ्गो दक्खिणाहिमुहं धाइदो । (कथमेष कुरङ्गो दक्षिणाभिमुखं धावितः ।)

कृष्णः—(पुनरात्मगतम् ।) निष्टङ्कितमेव रुक्मिणीकण्ठशब्देनाय-माकृष्टः कुरङ्गो गौरीतीर्थं जगाम । संकर्षणतीर्थतीरवनलेखायां विल-म्बमानः क्षणमुदकं यामि ।

पद्मा—

णअपउमिणीसहस्सं अहमणरसुत्तरङ्गवित्थारि ।
उअ गोउलं विअ पुरो सरोअरं रेहदि फारम् ॥ १२ ॥
(नवपद्मिनीसहस्रमघमथनरसोत्तरङ्गविस्तारि ।
पश्य गोकुलमिव पुरः सरोवरं राजते स्फारम् ॥)

कृष्ण—प्रिये, पश्य पश्य ।

राधा अवश्य आ गयी है क्योंकि रुक्मिणी का यह कण्ठस्वर सुनाई पड़ रहा है ।

पद्मा—यह कुरङ्ग नामक हरिण दक्षिण की ओर क्यों दौड़ा है ?

कृष्ण—(फिर मन ही मन) निश्चय ही ये रुक्मिणी के कण्ठस्वर से आकृष्ट होकर यह हरिण गौरीतीर्थ चला गया । मैं संकर्षण तीर्थ के तटवर्ती वनपंक्ति में कुछ देर रुक कर बाद में आता हूँ ।

पद्मा—देखो, हजारों नवीन कमलों से युक्त, गोकुल पक्ष में—हजारों पद्मिनी ललनाओं से युक्त, पावनाथक जल की उठती हुई लहरों को बढ़ाने वाला, गोकुलपक्ष में—अघ नामक असुर को मारने वाले कृष्ण के श्रृङ्गार रस को बढ़ावा देने वाला यह विस्तृत सरोवर गोकुल की भाँति सामने सुशोभित हो रहा है । (अर्थात् जिस प्रकार विस्तृत गोकुल में हजारों पद्मिनी ललनाओं का निवास है । अघारि श्रीकृष्ण के श्रृंगार रस का पोषण होता है । उसी प्रकार इस विस्तृत सरोवर में हजारों कमलिनियाँ विकसित हैं । और पाप को दूर करने वाले जल की लहरें लहरा रही हैं ।) ॥ १२ ॥

कृष्ण—प्रिये, देखो ।

मित्रे विचित्रमनुरागभरं वहन्ती
संवर्धितालिनिकरा स्वरसोदयेन ।
सत्कर्णिकोज्ज्वलरुचिर्भुवने समन्ता-
ल्लक्ष्मीं तनोति भवतीव सरोजिनीयम् ॥ १३ ॥

शैव्या—एणं मणोहरं पउमिणीं कीस कलाणिहिमलाणं करेदि ।
(एनां मनोहरां पद्मिनीं कस्मात्कलानिधिर्म्लानां करोति ।)

पद्मा—(चन्द्रमपदिश्य साकूतम् ।)

सूराणुरत्तहिअआ इअं पउमिणी पसारिदामोआ ।

सूर्य के प्रति अपूर्व प्रेमसमूह का वहन करती हुई, चन्द्रावलीपक्ष में—मुझमें विलक्षण स्नेह दर्शाती हुई, मकरन्द के प्रकट होने से, पक्ष में—शृङ्गाररस के उदय होने से, भ्रमर-समूह को, पक्ष में—सखीसमुदाय को प्रफुल्लित करने वाली, सत्कर्णिका नामक फूल की कान्ति के समान कान्ति से युक्त, पक्ष में—सुन्दर कर्णभूषण से उज्ज्वल कान्ति वाली यह कमलिनी तुम्हारी भाँति जल में, पक्ष में—संसार में शोभा बढ़ा रही है ॥ १३ ॥

विमर्श—प्रस्तुत पद्य में मित्र, आलिनिकर, स्वरस, सत्कर्णिका तथा भुवन पद श्लिष्ट हैं । श्लोक का आशय है—

जिस प्रकार तुम मेरे प्रति अनुराग रखती हो, शृंगाररस के उदय से हमें आनन्दित करती हो, सुन्दर कर्णफूल के धारण करने से प्रशस्त कान्ति से युक्त हो, और संसार में शोभा बढ़ा रही हो । उसी प्रकार यह कमलिनी सूर्य में अतिशय अनुराग रखती है, मकरन्द के उदय से भ्रमर को आकृष्ट करती है, सत्कर्णिकापुष्प की कांति से युक्त है और जल में सुशोभित हो रही है ।

शैव्या—इस सुन्दर कमलिनी को चन्द्रमा मलिन क्यों बना रहा है ? पक्ष में—चन्द्रावली को कृष्ण उदास क्यों कर रहा है ?

पद्मा—(चन्द्रमा को बहाना बना कर साभिप्राय)

यह कमलिनी सूर्य में अपने हृदय को लगा चुकी है । इसने सुगन्ध को फैला

इह ण तुमं कखणराओ ताराहीम्र किखवेहि करम् ॥ १४ ॥

(सूरानुरक्तहृदया इयं पद्मिनी प्रसारितामोदा ।

इह न त्वं क्षणरागस्ताराधीश क्षिप करम् ॥)

कृष्णः—पद्मे, नात्र तारापतिरपराध्यति । यदियं पद्मिनी चञ्चलया पद्मया सायं मुच्यमाना म्लायति ।

चन्द्रावली—(सस्मितं पुरो विलोक्य संस्कृतेन ।)

समदमधुपलौल्योत्सेकमालोक्य शङ्के
विहसति लतिकाली पुष्पशोभाभरेण ।
विसृजति मकरन्दच्छद्मना बाष्पबिन्दू-
नियमतिमृदुरेका स्नेहतः स्वर्णयूथी ॥ १५ ॥

दी है । एक क्षण लाल होने वाले हे तारापति चन्द्र, तुम यहाँ पर अपनी किरण को मत फेंको ।

पक्ष में—यह चन्द्रावली गोवर्धन मल्ल की विवाहिता पत्नी है । इसने अपने आनन्द का विस्तार किया है । तुम एक ही क्षण अपने प्रेम को दिखाने वाले अतः हे कृष्ण, चन्द्रावली की ओर अपना हाथ न बढ़ाओ ॥ १४ ॥

कृष्ण—पद्मे, इसमें चन्द्रमा का अपराध नहीं है । क्योंकि यह कमलिनी सायंकाल पद्मा लक्ष्मी से बिछुड़ कर मुरझा जाती है । पक्ष में—सायंकाल पद्मा चन्द्रावली को अभिसार के लिए कृष्ण के पास भेजती है । इसमें कृष्ण का दोष नहीं है ।

चन्द्रावली—(मुस्कुराती हुई सामने देखकर संस्कृत में)

मदमत्त भ्रमर की चपलता के आधिक्य को देखकर मुझे शंका है कि लता-पंक्ति फूलों की शोभा के भार से हँस रही है । और यह कोमल स्वर्ण जूही स्नेह वश पुष्परस के व्याज से अकेली आँसू की बूँदें बहा रही है । पक्ष में—कृष्ण की आतुरता को देख कर अन्य गोपियाँ हँस रही हैं और चन्द्रावली हर्ष की आँसू बहा रही है ॥ १५ ॥

कृष्णः—प्रिये, पश्य पश्य ।

अयमुच्चशिराः कदम्बराजः स्फुरदिन्दिन्दिरवृन्दबन्दिगीतः ।
सुरभीकुलपुच्छचामरालीमरुदावीजितविग्रहश्चकास्ति ॥ १६ ॥

चन्द्रावली—अम्हहे, लज्जिदा वुन्दावणलच्छी । (अम्महे, लज्जिता वृन्दावनलक्ष्मीः ।)

(ततः प्रविशति ललिता वृन्दा च ।)

ललिता—(पुरो दृष्ट्वा सव्यथम् ।) कक्खडं पुरादो संकडं एदो । (कठिनं पुरतः संकटमेतत् ।)

वृन्दा—हन्त, दुर्लङ्घ्यशासना किल कराला । तत्कथमद्य पद्मयाऽत्र चन्द्रावलिरुपनीता ।

कृष्ण—प्रिये, देखो, देखो ।

उन्नत मस्तक वाला यह कदम्बराज सुशोभित हो रहा है । भ्रमरसमूह अपने मधुर गुञ्जन से इसकी स्तुति कर रहा है । गोसमूह की पूँछ की चामर-पंक्ति से इसका व्यजन किया जा रहा है । अर्थात् जिस प्रकार राजा की शोभा वन्दीजन की स्तुति तथा बाधा से बढ़ती है उसी प्रकार इस कदम्ब वृक्ष की शोभा बढ़ रही है ॥ १६ ॥

विमर्श—कृष्ण का आशय है कि यद्यपि मैं सबका आश्रय हूँ तथापि मेरी शोभा चन्द्रावली के सामीप्य में ही होती है । मेरी शोभा का आश्रय चन्द्रावली का सांनिध्य ही है ।

चन्द्रावली—अहा, वृन्दावन की शोभा कितनी अच्छी है ?

(उसके बाद ललिता और वृन्दा प्रवेश करती है)

ललिता—(सामने देखकर दुःखपूर्वक) आगे से कठिन संकट उपस्थित है ।

वृन्दा—हाय, कराला की आज्ञा नहीं टाली जा सकती है तो आज पद्मा चन्द्रावली को यहाँ कैसे ले आयी है ।

ललिता—हला, सअलविज्जाविअद्धासि । ता कड्ढेहि इदो कण्हम् । (हला, सकलविद्याविदग्धासि । तत्कर्षय इतः कृष्णम् ।)

वृन्दा—

स्वस्य प्रेममणीनां गौरवभाजामियं वरा यात्री ।
हरिणा परिहरणीया कथं नु चन्द्रावली भविता ॥ १७ ॥

ललिता—(संस्कृतेन ।)

यस्योपलभ्य गन्धं गौरवकुलमाशु चौरवद् भ्रमति ।
उद्भटमनुरागभटं तं रञ्जितनागरं नौमि ॥ १८ ॥

वृन्दा—सखि, युक्तं ब्रवीषि । किंतु दाक्षिण्यमुद्रेयं चन्द्रावल्याः कृष्णस्य ततः खल्वमुं दुराकर्षं कथयामि ।

ललिता—वुन्दे, सच्चं भणासि । ता इमस्सि अब्बाहिदे किं सरणम् । (वृन्दे, सत्यं भणसि । तदस्मिन्नत्याहिते किं शरणम् ।)

वृन्दा—प्रथमं गोष्ठीमाविश्य तत्त्वमवधारयावः ।

(इत्युभे परिक्रामतः ।)

ललिता—सखि, सभी विद्याओं में चतुर हो अतः कृष्ण को इधर आकृष्ट करो ।

वृन्दा—अपने स्नेहरूपी मणियों की गुरुता को प्राप्त करने वाली यह उत्तम चन्द्रावली हरि से किस प्रकार छोड़ी जायेगी ? । १७ ॥

ललिता—(संस्कृत में) जिसकी गंध को प्राप्तकर गौरवसमूह चोर की भाँति घूमता है, उस वीर अनुराग योद्धा को नमस्कार करती हूँ जिसने चतुरजन के मन को रञ्जित कर दिया है ॥ १८ ॥

वृन्दा—सखि, ठीक कहती हो । लेकिन चन्द्रावली ने कृष्ण को अपने अनुकूल बना लिया है अतः उसको आकृष्ट करना कठिन हो गया है ।

ललिता—वृन्दे, सच कहती हो । तो इस संकट में क्या उपाय है ?

वृन्दा—पहले गोष्ठी (गोपियों की बैठक) में जाकर सही बात का पता लगाती हूँ । (यह कह कर दोनों घूमती हैं ।)

शैव्या—(विलोक्य धनान्तिकम् ।) हला पउमे, हन्त णूणं गोरीतित्थे राही संगदा । पेक्ख तद्दिसादो ललिदा मिलदि । (हला पद्मे, हन्त नूनं गौरीतीर्थे राधा संगता । पश्य तद्दिशातो ललिता मिलति ।)

पद्मा—का णो हाणी जं हरिणा दुप्परिहरा पिअसही । (का नो हानिः यद्धरिणा दुष्परिहरा प्रियसखी ।)

ललिता—(उपसृत्य ।) हला चन्दाअलि, वल्लहासिणेहाणहिण्णस्स हुरङ्गीसङ्घसुञ्चङ्गस्स कुरङ्गस्स घरे ण क्खु अम्हेहिं रङ्गिणीवासणिज्जा । जं इमिणा मासब्भन्तरे वि सा कालसारकुमारी ण सुमरीअदि ता एत्थ तुमं सक्खिणीं कादुं आअदम्हि । (हला चन्द्रावलि, वल्लभास्नेहानभिज्ञस्य कुरङ्गीसङ्घभुजङ्गस्य कुरङ्गस्य गृहे न खल्वस्माभी रङ्गिण्यावासः कारयितव्यः । यदनेन मासाभ्यन्तरेऽपि सा कालसारकुमारी न स्मर्यते तदत्र त्वां साक्षिणीं कर्तुमागतास्मि ।)

शैव्या—(देखकर एकान्त में पद्मा से) सखि पद्मे, हाय ? निश्चय ही गौरीतीर्थ में राधा आयी है । देखो, उसी ओर से ललिता आ रही है ।

पद्मा—हम लोगों की क्या हानि है ? क्योंकि कृष्ण प्यारी सखी चन्द्रावली को नहीं छोड़ सकता ।

ललिता—(समीप आकर) सखि चन्द्रावली, प्रियतमा के प्रेम को नहीं समझने तथा हरिणी के झुण्ड में घूमने वाले इस हरिण के घर में हम लोगों को रंगिणी का निवास नहीं कराना चाहिए । क्योंकि एक महीने के भीतर इसने उस कालसार-कुमारी को याद नहीं की है अतः इस विषय में तुमको साक्षी बनाने आयी हूँ ।

विमर्श—ललिता के उपर्युक्त कथन का आशय यह है—कृष्ण की वल्लभा राधा है किन्तु कृष्ण उसके स्नेह से अनभिज्ञ होकर गोपियों के बीच विहार करता है । चन्द्रावली राधा और कृष्ण के संयोग में बाधक है । इस कृष्ण ने महीने के अन्दर राधा की कभी खोज-खबर नहीं ली है । कृष्ण को राधा के समीप ही जाना चाहिए ।

(चन्द्रावली स्मयते ।)

कृष्णः—(स्वगतम् ।) हन्त, मदर्थमागता ललिता। (चन्द्रावलीमालोक्य छलमालम्बते । प्रकाशम् ।) ललिते, हृदयेङ्गितमविज्ञाय मुधा सुरङ्गमुपालभसे । तदेष संदेशस्त्वया तस्यामावेद्यताम् ।

हरिणाभिलष्यमाणा सारङ्गरमणि सदा त्वमत्रासि ।
तदमुं त्वद्वशहृदयंगमलोचने विद्धि ॥ १९ ॥

पद्मा—(जनान्तिकम् ।) कण्ह, अप्पणो पिअजणं लद्धोसि । ता जुत्तं अजोग्गजोग्गाणं अम्हाणं विसज्जणम् । (कृष्ण, आत्मनः प्रियजनं लब्धोऽसि । तद्युक्तमयोगयोगानामस्माकं विसर्जनम् ।)

कृष्णः—

करवाणि हन्त दिव्यं दिव्याङ्गि मदोन्नतासु गोपीषु ।
अनुरागितां सखि दधे राधागन्धिषु न वामासु ॥ २० ॥

(चन्द्रावली मुस्कराती है)

कृष्ण—(मन ही मन) हाय, मेरे लिए ललिता आयी है । (चन्द्रावली को देखकर बहाना बनाते हैं । प्रकट) ललिते, हार्दिक चेष्टा को नहीं समझकर तुम व्यर्थ ही इस सुरंगमृग (कृष्ण) को उलाहना देती हो । अतएव उसे यह सन्देश कह देना—हे मृगकान्ते, यहाँ हरिण तुम्हें सदा चाहता है । अतः तुम इस हरिण के हृदय को अपने में आसक्त जानो । पक्ष में—हे कृष्णप्रिये, मैं यहाँ रहकर भी तुम्हें सदा प्यार करता हूं । मैं तुम पर अनुरक्त हूँ, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

पद्मा—(एकान्त में कृष्ण से) कृष्ण, अपने प्रियतम को पा गये हो । अतः असमय में मिलने वाली अयोग्य हम लोगों का त्याग उचित ही है ।

कृष्ण—हे दिव्य अंगों वाली पद्मे, मैं शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं मदमाती गोपियों में स्नेह रखता हूँ, प्रतिकूल गोपियों में नहीं ॥ २० ॥

विमर्श—कृष्ण के उपर्युक्त कथन का आशय यहाँ दो प्रकार से प्रकट होता है—

पद्मा—(सदर्पस्मितम् ।) सहि ललिदे, अच्चरिअं अच्चरिअम् । तुमं क्खु अणुराहा भणिज्जसि । ता कीस अज्ज राहाए उअअं विणा उइदासि । (सखि ललिते, आश्चर्यमाश्चर्यम् । त्वं खल्वनुराधा भण्यसे । तत्कस्मादद्य राधाया उदयं विना उदितासि ।)

ललिता—(संस्कृतेन ।)

रोलम्बौनिकुरम्बं चुम्बति गण्डं पिपासया तस्य ।
सरति तृषार्तः सरसीं स करीन्द्रस्तं पुनर्न हि सा ॥ २१ ॥

पद्मा को भ्रम में डालने के लिए प्रत्यक्ष रूप से तो वे यह कहते हैं कि राधा की पक्षपातिनी ललिता प्रभृति गोपियों के प्रति मेरा स्नेह केवल वाचनिक है। वास्तविक प्रेम तो चन्द्रावली की सहेली पद्मा प्रभृति मदमाती गोपियों के प्रति है। किन्तु कृष्ण के कथन का गूढ़ और वास्तविक आशय यह है कि मेरा सच्चा स्नेह तो राधा-पक्ष में ही है क्योंकि राधा-पक्ष स्नेह पूर्ण है। चन्द्रावली-पक्ष तो प्रतिकूल नजर आता है।

पद्मा—(अहंकारपूर्वक मुस्करा कर) सखि ललिते, आश्चर्य है आश्चर्य। तुम अनुराधा कही जाती हो तो आज राधा के उदय के बिना तुम कैसे उदित हुई हो ? (अर्थात् तुम तो सदा राधा के साथ रहने वाली हो किन्तु अभी अकेली कैसे आयी हो)

ललिता—(संस्कृत में) भ्रमरों का दल प्यास से जिसके कपोल भाग का स्पर्श करता है वह गजराज स्वयं प्यास से आकुल होकर सरोवर के पास जाता है किन्तु सरोवर उसके पास नहीं आता है ॥ २१ ॥

विमर्श—गजराज बार-बार अपने कानों को हिला हिलाकर भ्रमरों को पास नहीं आने देना चाहता फिर भी भौंरों का झुण्ड उसके मदपूर्ण गण्डस्थल का चुम्बन करते हैं। किन्तु वही गजराज अपनी प्यास बुझाने के लिए जल की खोज में सरोवर के पास जाता है। लेकिन सरोवर कभी गजराज के पास नहीं जाता है। ललिता के कहने का आशय है—'तुम्हारी जैसी गोपियाँ कृष्ण के नहीं चाहने पर भी अभिसार के लिए स्वयं उसके पास जाती हैं अतः कृष्ण को तुम

पद्मा—

एक्कं धीमदि सेव्वे पहेलिअं मे सहेलि जाणेहि ।
चित्तफलअम्मि लिहिदा का रेहइ माहवस्स सदा ॥ २२ ॥

(एकां धीमति शैव्ये प्रहेलिकां मे सखि जानीहि ।
चित्तफलके लिखिता का राजते माधवस्य सदा ॥)

शैव्या—सहि चन्दाअली । (सखि चन्द्रावली ।)

बृन्दा—(सस्मितम् ।) साधु विज्ञातम् । चन्द्रमण्डलावलिमण्डनेन चित्रं खलु मापतेः फलकं शतचन्द्रमाचक्षते ।

कृष्णः—(स्वगतम् ।) अवदातशीलेयम् ।

(चन्द्रावली सलज्जमपसव्ये प्रयाति ।)

ललिता—

मम वाहरेहि बुन्दे पहेलिअं दिप्पहेलिविण्णाणे ।
पिअसहि किमहिक्खाए लिक्खिज्जइ माहवो भुअणे ॥ २३ ॥

की अपेक्षा उद्वेग ही देती हैं । कृष्ण राधा के पास स्वयं जाते हैं । राधा कभी कृष्ण के पास स्वयं नहीं आती । इस प्रकार राधा के प्रति कृष्ण का विशेष स्नेह के कारण उसे परम आनन्द की उपलब्धि होती है अतः अन्य गोपियों की अपेक्षा राधा सौभाग्यशालिनी हैं । प्यासा ही पानी को ढूंढ़ता है, पानी प्यासे को नहीं ।

पद्मा—हे बुद्धिमति शैव्ये, मेरी एक पहेली समझो । माधव के मनरूपी फलक पर कौन सदा लिखी हुई शोभती है ? (अर्थात् माधव के मन में सदा किसका निवास है ?) ॥ २२ ॥

शैव्या—सखि, चन्द्रावली ।

वृन्दा—(मुस्करा कर) ठीक समझी । चन्द्रमण्डल के समूह के आभूषण से लक्ष्मीपति का चित्रफलक शतचन्द्र कहा जाता है ।

कृष्ण—यह शुद्ध शीलवाली है ।

(चन्द्रावली लजाकर दायीं ओर चली जाती है)

ललिता—श्रेष्ठ पहेली को समझने वाली हे प्यारी सखी वृन्दे, मुझसे कहो कि संसार में माधव किस नाम से लक्षित होता है ? ॥ २३ ॥

(मम व्याहर वृन्दे प्रहेलिकां दीप्रहेलिविज्ञाने ।
प्रियसखि किमभिख्यया लक्ष्यते माधवो भुवने ॥)

वृन्दा—सखि, राधाभिख्यया ।

कृष्णः—युक्तमिदं यद्वैशाखपर्यायौ माधवराधौ ।

पद्मा—सेव्वे, अलं पहेलिआपसङ्गेण । सुहावेहि कमलिक्खण-रसेहिं अत्ताणअम् । (शैव्ये, अलं प्रहेलिकाप्रसङ्गेन । सुखय कमलेक्षणरसैरात्मानम् ।)

शैव्या—(कमलाकरं विलोक्य ।)

भमरस्स ताव पमदं पदोसमुदिदा कुमुद्दी कुणइ ।
जाव इअं पउमाली विन्दइ ण हु दिट्ठिमेदस्स ॥ २४ ॥
(भ्रमरस्य तावत्प्रमदं प्रदोषमुदिता कुमुद्वती कुरुते ।
यावदियं पद्माली विन्दति नहि दृष्टिमेतस्य ॥)

वृन्दा—सखि, 'राधा' इस नाम से ।

कृष्ण—यह ठीक है क्योंकि वैशाख का पर्याय 'माधव' और 'राध' ये दोनों शब्द हैं ।

पद्मा—शैव्ये, पहले की चर्चा छोड़ो । कमलनयन कृष्ण के स्नेहों से अपने को सुखी बनाओ ।

शैव्या—(सरोवर को देखकर) सायंकाल में विकसित होनेवाली कुमुदिनी, पक्ष में—दोषयुक्त राधा, भ्रमर को, पक्ष में—कृष्ण को, तभी तक आनन्द पहुँचाती है, जब तक कमल-पंक्ति, पक्ष में चन्द्रावली, इस भ्रमर की, पक्ष में—कृष्ण की, दृष्टि में नहीं आती ॥ २४ ॥

विमर्श—कुमुदिनी भ्रमर को क्षणिक आनन्द देती है । कमलिनी तो सदा आनन्दित करती है । चन्द्रावली से कृष्ण राधा के अभाव में ही कुछ देर के लिए सुख प्राप्त करते हैं । राधा तो उन्हें सदा आनन्दित करती है । पद्माली का अर्थ भ्रमरपक्ष में पद्मानाम् आली अर्थात् कमलों का समूह होता है ।

कृष्ण—पक्ष में—'पद्मा आली यस्याः' अर्थात् पद्मा नामक गोपी सखी है जिसकी वह चन्द्रावली यह अर्थ होता है ।

पद्मा—हला, सच्चं भणासि। तथा हि। (हला, सत्यं भणसि। तथा हि।)

विज्जोदन्ती राहा पेक्खिज्जइ ताव तारआलीहिम्।
गअणे तमालसामे ण जाव चन्दाअली फुरइ॥ २५॥
(विद्योतमाना राधा प्रेक्ष्यते तावत्तारकालीभिः।
गगने तमालश्यामे न यावच्चन्द्रावलिः स्फुरति॥)

ललिता—(विहस्य। संस्कृतेन।)

सहचरि वृषभानुजया प्रादुर्भावे वरत्विषोपगते।
चन्द्रावलीशतान्यपि भवन्ति निर्धूतकान्तीनि॥ २६॥

कृष्णः—(स्मित्वा।) किं वाचाटतया। संनिकृष्टस्य सुरभेः सौरभ्यमनुभूयताम्।

वृन्दा—(सस्मितम्।)

उल्लसति फुल्लगात्री का वल्ली नात्र माधवेऽभ्युदिते।

पद्मा—सखि, सच कहती हो। क्योंकि—तमाल के समान श्यामवर्ण आकाश में ताराओं के साथ राधा (विशाखा) नक्षत्र तब तक देखा जाता है जब तक चन्द्रमा की चाँदनी प्रकाशित नहीं होती। (अर्थात् चन्द्रावली की अनुपस्थिति में ही कृष्ण के प्रति राधा का स्नेह प्रकट होता है, चन्द्रावली के समक्ष नहीं।)॥ २५॥

ललिता—(हँसकर। संस्कृत में)

हे सखि, वृषराशि में स्थित सूर्य की प्रशस्त कान्ति के प्रकट होने पर सैकड़ों चन्द्रावलियों की कान्ति भी धूमिल पड़ जाती है। (अर्थात् वृषभानुजा-राधा के आने पर चन्द्रावली का महत्त्व क्षीण हो जाता है।)॥ २६॥

कृष्ण—(मुस्करा कर) बकवाद करने से क्या लाभ? आसन्न वसन्त की सुगन्धि का अनुभव करो।

वृन्दा—(मुस्कराहट के साथ) वसन्त के उदय पर यहाँ कौन लता विकसित नहीं होती फिर भी माधव के नाम से प्रसिद्ध माधवीलता को नमस्कार

तन्नामतः प्रसिद्धां तथापि तां माधवीं नौमि ॥ २७ ॥

पद्मा—(सवैमनस्यं परिक्रम्योच्चैः ।) हला चन्दाअलि, धुत्तो गोट्ठी॰रङ्गे संगमिअ विग्घेसजणणीपूअणे कीस सिढिलासि । (हला चन्द्रा॰वलि, धूर्तो गोष्ठीरङ्गे संगम्य विघ्नेशजननीपूजने कस्माच्छिथिलासि ।)

कृष्णः—(सोपालम्भम् ।)

चन्द्रावलीं मामनुरुध्यमानां रुणद्धि पद्मे भवती बलेन ।
मल्लीं तमालाभिमुखं मिलन्तीं हिंस्रेव वल्ली पुरतः कराला ॥२८॥

(प्रविश्य ।)

कराला—चिट्ठध रे, चिट्ठध । दिट्ठिआ मग्गे ज्जेव्व लद्धात्थ । (तिष्ठत रे, तिष्ठत । दिष्ट्या मार्ग एव लब्धास्थः ।)

(सर्वाः परावृत्य संभ्रमं नाटयन्ति ।)

शैव्या—(अपवार्य ।) पउमे, हद्धी हद्धी । कधं एत्थ अम्हे विण्णादा वुड्ढिआए । (पद्मे, हा धिक् हा धिक् । कथमत्र वयं विज्ञाता वृद्धया ।)

करती हूँ । (अर्थात् वसन्त आगमन से कृष्ण की प्रेयसी राधा स्तुत्य है ।) ॥ २७ ॥

पद्मा—(उदासीन भाव से घूम कर ऊँची आवाज में) सखि चन्द्रावली गोष्ठीरंग में पहुँच कर पार्वती की पूजा करने में क्यों अलसा रही हो ?

कृष्ण—(उलाहना के साथ) पद्मे, मुझको रोक रखनेवाली चन्द्रावली को तमाल की ओर बढ़नेवाली चमेली को सामने डरावनी लता की भाँति तुम बलपूर्वक रोक रही हो । (अर्थात् मेरी ओर उत्सुक चन्द्रावली को तुम बीच में बाधक होकर रोक रही हो, यह उचित नहीं है ।) ॥ २८ ॥

(प्रवेश करके)

कराला—अरे, ठहरो, ठहरो । संयोग से मार्ग में ही मिल गये हो ।

(सभी पीछे की ओर घूमकर भयभीत होती हैं)

शैव्या—(एकान्त में पद्मा से) पद्मे, हाय, हाय, बूढ़ी ने यहाँ हम लोगों को कैसे देख लिया ?

कराला—अम्मो, सच्चं च्चेअ लविदं ताए णवणीअलम्पडाए वुड्ढमक्कडीए। (अम्मो, सत्यमेव लपितं तया नवनीतलम्पटया वृद्धमर्कट्या।)

(पद्मा सखेदं शैव्यामुखमीक्षते।)

ललिता—(स्वगतम्।) वुड्ढमक्कडि कक्खडिए, सक्करामक्खिदं मक्खणं दे दाइस्सम्। (वृद्धमर्कटि कक्खटिके, शर्कराम्रक्षितं नवनीतं ते दास्यामि।)

कृष्णः—(अपवार्य।) प्रिये, तिरोधानाय स्थानमपि ते न पश्यामि। यतः।

सव्ये गिरिः स्फुरति दुर्गमतुङ्गशृङ्गो
गाः पालयत्यहह दक्षिणतस्तथार्यः।
भूः पृष्ठतो विरहिता वृतिभिः पुरस्तात्
क्रूरा विवेश जरती कतमाऽत्र युक्तिः॥ २९॥

चन्द्रावली—(स्वगतम्।) हन्त हन्त। अकण्डे कक्खसाए भवि-

कराला—अहो, मक्खन-चोर उस बूढ़ी मर्कटी ने ठीक ही कहा था।

(पद्मा दुःखपूर्वक शैव्या का मुँह देखती है)

ललिता—(मन ही मन) बूढ़ी मर्कटि कक्खटिके, मैं तुमको चीनी मिला हुआ मक्खन दूँगी।

कृष्ण—(चन्द्रावली से) प्रिये, तुम्हारे छिपने की कोई जगह भी नजर नहीं आती। क्योंकि—बायीं ओर दुर्गम और ऊँचे शिखरवाला पर्वत दीख रहा है। अहा, दायीं ओर आर्य (बड़े भाई बलराम) गायों को चरा रहे हैं। पीछे की भूमि झाड़ियों से शून्य है और सामने से कठोर बूढ़ी (कराला) प्रवेश कर चुकी है। अब यहाँ क्या उपाय है? ॥ २९॥

चन्द्रावली—(मन ही मन) हाय, हाय। असमय में कठोर चाण्डाली

दुव्वदा षण्डालीए चण्डिमा। (हन्त हन्त ।, अकाण्डे कर्कशाया भवितव्यता चण्डाल्याश्चण्डिमा।)

कराला—(संरम्भमभिनीय।) पेच्छध भो, पेच्छध इमस्स कुसुम्मतेल्लकज्जलजालकालस्स कालभुअङ्गभअंकरलोअणञ्चलस्स चञ्चलस्स भुजङ्गत्तणम्, जं बारहमग्गं गमिदो इमिणा सअलाणं गोउलकुलङ्गणाणं मङ्गलो कुलधम्मो.। (इति सशिरःकम्पं दृशौ विस्फार्य।) अरे सामलआ, कस्स एसा जाआत्ति जाणासि। सुणाहि रे, णीसङ्कं सुणाहि। धो क्खु भोइन्दस्स दुदीअअप्पा तस्स महामल्लस्स। (पश्यत भोः, पश्यत अस्य कौसुमतैलकज्जलजालकालस्य कालभुजङ्गभयंकरलोचनाञ्चलस्य चञ्चलस्य भुजङ्गत्वम्, यद् द्वादशमार्गं गमित एतेन सकलानां गोकुलकुलाङ्गनानां मङ्गलः कुलधर्मः। अरे श्यामला, कस्यैषा जायेति जानासि। शृणु रे, निःशङ्कं शृणु। यः खलु भोजेन्द्रस्य द्वितीयात्मा, तस्य महामल्लस्य।

कृष्णः—करालिके, ततः किम्।

कराला—(सक्रोधम्।) सच्चं सच्चं तुमं वणमज्झे अप्पाणं दुदिअं राआणं जाणासि। सो च्चेअ राअउलगामी गोट्ठणाहो अप्पणो

की उग्रता (प्रकट) होनेवाली है।

कराला—(क्रोध दिखाकर) देखो, कौसुम तैल-निर्मित काजल समूह के समान काले और काल सर्प की आँख के समान भयंकर आँख वाले इस चञ्चल कृष्ण की कामुकता तो देखो। क्योंकि इसने गोकुल की सभी कुल-ललनाओं के मंगलमय कुलधर्म (पातिव्रत) को बिगाड़ दिया है। अरे श्यामल, यह (चन्द्रावली) किसकी पत्नी है, यह जानते हो? सुनो रे, निःशंक होकर सुनो। जोकि भोजेन्द्र (कंस) की दूसरी आत्मा है, उस महामल्ल की (यह भार्या है।)

कृष्ण—कठोरे, उससे क्या?

कराला—(क्रोधपूर्वक) सच है सच है। तुम जंगल में अपने को दूसरा राजा समझते हो राजकुल में जानेवाला यह तुम्हारा पिता नन्द अपना शिर

ललाडं ताडिस्सदि । (सत्यं सत्यम् । त्वं वनमध्य आत्मानं द्वितीयं राजानं जानासि । स एव राजकुलगामी गोष्ठनाय आत्मनो ललाटं ताडिष्यति ।)

कृष्णः—कराले, तुभ्यं शपे । चन्द्रावलीं विलोक्य साध्वसं गतोऽहमुद्वेगमासादयामि ।

कराला—(चन्द्रावलीं विलोक्य । सामर्षम् ।) हा णिउञ्जोज्जाअरिणि, आकोमारसिक्खिदकण्हाहिसारकोसले, संरम्भोन्नद्धगोविआसहस्सोच्छिट्ठाहरविम्बतिण्हामेत्तविद्धंसिदकुलव्वदे, चिट्ठ चिट्ठ । किं दाणिं भाएसि । (हा निकुञ्जोज्जागरिणि, आकौमारशिक्षितकृष्णाभिसारकौशले, संरम्भोन्नद्धगोपिकासहस्रोच्छिष्टाधरबिम्बतृष्णामात्रविध्वंसितकुलव्रते, तिष्ठ तिष्ठ । किमिदानीं बिभेषि ।)

ललिता—अज्जे, को क्खु दोसो जीअणणाहाणुगदाए पच्छिमदिसाए । को वा दोसावहारिणो सूरस्स । किंतु एदाणं आरूढराआणं दोण्णं राअं उप्पादिअ संगमकारिणीए संघाकुट्टिणीए च्चेअ पदोसाणुबन्धिदा । (आर्ये, कः खलु दोषो जीवननाथानुगतायाः पश्चिमदिशः । को

पीटेगा । (अर्थात् तुम्हारी घृष्टता का फल तुम्हारे पिता को राजदण्ड के रूप में भोगना पड़ेगा ।)

कृष्ण— कराले, तुम्हारी शपथ । चन्द्रावली को देखकर डरकर मैं उद्विग्न हो गया हूँ । पक्ष में— चन्द्रावली का संयोग न पाकर दुःखी हूँ ।

कराला—(चन्द्रावली को देखकर क्रोधपूर्वक) हा, कुञ्ज में जागने वाली, बचपन से ही कृष्ण के प्रति अभिसार कर्म की शिक्षा में निपुण, आलिंगन क्रिया में तत्पर हजारों गोपियों से जूठे किए गये (कृष्ण के) अधर बिम्ब के तृष्णामात्र से कुलधर्म को नष्ट करने वाली, ठहरो, ठहरो । अब डर क्यों रही हो ?

ललिता—आर्ये, वरुण का अनुगमन करने वाली पश्चिम दिशा का क्या दोष है ?

अथवा रात्रि को दूर करने वाले सूर्य का क्या दोष है ? किन्तु प्रेम में आरूढ़ इन दोनों के स्नेह को उत्पन्न कर परस्पर एक दूसरे को मिलाने

वा दोषानुसारिणः सूर्यस्य। किन्त्वेतयोरास्पदगयोर्द्वयो रागमुत्पाद्य संगमकारिण्याः सन्ध्याकुट्टिन्या एव प्रदोषानुबन्धिता।)

कराला—जादे, सच्चं कधेसि। (इति प्रौढमात्सर्यं नाटयन्ती।) हञ्जे पउमिए, परघरविराहिणि, कुट्टिणीकम्मलम्पडे, घण्टीमण्डलचक्कवट्टिणि, मह हत्थादो कहं मुञ्चिस्ससि। (इति धर्तुमुपक्रमते।) (जाते, सत्यं कथयसि। हञ्जे पद्मिके, परगृहविघटके कुट्टिनीकर्मलम्पटे, घण्टीमण्डलचक्रवर्तिनि, मम हस्ततः कथं मोक्ष्यसि।)

पद्मा—(सातङ्कम्।) अज्जे, ण जाणे कीस खिज्जसि। अम्हेहिं तुम्ह सासणं चेअ किज्जन्तं अत्थि। (आर्ये, न जाने कस्मात् खिद्यसे। अस्माभिर्युष्मच्छासनमेव क्रियमाणमस्ति।)

वृन्दा—(स्वगतम्।) नूनं धूर्तया शब्दच्छलमालम्बितं पद्मया।

वाली सन्ध्या रूपी कुट्टिनी का ही अपराध है। (अतः उसी को दण्ड मिलना चाहिए)

विमर्श—पश्चिम दिशा वरुण की पत्नी है। उसका सूर्य से मिलना संभव नहीं है किन्तु सायंकाल में सूर्य और पश्चिम दिशा का संयोग हो जाता है। इसमें सूर्य और पश्चिम दिशा का अपराध नहीं है बल्कि इन दोनों को मिलाने वाली संध्या का अपराध है। इस कथन से निम्नलिखित अर्थ भी ध्वनित होता है—चन्द्रावली मल्ल की स्त्री है। उसका कृष्ण से मिलना संभव नहीं है किन्तु इन दोनों को पद्मा नामक सखी मिलाती है अतः उसी का अपराध है, चन्द्रावली और कृष्ण का नहीं।

कराला—बेटी, सच कहती हो। (क्रोध दिखाती हुई) अरी पद्मे, दूसरे के घर को उजाड़नेवाली कुट्टिनी कर्म में धूर्त, घण्टी-समूह की सम्राज्ञी, मेरे हाथ से कैसे निकल सकोगी?

(यह कह कर छड़ी उठाती है।)

पद्मा—(डर कर) आर्ये, न जाने आप क्यों दुःखी हो रही हैं। हम लोग तो आपकी आज्ञा का ही पालन कर रहे हैं।

वृन्दा—(मन ही मन) अवश्य ही धूर्त पद्मा ने बात बनाने का सहारा

(प्रकाशम् ।) आर्ये, शैलमल्लयोर्नामाद्वैतेन भ्रान्तेयं मुग्धा बाला। तदद्य क्षम्यताम् ।

(कराला यष्टिं विमुञ्चति ।)

पद्मा—(स्वगतम् ।) ललिदे, चिट्ठ चिट्ठ। तुह णिक्किदं कादुं एसा जडिलं गच्छन्ती म्हि । (इति निष्क्रान्ता ।) (ललिते, तिष्ठ तिष्ठ। तव निष्कृतं कर्तुमेषा जटिलां गच्छन्त्यस्मि ।)

कराला—(चन्द्रावलीमालोक्य ।) एहि भो कुडुङ्गकुडुङ्गिणि, एहि। (इति चन्द्रावलीमादाय शैव्यया सह निष्क्रान्ता ।) (एहि भो कुटुम्बकुटुम्बिनि, एहि ।)

कृष्णः—(सोच्छ्वासम् ।) वृन्दे, नूनं साधितार्थासि ।

वृन्दा—माधव, रूपिणी माधवलक्ष्मीगौरीतीर्थे खेलति। तया चोपढौकितं सर्वस्वमिदं दरोन्मुद्रितं गन्धफलीद्वन्द्वम् ।

कृष्णः—(सानन्दमादाय ।) वृन्दे, यावद्गवां चारणे वयस्यानव-

किया है। (प्रकट) आर्ये, शैल और मल्ल के नाम की एकता के कारण यह भोली बाला भ्रम में पड़ गयी है। अतः आज क्षमा कर दीजिए। (कराला छड़ी फेंक देती है)

पद्मा—(मन ही मन) ललिते, ठहरो, ठहरो। तुम्हारा प्रायश्चित्त करने के लिए यह मैं जटिला के पास जा रही हूँ। (चली जाती है)

कराला—(चन्द्रावली को देखकर) आओ री कुटुम्ब की कुटुम्बिनि, आओ।

(चन्द्रावली को लेकर शैव्या के साथ चली जाती है)

कृष्ण—(लम्बी साँस लेकर) वृन्दे, निश्चय ही तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध हुआ।

वृन्दा—माधव, रूपवती वसन्त-शोभा गौरीतीर्थ में क्रीड़ा कर रही है और उसने कुछ-कुछ खिले हुए इस चम्पक-युगल को उपहार में दिया है।

कृष्ण—(प्रसन्नतापूर्वक लेकर) वृन्दे, जब तक गायों को चराने में मित्रों

धार्य तत्रानुसरामि, तावद्भवतीभ्यामग्रतः प्रस्थीयताम्। (इति निष्क्रान्तः।)

वृन्दा—(परिक्रम्य।) ललिते, पुरः संभावय कदम्बसम्राजम्। (इत्युपेत्य।) हन्त हन्त।

शङ्के पङ्कजसंभवोऽपि भवतः सौभाग्यभङ्गीभरं
वक्तुं न क्षमते कदम्बनृपते वृन्दाटवीद्योतिनः।
पुष्पैर्यस्य रमासहोदरतयाप्युद्भासुरं कौस्तुभं
दुर्लीलैरवहेलयद्भिरभितः शौरेरुरश्छाद्यते ॥ ३० ॥

ललिता—(पुरो विलोक्य।) वुन्दे, इअं विसाहादुदिआ भअवदी माअन्दकुञ्जे पच्छन्नं चिट्ठदि। (वृन्दे, इयं विशाखाद्वितीया भगवती माकन्दकुञ्जे प्रच्छन्नं तिष्ठति।)

वृन्दा—(लवङ्गलतान्तिके राधां विलोक्य।) ललिते, पश्य पश्य।

किमितः सुषमा वपुष्मती किमभिव्यक्तिरलं गुणश्रियः।

को लगाकर वहाँ जाता हूँ, तब तक तुम दोनों आगे बढ़ो।

(यह कह कर चले जाते हैं।)

वृन्दा—(घूमकर) ललिते, सामने कदम्बराज का अभिनन्दन करो। (समीप पहुँचकर) हाय, हाय।

हे कदम्बराज, वृन्दावन को सुशोभित करने वाले आपके सौभाग्य भंगिमा के समूह का वर्णन करने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। आपके जिन फूलों ने लक्ष्मी के सहोदर होने पर भी देदीप्यमान कौस्तुभ मणि का तिरस्कार किया है, उन्होंने चारो ओर से कृष्ण के वक्षस्थल को आच्छादित कर रखा है॥ ३० ॥

ललिता—(सामने देखकर) वृन्दे, विशाखा के साथ यह देवी आम्र-कुञ्ज में छिपकर बैठी हैं।

वृन्दा—(लवङ्गलता के बीच राधा को देखकर) ललिते, देखो, देखो।

क्या इधर शरीरधारिणी शोभा प्रकट हो रही है। अथवा गुणलक्ष्मी की

अथवा प्रणयाभिसंपदः किमियं मूर्तिरुदेति राधिका ॥ ३१ ॥

(पुनर्निरूप्य ।)

कर्णालंकृतकमला कुन्तलवेणीशिखाचलत्कमला ।
करकमलाश्रितकमला विडम्बयत्यलमसौ कमलाम् ॥३२ ॥

(नेपथ्ये ।)

कर्णान्दोलितमुग्धपुष्पकलिकाद्वन्द्वः कदम्बस्रजा
संवीतो मुरलीकरम्बितकरश्चूडाञ्चले चन्द्रिका ।
दूरादेष मनःशिलातिलकिना भालेन बिभ्रद्द्युति
मूर्तः खेलति हन्त नन्दगृहिणीवात्सल्यलक्ष्मीरसः ॥३३॥

ललिता—णूणं भअवदीए दूरे दिट्ठो कण्हो, जं वण्णीअदि । (नूनं भगवत्या दूरे दृष्टः कृष्णः, यद्वर्ण्यते ।)

अभिव्यक्ति हो रही है अथवा स्नेहलक्ष्मी की साक्षात् मूर्ति राधा प्रकट हो रही है ॥ ३१ ॥

(फिर देखकर) कानों में कमल का आभूषण पहन कर अपनी चोटी में कमल का फूल लगाकर और करकमल में कमलपुष्प को लेकर यह कमला लक्ष्मी की पूर्ण रूप से विडम्बना कर रही है ॥ ३२ ॥

(नेपथ्य में)

सुन्दर फूल की दो कलियों को कानों में धारण किए, कदम्ब की माला से युक्त, हाथ में मुरली लिए, बालों में चन्द्रिका लगाए और मनःशिला के तिलक-भूत भालप्रदेश से कान्तिमान, नन्दपत्नी यशोदा की वात्सल्य-शोभा का यह रस कृष्ण के रूप में मूर्तिमान् होकर दूर से क्रीडा कर रहा है।

(अर्थात् यशोदा का स्नेहपूर्ण लाल (दुलार) ही कृष्ण के अद्भुत सौन्दर्य का कारण है।) ॥ ३३ ॥

ललिता—भगवती ने कृष्ण को अवश्य दूर से देखा है, इसीलिए वर्णन कर रही हैं।

वृन्दा—ललिते, सत्यमविदूरवर्ती मधुवैरी। तथा हि।

सखि कुण्डलीकृतशिखण्डमण्डलो
नटतीह ताण्डविकहूतिरण्डजः।
न कदापि कृष्णमुदिरेक्षणं विना
मुदिरेक्षणे क्षणमपि श्वसित्यसौ ॥ ३४ ॥

ललिता—सहि, दक्खिणेण पुंणाअसण्डं पेक्ख पुण्डअमण्डपेणम्। (सखि, दक्षिणेन पुंनागषण्डं पश्य पुण्ड्रकमण्डप एनम्।)

वृन्दा—(विलोक्य। सहर्षम्।)

चक्रं वशीकृतवतः किल नैचिकीनां
वंशीनिनादमधुना मधुसूदनस्य।
आभीरशेखरगतिं प्रतिपादयन्ती
शोभा बभूव परमा परमस्य यष्टिः ॥ ३५ ॥

क्योंकि—

हे सखि, अपने पंखसमूह को गोलाकार बनाकर 'ताण्डविक' इस नाम से पुकारा जाने वाला यह मयूर यहाँ नाच रहा है। हे खञ्जननयने, कृष्णरूपी मेघ को बिना देखे यह एक क्षण भी जी नहीं सकता है ॥ ३४ ॥

ललिता—सखि, दायीं ओर माधवीलतामण्डप में इस पुंनागषण्ड (नागकेसर) को देखो।

वृन्दा—(देखकर। प्रसन्नतापूर्वक)

अच्छी अच्छी गायों के समूह को अपने वश में किए हुए, वंशी के शब्द रूपी गोपमूर्धन्य कृष्ण की गति को अच्छी तरह समझाती हुई कृष्ण की लाठी अभी अत्यन्त सुन्दर हो गयी।

विमर्श—जिधर वंशी का शब्द होता था, उधर कृष्ण की गति का ज्ञान लोगों को हो जाता था ॥ ३५ ॥

ललिता—ण वुत्तं दाणिं पि दोण्णं अण्णोण्णदंसणम्। केअलं रङ्गि-णिअं पेक्खिअ लवङ्गकुडङ्गं पविसदि कण्हो। (न वृत्तमिदानीमपि द्वयोर-न्योन्यदर्शनम्। केवलं रङ्गिणिकां प्रेक्ष्य लवङ्गकुञ्जं प्रविशति कृष्णः।)

वृन्दा—पश्य पश्य।

विसृमरान्परितो हरिमूर्तितः परिमलानुपलभ्य कलावती।
इयमितः सखि पुण्डूकमण्डपे स्मितमुखी तनुवल्लिमपावृणोत् ॥२६॥

(पुनर्निरूप्य। सकौतुकम्।)

व्यक्तिं गताभिरभितो भुवि पांसुलायां
सद्यः पदाङ्कततिभिः कथिताध्वनोऽयम्।
पश्चादुपेत्य नयने किल राधिकायाः
कम्प्रेण पाणियुगलेन हरिर्दधार ॥ २७ ॥

ललिता—हन्त हन्त, एसा पुलइदङ्गी वामा लीलाकमलेण ताडेदि कमलेक्खणम्। (हन्त हन्त, एषा पुलकिताङ्गी वामा लीलाकमलेन ताडयति कमलेक्षणम्।)

ललिता—अभी भी दोनों की परस्पर देखा-देखी नहीं हुई है। कृष्ण केवल हरिणी को देखकर लवंगकुञ्ज में प्रवेश कर रहे हैं।

वृन्दा—देखो, देखो।

कृष्ण के शरीर से धीरे-धीरे निकलने वाली सुगन्धों को पाकर इस कलावती (राधा) ने मुस्करा कर माधवी लतामण्डप में अपनी शरीरलता को खोल दिया है ॥ २६ ॥

(पुनः देखकर। उत्सुकता के साथ)

बालुकामय धरती पर अभी-अभी स्पष्टरूप से दिखायी पड़ने वाले (राधा के) चरणचिह्न के समूह के द्वारा मार्ग का पता लग जाने से यह कृष्ण पीछे से आकर राधा की दोनों आँखों को काँपते हुए हाथों से मूँद लिया है ॥ २७ ॥

ललिता—हाय, हाय, रोमाञ्चित शरीर वाली यह राधा कमलनयन कृष्ण को लीला कमल से मार रही है।

वृन्दा—पश्य पश्य।

भ्रूभेदः स्मितसंवृतो नहि नहीत्युक्तिर्मदेनाकुला
विश्रान्तोद्धति पाणिरोधरचनं शुष्कं तथा क्रन्दनम्।
सृष्टो यः सखि राधया मुहुरयं संगोपनोपक्रमो
भावस्तेन हृदि स्थितो मुरभिदि व्यक्तः समन्तात्प्रभूत् ॥३८॥

ललिता—(संस्कृतेन।)

वृन्दा—देखो, देखो।

(राधा की) भ्रूभंगिमा मुस्कराहट से युक्त है। 'नहीं, नहीं' यह कथन मद से आकुल है। हाथ की रुकावट भी शिथिल है। चिल्लाने में शुष्कता अर्थात् दुःख का अभाव है। इस प्रकार राधा ने अपने भाव को छिपाने का जो उपक्रम किया है उससे मुरारि के प्रति उसका स्नेह भाव ही पूर्णरूप से व्यक्त हो रहा है ॥ ३८ ॥

विमर्श—राधा और कृष्ण की पारस्परिक केलिक्रीडा चल रही है। राधा कृष्ण का विरोध तो करती है किन्तु उसके प्रत्येक विरोध में समर्थन की झलक है। यथा—

राधा अपने भौंहों को टेढ़ी करती है किन्तु मुस्कुरा कर। यहाँ पर भ्रूभंगिमा यदि असंमति का सूचक है तो मुस्कराहट सम्मति का व्यञ्जक। अतः असम्मति में भी सम्मति का पुट है। राधा का 'नहीं-नहीं' यह कथन असम्मति-सूचक होकर भी मदाकुल होने के कारण सात्त्विक विकार के रूप में स्वरभेद से सम्मति-व्यञ्जक है।

राधा हाथ से कृष्ण को रोकने का बहाना करती है किन्तु कृष्ण के कर-स्पर्श से उसका हाथ शिथिल हो जाता है और उससे विरोध भाव प्रकट न होकर स्वीकृति ही सूचित होती है। वह चीखती भी है किन्तु उसमें दुःख का भाव नहीं व्यक्त हो रहा है। इस प्रकार राधा के केलिविरोध-व्यापार में ऊपर से असम्मति रहने पर भी हृदय से सम्मति ही झलकती है।

ललिता—(संस्कृत में)

प्रातिकूल्यमिव यद्विवृण्वती राधिका रदनखार्पणोद्धुरा ।
केलिकर्मणि गता प्रगल्भतां तेन तुष्टिमतुलां हरिर्ययौ ॥ ३९ ॥

वृन्दा—(विहस्य ।)

नैरञ्जन्यमुपेयतुः परिगलन्मोदाश्रुणी लोचने
खेदोद्धूतविलेपनं किल कुचद्वन्द्वं जहौ रागिताम् ।
योगौत्सुक्यमगादुरः स्फुरदिति प्रेक्ष्योदयं सङ्गिनां
राधे नीविरियं तव श्लथगुणा शङ्के मुमुक्षां दधे ॥४०॥

ललिता—कधं एदं विअद्धमिहुणं माहवीकुडङ्गन्तरिदं संवुत्तम् ।
(कथमिदं विदग्धमिथुनं माधवीकुञ्जान्तरितं संवृत्तम् ।)

वृन्दा—

राधामाधवयोर्मध्यां केलिमाध्वीकमाधुरीम् ।

प्रतिकूलता को बढ़ाती हुई राधा दन्त और नखच्छेद से आकुल होकर केलिक्रिया में निपुण हो गयी है अतः कृष्ण अत्यधिक संतुष्ट हुए हैं । (अर्थात् राधा ने केलिक्रीडा में पर्याप्त अभिरुचि लेकर कृष्ण को संतुष्ट कर दिया है) ॥ ३९ ॥

वृन्दा—(हँसकर)

आनन्द की बहती हुई आँसुओं से युक्त नेत्रों से अञ्जन धुल गया है । पसीने के कारण अनुलेप के धुल जाने से दोनों स्तनों ने लालिमा का त्याग कर दिया है । प्रेमीजनों की उन्नति को देखकर चंचल हृदय संगम के लिए उत्सुक हो गया है । हे राधे, मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारी यह नीवी (साड़ी की गाँठ) ढीली होकर खुल जाना चाहती है ॥ ४० ॥

ललिता—माधवी कुञ्ज के भीतर क्या यह विदग्ध मिथुन सम्पन्न हो गया !

वृन्दा—राधा और माधव के विशुद्ध केलिमधु के माधुर्य का नेत्ररूपी

धयन्नयनभृङ्गेन कस्तृप्तिमधिगच्छति ॥ ४१ ॥

ललिता—हला, एदे गलन्तमरन्दंपि माहवीपुप्फसंदोहं मुञ्चिअ कीसं भिङ्गा पुव्वाहिमुहं धाअन्ति। (सखि, एते गलन्तमरन्दमपि माधवीपुष्पसंदोहं मुक्त्वा कस्माद् भृङ्गाः पूर्वाभिमुखं धावन्ति।)

वृन्दा—सखि, विमुच्य माधवीमण्डपं नागरमण्डलोत्तंसौ प्रस्थितौ। तयोरामोदमनुसर्पन्तः षट्पदा धावन्ति। तदेहि। लतामन्दिरालोकनेन नन्दयावश्चक्षुषी। (इति परिक्रम्य।) ललिते, पश्य पश्य।

मनोहारी हारस्खलितमणिभिस्तारतरलैः
परिम्लायन्माल्यो मिलितपुरटालंकृतिकणः।
अयं कुञ्जस्तल्पीकृतकुसुमपुञ्जप्रणयवान्
समन्तादुत्तुङ्गं पिशुनयति रङ्गं मुरभिदः ॥ ४२ ॥

भ्रमर द्वारा आस्वादन करता हुआ कौन संतुष्ट होता है ? (अर्थात् युगलमूर्ति की केलिक्रीडा का सभी सदा अवलोकन करना चाहते हैं।) ॥ ४१ ॥

ललिता—सखि, बहते हुए रस से युक्त भी माधवी-पुष्पसमूह को छोड़कर ये भौंरे पूरब, की ओर क्यों दौड़ रहे हैं !

वृन्दा—सखि, नागरमंडल के आभूषण रूप राधा-कृष्ण माधवी-लतामण्डप को छोड़कर चले गये। उन दोनों की सुगन्ध का अनुसरण करते हुए भौंरे दौड़ रहे हैं। तो आओ। लतामंदिर के दर्शनसे ही हम लोग अपने नेत्रों को आनन्द पहुँचावें। (घूमकर) ललिते, देखो देखो। हार से टूटकर गिरे हुए चंचल मणियों से सुशोभित, मिले हुए स्वर्णाभूषण के टुकड़े तथा सूखती हुई माला से युक्त और बिछावन के रूप में व्यवहृत पुष्प-समूह का अनुरागी यह कुञ्ज सभी ओर से कृष्ण के उत्कृष्ट विलास की सूचना दे रहा है ॥ ४२ ॥

विमर्श—इस कुञ्ज में प्रणयक्रीडा के कारण हार की लरी टूट गयी है जिससे उसके मणि इधर-उधर बिखर गये हैं। माला मुरझा रही है। सोने के

कृष्णाङ्गसंगममिलद्घुसृणाङ्गरागा
राधापदस्खलदलक्तकरक्तपार्श्वा ।

ललिता—(निपुणं निरूप्य । संस्कृतेन ।)

सिन्दूरबिन्दुचितघर्मजलोक्षितेयं
दूना धिनोति नयने मम पुष्पशय्या ॥ ४३ ॥

वृन्दा—(सविस्मयम् ।)

चिक्रीड या रजसि रञ्जितसूत्रनद्ध-
गोकर्णमात्रचिकुरा नवविद्धकर्णा ।
सेयं कुतः प्रवरविभ्रमकौशलानि
राधाद्य गोष्ठ बत वैरजितं जिगाय ॥ ४४ ॥

ललिता—(पूर्वतः प्रेक्ष्य ।) वुन्दे, पेक्ख णादिदूरे सराहो माहवो । (वृन्दे, पश्य नातिदूरे सराधो माधवः ।)

आभूषण के टुकड़े जहाँ तहाँ दीख रहे हैं। इसमें फूलों की सेज बिछी है। ये सब कृष्ण के राधा के साथ हुए प्रशस्त विलास के सूचक तत्त्व हैं।

ललिता—(ठीक से देखकर संस्कृत में)

कृष्ण के अंगों के सम्पर्क से मिश्रित कुंकुम के अंगराग से युक्त, राधा के चरणों से गिरे हुए आलता से लाल पार्श्ववाली तथा सिन्दूरबिन्दु से सने हुए पसीने से भींगी हुई पीडाप्रस्त (मसली हुई) यह पुष्पशय्या मेरे नेत्रों को आनन्द पहुँचा रही है ॥ ४३ ॥

वृन्दा—(आश्चर्य के साथ)

लाल डोरे से बँधे हुए गाय के कान के बराबर केशोंवाली तथा नये छिदे हुए कानों वाली जो राधा धूल में खेलती थी, वही यह श्रेष्ठ विलास की शिक्षा कहाँ से पा गयी है ! (अर्थात् अभी तो राधिका बालिका थी और तुरत तरुणी बन गयी ।) ॥ ४४ ॥

ललिता—(पूरब की ओर देखकर) वृन्दे, देखो । राधासहित माधव (कृष्ण) दूर नहीं हैं ।

वृन्दा—शृणुवः किमाह ।

(नेपथ्ये ।)

राधा—(संस्कृतेन ।)

कुरु कुवलयं कर्णोत्सङ्गे लवङ्गमभङ्गुरं
विकिर चिकुरस्यान्तर्मल्लीस्रजं क्षिप वक्षसि ।
अनघ जघने कादम्बीं मे प्रलम्बय मेखलां
कलयतु न मामालीवृन्दं हरे निरलंकृतिम् ॥४५॥

वृन्दा—(स्मितं कृत्वा ।)

वहन्ती मञ्जिष्ठारुणिततनुवस्त्रोज्ज्वलरुचीन्
नखाङ्कान् खेलोर्मिस्खलितशिखिपत्रावलिरियम् ।
स्फुरन्मुक्तातुल्यैरलघुघनघर्माम्बुभिरलं
समृद्धा मे मेधां मधुमथनमूर्तिर्मदयति ॥ ४६ ॥

वृन्दा—हम लोग सुनें कि क्या बोलते हैं ।

(नेपथ्य में)

राधा—(संस्कृत में) हे हरे, मेरे कानों में कमल पहनाओ । केशों के बीच लौंग बिखेरो । वक्षःस्थल पर जूही की माला डाल दो । हे अनघ, मेरे जघन में कदम्ब-पुष्प की बनी हुई करधनी लपेटो । सखियाँ मुझे आभूषण रहित न समझें ॥ ४५ ॥

वृन्दा—(मुस्करा कर)

मजीठ से रँगे हुए महीन वस्त्र से भी अधिक उज्ज्वल कान्तियुक्त नखचिह्नों को धारण करती हुई, क्रीडा की मस्ती में गिरे हुए मयूर-पंखवाली तथा चमकीले मुक्ता के समान बड़े सघन श्रमबिन्दुओं से अत्यधिक बढ़ी हुई कृष्ण की यह मूर्ति हमारी बुद्धि को मदमत्त बना रही है ॥ ४६ ॥

विमर्श—कृष्ण के अंगों में यत्र-तत्र नख के निशान दीख रहे हैं । रति-क्रीडा की नोक-झोंक में मोरपंख गिर कर इधर-उधर बिखर गये हैं और उनके

(ततः प्रविशति कृष्णः, प्रसाधिताङ्गी राधा च ।)

कृष्णः—

नीतं ते पुनरुक्ततां भ्रमरकैः कस्तूरिकापत्त्रकं
नेत्राभ्यां विफलीकृतं कुवलयद्वन्द्वं च कर्णार्पितम् ।
हारश्च स्मितकान्तिभङ्गिभिरलं पिष्टानुपेषीकृतः
किं राधे तव मण्डनेन नितरामङ्गैरसि द्योतिता ॥४७॥

उभे—(उपसृत्य ।) सुन्दर, इदं परममञ्जुलं वासन्तीकुसुममण्डनम् ।

कृष्णः—(स्तवकद्वन्द्वमादाय । सहर्षम् ।)

ध्येयेन मुक्तवृन्दस्य काम्यमाना मुहुर्मया ।

शरीर पर मोती के समान लगनेवाली रति-खेदजन्य पसीने की बूँद दिखायी पड़ रही है । कृष्ण के इस अस्तव्यस्त स्वरूप को देखकर वृन्दा के अन्तस्तल में एक हलचल सी उठ रही है ।

(उसके बाद कृष्ण और अलंकारों में सजी राधा प्रवेश करती है)

कृष्ण—हे राधे, ललाट तक लटकनेवाले तुम्हारे केशों ने कस्तूरिकापत्र को व्यर्थ कर दिया है । तुम्हारे दोनों नेत्रों ने कानों में लगे हुए कमल के जोड़े को बेकार कर दिया है । मुस्कान की शोभा से हार भी पर्याप्तरूपसे निरर्थक ही सिद्ध हो गया है । इस प्रकार तुम्हें सजावट से क्या प्रयोजन ? तुम तो अपने अंगों से ही चमक रही हो । (अर्थात् तुम्हारा सौन्दर्य स्वाभाविक है, उसे कृत्रिम सजावट की आवश्यकता नहीं है ।) ॥ ४७ ॥

दोनों सखियाँ—(समीप आकर) सुन्दर, यह वासन्ती फूल का अति सुन्दर आभूषण है ।

कृष्ण—(दोनों पुष्पगुच्छों को लेकर । प्रसन्नतापूर्वक)

हे सुन्दर नितम्बवाली राधे, मुक्तपुरुषों के ध्यान करने योग्य मेरे द्वारा तुम

युक्ता त्वमतिमुक्तानां श्रेण्या सुश्रोणि सेवितुम् ॥ ४८ ॥

(इति राधामवतंसयति ।)

(नेपथ्ये ।)

अनुपरमति यामे काममह्नस्तृतीये
जलदसमयलक्ष्मीयौवनोज्जृम्भणेऽद्य ।
नवयवसकदम्बैस्तर्पितानां कदम्बः
कलयति सुरभीणां गोकुलायाभिमुख्यम् ॥ ४९ ॥

ललिता—राहे, अणुजाणेहि । रत्तिमण्डनत्थं दुल्लहं वासन्तकुसुमं गेहिस्सम् । (इति निष्क्रान्ता ।) (राधे, अनुज्ञापय । रात्रिमण्डनार्थं दुर्लभं वसन्तकुसुमं ग्रहीष्यामि ।)

कृष्णः—(स्मित्वा । जनान्तिकम् ।) वृन्दे, किंचिद्विनोदं विधातुकामोऽस्मि । तदत्र प्रियायाः प्रत्यायितेयं पुरो द्रुमाधिरूढा कक्खटी त्वया मत्पक्षग्राहिणी क्रियताम् ।

बार-बार कामना की जाने वाली हो अतः तुम अतिमुक्तों-माधवी पुष्पों की पंक्ति-द्वारा सेवा के उपयुक्त हो ॥ ४८ ॥

(यह कह कर राधा को अलंकृत करते हैं ।)

(नेपथ्य में)

वर्षाकालीन शोभा-विस्तार के प्रकाश से युक्त दिन के तीसरे पहरे के बीतने से पहले नयी घास के समूहों से संतुष्ट गायों का झुण्ड गोकुल की ओर जाने को उद्यत हो रहा है ॥ ४९ ॥

ललिता—राधे, आज्ञा दो । रात में सजाने के लिए वसन्त के दुर्लभ फूल को लेना है । (यह कह कर चली जाती है)

कृष्ण—(मुस्कराकर एकान्त में वृन्दा से) वृन्दे कुछ मजाक करना चाहता हूँ । अतः प्रियतमा की ओर से प्रतीकार करने वाली सामने वृक्ष पर बैठी इस कक्खटी को तुम मेरे पक्ष में कर दो ।

वृन्दा—भवतु । यतिष्ये ।

कृष्णः—(राधामवेत्य ।) प्रिये चन्द्रा—(इत्यर्धोक्ते कृत्रिमसंभ्रमं नाटयति ।)

राधिका—(सखेदम् ।) हद्धी हद्धी । कधं एव्वं सुणन्तं वि ण मे फुडिदं कण्णजुअलम् । (हा धिक् हा धिक् । कथमेवं शृण्वदपि न मे स्फुटितं कर्णयुगलम् ।)

वृन्दा—(स्वगतम् ।) पिच्छिकाभ्रमणेन कक्खटिकामुन्मोद्य हरेरभीष्टं व्याहारयिष्ये । (इत्यलक्षितं तथा कृत्वा प्रकाशम् ।) सखि, रङ्गे मा भज वैमुख्यम् ।

कृष्णः—प्रिये चन्द्रानने, किमित्यकाण्डे विमनस्कासि ।

(नेपथ्ये ।)

सामिणि, इमिणा तुम्ह मुद्धत्तणेण ललिदा ण जीविस्सदि । (स्वामिनि अनेन तव मुग्धत्वेन ललिता न जीविष्यति ।)

राधिका—(ऊर्ध्वमालोक्य । स्वगतम् ।) णीसंदेहम्हि किदा कक्खडिआए । (प्रकाशम् ।) पअण्डं क्खु कुलिसविप्फूज्जिदं कधं डिण्डिमाडम्बरेण संवरणिज्जं होदु । (इति पराङ्मुखी भवति ।) (निःसंदेहास्मि

वृन्दा—अच्छा । प्रयास करूँगी ।

कृष्ण—(राधा से दूर हट कर) प्रिया चन्द्रा (इतना आधा कहने पर बनावटी घबड़ाहट दिखाते हैं ।)

राधिका—(दुःखपूर्वक) हाय, धिक्कार है धिक्कार है । इस प्रकार की बात सुनकर भी मेरे दोनों कान फट क्यों नहीं जाते हैं ।

वृन्दा—पिच्छिका (मोरपंखी) घुमाने से कक्खटिका को प्रसन्न करके कृष्ण का अभीष्ट कहलाऊँगी ।

(छिपकर वैसा करके प्रकट) सखि, सुख के समय प्रतिकूल न बनो ।

कृष्ण—प्रिये चन्द्रमुखि, बेमौके उदास क्यों हो रही हो ?

(नेपथ्य में)

मालकिन, इस प्रकार आपके भोलेपनसे ललिता नहीं जीयेगी ।

राधिका—(ऊपर देखकर मन ही मन) कक्खटिका ने संदेह को दूर कर दिया (प्रकट) प्रचण्ड वज्र की आवाज को ढोल का आडम्बर कैसे छिपा सकता

कृता कक्खटिकया । प्रचण्डं खलु कुलिशविस्फूर्जितं कथं डिण्डिमाडम्बरेण संवर-णीयं भवतु ।)

कृष्णः—(अपवार्य ।)

समरोद्धुरकामकार्मुकश्रीविजयिभ्रूयुगमाकुलाक्षिपद्माम् ।
विधुरीकृतमप्यतिक्रुधाग्रे मम राधावदनं मनो धिनोति ॥ ५० ॥

(इति राधापटाञ्चलमुच्चाल्य ।) सुन्दरि, मधुरेण समाप्यतां मधुविहारकौ-तुकम् ।

(पुनर्नेपथ्ये ।)

हद्धी हद्धी । भो पउमासिक्खे दुट्ठसारसि, तुमं पि मं कडक्खसि । ता कीस पराणं धारेमि । (हा धिक् हा धिक् । भो पद्माशिष्ये दुष्टसारसि,

---

है ! (यह कह कर मुँह फेर लेती है ।)

विमर्श—पहले 'चन्द्रा'—यह सम्बोधन वज्र के समान कठोर था । बाद में 'चन्द्रानने' यह परिष्कृत सम्बोधन ढोल का आडम्बर जैसा है । जिस प्रकार ढोल की आवाज का प्रभाव वज्रध्वनि पर नहीं पड़ता, उसी प्रकार प्रथम सम्बोधन की कठोरता को बाद की चापलूसी भरी सरलता नहीं छिपा सकती । कृष्ण ने प्रथम सम्बोधन में चन्द्रावली का संकेत देकर बाद में 'चन्द्रानने' इस सम्बोधन द्वारा उसे छिपाने का असफल प्रयास किया है ।

कृष्ण—(एकान्त में)

युद्ध में प्रचण्ड कामदेव के धनुष की शोभा को जीत लेने वाले भ्रूयुगल से युक्त तथा चंचल नेत्र-कमलवाला राधा का मुख सामने अत्यन्त क्रोध से विकृत होने पर भी मेरे मन को सुख पहुँचा रहा है ॥ ५० ॥

(यह कह कर राधा के आँचल को ऊपर उठाकर) सुन्दरि, मनोरम विहार-क्रीडा को मधुरतापूर्वक समाप्त करो । (अर्थात् विलास के सुन्दर वातावरण को अन्त में क्रोध दिखाकर नीरस न बनाओ ।)

(फिर नेपथ्य में)

हाय, हाय ! अरी पद्मा की दुष्ट शिष्या सारसि, तुम भी मेरे ऊपर कटाक्ष

त्वमपि मां कदाक्षयसि । तत्कस्मात्प्राणं धारयामि ।)

राधिका—(निश्वस्य सरोषमपसर्पन्ती ।) वुन्दे, परं केत्तिअं विडम्बिअ्दम्हि । ता ऋत्ति वारेहि णं कवडपरिपाडीणाटअसुत्तधारं भुअणमारारम्भिमुरलीशिक्खाणीसङ्कं करालिआणत्तिणीकीलाकुरङ्गम् । (वृन्दे, परं कियद्विडम्बितास्मि । तच्छटिति वारयैनं कपटपरिपाटीनाटकसूत्रधारं भुवनमारारम्भिमुरलीशिक्षानिःशङ्कं करालिकानप्त्रीक्रीडाकुरङ्गम् ।)

कृष्णः—(सानन्दस्मितम् ।) सखि वृन्दे, प्रसादय राधाम् ।

वृन्दा—प्रियसखि राधे, विदग्धवधूनां मूर्धन्यासि तदकाण्डे कठोरमानकाण्डेन नापसारय वल्लभकृष्णसारम् ।

राधिका—(बाढमवज्ञामभिनीय ।) एत्थ अवत्थादुं ण जुत्तम्हि । (इति निष्क्रान्ता ।) (अत्रावस्थातुं न युक्तास्मि ।)

कृष्णः—वृन्दे, बलीयसि रोषानले साममाध्वीकमुद्दीपनायैव ।

करती हो । तो मैं जीकर क्या करूँगी ? (अर्थात् मेरा जीना बेकार है ।)

राधिका—(सुनकर क्रोध से दूर हटती हुई) वृन्दे, मैं बहुत धोखा खा चुकी । अतएव छलपरंपरा-युक्त नाटक के सूत्रधार, संसार में कामदेव को प्रोत्साहन देने वाली मुरली को शिक्षा देने में निःशंक (पाप के भय से रहित) और करालिका की नतिनी चन्द्रावली के वश में रहकर बन्दर की तरह नाचने वाले इस कृष्ण को मना करो ।

विमर्श—मदारी के इशारे पर नाचने वाले उसके बन्दर को लोक में 'क्रीडाकुरङ्ग' कहा जाता है । कृष्ण भी चन्द्रावली के इशारे पर नाचते हैं अतः राधाने उन्हें क्रीडाकुरङ्ग की संज्ञा दी है ।

कृष्ण—(प्रसन्नता और मुस्कराहट के साथ) सखि वृन्दे, राधा को मनाओ ।

वृन्दा—प्रियसखि राधे, चतुर ललनाओं में श्रेष्ठ हो । अतः बेमौके कठोर मान के प्रसंग से प्रियतम कृष्ण को दूर न होने दो ।

राधिका—(अत्यधिक अनादर दिखाकर) यहाँ मैं नहीं ठहर सकती । (यह कह कर चली जाती है)

कृष्ण—क्रोध की अत्यधिक भभकती आग को शान्ति का मधु बढ़ाता ही

तदलमत्रानुयात्रया।

वृन्दा—किमत्र युक्तम्।

कृष्णः—वृन्दे, वरवर्णिनीवेषेण राधां प्रसाधयितुमिच्छामि। तदत्र भवत्या समाधानमध्यवसीयताम्।

(वृन्दा साङ्गीकारं स्मितं करोति।)

कृष्णः—सखि, गौराङ्गरागसंगतं वराङ्गनावेषसाधनं कथमत्राभिलप्स्ये।

(प्रविश्य।)

मधुमङ्गलः—पिअवअस्स, अत्थि गोरीघरे तहाविहवेससामग्गी जा पउमाए मम हत्थे समप्पिदा। (प्रियवयस्य, अस्ति गौरीगृहे तथाविधवेषसामग्री या पद्मया मम हस्ते समर्पिता।)

कृष्णः—(सहर्षम्।) वृन्दे, गौरीगृहगम्भीरिकायां भविष्यामि। तदात्मभगिनीभावेन संभावनीयोऽहम्। (इति सवयस्यो निष्क्रान्तः।)

वृन्दा—(परिक्रम्य। दूरे दृष्टिं क्षिपन्ती।)

है। अतः यहाँ उसके पीछे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

वृन्दा—यहाँ क्या उचित है?

कृष्ण—वृन्दे, सुन्दरी स्त्री का वेष बनाकर राधा का श्रृंगार करना चाहता हूँ। अतः तुम इसका उपाय सोचो।

वृन्दा—(स्वीकृतिपूर्वक मुस्कराती है)

कृष्ण—सखि, गौरवर्ण के अंगराग से युक्त, सुन्दरी ललना के वेष का साधन कहाँ मिलेगा?

(प्रवेश करके)

मधुमंगल—प्रियमित्र, गौरी मन्दिर में उस प्रकार के वेष को बनाने की सामग्री है जिसे पद्मा ने मुझे दिया है।

कृष्ण—वृन्दे, मैं गौरीमन्दिर के भीतर रहूँगा। अतः मुझे अपनी बहिन समझकर आदर करना। (यह कह कर मित्र के साथ चले जाते हैं)

वृन्दा—(घूमकर दूर में दृष्टि डालती हुई) चम्पक, लवङ्ग और बकुल

चम्पकलवङ्गवकुलान्यवचिन्वन्त्योर्वयस्ययोरत्र ।
स्फुटमिदमेव सलज्जं राधावृत्तं निवेदयति ॥ ५१ ॥

(प्रविश्य तथाविधा राधा ।)

राधा–सहि, तदो हं अणुणेदुं पउत्तं णं अवहीरिअ एत्थ पत्तम्हि । (सखि, ततोऽहमनुनेतुं प्रवृत्तमेनमवधीर्यात्र प्राप्तास्मि ।)

ललिता—राहे, ण क्खु तुमम्हि कण्हस्स गोत्तक्खलिदं सिविणे वि संभावीअदि । ता पइदिपमत्ताणं पसूणं पलावे किदवीसम्भा तुमं वञ्चिदासि । (राधे, न खलु त्वयि कृष्णस्य गोत्रस्खलितं स्वप्नेऽपि संभाव्यते । तत्प्रकृतिप्रमत्तानां पशूनां प्रलापे कृतविस्रम्भा त्वं वञ्चितासि ।)

विशाखा—हद्धी हद्धी । ललिदे, पेक्ख अज्ज सोहग्गपुण्णिमाए आरद्धसंघरिसा वलिणो पडिपक्खा । ता विडम्बिदा म्ह देव्वेण । (हा धिक् हा धिक् । ललिते, पश्याद्य सौभाग्यपूर्णिमायामारब्धसंघर्षा बलिनः प्रतिपक्षाः । तस्माद्विडम्बिताः स्म दैवेन ।)

ललिता—विसाहे, सच्चं कहेसि । एत्थ महूसवे जइ अम्हाणं मुह-

के फूलों को चुनती हुई दोनों सखियों का प्रकट होना ही यहाँ लज्जायुक्त राधा-वृत्तान्त को बता रहा है ॥ ५१ ॥

(फूल चुनती हुई राधा प्रवेश करके)

राधा—सखि, मुझको मनाने के लिए उद्यत उसकी (कृष्ण को) उपेक्षा करके यहाँ आ गयी हूँ ।

ललिता—राधे, तुम्हारे विषय में कृष्ण का गोत्रस्खलन (नामग्रहण में असावधानी) स्वप्न में भी नहीं हो सकता तो तुम स्वभावतः उन्मत्त पशुओं के प्रलाप में विश्वास करके धोखा खायी हो ।

विशाखा—हाय, हाय । ललिते, देखो आज सौभाग्यपूर्णिमा के आरम्भ में ही संघर्ष में विरोधी प्रबल हो रहे हैं । तो भाग्यने हम लोगों को धोखा दिया है ।

ललिता—विशाखे, सच कहती हो । इस महोत्सव में यदि हम लोगों के

मालिण्णं सव्वत्तीओ पेक्खिस्सन्ति, तदो सोल्लुण्ठं कडुक्खन्तीओ हसिस्सन्ति। (विशाखे, सत्यं कथयसि। अत्र महोत्सवे यदस्माकं मुखमालिन्यं सपत्न्यः प्रेक्षिष्यन्ति, तदा सोल्लुण्ठं कटाक्षयन्त्यो हसिष्यन्ति।)

राधिका—(स्वगतम्।) साहु सहीओ मन्तेन्ति। ता किं एत्थ सरणम्। (साधु सख्यो मन्त्रयन्ति। तत्किमत्र शरणम्।)

वृन्दा—(उपसृत्य।) ललिते, रामानुजस्य निदेशेन राममुपनेतुं प्रस्थितास्मि।

ललिता—किंति।

वृन्दा—वसन्तश्रीदर्शनाय।

विशाखा—सहि वुन्दे, क्खणं विलम्बिअ कुण संधिम्। (सखि वृन्दे, क्षणं विलम्ब्य कुरु संधिम्।)

वृन्दा—सत्यं जानीहि मया दुष्करोऽद्य संधिः।

विशाखा—कधं विअ। (कथमिव।)

वृन्दा—पृच्छयतामात्मसखी, ययाद्य कटूक्तिभिरपरक्षितः कञ्जेक्षणः।

मुँह की उदासी सौतें देख लेंगी तो हम सबों पर कटाक्ष करती हुई खुल कर हँसेंगी।

राधिका—(मन ही मन) सखियाँ ठीक विचार देती हैं। तो अब यहाँ क्या उपाय है?

वृन्दा—(समीप आकर) ललिते, राम के छोटे भाई कृष्ण के आदेश से राम (बलराम) को लाने जा रही हूँ।

ललिता—ऐसा क्यों?

वृन्दा—वसन्त की शोभा देखने के लिए।

विशाखा—सखि वृन्दे, एक क्षण के बाद सन्धिकर दो।

वृन्दा—सच मानो। मैं इस समय संधि करने में असमर्थ हूँ।

विशाखा—क्यों?

वृन्दा—अपनी सखी से पूछ लो जिसने आज कठोर वचनों से कमलनयन (कृष्ण) को अप्रसन्न कर दिया है।

राधिका--(निःश्वस्य ।) हला वुन्दे, तुमं ज्जेअ गदी । (हला वृन्दे, त्वमेव गतिः ।)

वृन्दा—(सव्याजरोषम् ।)

असूया चण्डाली हृदि पदसिता चण्डि विनिशु-
र्न वाचस्ते पथ्याः श्रुतिसरणिसीमाञ्चलमपि ।
इदानीमौदास्यं वशगसदृशाक्षीततिरगा-
न्मुकुन्दो निर्द्वन्द्वीभव सखि मुधा निःश्वसिसि किम् ॥५२॥

ललिता—कहिं सो क्खु मोहणो । (कुत्र स खलु मोहनः ।)

वृन्दा—गौरीसद्मनि ।

ललिता--किं करेदि । (किं करोति ।)

वृन्दा--निकुञ्जविद्यया सार्धं गोष्ठीं तनोति ।

तिस्रः— सहि, का क्खु णिउञ्जविज्जा । (सखि का खलु निकुञ्जविद्या ।)

वृन्दा—(स्फुटं विहस्य ।) अहो मौग्ध्यं किशोरीणां यदमूरतिप्रसि-

---

राधिका--(लम्बी साँस लेकर) सखि वृन्दे, तुम्हीं हमारी गति हो ।

वृन्दा--(बनावटी क्रोध के साथ)

हे चण्डि, क्रूरकर्मा ईर्ष्या ने तुम्हारे हृदय में अपना आसन बना लिया है इसलिए हितकर बातें तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँच पातीं । सम्प्रति सुन्दर नेत्रोंवाली गोपियों को अपने वश में रखनेवाला मुकुन्द (कृष्ण) उदासीन हो गया है अतः निश्चिन्त हो जाओ । हे सखि, व्यर्थ साँस क्यों खींच रही हो ? ॥ ५२ ॥

ललिता—वह मोहन कहाँ हैं ?

वृन्दा—गौरीगृह में ।

ललिता—क्या करते हैं ?

वृन्दा—निकुञ्ज विद्या के साथ गोष्ठी (बैठक) का विस्तार करते हैं ।

तीनों—सखि, निकुञ्ज विद्या क्या है ?

वृन्दा—(खुलकर हँसती हुई) किशोरियों का भोलापन विचित्र है

द्धामपि निकुञ्जविद्यां न विदन्ति ।

ललिता--(सलज्जम् ।) सहि, कधेहि सच्चं । ण जाणीम्ह । (सखि, कथय सत्यम् । न जानीमः ।)

वृन्दा--हन्त भो विशुद्धाः, का नाम सा गोकुले वल्लववालिकास्ति या खलु स्वसारं मे भाण्डीरदेवतां न जानीते ।

ललिता—वुन्दे, देहि तुमं मन्तं जेण एदं वेसम्मं सुहोदक्कं भवे । (वृन्दे, देहि त्वं मन्त्रं येनेदं वैषम्यं सुखोदर्कं भवेत् ।)

वृन्दा—सखि, गोकुलानन्दनिगूढविस्रम्भमणिमञ्जूषेयं निकुञ्जविद्या । तदेनां भजेम ।

(इति सर्वाः परिक्रामन्ति ।)

राधिका—वुन्दे, एदं ज्जेव्व गोरीमण्डवम् । ता एत्थ पविसिअ सण्णाए कड्ढ णिउञ्जविज्जम् । (वृन्दे, इदमेव गौरीमण्डपम् । तदत्र प्रविश्य संज्ञयाकर्ष निकुञ्जविद्याम् ।)

वृन्दा—(कृतोद्ग्रीविकमालोक्य स्वगतम् ।) हन्त, गौरीमिव किशोरी

जो इस अति प्रसिद्ध निकुञ्जविद्या को नहीं जानती हैं ।

तीनों—(लज्जापूर्वक) सखि सच कहो । हम लोग नहीं जानते हैं ।

वृन्दा—अरी भाली, गोकुल में ऐसी कौन गोपी है जो मेरी बहिन भाण्डीर देवता को नहीं जानती !

ललिता—वृन्दे, तुम्हीं मंत्र बतलाओ जिससे यह विषमता परिणाम में सुखकर हो ।

वृन्दा—सखि, यह निकुञ्जविद्या गोकुल के आनन्ददायक कृष्ण के गूढ़ विश्वास की मणिमञ्जूषा है । अतः इसकी सेवा करें ।

(सभी घूमती हैं)

राधिका—वृन्दे, यही गौरीमण्डप है । तो यहाँ प्रवेश करके सांकेतिक आवाज से निकुञ्ज विद्या को बुलाओ ।

वृन्दा—(गर्दन उठाकर देखकर मन ही मन) हाय, गौरी की भाँति

द्वारि पश्यामि । (प्रकाशम् ।) सख्यः केवलमेकात्र भाण्डीरदेवतैव शिखण्डेन कुण्डलं कुर्वती वर्तते ।

तिस्रः—असच्चसंसिणि, चिट्ठ चिट्ठ । जं एसो ताण्डविअसिहण्डी पङ्गणे चिट्ठदि । (असत्यशंसिनि, तिष्ठ तिष्ठ । यदेष ताण्डविकशिखण्डी प्राङ्गणे तिष्ठति ।)

वृन्दा—हन्त भो दाक्षिण्यशून्याः, स्वयमागत्य समीक्ष्यताम् । किमत्रानुमानेन ।

ललिता—हला, फुडं तन्दाउलदा चन्दइणी जादा जं णिक्कमन्तो चन्दअमउली इमिणा ण लक्खिदो । (हला, स्फुटं तन्द्राकुलता चन्द्रकिणी जाता यन्निष्क्रमन् चन्द्रकमौलिरनेन न लक्षितः ।)

राधिका—हला, घरं पविसिअ णिउञ्जविज्जं पुच्छम्ह । (हला, गृहं प्रविश्य निकुञ्जविद्यां पृच्छामः ।)

(इति सर्वाः प्रवेशं नाटयन्ति ।)

(प्रविश्य ।)

जटिला—भणिदम्हि पेम्मेण पउमाए—'अज्जे जडिले, दिट्ठिआ वड्ढसि । गोअड्ढणो विअ तुम्ह पुत्तो वि गोकोडीसरो हुविस्सदि ।

किशोरी को द्वार पर देखती हूँ । (प्रकट) सखियो, केवल अकेले ही भाण्डीर देवता यहाँ मोरपंख से कुण्डल बनाती हुई विद्यमान है ।

तीनों—अरी झूठी, रुको रुको । यह मोर तो आंगन में बैठा है ।

वृन्दा—अरी दाक्षिण्य शून्ये, स्वयं आकर देख लो । यहाँ पर अनुमान करने से क्या लाभ !

ललिता—सखि, स्पष्ट ही चन्द्रकिणी आलस्य से आकुल हो गयी है अतः निकलते हुए चन्द्रकमौलि को लक्ष्य नहीं किया ।

राधिका—सखि, घर में प्रवेश करके निकुञ्ज विद्या से पूछती हूँ ।

(सभी घर में प्रवेश करने का अभिनय करती हैं ।)

(प्रवेश करके)

जटिला—पद्मा ने स्नेहपूर्वक मुझे कहा है—"आर्ये जटिले, तुम्हारा

जं दिट्ठं मए अज्ज गौरीतित्थे राहिए गौरी आराहीअदि'ति। ता गदुअ वहूहिं आसिसाहिं वड्ढयिस्सम्। (इति परिक्रम्य रङ्गीमङ्गने दृष्ट्वा सानन्दम्।) साहु पउमे, साहु। असच्चभासिणी णासि। (पुनर्निभाल्य। सखेदम्।) हद्धी हद्धी। कहं गौरीसिहस्स सिरे तण्डविओ चिट्ठइ। ता परावट्टिअ पुत्तं आणिस्सम्। (इति धावन्ती निष्क्रान्ता।) (असत्यभाषिणी नासि। हा धिक् हा धिक्। कथं गौरीसिंहस्य शिरसि ताण्डवि करितिष्ठति। तत्परावृत्य पुत्रमानयिष्यामि।)

राधिका—(जनान्तिकम्।) सहीओ, पेक्खध लोओत्तरं किंपि गौरीए सौन्दरम्। (सख्यः, पश्यत लोकोत्तरं किमपि गौर्याः सौन्दर्यम्।)

सख्यौ—हला, सच्चं सच्चम्। ठाणे कण्हस्स पेम्मवीसम्हसंभाविदा एसा। (हला, सत्यं सत्यम्। स्थाने कृष्णस्य प्रेमविस्रम्भसंभावितैषा।)

राधिका—णं अदिट्ठपुव्वं संभासिदुं ससंभमम्हि। (इत्यपत्रपां नाटयति।) (एनामदृष्टपूर्वां संभाषितुं ससंभ्रमास्मि।)

सौभाग्य बढ़ रहा है गोवर्धन की भाँति तुम्हारा पुत्र भी गोकोटि (एक करोड़ गाय का) का स्वामी बनेगा। क्योंकि आज मैंने गौरीतीर्थ में राधा को गौरी की पूजा करते देखा है"। अतः जाकर वधू को आशीर्वाद देकर उत्साहित करूँगी। (घूमकर आंगन में हरिणी को देखकर प्रसन्नतापूर्वक) धन्य पद्मे धन्य। तुम झूठ नहीं बोलती हो।

(पुनः देखकर दुःखपूर्वक) हाय, हाय गौरी के सिंह के शिर पर मयूर क्यों बैठा है। तो लौटकर बेटा को ले आऊँगी।

(यह कहकर दौड़ती हुई चली जाती है।)

राधिका—(एकान्त में) सखियो, देखो, गौरी की सुन्दरता कुछ अलौकिक ही है।

दोनों सखियाँ—सखि, सच है सच है। इसका, कृष्ण के प्रेम विश्वास का आदर पाना उचित ही है।

राधिका—इस अपूर्व सुन्दरी से बात करने के लिए मैं उतावली हो रही हूँ। (यह कहकर लज्जा का अभिनय करती है।)

(नेपथ्ये ।)

यामि वृन्दे, नूनं राधया नाहं परिचीये। मया तु सहस्रधेयमनुभूयमानास्ति।

वृन्दा—(स्वगतम् ।) चित्रं साक्षादङ्गनाकण्ठध्वनिरेवायम्।

राधिका—वृन्दे, ण जाणे कीस पसहं णिउञ्जविज्जाए सिणिज्झदि मे हिअअम्। (वृन्दे, न जाने कस्मात्प्रसभं निकुञ्जविद्यायां स्निह्यति मे हृदयम्।)

वृन्दा—सखि, तत्त्वं जाने। न चित्रमिदं यदसावपि चिरं त्वय्यनुरज्यति।

राधिका—(सानन्दमनुसृत्य) हला णिउञ्जविज्जे, कहिं सो तुह णिउञ्जणाअरो। (हला निकुञ्जविद्ये, कुत्र स तव निकुञ्जनागरः।)

(नेपथ्ये ।)

सखि, कस्तं जनो जानाति।

ललिता—सहि णिउञ्जविज्जे, मुंचेहि परिहासच्छलम्। अप्प-

(नेपथ्य में)

बहिन वृन्दे, निश्चय ही राधा ने मुझे नहीं पहिचाना है। मैंने तो इसे हजारों प्रकार से अनुभव किया है।

वृन्दा—(मन ही मन) अचरज की बात है यह तो बिल्कुल स्त्री की ही आवाज है।

राधिका—वृन्दे, न जाने क्यों मेरा हृदय निकुञ्जविद्या को अत्यधिक प्यार कर रहा है।

वृन्दा—सखि, मैं सही बात जानती हूँ। यह आश्चर्य नहीं है क्योंकि यह भी तुम पर बहुत पहले से स्नेह रखती है।

राधिका—(प्रसन्नतापूर्वक समीप जाकर) सखि निकुञ्जविद्ये, तुम्हारा वह निकुञ्जनागर कहाँ है?

(नेपथ्य में)

सखि, उसे कौन व्यक्ति जानता है?

ललिता—सखि निकुञ्जविद्ये, मजाक छोड़ो। तुम्हारा समाज भी हमारे

वग्गो दे अम्हारिसो जणो। (सखि निकुञ्जविद्ये, मुञ्च परिहासच्छलम्। आत्मवर्गस्तेऽस्मादृशो जनः।)

(नेपथ्ये।)

वाढं तत्त्वमविज्ञाय ताप्यमानः कृशानुना।
कथं शारदपद्माक्षि पारदः परिलभ्यते ॥ ५३ ॥

वृन्दा—(जनान्तिकम्।)

स्मेरा कपोलपाली शंसति दूत्यं निकुञ्जविद्यायाः।
राधे मृदुलय तदिमां स्नेहेनाभ्यज्य भव्येन ॥ ५४ ॥

राधिका—हला णिउञ्जविज्जे, कीस वुन्देव्व णाणुवन्धणासि सिणेहवन्धम्। (हला निकुञ्जविद्ये, कस्माद् वृन्देव नानुवध्नासि स्नेहवन्धम्।)

(नेपथ्ये।)

वृन्दा—

विधिः पद्मे पादौ नवकदलिके सक्थियुगलीं

जैसा व्यक्ति ही है।

(नेपथ्य में)

हे शरत्कालीन कमल के समान नेत्रवाली, वस्तुतः तत्त्व को बिना जाने आग के द्वारा तपाये जाते पारद को कैसे पाया जा सकता है! ॥ ५३ ॥

वृन्दा—(एकान्त में राधा से) हे राधे, प्रफुल्लित कपोलपाली निकुञ्जविद्या के दूतीभाव को प्रकट कर रही है अतः तुम उदार स्नेह से इसका अभिनन्दन कर इसे कोमल बनाओ ॥ ५४ ॥

राधिका—सखि निकुञ्जविद्ये, तुम वृन्दा की भाँति प्रेमभाव क्यों नहीं दिखाती हो?

(नेपथ्य में)

वृन्दा—ब्रह्मा ने दो कमलों से तुम्हारे दोनों चरण, नवीन केले के थंभों से ऊरु

मृणाले दोर्द्वन्द्वं तव शशिनमापाद्य वदनम् ।
मृदूनामर्थानां न कठिनमवष्टम्भकमृते
स्थितिः स्यादित्यत्र व्यधित हृदयं नूनमशनिम् ॥५५॥

राधिका—वृन्दे, पेक्ख साणुराअहासं परिहसिज्जामि णिउञ्जविज्जाए। ता गदुअ मिलिस्सम्। (इति निष्क्रान्ता।) (वृन्दे, पश्य सानुरागहासं परिहस्ये निकुंजविद्यया। तद्गत्वा मिलिष्यामि।)

वृन्दा—

गोकुलरामाप्रेयसि निकुञ्जविद्ये कठोरधीस्त्वमसि ।
यत्प्रवणामपि पुरतः परिरभ्य सखीं न रञ्जयसि ॥५६॥

विशाखा—इअं राही णिउञ्जविज्जं परिरद्धुं भुअवल्लीं उल्लासेन्ती पेम्मवीसद्धं जप्पदि। हला भअवदीरदेअदे, पेक्ख। गोउलपवेसवेला पच्चासीअदि। ता कारिज्जउ अम्हेसु लोलारङ्गसग्गमिदा कण्हस्स पसाओ। (इयं राधिका निकुञ्जविद्यां परिरब्धुं भुजवल्लीमुल्लासयन्ती प्रेम-

---

युगल, मृणालों से दोनों भुजाएँ और चन्द्रमा से मुख को बनाया है, किन्तु कोमल पदार्थों की स्थिति कठिन आधार के बिना नहीं हो सकती अतः निश्चय ही उन्होंने तुम्हारे हृदय में वज्र को जड़ दिया है ॥ ५५ ॥

राधिका—वृन्दे, देवी-निकुञ्जविद्या ने मेरा स्नेह मिश्रित उपहास किया है। तो जाकर उससे मिलूँगी। (यह कहकर चली जाती है)

वृन्दा—गोकुल-ललनाओं की प्यारी हे निकुञ्ज विद्ये, (पक्ष में—गोकुल ललनाओं का प्रेमी कृष्ण), तुम कठोर बुद्धि की हो। क्योंकि सामने झुकी हुई भी सखी को आलिंगन द्वारा सुख नहीं पहुँचा रही हो। (अर्थात् हे कृष्ण, तुम्हारा हृदय कठोर है- इसीलिए मानरहित अनुकूल राधा को भी आलिंगनसुख से वंचित कर रहे हो।) ॥ ५६ ॥

विशाखा—यह राधिका निकुञ्जविद्या का आलिंगन करने के लिये

विश्रब्धं जल्पति। इयं भाण्डीरदेवते, पश्य। गोकुलप्रवेशवेला प्रत्यासीदति, तत्कार्यतामस्मासु श्रीचारङ्गसंगमितः कृष्णस्य प्रसादः।)

ललिता—वुन्दे, एसा तुम्ह बहिणी राहिअं परिरम्भिअ चुम्बदि। (वृन्दे, एषा तव भगिनी राधिकां परिरम्य चुम्बति।)

विशाखा—(सशङ्कम्।) दिट्ठा णिल्लज्जिआए तुम्ह णिउञ्जविज्जाए पुरिसधम्मलुद्धदा। जं एसा राहावक्खोरुहे णहरङ्कुरं अप्पेदि। (दृष्टा निर्लज्जया तव निकुञ्जविद्यया पुरुषधर्मलुब्धता। यदेषा राधावक्षोरुहे नखराङ्कुरानर्पयति।)

वृन्दा—(सस्मितम्।) सखि, माभ्यसूयां कृथाः। प्रेमोत्कर्षविलासोऽयम्।

(प्रविश्य मोरकम्पा।)

राधिका—(सभ्रूभङ्गम्।) वुन्दे, जुत्तं जुत्तं अम्हेसु तुम्ह जिम्हत्तणम्। (वृन्दे, युक्तं युक्तमस्मासु तव जिह्मत्वम्।)

वृन्दा—(विहस्य।) सखि, न वेद्मि किं तवाकूतम्।

सुमङ्गता को उठाती हुई प्रेम से विश्वासपूर्वक बात कर रही है।

ललिता—वृन्दे, तुम्हारी यह बहिन राधा का आलिंगनकर उसे चूमती है।

विशाखा—(सन्देहपूर्वक) निर्लज्ज निकुञ्जविद्या की पुरुषधर्म लुब्धता की धृष्टता देखी गयी। क्योंकि यह राधा के वक्षस्थल में नखों को भिड़ा रही है। (स्त्री की छाती में नखच्छेद करना पुरुष धर्म है।)

वृन्दा—(मुस्कराहट के साथ) सखि, डाह मत करो। यह तो प्रेम के उत्कर्ष का विलास है।

(प्रवेश करके कंपन के साथ)

राधिका—(भौंहें टेढ़ी करके) वृन्दे, हम लोगों में तुम्हारी कुटिलता उचित है, उचित है।

वृन्दा—(हँसकर) सखि, तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझ रही हूँ।

सखी—(सस्मितम् ।) वुन्दे, विण्णादा दे मोहिणीभूदा णिउञ्ज-विज्जा । (वृन्दे, विज्ञाता ते मोहिनीभूता निकुञ्जविद्या ।)

(ततः प्रविशति सपुत्रा जटिला ।)

जटिला—वच्छा अहिमण्णो, पेक्ख पङ्गणे रङ्गिणी तह तण्डविओ वि सिहण्डी चिट्ठइ । (वत्साभिमन्यो, पश्य प्राङ्गणे रङ्गिणी तथा ताण्डविकोऽपि शिखण्डी तिष्ठति ।)

अभिमन्युः—अम्ब, सच्चं कहेसि । जं दिट्ठं मए गोगोवमण्डलेण सद्धं एक्को ज्जेव्व रामो गोउलं पइट्ठो । (अम्ब, सत्यं कथयसि । यद् दृष्टं मया गोगोपमण्डलेन सार्धमेक एव रामो गोकुलं प्रविष्टः ।)

जटिला—वच्छ, एसा विसारिणी कावि सोरब्भधारा ज्जेव्व तं साहसिअमिहुणं एत्थ कहेइ । (वत्स, एषा विसारिणी कापि सौरभ्यधारैव तं साहसिकमिथुनमत्र कथयति ।)

अभिमन्युः—अम्ब, भवदीए णिद्देसो वि मए पडिवालिदो अज्ज संवुत्तो । ता दाणिं राहिअं महुरापुरे णइस्सम् । (अम्ब, भवत्या निदेशोऽपि मया प्रतिपालितोऽद्य संवृत्तः । तदिदानीं राधां मथुरापुरे नयिष्यामि ।)

दोनों सखियाँ—मुस्कराकर वृन्दे, तुम्हारी मोहिनी बनी निकुञ्जविद्या का रहस्य खुल गया । (अर्थात् कृष्ण के मोहिनी वेष का भेद प्रकट हो गया ।)

(तदनन्तर पुत्र के साथ जटिला प्रवेश करती है)

जटिला—बेटा अभिमन्यु, देखो, आँगन में हरिणी तथा ताण्डविक मयूर बैठा है ।

अभिमन्यु—माँ, ठीक कहती हो । क्योंकि मैंने देखा है कि बलराम गाय और गोपसमूह के साथ अकेले ही गोकुल में प्रवेश किए हैं ।

जटिला—वत्स, चारों ओर बिखरनेवाली यह सुगन्धधारा ही उस साहसी युगल की स्थिति यहाँ बता रही है ।

अभिमन्यु—माँ, आज मैंने तुम्हारे आदेश का भी पालन कर लिया है । अतः अब राधा को मथुरा ले जाऊँगा ।

वण्णभरेण का एसा गौरी घरं उज्जलेइ ।) (वत्स, लोकोत्तरेण लावण्यभरेण कैषा गौरी गृहमुज्ज्वलयति ।)

अभिमन्युः—(विमृश्य ।) अम्ब, देइ, पसीद पसीद त्ति भणिअ राहीए दण्डप्पणामो किदत्थि । ता एसा दिव्वरूपा महेसमहिसी फुडं पादुब्भूदा । (अम्ब, देवि, प्रसीद प्रसीदेति भणित्वा राधया दण्डवत्प्रणामः कृतोऽस्ति । तदेषा दिव्यरूपा महेशमहिषी स्फुटं प्रादुर्भूता ।)

कृष्णः—(सहर्षमात्मगतम् ।) गौरीनेपथ्यं मम सुष्ठु पथ्यं बभूव ।

सख्यौ—(सानन्दम् ।) गोवुत्तम, तुम्हाणं अम्बेडिदेण अम्हेहिं आराहिज्जन्ती गौरी पडिमादो णिक्कमिदा । (गोपोत्तम, युष्माकमाम्रेडितेनास्माभिराराध्यमाना गौरी प्रतिमातो निष्क्रमिता ।)

अभिमन्युः—विसाहे, किं दाणिं देइपादे सुदुल्लहं राहीए अब्भत्थिदम् । (विशाखे, किमिदानीं देवीपादे सुदुर्लभं राधयाभ्यर्थितम् ।)

कृष्णः—वीराभिमन्यो, दारुणं किमपि संकटं तवोपस्थितम् । तन्निवृत्तिमियं याचते ।

सौन्दर्य राशि से यह कौन है जो गौरीगृह को प्रकाशित कर रही है !

अभिमन्यु—(सोचकर) माँ, "देवि, प्रसन्न हो, प्रसन्न हो," ऐसा कहकर राधा ने दण्डवत् प्रणाम किया है । तो यह महेश की महारानी दिव्य रूपवाली साक्षात् गौरी प्रकट हुई हैं ।

कृष्ण—(प्रसन्नतापूर्वक मन ही मन) गौरी का वेष इस समय मेरे लिए अच्छा बचाव हुआ ।

दोनों सखियाँ—(प्रसन्नता के साथ) हे गोपश्रेष्ठ, आपके दो तीन बार कहने पर हम लोगों के द्वारा पूजनीया गौरी मूर्ति से प्रकट हुई हैं ।

अभिमन्यु—विशाखे, इस समय राधा ने गौरी के चरण में (गिरकर) किस दुर्लभ वस्तु की याचना की है ?

कृष्ण—वीर अभिमन्यु, तुम्हारे पर कोई विकट संकट उपस्थित हुआ है । यह उसीसे छुटकारा की प्रार्थना करती है ।

अभिमन्युः—(सशङ्कम्।) भअवदि, केरिसं तम्। (भगवति, कीदृशं तत्।)

कृष्णः—वृन्दे, तदभिव्यक्तौ संकुचन्ति मे वचनानि। ततस्त्वया कथ्यताम्।

वृन्दा—नास्त्यभिमन्यो, परश्वस्त्वं गोपेश्वरेण भैरवाय नाम-मुपहारीकर्तव्योऽसि।

जटिला—(सवैक्लव्यम्।) देइ, पसीद पसीद। जीअपुत्तिअं मं करेहि। (देवि, प्रसीद प्रसीद। जीवत्पुत्रां मां कुरु।)

राधिका—(पर्णकुटात्।) देइ, पसीद पसीद। (देवि, प्रसीद प्रसीद।)

कृष्णः—(स्मित्वा।) राधे, वर्णितमेव ते। यदेव दुर्निवारमिदम्।

राधिका—(सकाकुभरं प्रणम्य।) हन्त वल्लवीकुलदेवदे, किं वि असक्कं दे णत्थि। ता तुए णाहेण अविप्पओअं पसादीकदुअ अणुगेह्णीअदु एसो जणो। (हन्त वल्लवीकुलदेवते, किमप्यशक्यं ते नास्ति। तस्मात्त्वया नाथेनाविप्रयोगं प्रसादीकृत्यानुगृह्यतामयं जनः।)

अभिमन्यु—(सशङ्क) देवि, वह कैसा है?

कृष्ण—वृन्दे, उसे प्रकट करने में मेरे वचन संकुचित हो रहे हैं। अतः तुम कहो।

वृन्दा—नहीं अभिमन्यु, परसों सर्वशक्त गोपेश्वर (शिव) के द्वारा तुम भैरव को उपहार में दिये जाओगे।

जटिला—(विकलतापूर्वक) देवि, प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। मुझे जीवित पुत्र वाली करो।

राधिका—(कुटी से उठकर) देवि, प्रसन्न हो, प्रसन्न हो।

कृष्ण—(मुस्कराकर) राधे, तुम्हें बता ही दिया गया है कि अब इसे रोका नहीं जा सकता।

राधिका—(विकलतापूर्वक प्रणाम करके) हाय, हे गोकुल की देवि, तुम्हारे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। अतः स्वामी के साथ वियोग न कराकर इस व्यक्ति को अनुगृहीत करो।

कृष्णः—(स्मित्वा ।)

वशीकृतास्म्यद्य वशीन्द्रदुष्करैस्तवाद्य राधे नवभक्तिदामभिः ।
तदिष्टसिद्धिं कृतगोकुलस्थितिः सदा मदाराधनतस्त्वमाप्स्यसि ॥५७॥

अभिमन्युः—(सोच्छ्वासम् ।) अइ भत्तजणवच्छले, कदा वि महुराहिमुही मए ण राहिआ कादव्वा । ता इह वसन्ती तुमं एसा आराहेदु । (अयि भक्तजनवत्सले, कदापि मथुराभिमुखी मया न राधिका कर्तव्या । तदिह वसन्ती त्वामेवाराधयतु ।)

जटिला—(राधामालिङ्ग्य ।) अइ गोउलणन्दिणि, रक्खिदम्हि । (अयि गोकुलनन्दिनि, रक्षितास्मि ।)

वृन्दा—(अभिमन्युमवेक्ष्य ।)

विध्वंसयति हि पुंसां साध्वी परिवादितायूंषि ।
परदेवतात्र गौरी भावग्राहिण्यसौ वदतु ॥ ५८ ॥

कृष्ण—(मुस्कराकर) हे राधे, जितेन्द्रिय सत्पुरुषों के लिए भी असाध्य तुम्हारी नवीन भक्ति के बन्धनों से मैं तुम्हारे अधीन हूँ अतः सदा गोकुल में निवास करती हुई तुम मेरी आराधना से अभिलषित फल पाओगी । (अर्थात् योगियों के लिए भी दुष्कर तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ । तुम गोकुल में रहकर ही मेरी आराधना करो ।) ॥ ५७ ॥

अभिमन्यु—(लम्बी साँस लेकर) भक्तों पर दया करनेवाली हे देवि, मैं राधा को कभी भी मथुरा नहीं भेजूँगा । इसलिए यह यहीं पर रहकर तुम्हारी पूजा करे ।

जटिला—(राधा का आलिंगन करके) हे गोकुलनन्दिनि, मेरी रक्षा हुई ।

वृन्दा—(अभिमन्यु को देखकर)

सती स्त्रियों को कलंक लगाना पुरुषों की आयु को क्षीण करता है । इस विषय में हृदय के भाव को समझनेवाली श्रेष्ठ देवता गौरी ही कहें ॥ ५८ ॥

कृष्णः—धन्योऽसि अभिमन्यो, कल्याणसाधिका ते राधिका। तदस्यां नाविश्रम्भेण भवितव्यं भवता।

अभिमन्युः—देइ, राहीवेसं कदुअ सुअलेण अम्बा मे परिहसिज्जइ। त पेक्खिअ मच्छरी अणहिण्णो मिच्छाहिसत्तिं उप्पावेदि। (देवि, राधावेशं कृत्वा सुबलेनाम्बा मे परिहसिष्यति। तत्प्रेक्ष्य मत्सरी अनभिज्ञो मिथ्याभिशक्तिमुत्पादयति।)

ललिता—अहिमण्णो, दिट्ठिआ सअं चेअ वीसत्थोसि।) अभिमन्यो, दिष्ट्या स्वयमेव विश्वस्तोऽसि।)

अभिमन्युः—अम्ब एहि मम घरं। सव्वस्साइं महुरापुरे णेदुं णिजुत्तं जणं णिवारेम्ह। (इत्यम्बया सह हरिं प्रणम्य निष्क्रान्तः।) (अम्ब, एहि मम गृहम्। ....मथुरापुरे नेतुं नियुक्तं जनं निवारयामः।

सख्यौ—(राधामालिङ्ग्य साश्रम्।) हा पिअसहि, कधं पामरेहिं तुमं महुरापुरे णेदुं णिच्छिदासि।) (हा प्रियसखि, कथं पामरैस्त्वं मथुरापुरे नेतुं निश्चितासि।)

(प्रविश्य।)

कृष्ण—हे अभिमन्यु, तुम धन्य हो, राधा तुम्हारे कल्याण की साधिका है। अतः इसके प्रति तुम्हें अविश्वास नहीं करना चाहिए।

अभिमन्यु—देवि, राधा का वेश बनाकर सुबल हमारी माँ का उपहास करेगा। उसे देखकर ईर्ष्यालु अनजान मात्र से कलंक लगाता है।

ललिता—सौभाग्य से तुमने स्वयं विश्वास कर लिया है।

अभिमन्यु—माँ, हम लोग घर चलें। राधा को मथुरा ले जाने के लिए नियुक्त पुरुषों को रोक दें। (यह कहकर माता के साथ कृष्ण को प्रणाम करके चला जाता है)

दोनों सखियाँ—(राधा का आलिंगनकर आँसू छलकाती हुई) हा प्यारी सखी, नीच पुरुषों ने तुम्हें मथुरा ले जाने का कैसे निश्चय किया है?

(प्रवेश करके)

पौर्णमासी—(सानन्दस्मितम् ।)

अङ्गरागेण गौराङ्गी हिरण्यद्युतिहारिणी ।
मामग्रे रञ्जयत्येषा निकुञ्जकुलदेवता ॥ ५९ ॥

कृष्णः—(परिक्रम्य ।) भगवति, वन्दे ।

पौर्णमासी—आशीःशतम् । हन्त यशोदामातः, दिष्ट्या भवताद्य संवर्धितास्मि यदहं राधिकाविश्लेषवेदनानामनभिज्ञीकृता ।)

कृष्णः—

उत्तीर्णा परमभयाद्बभूव राधा-
निर्वाणाज्जनि भवती गताधिरूचिः ।
निःशङ्कं प्रमदमितास्तथाद्य सख्यः
कर्तव्यं भगवति किं प्रियं तवास्ति ॥ ६० ॥

पौर्णमासी—(सानन्दास्रम् ।) गोकुलबन्धो, बाढमवन्ध्यजन्मास्मि कृता । तथापि किंचिदभ्यर्थये ॥

पौर्णमासी—(प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराकर)

अंगराग के लेप से गौरी और सोने की छटा को हरनेवाली यह निकुंज देवता सामने मुझको आनन्दित कर रही है ॥ ५९ ॥

कृष्ण—(घूमकर) भगवति, प्रणाम करता हूँ ।

पौर्णमासी—सैकड़ों आशीर्वाद । अहा, हे यशोदानन्दन, आज सौभाग्य से आपने मुझे उत्साहित किया है जिससे राधिका के वियोग से उत्पन्न होने वाले कष्टों को मुझे सहना नहीं पड़ा ।

कृष्ण—राधा का महाभय दूर हो गया है । आपकी मानसिक वेदना की हुई निवृत्त गयी है । आज सखियाँ भी निःशंक होकर प्रसन्न हो गयी हैं । हे देवि, अब आपका और कौन सा प्रिय कार्य करूँ ॥ ६० ॥

पौर्णमासी—(आनन्दपूर्वक आँसू बहाती हुई) हे गोकुलबन्धु, आपने मेरे जन्म को पूर्ण सार्थक बनाया है । फिर भी कुछ प्रार्थना करती हूँ । गुणवृन्द

प्रथयन् गुणवृन्दमाधुरीमधिवृन्दावनकुञ्जकन्दरम् ।
सह राधिकया भवान् सदा शुभमभ्यस्यतु केलिविभ्रमम् ॥६१॥

किंच ।

अन्तःकन्दलितादरः श्रुतिपुटीमुद्घाटयन् सेवते
यस्ते गोकुलकेलिनिर्मलसुधासिन्धूत्थबिन्दूनपि ।
राधामाधविकामधो मधुरिमास्वाराज्यमस्यार्जयन्
साधीयान् भवदीयपादकमले प्रेमोर्मिरुन्मीलतु ॥६२॥

कृष्णः—(स्मित्वा ।) भगवति, तथास्तु । तदेहि । गोदोहावसाने मामप्रेक्ष्य चिन्तयिष्यन्तौ पितरावविलम्बं गोकुलं प्रविश्य नन्दयावः । (इति निष्क्रान्तः ।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति गौरीविहारो नाम सप्तमोऽङ्कः ।

की मधुरिमा को फैलाते हुए वृन्दावन के कुञ्जकन्दरों में आप राधा के साथ शुभकेलि विलास का सदा अभ्यास करें ॥ ६१ ॥

और भी—हे राधारूपी माधविका के आनन्ददायक वसन्त, हृदय में पुञ्जीभूत आदरवाला कर्णयुगल को खोलते हुए आपके गोकुल के विलास निर्मल अमृत सागर से उठे हुए जलकणों को भी जो सेवन करता है, उसके माधुर्य साम्राज्य को अर्जन करते हुए प्रेम का अतिशय तरंग आपके चरणकमल में संलग्न रहे ॥ ६२ ॥

कृष्ण—(मुस्कराकर) देवि, वैसा ही हो । तो आओ । गाय दुहने के बाद मुझको नहीं देखकर चिन्ता करनेवाले माता-पिता को शीघ्र गोकुल पहुँच कर आनन्दित करें । (यह कहकर चले जाते हैं ।)

(इस प्रकार सभी चले जाते हैं ।)

गौरी-विहार नामक सप्तम अङ्क समाप्त ।

ग्रन्थसमाप्तिः

राधाविलासं वीताङ्कं चतुःषष्टिकलाधरम् ।
विदग्धमाधवं साधु शीलयन्तु विचक्षणाः ॥ १ ॥

विगत अंकों में चौंसठ कलाओं के राधाविलास से युक्त 'विदग्ध माधव' नामक नाटक का विद्वज्जन अच्छी तरह परिशीलन करें ॥ १ ॥

नन्दसिन्धुरबाणेन्दुसंख्ये संवत्सरे गते ।
विदग्धमाधवं नाम नाटकं गोकुले कृतम् ॥ २ ॥

१५८७ संख्यक सम्वत्सर के बीतने पर विदग्ध माधव नामक नाटक की रचना गोकुल में हुई ॥ २ ॥

विमर्श--श्लोक के प्रथम चरण "नन्द सिन्धुर बाणेन्दु"--से (१५८९) संख्यक सम्वत्सर का बोध होता है। 'अंकानां वामतो गतिः' इस नियम के अनुसार इन्दु शब्द से एक संख्या, बाण शब्द से पाँच संख्या सिन्धुर शब्द से आठ संख्या और नन्द शब्द से नौ संख्या की प्रतीति होती है क्योंकि लोक में चन्द्रमा एक, बाण पाँच, सिन्धुर (हाथी) आठ (अष्टगज) और नन्द नौ प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार १५८९ सम्वत्सर का बोध सांकेतिक शब्दों द्वारा कराया गया है।

शान्तश्रियः परमभागवताः समन्ताद्
वैगुण्यपुञ्जमपि सद्गुणतां नयन्ति ।

दोषावलीमपरितापितया मृदूनि
ज्योतींषि विष्णुपदभाञ्जि विभूषयन्ति ॥ ३ ॥

समाप्तमिदं विदग्धमाधवं नाम नाटकम् ।

शान्त शोभा वाले श्रेष्ठ भक्त दोषराशि को भी सब प्रकार से सद्गुण में बदल देते हैं । विष्णु भगवान (विष्णुपद = आकाश) के चरणों का सेवन करनेवाली कोमल नक्षत्र किरणें अपनी शीतलता से रात्रि पंक्ति को विभूषित करती हैं ॥ ३ ॥

विमर्श—भगवद्भक्तों का सम्पर्क दोष को भी गुन में परिणत कर देता है । भगवान् विष्णु का लोक में विद्यमान प्रकाशपुञ्ज रात्रि को भी विभूषित करता है । भगवान् तथा उनके भक्तों की दृष्टि में दोष नाम की कोई वस्तु है ही नहीं और यदि कहीं है भी तो वह गुणरूप में ही । विदग्धमाधव नामक यह नाटक समाप्त हुआ ।

इति मुद्गलसरस्वत्यन्तःपाति-'वेवरी'-ग्रामवासिना व्याकरण-वेदान्त-
साहित्याचार्येण एम० ए० इत्युपाधिप्रसाधिना
पण्डितश्रीरमाकान्तकाशर्मणा विरचिता
विदग्धमाधवस्य प्रकाशाभिधाना
टीका समाप्ता ।

श्लोकानुक्रमणिका